रयाम ध० धर्मसे पं० पंचम महा व्रत स० प्रतिक्रमण सहित ध० धर्मको उ० अंगीकार कर वि० विचरने को त० तव स० श्रमण भ० भगवान म० महावीरने उ० उदकको ए० ऐसा व० कहा अ० यथासुख दे० देवानुप्रिय मा० मत प० प्रतिबन्ध क० करो त० तव से० वह उ० उदक पे० पेढाल पुत्र स० श्रमण भ० भगवान म० महावीर की अं० समीप चा० चारयाम ध० धर्म से पं० पांच महा व्रत स० प्रतिक्रमण सहित ध० धर्म उ० अंगीकार कर वि० विचरता है त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ४० ॥

वयासी अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेहि. तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ—त्तिबेमि ॥ ४० ॥ इति उदग पेढालपुत्तं—नालंदइज्जं तेवीसम मज्झयणं सम्मत्तं ॥

* * *

तुमको सुख होवे वैसे करो. धर्म में विलंब मत करो. ऐसा सुनकर उदक पेढाल पुत्रने महावीर स्वामी की पास से चारयाम (महाव्रत) से पंच महाव्रत का धर्म अंगीकार कर विचरने लगे और जिन प्रणीत धर्म पालने लगे. ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्यों जम्बू स्वामी प्रमुख से कहते हैं कि जैसा मैंने श्री महावीर देवसे सुना है वैसा ही तुमको कहता हूं ॥ ४० ॥ यह उदक पेढाल पुत्र—नालंदीय नामक तेवीसवा अध्ययन समाप्त हुवा. और सूयगडांग सूत्र का भावार्थ भी समाप्त हुवा.

*

॥ द्वितीय श्रुतस्कंधः समाप्तः ॥

शब्दार्थ तब से० वह भ० भगवान गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल पुत्र को गे० लेकर ज० जहां स० श्रमण भ० भगवान म० महावीर ते० तहां उ० आये उ० आकर त० तब से० वह उ० उदक पे० पेढाल पुत्र स० श्रमण भ० भगवान म० महावीर को ति० तिन वक्त आ० आवर्तन प० प्रदक्षिणा क० की ति० तीनवक्त आ० आवर्तन प० प्रदक्षिणा क० करके वं० वांदे न० नमस्कार किया वं० वंदनाकर न० नमस्काकर ए० ऐसा बोले इ० इच्छताहूं तु० तुम्हारी अं० समीप चा० चा-

सूत्र तएणं से भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं गहाय जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करित्ता वंदइ नमंसंति, वंदित्ता नमंसंतित्ता एवं वयासी इच्छामिणं तुब्भं अंतिए चाउजामाओ धम्माओ पंच महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपाजित्ताणं विहरित्तए तएणं समणं भगवं महावीरे उदयं एवं

भावार्थ याम से पंच महाव्रतरूप धर्म प्रायश्चित की साथ अंगीकार कर विचरने को इच्छता हूं ॥ ३९ ॥ तब गौतम स्वामी उदक पेढाल पुत्र को साथ लेकर जहां श्रमण भगवंत विराजमान थे वहां आये और महावीर स्वामी को तीनवार प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार करके बोले अहो भगवन् ! आपकी पास से मैं पंच महाव्रतरूप धर्म अंगीकार करने को इच्छाता हूं. तब श्रमण भगवान महावीर देवने फरमाया कि अहो देवानुप्रिय ! जैसे

ह ए० ऐसेही ज० जैसे तु०तुम व० कहते हो ॥३८॥ त० तव से० वह भ० भगवान गो० गौतमने उ० उदक पे० पेढाल पुत्र को ए० ऐसा व० कहा स० श्रद्धाकर अ० आर्य प० प्रतीत कर अ० आर्य रो० रूचीकर आ० आर्य ए० ऐसे ज० जैसे अ० मैं० व० कहताहूं त० तब से० वह उ० उदक पेढाल पुत्रने भ० भगवान गो० गौतमको ए० ऐसा व० कहा इ० इच्छताहूं भ०भगवान तु० तुमारी अं०समीप चा०चार याम ध० धर्म से पं० पंच व्रत स० प्रतिक्रमण सहित ध० धर्म उ० अंगीकार कर वि० विचरना ॥ ३९ ॥ त०

तुब्भे वदह ॥ ३८ ॥ तएणं भगवं गोयमं उदयं पेढालपुत्ते एवं वयासी सद्दहाहिणं अज्जो, पत्तियाहिणं अज्जो, रोइहिणं अज्जो, एवमेयं जहाणं अम्हे वयासो तएणं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी इच्छामिणं भंते तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ॥ ३९ ॥

नहीं, स्मरण किया नहीं, बोध सहित हुवा नहीं, ऐसे पदों की मैंने श्रद्धा, प्रतीति, व रुचि की नहीं. हे भगवन् ऐसे पदों मात्र आपकी पास से मैंने सुने, यावत् अनधारे हैं और उसकी श्रद्धा, प्रतीति व रुचि मैं करता हूं और "जैसे आप कहते हो वैसे ही हैं" ऐसा मैं मानता हूं ॥ ३८ ॥ तब गौतमस्वामी उदक पेढाल पुत्र को ऐसा बोले कि अहो आर्य उदक ! जो मैं भगवन्त का प्ररूपा हुवा धर्म कहता हूं उसकी तुम प्रतीति, रुचि, व श्रद्धा करो और उसको तथ्य करके मानो. उदक पेढाल पुत्र बोले—अहो भगवन् ! मैं आपकी पास से चार

शब्दार्थ

वह उ० उदक पे० पेढाल पुत्र भ० भगवान् गो० गौतम को ए० ऐसा व० बोले ए० इन भं० भगवन् प० पद पु० पहिले अ० नहीं जाने अ० नहीं सूने अ० नहीं बोध हुवा अ० नहीं अभिगम हुवा अ० नहीं देखे अ० नहीं सुने अ० नहीं स्मरे अ० नहीं विज्ञानिक अ० नहीं कहे अ० प्रगट नहीं हुवे अ० विच्छेद नहीं हुवे अ० सुनाये नहीं अ० अंगीकार किये नहीं अ० अनुपधारित ए० यह अ० अर्थ णो० नहीं स० श्रद्धा णो० नहीं प० प्रतीत हुवा णो० नहीं रो० रूचा ए० इन भ० भगवन् प० पद ए० अभी जा० जाने स० सूने बो० बोध हुवा जा० यावत् उ० धारणा किये ए० इस अ० अर्थ की स० श्रद्धा करता हूं प० प्रतीत करता हूं रो० रूचता

सूत्र

तएणं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी एतेसिणं भंते पदाणं पुव्विं अन्ना-णयाए, असवणयाए, अबोहिए, अणाभिगमेणं, अदिट्ठाणं, असुयाणं, अमुयाणं, अविन्नायाणं, अव्वोगडाणं, अणिगूढाणं, अविच्छिन्नाणं, अणिसिट्ठाणं, अणिवूढाणं, अणुवहारियाणं, एयमट्ठं णो सद्दहियं, णो पत्तियं, णो रोइयं, एतेसिणं भंते पदाणं एण्हिं जाणयाए, सवणत्ताए, बोहए, जाव उवहारणयाए. एयमट्ठं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि, एवमेव से जहेयं

भावार्थ

की प्राप्ति करासकूंगा. तब उस पुरुष को अपने उपकारी गुरु का आदर करना, हाथ जोडना, गुणानुवाद करना, नमस्कार करना. और सेवा भक्ति करना ॥ २७ ॥ अब उदक पेढाल पुत्र भगवंत श्री गौतमस्वामी से ऐसे बोले कि हे भगवन्! आपने जो पद कहे उसे पहिले मैंने कदापि सुने नहीं, अवधारे नहीं, जाने

आयाहुवा ता० उस दि० दिशा में प० चिन्तवना की ग० जाने को ॥ ३६ ॥ भ० भगवान् उ० बोले आ० आयुष्मन् उ० उदक जे० जो त० तथाभूत स० श्रमणकी मा० ब्राह्मण की अं० पाससे ए० एक ही आ० आर्य ध० धर्म का सु०वचन सो० सुनकर नि० अवधारकर आ० अपनी सु० सूक्ष्मतासे प० आ-लोचकर अ० अनुत्तर जो० योग्य खे० मोक्षपद लं० प्राप्त करता सो० वह भी ता० वैसा तं० उसे आ० आदर करे प० पूज्य जाने वं० वंदे न० नमस्कार करे स० सत्कार करे स० सन्मान दे जा० यावत् क० कल्याण कारी मं० मंगलकारी दे० देव तुल्य चे० ज्ञानवंत प० पर्युपासना करे ॥ ३७ ॥ त० तब से०

भगवं गोयमं अणाढायमाणा जामेव दिसिं पाउभूते तामेव दिसिं पहारेत्थ ग मणाए ॥ ३६ ॥ भगवं च णं उदाहु आउसंतो उदगा ! जे खलु तहाभूतस्स समणस्सवा माहणस्सवा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म अप्पणो चेव सुहुम्माए पडि लेहीए अणुत्तरं जोगखेमपयं लंभिएसमाणे सो वि तावतं आढाइ परिजाणेति वंदंति नमंसंति सक्कारेइ समाणेइ जाव कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासंति ॥ ३७ ॥

किया. ॥ ३६ ॥ जाते हुवे उदक पेढालपुत्र को रोककर भगवान् श्री गौतम स्वामी बोले कि अहो उदक ! तथाभूत साधु या श्रावक की पास से आर्यधर्म का पद सुनकर, अवधार कर, अपनी सूक्ष्म बुद्धि से विचार कर समझे कि मुझे इनकी पास से अच्छा धर्म की प्राप्ति हुइ है और इससे मैं मेरा आत्मा को मोक्ष

शब्दार्थ

उ० उदक जे० जो स० श्रमण मा० ब्राह्मण को प० निन्दता है मि० मैत्री म० मानता है आ० प्रासकर णा० ज्ञान आ० प्राप्तकर दं० दर्शन आ० प्रासकर च० चारित्र पा० पापकारी क० कर्म अ० नहीं करने को से० वह ख० निश्चय प० परलोक प० विघात में चि० रहे स० पूर्ववत् वि० विशुद्धिमें चि० रहे त० तब से० वह उ० उदक पे० पेढाल पुत्र भ० भगवान् गो० गौतम को अ० आदर किया विना जा० जिस दि० दिशा से पा०

सूत्र

भगवं च णं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु समणं वा माहणं वा परिभासइ मिति मन्नंति, आगमित्ता णाणं, आगमित्ता दंसणं, आगमित्ता चरित्तं, पावाणं कम्माणं अकरणयाए, से खलु परलोगपलिमंथात्तए चिट्ठइ जे खलु समणं वा माहणं वा णो परिभासइ मितिमन्नंति आगमित्ता णाणं आगमित्ता दंसणं, आगमित्ता चरित्तं, पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगविसुद्धिए चिट्ठइ ॥ तएणं से उदयपेढालपुत्ते

भावार्थ

हो कि ऐसी कोई पर्याय नहीं है कि जिस से श्रावक को प्राणातिपात का प्रत्याख्यान होवे ऐसा तुम्हारा कथन न्याय का नहीं है. ॥ ३५ ॥ सम्यक् ज्ञान, दर्शन व चारित्र का धरने वाला, और पाप कर्म को नहीं करने वाला पुरुष भी यथोक्त संयमानुष्ठान करने वाला श्रमण, ब्राह्मण की निंदा करे तो वह परलोक का व संयम का विराधक बने और पूर्वोक्त गुण विशिष्ट पुरुष साधु की निंदा न करे तो वह संयम का व परलोक का आराधक होता है. ऐसा जानकर निंदा का त्याग करना और शुद्ध संयम पालना, ऐसा गौतमस्वामीका उत्तर सुनकर उदक पेढालपुत्रने जिस दिशामेंसे वह आया था उसी दिशामें जाने का विचार

पूर्ववत् ॥ ३४॥ भ० भगवान् उ० बोले ण० नहीं ए० ऐसा भ० हुवा ण० नहीं ए० ऐसा भ० होता है ण० नहीं ए० ऐसा भ० होगा ज० जो त० त्रस पा० प्राणी वो० विच्छेद होंगे था० स्थावर पा० प्राणी भ० होंगे था० स्थावर पा० प्राणी वो० विच्छेद होंगे त० त्रस पा० प्राणी भ० होंगे अ० अविच्छेद त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी से ज० जो तु० तुम अ० अन्य व० कहते हो ण० नहीं है से० उनको के० कोई प० पर्याय जा० यावत् णो० नहीं णे० न्याय युक्त भ० है ॥ ३५ ॥ भ० भगवान् उ० बोले आ० आयुष्मान्

गस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति ते समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ; ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो ॥ ३४ ॥ भगवं च णं उदाहु—ण एतं भूयं ण एतं भव्वं ण एतं भविस्संति जण्णं तसा पाणा वोच्छिजिहिंति थावरा पाणा भविस्संति, थावरा पाणा वोच्छिज्जिहिंति तसा पाणा भविस्संति, अवोच्छिन्नेहिं तसथावरेहिं पाणेहिं जण्णं तुब्भे वा अन्नो वा एवं वदह णत्थिणं से केइ परियाए जाव णो णेयाउए भवइ ॥३५॥

कहे हैं उनकी अनर्थ हिंसा करे नहीं इन नव भांगोसे श्रावकको प्रत्याख्यान होवे ॥३४॥ श्री गौतम स्वामी फरमाते हैं कि अहो उदक पेढाल पुत्र ! ऐसा कभी हुवा नहीं है और न ऐसा होता है और ऐसा होनेका भी नहीं है कि सब त्रस प्राणी स्थावरपने उत्पन्न हो जावे और त्रस का सर्वथा प्रकार से विच्छेद हो जावे. वैसे ही सब स्थावर जीवों मरकर त्रसपने उत्पन्न होवे और स्थावर का विच्छेद होजावे. इसलिये तुम जो कहते

पूर्ववत् ॥ २८ ॥ पूर्ववत् ॥ २९ ॥ पूर्ववत् ॥ ३० ॥ पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ पूर्ववत् ॥ ३३ ॥

ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ ३२ ॥ तत्थ जे ते परेणं तस थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते तओ आउं विप्पजहंति-विप्पजहंतित्ता तत्थ आरेणं जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणि-क्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते सुपच्चायंति जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते जाव ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो ॥ ३३ ॥ तत्थ जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते तओ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता ते तत्थ परेणं चेव जे तसथावरा पाणा जेहिं समणोवास-

त्रस और स्थावर जीवों मृत्यु पाकर मर्यादा बाहिर की भूमि में स्थावरपने उत्पन्न होवे ॥ ३३ ॥ (८) मर्यादित भूमि के त्रस और स्थावर जीवों वहां से मृत्यु पाकर पीछे उसी ही मर्यादित भूमि में त्रस और स्थावरपने उत्पन्न होवे. ये आठ भांगे हुवे और नवमा भांगा प्रथम कहा सो. ऐसे नव भांगे हुवे. ऐसे नव भांगों से श्रावकों को प्रत्याख्यान होता है इन प्रत्याख्यान में जहां २ त्रस जीव कहे हैं उनका जावजीव तक सर्वथा प्रकार से श्रावक त्याग करे और जहां स्थावर

सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए अणट्ठाए ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो॥ ३०॥
तत्थ जे ते आरेणं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अण-ट्ठाए णिक्खित्ते तओ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ परेणं जे तसथावरा पा-णा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ ३१ ॥
तत्थ जेते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते त-ओ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोसवाग-स्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवंति

मर्यादा वाली भूमि में स्थावरपने उत्पन्न होवे ॥ ३० ॥ (५) मर्यादा बाहिर जो भूमिका है और मर्यादा के अंदर जो भूमिका है उस में रहे हुवे स्थावर जीवों वहां से चवकर स्थावर-पने उत्पन्न हो जावे ॥ ३१ ॥ (६) मर्यादित भूमि के त्रस और स्थावर जीवों वहां से मृत्यु पाकर मर्यादा वाहिर की भूमि में त्रसपने आकर उत्पन्न हो जावे ॥ ३२ ॥ (७) मर्यादित भूमि के

पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए, तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहंतित्ता, तत्थ परेणं जे तसा थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से ॥ २८ ॥ तत्थ जे आरेणं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते तओ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेसु समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो ॥२९॥ तत्थ जे ते आरेणं जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते तओ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता ते तत्थ आरेणं चेव जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते

भावार्थ

उत्पन्न होवे यह दूसरा भंग ॥२८॥ (३) मर्यादित भूमि की बाहिर के स्थावर जीवों मरकर मर्यादित भूमि में त्रसपने आकर उत्पन्न होवे उनकी घात से निवर्ते ॥ २९ ॥ (४) मर्यादा के बाहिर के स्थावर जीवों

आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते ते तओ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ आरेणं चेव जाव थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते ते पाणावि वुच्चंति ते तसा ते चिरट्ठिइया जाव अयंपि भेदे से ॥ २७ ॥ तत्थ जे आरेणं तसा

जो प्राण, भूत, जीव व सत्व रहे हुवे हैं, उनकी घात मैं नहीं करूंगा" उस भूमि में भी जो त्रस प्राणी रहे हुवे हैं, उनकी घात का भी श्रावक को जावजीव तक का प्रत्याख्यान है और वे जीव भी वहां से चवकर त्रसपने उत्पन्न होवे तो उन का भी श्रावक को प्रत्याख्यान रहा हुवा है इसलिये श्रावक को अच्छा प्रत्याख्यान कहा जा सकता है ॥ २८ ॥ (१) मर्यादित भूमि के बाहिर जो त्रस जीवों रहे हुवे हैं, उन की घात का त्याग श्रावक को व्रत ग्रहण किया वहां से लेकर जीवन पर्यंत है. वे त्रस जीव मर कर मर्यादित भूमि में स्थावरपने उत्पन्न होवे. अब श्रावक को अनर्थ हिंसा का त्याग है इसलिये उस की घात से भी श्रावक निवर्ते हुवे हैं जिस से उनको सुप्रत्याख्यानी कहना. यह प्रथम भंग हुवा ॥ २७ ॥ (२) जितनी भूमि की अविरति है उस भूमि के त्रस जीव मर्यादित भूमि में आकर त्रस और स्थावरपने

सा० सामायिक दें० देशावगाशिक पु० प्रभात में शेष पूर्ववत् ॥ २६ ॥ पूर्ववत् ॥ २७ ॥

सूत्र

च णं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति—तेसिं च णं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ—णो खलु वयं संचाएमो मुंडे भवित्ता जाव पव्वइत्तए, णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसट्ठ-मुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुन्नं पोसहं अणुपालित्तए, णो खलु वयं संचाएमो अपच्छि-मं जाव विहरित्तए, वयं च णं सामाइयं देसावगासियं पुरत्था पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं एतावता जाव सव्वपाणेहिं जाव सव्व सत्तेहिं दंडेहिं णिक्खित्ते सव्वपाणभूयजीवसत्तेहिं खेमं करेह अहमंसि तत्थ आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते तओ आउं विप्पजहंति विप्पजहित्ता, तत्थ आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो जाव ते सुपच्चायंति जेहिं समणो-वासगस्स सुपंच्चक्खायं भवइ, ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से (१) ॥ २६ ॥ तत्थ

भावार्थ

श्रावकों के मन में ऐसा विचार होता है कि मैं न तो साधुपना ग्रहण कर सकता हूं न अष्टमी, चतुर्दशी व कल्याणिक तीथियों में पोषध व्रतादि अंगीकार कर सकता हूं, वैसे ही संथारा करने की मेरी शक्ति नहीं हैं किन्तु मैं सामायिक व दिशावगासिक व्रत धारण कर सकूंगा अर्थात् मर्यादित द्रव्य क्षेत्र काल से अधिक वस्तु का सेवन नहीं करूंगा. ऐसी प्रतिज्ञा कर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण व उत्तर दिशा में

करते हैं क० करके पा० पूर्ववत् ॥ २३ ॥ स० सरिखे आयुष्यवाले शेष पूर्ववत् ॥ २४ ॥ पूर्ववत् ॥ २५ ॥

जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २४ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया पाणा अप्पाउया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंडे णिक्खित्ते भवइ ते पुव्वामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते अप्पाउया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २५ ॥ भगवं

आयुष्य पालने वाले होते हैं. अब जिस दिनसे उन्होंने व्रत ग्रहण किया होवें वहांसे मरणांत तक उनकी हिंसा का निषेध हुवा है. फीर वे साथ ही काल कर परलोक में जाकर उत्पन्न होवे, उनको प्राणी, त्रस, बडे शरीर, और लम्बी स्थिति वाले कहना. उन का भी श्रावक को नियम होता है तो फीर श्रावकको सुप्रत्याख्यानी क्यों नहीं कहना? इसलिये तुम्हारा कथन न्याय का नहीं है. ॥ २४ ॥ और भी कितनेक जीवों श्रावक से अल्प आयुष्य वाले हैं. इस में भी श्रावक को सुप्रत्याख्यान होता है क्यों कि बहुत जीवों में प्रत्याख्यान है और थोडे जीवों में प्रत्याख्यान नहीं है. अल्प आयुष्य वाले त्रस जब लग मरण को प्राप्त न होवे वहां लग श्रावक को तो उन का प्रत्याख्यान है और वहां से चवकर उसी त्रस काया में उत्पन्न होवे तो आगे भी श्रावकको प्रत्याख्यान हो सकता है, इस तरह श्रावकको सुप्रत्याख्यानी क्यों न कहा जावे? तो तुम्हारा कथन न्याय का नहीं है. ॥२५॥ और भी श्री गौतम स्वामी फरमाते हैं कि कितनेक

आ० ग्रहण करते आ० मरणतक जा० यावत् दं० दंड में णि० निषेध भ० है ते० वे पु० पहिले का० काल क०

सूत्र

आयाणसो आमरणंताए जाव दंडे णिक्खित्ते भवइ, ते पुव्वामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति, ते तसावि वुच्चंति, ते महाकाया ते चिरट्ठिइया, ते दीहाउया, ते बहुयरगा, जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ॥ २३॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया पाणा समाउया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंडे णिक्खित्ते भवइ, ते सममेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति तसावि वुच्चंति, ते महाकाया ते समाउया, ते बहुयरगा

भावार्थ

हैं, कि जिनों का आयुष्य व्रतधारी श्रावकों से भी अधिक है. वे देव, नरक, तिर्यंच व मनुष्यपने परलोकमें उत्पन्न होते हैं. उनको त्रस जीव, बडे शरीर वाले, दीर्घ आयुष्य वाले, ऐसे बहुत प्रकार के जीवों कहे हुवे हैं. श्रावक ने तो व्रत ग्रहण करने से जीवन पर्यंत उन की घात करने का नियम किया है, परंतु श्रावक तो उनके पहिले ही आयुष्य पूर्ण कर देवगति आदि में उत्पन्न हो कर अव्रति बन गया तो फीर उन का व्रत भंग कैसे होवे. इसलिये तुम कहते हो कि ऐसी कोई पर्याय नहीं है कि जिस से श्रावक प्रत्याख्यान करसके ऐसा तुम्हारा वचन न्याय का नहीं है ॥ २३ ॥ और भी कितनेक व्रतधारी श्रावक के बरोबर

ग्रहण करते आ० मरणतक दं० दंडे में णि० निषेध भ० है णो० नहीं व० बहुत संयमी णो० नहीं ब० बहुत प० निवृत्त पा० प्राणी भू० भूत जी० जीव स० सत्व से ते० वे स० होते अ० आत्मा से स० सत्य मृषा ए० ऐसा वि० कहते हैं अ० मैं ण० नहीं हं० हणने योग्य अ० दूसरे को हं० हणना जा० यावत् का० काल के अवसर में का० काल कि० करके अ० अन्य आ० आसुरिक कि० किल्वीपी जा० यावत् उ० उपजनेवाले भ० होवे त० तहां से वि० चवता हुवा भु० वारंवार ए० गूंगापने त० अंधवधिरपने प० उत्पन्न होते हैं ते० पूर्ववत् ॥२२॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० कितनेक पा० प्राणी दी० दीर्घायुष्यवाले जे० जिसमें स० श्रमणोपासक को

भवइ, णो बहु संजया णो बहु पडिविरया पाणभूयजीवसत्तेहिं ते सतो अप्पणा सच्चामोसाइं एवं विप्पडिवेदेंति, अहं ण हंतव्वो अन्ने हंतव्वा जाव कालमासे कालं किच्चा, अन्नयराइं आसुरियाइं किव्विसियाइं जाव उववत्तारो भवंति तओ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए तमोरुवत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २२ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया पाणा दीहाउया जेहिं समणोवासगस्स

भूत, जीव और सत्व से नहीं निवर्तनेवाले हैं, तथा ऐसी मिश्रभाषा बोलते हैं कि हम को हणना नहीं अन्य को हणना. ऐसे पुरुषों काल के अवसर में काल कर के बाल तप के प्रभाव से असुरादिक देव में उत्पन्न होवे. और यहां से चवकर बहिरा, गूंगा मनुष्यपने उत्पन्न होवें ऐसे होने पर भी वे त्रस कहाते हैं. इत्यादिक सब पूर्ववत् ॥ २२ ॥ और भी गौतम स्वामी फरमाते हैं कि इस में कितनेक त्रस प्राणी ऐसे

आनिवृत्त जे० जिस में स० श्रमणोपासक को आ० ग्रहण करते आ० मरणतक दं० दंड में णि० निषेध ते० वे त० तहां से आ० आयुष्य वि० त्यजते हैं त० तहां से भु० फीर स० संचित कर्म से स० अच्छीगति में जानेवाले भ० हैं ते० वे पा० प्राणी वु० कहलाते हैं जा० यावत् णो० नहीं णे० न्याय युक्त भ० है ॥२१॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं तं० वह ज० जैसे आ० अरण्यवासी आ० पर्ण-कुटीनिवासी गा० गाम की पास रहनेवाले क० कोई र० गुप्ताचारी जे० जिस में स० श्रमणोपासक आ०

धम्मिया धम्माणुया जाव एगच्चाओ परिग्गहाओ अप्पाडिविरया जेहिं समणोवासग-स्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते ते तओ आउगं विप्पजहंति, ततो भुज्जो सगमादाए सग्गइगामिणो भवंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ॥२१॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा आरण्णिया, आवसहिया, गामणि यंतिया, कण्हुई रहस्सिया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते

जावे, वे वहां उत्पन्न होते प्राण व त्रस भी कहे जाते हैं यह सब अधिकार पूर्ववत् जानना ॥२१॥ अब गौतम स्वामी कहते हैं कि इस जगत में कितनेक मनुष्य अरण्य में वास करने वाले, कंद मूलका आहार करने वाले, पर्णकुटि में रहने वाले, ग्राम की पास रहने वाले, तथा रहस्य के करने वाले तपास हैं. अब श्रावक को तो प्राणातिपात का प्रत्याख्यान होने से उन की हिंसा का निषेध हुवा. वे असंयति, अविरति, प्राण

जे० जिस में स० श्रमणोपासक के आ० ग्रहण करते आ० मरणतक दं० दंड में णि० निषेध ते० वे त० तहां से आ० आयुष्य वि० त्यजते हैं ते० वे त० तहां से भु० फीर सं० संचित कर्म से स० अच्छीगति में जानेवाले भ० हैं ते० वे पा० प्राणी वु० कहलाते हैं जा० यावत् णो० नहीं णे० न्याय युक्त भ० है ॥२०॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं तं० वह ज० जैसे अ० अल्प इच्छावाले अ० अल्पारंभी अ० अल्प परिग्रही ध० धर्मिष्ट ध० धर्मानुसारी जा० यावत् ए० एकपक्ष से प० परिग्रह से अ०

जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया जाव जीवाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउगं विप्पजहंति ते तओ भुज्जो सगमादाए सग्गइगामिणो भवंति, ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २० ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तंजहा अप्पेच्छा, अप्पारंभा, अप्पपरिग्गहा,

वहां प्राण भी कहे जाते हैं यह सब पाठ पूर्ववत् जानना इस लिये तुम्हारा वचन मिथ्या है ॥ २० ॥ और भी गौतम स्वामी कहते हैं कि इस जगत में कितनेक मनुष्य अल्प इच्छा वाले, अल्प आरंभ वाले, परिग्रह वाले, धार्मीक, धर्मानुरागी, प्राणातिपातादिक एक देश से विराति और एक देश से अविरति ऐसे दोनों पक्ष का सेवन करने वाले हैं. अब श्रावक को व्रत ग्रहण काल से लेकर जावजीव तक त्रस होने से उन की जीव घात का निषेध है. वह विरताविरत पुरुष आयुष्य छोड कर अपने पूर्वोपार्जित कर्मों से सद्गति में

हैं ते० वे पा० प्राणी वु० कहेजाते हैं ते० वे त० त्रस वु० कहेजाते हैं ते० वे म० बडी कायावाले ते० वे चि० दीर्घ स्थितिवाले ते० वे ब० बहुत य० त्रसप्राणी आ०ग्रहण करते से० वे म० बडे ज० जिस को तु० तुम व० कहते हो तं० उस को अ० यह भे० भेद से० उस को णो० नहीं णे० न्याय युक्त भ० है ॥ १९ ॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं तं० वह ज० जैसे अ० अनारंभी अ० अपरिग्रही ध० धर्मिष्ट ध० धर्मानुसारी जा० यावत् स० सर्व प० परिग्रह से प० निवृत्त जा० जावजीव

विप्पजहंति ततो भुज्जो सगमादाए दुग्गइगामिणो भवंति, ते पाणावि वुच्चंति, ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरट्ठिइया ते बहुयरगा, आयाणसोइति से महयाओ णं जण्णं तुब्भे वदह तं चेव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ १९ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तंजहा अणारंभा अपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया

भी कह सकते हैं. वे बहुत जीव की त्रस जाति को प्राप्त होवें. इसलिये उनका विनाश होने पर श्रावक को अच्छा प्रत्याख्यान होवे इत्यादिक सब पूर्ववत् ॥ १९. ॥ इस जगत में कितनेक मनुष्य निरारंभी, धर्मात्मा, धर्मानुयायी, अठारह पाप स्थानों का प्रत्याख्यान करने वाले और व्रत अंगीकार कर सब पापों से दूर रहने वाले हैं.. अब श्रावक पहिला व्रत अंगीकार करने से मरण पर्यंत उन की घात से निवर्ते हुवे हैं. वे सर्व विरति वाले मनुष्य आयुष्य पूर्ण कर अपने पूर्वोपार्जित कर्मों से शुभ कर्म लेकर सद्गति में जावे. वे

यह भे० भेद से० वह णो० नहीं णे० न्याय युक्त भ० है ॥ १८ ॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं तं० वह ज० जैसे म० बडी इच्छा वाले म० महा आरंभी म० महा परिग्रही अ० अधर्मी जा० यावत् दु० दुष्प्रत्यानंदी जा० यावत् स० सर्व प० परिग्रह से अ० अनिवृत्त जा० जावजीव जे० जिसमें स० श्रमणोपासक आ० ग्रहण करते आ० मरण तक दं० दंड में णि० निषेध ते० वे त० तहां से आ० आयुष्य वि० त्यजते हैं त० तहां से भु० फीर स० संचित कर्म से दु० खराब गति में जानेवाले भ०

वत्तव्वं सिया, ते पाणावि वुच्चंति जाव अयंपि भेदे, से णो णेयाउए भवइ ॥ १८ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तंजहा महइच्छा, महारंभा, महापरिग्गहा अहम्मिया जाव दुप्पाडियाणंदा जाव सव्वाओ परिग्गहाओ अप्पडिविरया, जावजीवाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते ते ततो आउगं

पूर्ववत् ॥ १८ ॥ इस जगत में कितनेक मनुष्य बहुत इच्छा वाले, बहुत लोभी, बहुत आरंभी, परिग्रही, अधर्मी यावत् दूसरे का बूरा होने में आनंद मानने वाले तथा प्राणातिपात से नहीं निवर्तने वाले हैं. श्रावक ने पहिला व्रत ग्रहण करने से ऐसे जीवों की घात का जावजीव तक त्याग किया है. अब वे अविरति जीवों मनुष्य भव का आयुष्य पूर्ण हुवे बाद अपने किये हुवे कर्मों के अनुसार नरक में उत्पन्न होवें. वहां वे प्राण कहे जा सकते हैं, और त्रस भी कहे जा सकते हैं. उन को बडी काया वाले, लम्बी स्थिति वाले

विचरनेको व० हम अ० पतलाकरना म० मरणान्तमें सं० संलेखणा जू० स्थापना जू० स्थापकर भ० आहार पानीका प० प्रत्याख्यान करके जा० यावत् का० कालको अ० नहीं वांच्छता वि० विचरेंगें स० सर्व पा० प्राणातिपात का प० प्रत्याख्यान करेंगे जा० यावत् स० सर्व प० परिग्रहका प० प्रत्याख्यान करेंगें ति० तीन करण ति० तीनजोगसे मा० नहीं म० मेरेलिये किं० किंचित् जा० यावत् आ० पलंग पे० मांचासे प० उतरकर ए० इनका त० तथा का० कालको प्राप्त किं० क्या व० वक्तव्य सि० होवे स० सम्यक् का० काल को प्राप्त व० वक्तव्य सि० होवे ते० वे पा० प्राणी वु० कहे जाते हैं जा० यावत् भ०

विहरित्तए वयं णं अपच्छिममारणंतियं संलेहणा जूसणा जूसिए भत्तपाणं पडियाइक्खिया जाव कालं अणवकंखमाणा विहरिस्सामो सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो, जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो तिविहं तिविहेणं मा खलु ममट्ठाए किंचि वि जाव आसंदीपेढियाओ पच्चारुहित्ता एते तहा कालगयाइ किं वत्तव्वं सिया सम्मं कालगयाइ

तीन करन और तीन जोग से अठारह पापस्थानों का व चारों आहार का त्याग कर मृत्यु की वांच्छा नहीं करता हुवा विचरे और आयुष्य पूर्ण कर के मर जावे तो उस का कैसा मरण कहा जावे? निर्ग्रंथ बोले कि सम्यक् रीति से मरण हुवा. ऐसा करता हुवा वह भी उत्तम देवलोक में उत्पन्न होता है शेष

ख्यान भ० होता है इ० ऐसा से० वह म० महान् कायावाले ज० जिस को तु० तुम व० कहते हो तं० उस को जा० यावत् अ० यह भे० भेद णो० नहीं णे० न्याययुक्त भ० होता है ॥ १७ ॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० कितनेक स० श्रमणोपासक भ० हैं ते० उसमें ए० ऐसा वु० कहाहुवा पु० पूर्वे भ० है णो० नहीं व० हम सं० समर्थ हैं मुं० मुंड भ० होनेको आ० आगारसे जा० यावत् प० प्रव्रजिको णो० नहीं व० हम सं० समर्थ हैं चा० चतुर्दशी अ० अष्टमी उ० पुन्यातिथि पु० पूर्णिमामें जा० यवत् अ० पालतेहुवे वि०

क्खायं भवइ इति से महयाओ जण्णं तुब्भे वयह तं चेव जाव अयंपि भेदे से णो णे-याउए भवइ ॥ १७ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिं च णं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ, णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता आगाराओ जाव पव्व इत्तए णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसट्ठमुदिट्ठपुण्णमासिणीसु जाव अणुपालेमाणा

पर्याय नहीं है जिस से श्रावक को एक भी प्राणातिपात का प्रत्याख्यान हो सके तो तुम्हारा यह वचन मिथ्या है ॥ १७ ॥ फीर गौतम स्वामी कहते हैं कि किसी श्रमणोपासक को ऐसा विचार होवे कि मैं साधुपना अंगीकार करने को समर्थ नहीं हूं और श्रावक के व्रत अंगीकार कर चतुर्दशी आदि तीथियों में पोषध व्रत भी अंगीकार करने को समर्थ नहीं हूं, परंतु मृत्यु समय में संलेखना कर के अपनी आत्मा को धर्म में झोसूंगा: ऐसा विचार कर पर्यंकादिक से उतरना यावत पूर्वोक्त विधि अनुसार यावज्जीव

प्राप्त किं० कैसा व० वक्तव्य सि० होवे स० सम्यक् का० काल को प्राप्त व० वक्तव्य सि० होवे ते० वे पा० प्राणी वु० कहे जाते हैं ते० वे त० त्रस वु० कहेजाते हैं ते० वे म० बडी कायावाले ते० वे चि० दीर्घ स्थितिवाले ते० वे व० बहुत य० त्रस प्राणी जे० जिस में स० श्रमणोपासक को सु० अच्छा प्रत्याख्यान भ० होता है ते० वे अ० अल्प त्रस पा० प्राणी जे० जिस में स० श्रमणोपासक को अ० अप-

तत्थवि पच्चक्खाइस्सामो तेणं अभोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेढियाओ पच्चारुहित्ता ते तहा कालगया किं वत्तव्वं सिया सम्मं कालगतावि वत्तव्वं सिया ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरट्ठिइया ते बहु यरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्च-

कर के पोषध व्रत अंगीकार करे. उस समय वह काल करजावे तो उस का मरण कैसा कहा जावे? निर्ग्रंथने उत्तर दिया कि सम्यक् प्रकार से उस का मरण हुवा. इस तरह जिनोंने काल किया उन की अवश्य ही देवलोक में उत्पत्ति होती है. वहां उत्पन्न होने वाले को प्राण, त्रस, बडी काया अथवा लम्बीस्थितिवाले कहते हैं. ऐसे बहुत जीवों में श्रावक को निवृत्ति है और थोडे जीवों में निवृत्ति नहीं है. इस तरह त्रस काया से उपशम है और प्रत्याख्यान रखने का उद्यम है ऐसा श्रावक को तुम कहते हो कि ऐसी कोई

पूर्ण पो० पोषध स० सम्यक् अ० करते हुवे वि० विचरेंगे थू० वडा पा० प्राणातिपात का प० प्रत्याख्यान करेंगे ए० ऐसे थू० वडा मु० मृषावाद थू० वडा अ० अदत्तादान थू० वडा मे० मैथुन थू० स्थूल प० परिग्रहका प० प्रत्याख्यान करो इ० इच्छानुसार क० करेंगे दु० दोकरण ति० तीन जोग से मा० नहीं ख० निश्चय म० मेरे लिये किं० किंचित् क० करेंगे क० करावो त० तहां प० प्रत्याख्यान करेंगे ते० तहां अ० नहीं भोगवकर अ० नहीं पीकर अ० नहीं स्नानकर आ० पलंग पे० मांचा से प० उतरकर ते० वे त० तथा का० कालओ

मुंडा भवित्ता आगाराउ अणगारियं पव्वइत्ताए वयं णं चाउद्दसट्ठमुदिट्ठपुण्णिमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहारिस्सामो थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो एवं थूलगं मुसावायं थूलगं अदिन्नादाणं थूलगं मेहुणं थूलगं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो इच्छापरिमाणं करिस्सामो दुविहं तिविहेणं मा खलु ममट्ठाए किंचि करेह वा करावेह वा

अव श्री गौतम स्वामी बोले कि कोई श्रमणोपासक श्रावक ऐसा होवे कि मैं गृहस्थवास से नीकलकर साधुपना अंगीकार करने को अशक्त हूं जिस से चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा और कल्याणिक तीथि में पोषध व्रत पालता हुवा विचरूंगा, और स्थूल प्राणातिपात मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह का इच्छानुसार दोकरण और तीन जोग से प्रत्याख्यान करूंगा. मेरेलिये पोषध व्रत में पचन पाचनादिक करूंगा नहीं और करावूंगा भी नहीं. इस तरह कहने वाला श्रावक अन्न, पानी, स्नान, पर्यंकादिक का त्याग

श्रमण इ० अभी अ० अश्रमण अ० अश्रमण से सि० सिद्धि णो० नहीं क० कल्पता है स० श्रमण से नि० निर्ग्रंथ को सं० जीमाना से० वे ए० ऐसा आ० जानो णि० निर्ग्रंथ ने से० वे ए० ऐसा आ० जानना ॥ १६ ॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० कितनेक स० श्रमणोपासक भ० हैं ते० उस में वु० कहा हुवा पु० पहिले भ० होते हैं णो० नहीं ख० निश्चय व० हम सं० समर्थ मुं० मुंड भ० होने को आ० आगारमे अ० अनागार को प० पालने को व० हम चा० चतुर्दशी अ० अष्टमी उ० पुण्य तीथि पु० पूर्णीमा में प० प्रति-

भुजित्तए, से जे से जीवे जे इयाणिं णो कप्पंति संभुंजित्तए. परेणं अस्समणे, आरेणं समणे, इयाणिं अस्समणे. अस्समणेणं सिद्धिं णो कप्पंति समणेणं निग्गंथाणं संभुंजित्तए से एव मायाणह णियंठा से एव मायाणियव्वं ॥ १६ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइ-या समणोवासगा भवंति तेसिं च णं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो

अर्थ समर्थ नहीं होता है अर्थात् उन को मंडली में बैठाना नहीं कल्पता है. अब देखो कि जीव एक ही है. पहिले उस की साथ आहार पानी का लेना देना नहीं कल्पता था, बिच में लेना देना कल्पता था, और फीर संयम से भ्रष्ट हुवा तब आहारादिक का लेना नहीं कल्पे. पहिले अश्रमण, फीर श्रमण और बाद में अश्रमण ऐसी तीन अवस्थाओं हुइ. ऐसा द्रष्टांत त्रसस्थावर जीवों में जानना जब त्रस था तब त्रस ही और स्थावर हुवा तब स्थावर ही जानना. इसलिये इन निग्रन्थो की साक्षी से देश से व्रत ग्रहण करना प्रमाण है॥१६॥

इस से ए० इस प्रकार का वि० विहार से वि० विचरता तं० उन को जा० यावत् आ० आगार में व० रहे हं० हा व० रहे ते० इस से त० तथा प्रकार का क० कल्पता है सं० भोजन कराने को णो० नहीं इ० यह अर्थ स० समर्थ से०वे जे०जो से०वे जी०जीव जे०जो प०प्रथम णो०नहीं क०कल्पता है सं० भोजनकरानेको से० वे जे० जो से० वे जी० जीव आ० बीच में क० कल्पता है सं० जमाने को से० वे अ० जो से० वे जी० जीव इ० अभी णो० नहीं क० कल्पता है सं० जीमाना प० प्रथम अ० अश्रमण आ० बीचमें स०

हंता आइक्खियव्वे. तं चेव उवट्ठाविंत्तिए जाव कप्पंति? हंता कप्पंति. किं ते तहप्पगारा कप्पंति संभुंजित्तए? हंता कप्पंति. तत्तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा तं चेव जाव आगारं वएज्जा? हंता वएज्जा. तेणं तहप्पगारा कप्पंति संभुंजित्तए ? णो इणट्ठे समट्ठे से जे से जीवे जे परेणं णो कप्पंति संभुंजित्तए, से जे से जीवे आरेणं कप्पंति सं

करे ? भगवन् वे उद्यम करे क्या उन को तथाप्रकार का धर्म सुनाना ? हां भगवन् सुनाना यावत् उन को दीक्षा देनी कल्पे ? हां भगवन् कल्पे यहां तक सब अधिकार कहना. जो परिव्राजक चारित्रिय बने हुवे हैं उन को मंडल में बैठाना कल्पे? हां भगवन् कल्पे. आहार पानी लेना कल्पे? हां भगवन् लेना कल्पे. इस तहर विचरते हुवे तथा प्रकारके कर्मों से गृहस्थावास का सेवनकरे? हां भगवन् गृहस्थवासका सेवन करे. तब उन का पूर्वोक्त रीति से आहार पानी लेना देना, अथवा मंडली में बैठाना कल्पे या नहीं ? सब साधु बोले कि यह

ऐसा आ० जानना ॥ १५ ॥ भ० भगवान् उ० बोले णि० निर्ग्रंथने को पु० पूछना आ० आयुष्मान् नि० निर्ग्रंथ इ० यहां प० सन्यासी प० सन्यासीनी अ० अन्य ति० तीर्थ से आ० आकर ध० धर्म स० सूनने को उ० उद्यमवन्त होवे हं० हां उ० उद्यमवन्त होवे किं० क्या ते० उन को त० तथा प्रकार का ध० धर्म आ० कहना हं० हां आ० कहना ते० उन को उ० सावधान करना जा० यावत् क० कल्पताहै हं० हां क० कल्पताहै किं० क्या ते० उन को त० तथा प्रकारका क० कल्पता है सं० भोजन कराने को हं० हां क० कल्पता है त०

जाव सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ स एव मायाणह, णियंठा से एव माघ्याणि-यव्वं ॥ १५ ॥ भगवं च णं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा, आउसंतो नियंठा इह खलु परिव्वाइय वा परिव्वाइआउ वा अन्नयरेहिंतो तित्थाययणेहिंतो आगम्म धम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा? हंता उवसंकमेज्जा. किं तेसिं तहप्पगारेणं धम्मे आइक्खियव्वे?

संयत और पीछे असंयत ऐसे तीन अवस्था हुइ. ऐसा होने से वह जीव सदा काल असंयत या संयत नहीं कहा जा सकता है. वैसे ही त्रस स्थावर जीवों का जानना. जब त्रस था तब त्रस और स्थावर था तब स्थावर ही रहा. यह दूसरा द्रष्टांत हुवा. ॥ १५ ॥ अब भगवंत श्री गौतम स्वामी तीसरा द्रष्टांत कहते हैं. इस द्रष्टांत में भी निर्ग्रन्थो को पूछना इसलिये साधुओं को संबोधन कर कहते हैं कि अहो आयुष्मन्तो ! इस जगत में परिव्राजिक और परिव्राजिका रहते हैं वे अन्य तीर्थ में से आकर धर्म सूनने का उद्यम

ज० जिस के प० प्रथम स० सर्व प्राणी से जा० यावत् स० सत्व से दं० दंड णो० नहीं णि० निषेध से० वे जे० जो से० वे जी० जीव ज० जिस के आ० वीच में स० सर्व प्राणी से जा० यावत् स० सत्व से दं० दंड में णि० निषेध से० वे जे० जो से० वे जी० जीव ज० जिस के इ० अभी स० सर्व प्राणी से जा० यावत् स० सत्व से दं० दंड णो० नहीं णि० निषेध भ० होवे प० प्रथम अ० असंयति आ० वीच में सं० संयति इ० अभी अ० असंयति अ० असंयति का स० सर्व प्राणी से जा० यावत् स० सर्व सत्व से दं० दंड में णो० नहीं णि० निषेध भ० होवे सं० वह ए० ऐसे आ० जानो नि० निर्ग्रंथ से० वह ए०

णो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स आरेणं सव्वपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स इयाणिं सव्वपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ, परेणं असंजए, आरेणं संजए, इयाणिं असंजए असंजयस्स णं सव्वपाणेहिं

लीये वाद सव प्राण, भूत, जीव, व सत्व का त्याग करना कल्पे ? हां भगवन् ! कल्पे. इस तरह दोचार यावत् थोडा या बहुत समय तक दीक्षा पालकर गृहस्थपना का सेवन करे ? हां भगवन् ! तथाविध कर्म के उदय से सेवन करे. क्यों की कर्मों की गति विचित्र है. जव उसने चारित्र का त्याग किया तव वह प्राणी आदि की घात से मुक्त हुवा ? वह मुक्त नहीं हुवा, जैसे वह जीव प्रथम गृहस्थ था, वाद में चारित्रिय हुवा और फीर गृहस्थ हुवा. वह तो तीनों अवस्थाओं में एक ही था. परंतु उसको पहिले असंयत, फीर

उनको त०तथा प्रकारका क०कल्पताहै सि०पढाना हं०हा क०कल्पताहै किं०क्या ते०उनको त०तथा प्रकारका क०कल्पता उ० सावधान करना हं० हां क०कल्पता है तें० उस में त०तथा प्रकार का स०सर्व प्राण से जा० यावत् स० सर्व सत्व से दं० दंड में णि० निषेध हं० हां णि० निषेध से० वह ए० इस प्रकारका वि० विहार से वि० विचरता जा० यावत् वा० वर्ष च० चार पं० पंच छ० छह द० दश अ० अल्प भु० दीर्घ दे० चारित्र दू० अंगीकार करके आ० आगार व० रहे हं० हां व० रहे त० तैसे स० सर्व प्राणी से जा० यावत् स० सर्व सत्व से दं० दंड णो० नहीं णि० निषेध से० वे जे० जो से० वे जी० जीव

कप्पंति सिक्खावित्तए? हंता कप्पंति. किं ते तहप्पगारा कप्पंति उवट्ठावित्तए? हंता कप्पंति. तेसिं च णं तहप्पगाराणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते? हंता णिक्खित्ते. से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा जाव वासाइं चउपंचमाइं छट्ठदसमाइं वा अप्पयरोवा भुज्जयरोवा देसं दूइज्जेत्ता आगारं वएज्जा? हंता वएज्जा. तस्सणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते. से जे से जीवे जस्स परेणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंडे

जा सकता है. ऐसा धर्म प्राप्त कर के हम ऐसे चले, उठे, बैठे, खावे कि जिस से कर्म बंध न होवे. ऐसे वाक्यों हे निर्ग्रन्थो गृहस्थ बोले ? हा भगवन् ! आपने जो वाक्यों कहे सो सब बोले. गौतम स्वामी बोले कि ऐसा गृहस्थ को दीक्षा देना, मुण्डित करना, सावध करना कल्पे ? हां भगवन् ! कल्पे. उसने चारित्र

चि०रहें त०तैसे णि०बैठे त० तैसे तु०सोवें त०तैसे भुं०जीमें त०तैसे भा०बोलें त०तैसे अ० सावधान होवें त० तैसे उ०उठे उ०उठकर पा०प्राणी के भू०भूतोंके जी०जीवों के स०सत्व के सं० संयम से सं० संयम पालकर व०बोले हं०हां व०बोले किं०क्या ते०उन को त०तथा प्रकारका क०कल्पताहै प० प्रवर्तनेको हं०हां क०कल्पता है किं०क्या ते०उन को त०तथा प्रकारका क०कल्पता है मुं० मुंडित करना हं०हां क०कल्पता है किं०क्या ते०

पहीणमग्गं एत्थंठिया जीवा, सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति. तं माणाए तहा गच्छामो, तहा चिट्ठामो, तहा णिसियामो, तहा तुयट्टामो, तहा भुंजामो, तहा भासामो, तहा अब्भुट्ठामो, तहा उट्ठाए उट्ठेमोत्ति पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमामोत्ति वएज्जा? हंता वएज्जा. किं ते तहप्पगारा कप्पंति पव्वावित्त-ए? हंता कप्पंति. किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुंडावित्तए? हंता कप्पंति. किं ते तहप्पगारा

व केवली भाषित है इस समान अन्य कोइ मार्ग नहीं है. वह मोक्ष मार्ग के गुणों कर के प्रतिपूर्ण, शुद्ध, शल्य का मिटाने वाला, सिद्धि का मार्ग, मुक्ति का मार्ग, समस्त कर्म क्षय करने का मार्ग, सत्य और संदेह रहित है. इस में रहे हुवे जीवों कार्य सिद्धि करते हैं, लोकालोक का स्वरूप जानते हैं सब दुःखों से मुक्त होते हैं, कर्म रूप अग्नि को शांत करते शीतलीभूत बनते हैं और सर्व दुःखों का अंत इस में किया

ते० उस में त० तथा प्रकारका ध० धर्म आ० कहना हं० हां आ० कहना ते० वे त० तथा प्रकारका ध० धर्म को सो० सूनकर नि० अवधारकर ए० ऐसा व० कहे इ० यह नि० निर्ग्रंथ का पा० प्रवचन स० सत्य अ० अनुत्तर के० केवल प० प्रतिपूर्ण सं० शुद्ध णे० न्यायी स० शल्य छेदक सि० सिद्धि मार्ग मु० मुक्ति मार्ग नि० निस्तार मार्ग नि० निर्वाण मार्ग अ० यथातथ्य सं० देखा हुवा स० सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म० मार्ग ए० इस में ठि० रहे हुवे जी० जीव सि० सिद्ध होते हैं बु० जानते हैं मु० मुक्त होते हैं प० निर्वाण पाते हैं स० सर्व दु० दुःख का अं० अंत करते हैं तं० उस आज्ञा त० तैसे ग० जावें त० तैसे

लोहिं आगम्म धम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा? हंता उवसंकमेज्जा. तेसिं च णं तहप्पगाराणं धम्मं आइक्खियव्वे? हंता आइक्खियव्वे किं ते तहप्पगारं धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वएज्जा इणमेव निग्गथं पावयणं सच्चं, अणुत्तरं, केवलियं, पडिपुण्णं, संसुद्धं, णेयाउयं, सल्लकत्तणं, सिद्धिमग्गं, मुत्तिमग्गं, निज्जाणमग्गं, निव्वाणमग्गं, अवितहमसंदिट्ठं, सव्वदुक्ख-

हो कर धर्म श्रवण करने का उद्यम करे? निर्ग्रंथ बोले हां भगवन्! ऐसा पुरुष धर्म श्रवण करने का उद्यम करे. फीर गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछा कि ऐसे गृहस्थ को धर्म का उपदेश करना? निर्ग्रंथ बोले हां भगवन्! ऐसे को धर्मोपदेश करना. क्योंकि धर्म का श्रवण कर, और हृदय में अवधार कर के वे ऐसा बोले कि तीर्थंकर भाषित निर्ग्रंथ का प्रवचन सत्य है, समस्त जीवों को हितकारी है, अन्य शास्त्रों प्रधान

स्थावर पा० प्राणी में दं० दंड में णो० नहीं णि० निषेध त० उसके तं० उस था० स्थावरकाया की व० वध करता हुवा से० उन को प० प्रत्याख्यान का णो० नहीं भं० भंग भ० होवे से० वे ए० ऐसा जानो णि० निर्ग्रंथ से० वे ए० ऐसा आ० जानना ॥ १४ ॥ भ० भगवान् उ० बोले नि० निर्ग्रंथ को पु० पूछना आ० आयुष्मन् नि० निर्ग्रंथ इ० यहां ख० निश्चय गा० गाथापति गा० गाथापति पुत्र त० तथा प्रकार के कु० कुल में आ० आकर ध० धर्म स० सूननेको उ० उद्यमवन्त होवे हं० हां उ० उद्यमवन्त होवे

एवमेव समणोवासगस्सवि तसेहिं पाणेहिं दंडे णिक्खित्ते, थावरेहिं पाणेहिं दंडे णो णिक्खित्ते, तस्सणं तं थावरकायं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे णो भंगे भवइ. से एवं मायाणह णियंठाए से एव मायाणियव्वं ॥ १४ ॥ भगवं च णं उदाहु नियंठा खलु पुच्छियव्वा, आउसंतो नियंठा ! इह खलु गाहावई गाहावइपुत्तोवा तहप्पगारेहिं कु-

से भ्रष्ट हो कर गृहस्थ बना तो उस को मारने से उस पुरुष का व्रत भंग हुवा या नहीं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् उस का व्रत भंग नहीं हुवा ऐसा निर्ग्रंथ बोले. ऐसे ही श्रावक को त्रस प्राणी की घात करने का नियम है, परंतु स्थावर की घात का नियम नहीं है. इसलिये त्रस मिटकर स्थावर बनाहुवा जीव की विराधना करने वाले को व्रत भंग होवे नहीं ऐसा जानना. ॥ १४ ॥ फीर गौतम स्वामी दूसरा द्रष्टांत बतलाते हुवे बोले कि अहो निर्ग्रंथो ! इस जगत् में गृहस्थ अथवा गृहस्थ का पुत्र अच्छे कुल में उत्पन्न

निषेध जे० जो इ० इस आ० आगार में आ० वसते हैं ए० इस में आ० महणान्त लग दं० दंड में णो० नहीं णि० निषेध के० कोई स० श्रमण जा० यावत् वा० वर्ष च० चार पं० पंच छ० छह द० दश अ० अल्प भु० दीर्घ दे० अल्प को दू० अंगीकारकर आ० आगार में आ० रहे हं० हां व० रहे त० ऐसे तं० उस गा० गृह में व० रहते हुवे को से० उस प० प्रत्याख्यानका भं० भंग भ० होवे णो० नहीं इ० यह अर्थ स० समर्थ ए० ऐसे स० श्रमणोपासक को त० त्रस प्राणी से दं० दंड में णि० निषेध था०

संति एएसिं णं आमरणंताए दंडे णो णिक्खित्ते केइ तं च णं समणा जाव वासाइं च-उपंचमाइं छट्ठदसमाइं अप्पयरोवा भुज्जयरोवा देसं दूइज्जित्ता आगारमावसेज्जा ? हंता वसेज्जा. तस्सणं तं गारत्थं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे भंगे भवइ णो इणट्ठे समट्ठे

कह कर गौतम स्वामी बोले आयुष्मन्त निर्ग्रंथो ! इस जगत् में कोई शांति प्रधान मनुष्य है, उस को ऐसा नियम है, कि मैं प्रव्रजित अणगार की घात नहीं करुंगा. ऐसा व्रत अंगीकार करने से उस को गृहस्थ वध का त्याग हुवा नहीं. अब कोई साधु चार, पांच यावत् छह, दश, पंदरह वर्ष, अल्प काल या बहुत काल पर्यंत संयम पालकर तथाविध कर्म का उदय से गृहस्थ वास का सेवन करे ऐसा संभवता है या नहीं ? अन्य निर्ग्रंथ बोले, हां भगवन् ! चारित्र से भ्रष्ट होकर गृहस्थ बनसकें. क्यों की कर्म की गति विचित्र है. अब जिस पुरुष ने ऐसा नियम किया है कि साधुपना में रहा हुवा पुरुष का विनाश मैं नहीं करुंगा. जब यह चारित्र

डी कायावाले चि० दीर्घ स्थितिवाले ते० वे ब० बहुत य० त्रस प्राणी जे० जिसमें स० श्रमणोपासक को सु० अच्छा प्रत्याख्यान भ० होता है ते० वे अ० थोडे पा० त्रस प्राणी जे० जिसमें स० श्रमणोपासक को अ० अप्रत्याख्यान भ० होता है से० वे म० महान् त० त्रसकाया से उ० उपशांत उ० सावधान प० निवृत्तको ज० जो तु० तुम अ० अन्य ए० ऐसा व० कहते हो ण० नहीं है से० वे स० श्रमण के० कोई प० पर्याय जं० जो

पाणावि वुच्चंति, ते तसावि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया ते बहुयरगा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवति ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ, से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स परिविरयस्स जन्नं तुब्भे वा अन्नो वा एवं वदह, णत्थिणं से समणो केइ परियाए जं से समणोवास-

ऐसी एक पर्याय है. जब तुम्हारे कथन से सब स्थावर जीव त्रसपने उत्पन्न होवे तो सब प्राणी का प्रत्याख्यान श्रावक को हुवा. क्यों कि संसारी जीव त्रसपना छोडकर स्थावरपने उत्पन्न होवे और स्थावरपना छोडकर त्रसपने उत्पन्न होवे. इसलिये श्रावक को त्रस का स्थान में विराधना का कुच्छ भी कारण नहीं है. इस से उस को त्रस प्राणी अथवा त्रस कहे जा सकते हैं. इस तरह सब जीव मरकर त्रस में उत्पन्न होवे तो सब स्थावर का अभाव हुवा और तुम्हारा कथनानुसार श्रावक को अच्छा प्रत्याख्यान हुवा. और तुम तो कहते हो कि श्रावक को अप्रत्याख्यान होवे. श्रावक बडी त्रस काया का आरंभ से निवर्ते

हुवे स० सर्व त० त्रस काया में उ० उत्पन्न होते हैं त० त्रस काया से वि० चवे हुवे स० सर्व था० स्थावर काया में उ०उत्पन्न होते हैं ते०उसमें था०स्थावर काया में उ० उत्पत्तिका ठा० स्थान की घ० घात हुई ॥ १२ ॥ स० वाद सहित भ० भगवान् गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल पुत्रको ए० ऐसा व०बोले णो० नहीं ख० निश्चय आ० आयुष्मान् अ०हमारा व० वक्तव्य तु० तुमको चे० निश्चय अ०कथन अ० है से०वह प० पर्याय जे० जो स० श्रमणोपासक का स० सर्व प्राणीसे स० सर्व भूत से स० सर्व जीवसे स० सर्व सत्व

विप्पमुच्चमाणा सव्वे तसकायंसि उववज्जंति, तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा, सव्वे थावरकायंसि उववज्जंति, तेसिं च णं थावरकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ १२ ॥ सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी णो खलु आउसो अस्साकं वत्तव्वएणं तुब्भं चेव अणुप्पवादेणं अत्थि णं से परियाए जेणं समणोवासगस्स सव्वपाणेहिं

होते हैं और स्थावर चवकर त्रसपने उत्पन्न होते हैं. इस से कबी ऐसा भी समय आजावे कि सब स्थावर जीवों आयुष्य पूर्ण कर त्रस पने उत्पन्न हो जावे अथवा सब त्रस जीवों आयुष्य पूर्ण कर के स्थावर पने उत्पन्न हो जावे. फीर कोई स्थावर अथवा त्रस रहे नहीं. उस समय श्रावक को स्थावर में रहे हुवे त्रस का स्थानक की घात होने से व्रतभंग हुवा ॥ १२ ॥ अब गौतम स्वामी उत्तर देते हैं कि अहो आयुष्मन् उदक ! तुम कहते हो कि समस्त जीव स्थावरपना का त्याग कर त्रसपने

ते० वे म० बडी कायावाले ते० वे चि० दीर्घ स्थितिवाले ॥११॥ स० वाद सहित उ० उदक पे० पेढालपुत्र ने भ० भगवान् गो० गौतम को ए० ऐसा व० कहा आ० आयुष्मान् गो० गौतम ण० नहीं है से० वह के० कोइ प० पर्याय ज० जिससे स० श्रमणोपासकका ए० एक पा० प्राणातिपात विरति दं० दंड नि० दुर करना क० कौनसा तं० उस हे० हेतको सां० संसारी पा० प्राणी था० स्थावर पा० प्राणी त० त्रसपने प० उत्पन्न होते हैं त० त्रस पा० प्राणी था० स्थावरपने प० उत्पन्न होते हैं था० स्थावर काया से वि० चवे

ते तसावि वुच्चंति ते महाकायाए ते चिरट्ठिइया ॥ ११ ॥ सवायं उदए पेढालपुत्ते- भगवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा णत्थिणं से केइ परियाए जण्णं समणोवा- सगस्स एगपाणातिवायाविरएवि दंडे निक्खित्ते कस्सणं तं हेउं? सांसारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति, तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति, थावरकायाओ

स्थावर का भेद में मिलता नहीं है. यदि वह नागरिक बाहिर आरामादिकमें जावे तो क्या उस का नागरिक पना चला गया? क्यों कि वहां नागरिक उसी आकार व रूप में है इसलिये यह दृष्टांत अयोग्य है और यहां मिलता नहीं है ॥ ११ ॥ अब उदक पेढाल पुत्र भगवंत गौतम स्वामी से बोले कि-अहो आयुष्मन् गौतम ! ऐसी कोई पर्याय नहीं है कि जिस से श्रावक प्राणातिपात विरति में भी हिंसा का त्याग कर सके क्योंकि संसारी जीव परस्पर योनि में गति करने वाले हैं. त्रस प्राणी चवकर स्थावरपने उत्पन्न

याकी स्थिति वाले त० तहां से आ० आयुष्य वि० छोडते हैं त० तहां से आ० आयुष्य वि० छोड करके
मु०फीर प०परलोकपने प०उत्पन्न होते हैं ते०उन पा०प्राणी को वु०कहाते हैं ते०उनको त०त्रस वु०कहाते हैं

भवइ थावरा आउयं च णं पलिक्खीणं भवइ थावरकायट्ठिइया, तओ आउयं विप्प-
जहंति तओ आउयं विप्पजहित्ता भुज्जो परलोइयत्ताए पच्चायंति, ते पाणावि वुच्चंति

त्रस नाम कर्म का उदय जीव से त्रस में उत्पन्न होवे और वहां जघन्य अंतर मुहूर्त उत्कृष्टि साधिक दो हजार
सागरोपम तक रहकर आयुष्य क्षीण होने पर त्रसपना छोड कर स्थावरपने उत्पन्न होवे. और जब स्थावर
में उत्पन्न होवे तब वे स्थावर कहे जावे. फीर वे स्थावर नाम कर्म का उदय से स्थावर बने. वहां जघन्य
अंतर मुहूर्त उत्कृष्टा अनंत काल असंख्यात पुद्गल परावर्तन तक रह कर आयुष्य क्षीण होने पर स्थावरपना
छोडकर त्रसपना पावे. जब वह त्रसपना पावे तब उस को प्राण अथवा त्रस प्राण कहा जासकता है.
वे बडी काया वाले और लम्बी स्थिति वाले हो सकते हैं. अब यहां श्रावकने मात्र त्रस का ही प्रत्याख्यान
किया है; परंतु स्थावर में उत्पन्न हुवे त्रस जीवों का प्रत्याख्यान नहीं किया है, इसलिये कौनसा व्रत का
भंग हुवा. और भी तुमने नागरिक का द्रष्टांत दीया है, वह भी यहां संभवता नहीं है, क्यों कि
नगर का धर्म वाला सो नागरिक कहा जा सकता है उस को हणना नहीं ऐसी प्रतिज्ञा उसने की है फीर
उद्यानादिक में बैठा हुवा उस नागरिक का वध करने वाले का व्रत भंग होवे, यह द्रष्टांत यहां पर त्रस

दंड को तं० उस को ते० उस में कु० कुशल भ० होते हैं ॥ १० ॥ त० त्रस वु० कहते हैं त० त्रस त० त्रस का सं० समारंभ करनेसे क०कर्मसे अ०यदय भ०होताहै त०त्रस आयुष्य को प०क्षय होने से भ०होता है त० त्रस काय स्थितिवाले ते०वे त०तहां से आ०आयुष्य वि०छोडते हैं ते०वे त०तहां से आ०आयुष्य वि०छोड कर था० स्थावरपने प० उपजते हैं था० स्थावर वु० कहाते हैं था० स्थावर था०स्थावर का सं० समारंभ क० कर्म से अ० यदय अ० होते हैं था० स्थावर आ० आयुष्य प० क्षय करके भ० होते हैं था० स्थावरका-

निहाय दंडं तंपि तेसिं कुसलमेव भवइ ॥ १० ॥ तसावि वुच्चंति तसा तससंभारक-डेणं कम्मुणा णामं च णं अब्भुवगयं भवइ, तसाउयं च णं पलिक्खीणं भवइ तस-काय‌ट्ठिइया, ते तओ आउयं विप्पजहंति ते तओ आउयं विप्पजहित्ता थावरत्ताए पच्चा-यंति, थावरावि वुच्चंति थावरा थावरसंभारकडेणं कम्मुणा णामं च णं अब्भुवगयं

अनुमति साधु को नहीं है इसलिये इस का दोप साधु को कुच्छ भी नहीं है. अब श्रावक त्रस की हिंसा छोड कर जितनी विरति करे उतनाही उन को कर्म रूप लाभ होता है. ऐसा जानना ॥ १० ॥ उक्त द्रष्टांत के पहिले उदक पेढाल पुत्र ने अपना अभिप्राय बतलाया था और जैसे नागरिकपुरुष की हिंसा का त्याग करनेवाला उद्यान में बैठाहुवा नागरिक को मारे तो वह नागरिक का घातक कहा जासकता है वैसे ही त्रस जीव स्थावर में उत्पन्न होते उस की घात करने से अवश्यही व्रतभंग होता है. उस का उत्तर देते हैं.

आप मेरे पुत्रों को जिन्दे रखो. ऐसा उस का वचन सुनकर राजा क्रोधित होकर बोला अरे पापिष्ठ राजा की आज्ञा राजा को प्राण सम होती है. जिनोंने राजा की आज्ञा नहीं मानी हैं उनोंने राजा के प्राण का हरण किया है ऐसा मानाजाता है, इसलिये मैं तेरे पुत्रों को जिन्दा नहीं रखूंगा. राजा का ऐसा आग्रह जानकर फिर श्रेष्ठिने पांच पुत्रों को जीन्दे रखने की विनंति की; परंतु राजाने मानी नहीं, फीर राजा को चार पुत्रों छोडने की प्रार्थना की परंतु वह भी मान्य की नहीं. फीर तीन को छोडने की और आखीर दो को छोडने की प्रार्थना की परंतु राजाने मान्य की नहीं. श्रेष्ठी घबराया और नगरके प्रतिष्ठित गृहस्थों को एकत्रित करके राजा की पास विनंति कराइ हे स्वामिन्! आप प्रजा के पिता हो, और इस तरह हमारा कुल का क्षय करना यह योग्य नहीं है, यह आप के शरण आये हुवे हैं. चाहे तो मारो या बचावो ऐसा कहकर वे राजा के पाँव में पडे. तब राजाने अनुकंपा करके उन छ पुत्रों में से एक ज्येष्ठ पुत्रको मुक्त किया. यह द्रव्य दृष्टांत कहा. अब उसकी योजना करते हैं. राजा सम श्रावक श्रेष्ठी सम साधु और छ पुत्र सम पट्काया के जीव जानना. जैसे श्रेष्ठि का विलाप से राजाने एक पुत्र को जब मुक्त किया तब अपने को कृतार्थ मानता था. यद्यपि पांच पुत्रों का विनाश करने का श्रेष्ठी का भाव नहीं है परंतु राजा छोडे नहीं वहां करे क्या? वैसे ही यहां साधु श्रावक को संरक्षण करने का उपदेश करते हैं, परंतु अशक्तपना से श्रावक मात्र त्रस काया का बचाव कर सकते हैं. इस लिये साधु भी जो कुच्छ श्रावक रखे उस से श्रावक को कृतार्थ जाने. परंतु श्रावक जो दूसरी पंचकाय की घात करते हैं उस की

तो इस में व्रत भंग नहीं होता है ऐसा प्रत्याख्यान साधु का उपदेश सुनकर करे उस पर चोर को ग्रहण और विमोक्ष करने वाला गृहपति तथा राजा का द्रष्टांत कहते हैं.

किसी रत्नपुर नामक नगर में रत्नशेखर राजाने कौमुदी महोत्सव करने का विचार किया और रत्न माला प्रमुख अपनी आठों राणियों को कहलाया कि आज चंद्रकी चांदनी में स्वतंत्र क्रीडा करनी और इसी तरह नगर में भी उद्घोषणा कराइ कि आज रात्रिको किसी पुरुष को नगर में रहना नहीं. सब को संध्या समय गांव की बाहिर उद्यान नें जाना. यदि कोई पुरुष नगर में रहेगा तो राजा उस की घात करावेगा. ऐसी नृप की उद्घोषणा सुनकर सब लोग संध्या समय नगर की बाहिर गये और राजा भी सपत्निक बाहिर गया, वहां कोई वणिक के छ पुत्रों क्रयविक्रय की व्यग्रता से नगर में रह गये. और सूर्यास्त होते वे जब बाहिर नीकलने लगे तब नगर के दरवज्जे बंध देखे इस से भयभ्रांत बनकर के वे नगर मे किसी गुप्त स्थान में छुपा बैठे. महोत्सव संपूर्ण हुवे बाद राजाने रक्षक को बोलाकर कहा अहो रक्षको ! तुम अच्छी तरह तलास करो कि इस नगर में कोई पुरुष रहा है ? इस तरह तलास करते श्रेष्ठि के छ पुत्रों देखे, और राजा को आकर विनंति की कोई श्रेष्ठि के छ पुत्रों नगर में रहे हैं. राजाने छही पुत्रों का विनाश करने की आज्ञा दी. ऐसा सुन श्रेष्ठि पुत्रशोक से व्याकूल बन राजा की पास आकर अर्ज करने लगा कि अहो स्वामिन् मेराकुल का क्षय मत करो. और जो कुछ हमारें घर में धन रहा है उसे लेकर

प०स्थापन करते हो ए०एककी अ०निन्दा करतेहो अ०यह भे०भेद से०वह णे०नहीं णे०न्यायी भ० है॥९॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० है ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं ते० उन में ए० ऐसा वु० कहा हुआ पु० पहिले भ० है णो० नहीं व० हम सं० समर्थ मुं०मुंड भ० होने को आ० गृहस्थावास से अ० साधुपना को प० अंगीकार करने को समर्थ पा० अंगीकार करेंगे अ० अनुक्रम से गु०साधुपना लि० लेंगे ते० वे ए० ऐसा सं०कहते हैं ते० वे सं कथन ठ० स्थापन करते हैं ते० वे ए० ऐसा सं० कथन ठ० स्थापन कराते हैं न० नहीं अ० अन्य अ० अभियोग से गा० गाथापति चो० चोर ग्रहण वि० छोडना त० त्रस पा० प्राणी से नि० छोड कर दं०

वइ ॥ ९ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइआ मणुस्सा भवंति तेसिं च णं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संवाएमो मुंडा भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए पावयण्हं अणुपुव्वेणं गुत्तस्स लिसिस्सामो ते एवं संखेवेंति, ते एवं संखं ठवयंति, ते एवं संखं ठावयंति नन्नत्थ अभिओएणं गाहावइचोरग्गहण विमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं

न्याय निष्पन्न नहीं है. ॥ ९ ॥ अब श्री गौतमस्वामी कहते हैं कि कोई हलुकर्मी पुरुष ऐसा कहे कि हम गृहस्थ वास का त्याग कर के मुंडित अनगार होने को समर्थ नहीं हैं, इसलिये हम पहिले देश विरति रूप श्रावक का धर्म पाल कर अनुक्रम से साधुपना पालेंगे. इस तरह वे क्रम कहे और उस का प्रत्याख्यान कर मन में सम्यक् प्रकार से धारन करे. अथवा राजा— का अभियोग से त्रस प्राणी की घात होवे

पुत्र को ए० ऐसा व० कहा आ० आयुष्मान् उ० उदक जे० जो तु० तुम व० कहते हो त० त्रस भू० भूत पा० प्राणी त० त्रस ते० उन को व० हम व० कहते हैं त० त्रस पा० प्राणी जे० जो व० हम व० कहते हैं त० त्रस प्राणी ते० उन को तु० तुम य० कहते हो त० त्रस भूत प्राणी ए० ये सं० हैं दु० दो स्थान तु० तुल्य ए० एक अर्थी कि० कैसे आ० आयुष्मन् इ० यह भे० अहो सु० सुप्रणित भ० है त० त्रस भू० भूत प्राणी त० त्रस इ० ये दु० दुष्प्रणीत भ० है त० त्रस प्राणी त० त्रस त० उस में ए० एक आ० आयुष्मन्

वयह तसभूतापाणा तसा ते वयं वयामो तसापाणा, जे वयं वयामो तसापाणा ते तुब्भे वयह तसभूयापाणा एए संति दुवे ट्ठाणा तुल्ला एगट्ठा, किमाउसो इमे भे सुप्पणीयतराए भवइ तसभूयापाणा तसा इमे भे दुप्पणीयतराए भवइ तसा पाणा तम्हा, ततो एग माउसो पडिकोसह एक्कं अभिणंदह अयंपि भेदो से णो णेआउए भ-

और हम उस को ही त्रस प्राणी त्रस कहते हैं. ये दोनो वचन परमार्थ से तो एक ही है इस में अर्थ भेद कुच्छभी नहीं है. तो फीर त्रस भूत प्राणी त्रस कि जो तुम्हारा मत है उसको सुप्रणीत कहते हो और त्रस कि जो हमारा मत है उस को तुम दुष्प्रणीत कहते हो ऐसा तुम को शब्द पर क्या व्यामोह उत्पन्न हुवा कि एकार्थवाची शब्द होने पर एककी निंदा और एककी प्रशंसा करते हो इसलिये तुम्हारा यह भेद

था० स्थावरकाया से वि० चवकर त० त्रसकाया में उ०उपजते हैं ते० उस त० त्रसकाया में उ० उत्पत्तिका ठा० स्थान को अ० अवध्य ॥ ७ ॥ स० वाद सहित उ० उदक पे० पेढाल पुत्र भ० भगवान् गो० गौतम को ए० ऐसा व० कहा क० कैसा ते० तुम आ० आयुष्मान् गो० गौतम तु० तुम व० बोलते हो त० त्रस-प्राणी त० त्रसपने अ० अन्यथा ॥ ८ ॥ स० वाद सहित भ० भगवान् गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल

उववज्जंति, थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति, तेसिं च णं तस-कायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ॥ ७ ॥ सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं ए-वं वयासी, कयरे खलु ते आउसंतो गोयमा तुब्भे वयह तसपाणा तसाआउ अन्नहा ॥ ८ ॥ सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा! जे तुब्भे

होसकता है. जैसे देवलोकभूत नगर न कि देवलोक. वैसे ही यहां त्रस भूत कहने से त्रस सरिखे जीव कहना. परंतु भूत शब्द जो तदर्थ वाची है, जैसे शीत भूत उदक-ठंडाही जल वैसे त्रस भूत कहने से त्रस ही कहा जाय; ऐसा भूत शब्द का यहां कथन करने से पुनरुक्ति दोष आता है. ॥ ७ ॥ ऐसा भगवन्त गौतम स्वामी से उत्तर सुनकर उदक पेढाल पुत्र बोला आयुष्मन् गौतम ! तुम त्रस प्राणी को त्रस कहते हो, या उस का अन्य प्रकार से कथन करते हो ? ॥ ८ ॥ गौतम स्वामी उत्तर देते हैं कि अहो उदक ! तुम त्रस भूत प्राणी त्रस कहते हुवे अतीत, अनागत का निषेध कर वर्तमान काल की ही स्थापना करते हो

चढाते हैं ख० निश्चय ते० वे स० श्रमण स० श्रमणोपासक जे० जिस अ० दूसरे जी० जीव पा० प्राणी भू० भूत स० सत्व सं०पालते हैं ता०उनको भी ते०वे अ० कलंक चढाते हैं क०कौनसा तं०उस हे० हेतु को सां० संसारी ख० निश्चय पा० प्राणी त० त्रस पा० प्राणी था० स्थावरपने प० उपजते हैं था० स्थावर पा० प्राणी त० त्रसपने प० उपजते हैं त० त्रसकाया से वि० चवकर था० स्थावर काया में उ० उपजते हैं

भासं भासंति अणुतावियं खलु ते भासं भासंति अब्भाइक्खंति, खलु ते समणे स-मणोवासएवा जेहिंवि अन्नेहिं जीवेहिं पाणेहिं भूएहिं सत्तेहिं संजमयंति ताणवि ते अ-ब्भाइक्खंति, कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चा-यंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति, तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि

आयुष्य त्यागकर त्रसपने होता है अथवा त्रस का संपूर्ण आयुष्य त्याग कर स्थावरपने उत्पन्न होता है. इस तरह त्रस काया में स्थावर उत्पन्न होने पर भी त्रस काया का स्थावर अघात्य है. और श्रावक तो त्रस काया को उद्देश कर स्थूल प्राणातिपात का त्याग करते हैं. इसलिये उन को व्रत भंग नहीं होता है. परंतु तुम्हारे अभिप्राय से पृथक् २ जीव को उद्देश कर के प्रत्याख्यान करने वाले को अन्य पर्यायमें गया हुवा की भी विराधना होवे तो व्रत भंग होवे. इस तरह से देखा जावे तो कोइ सम्यक् व्रत नहीं पाल सकता है. तुम जो यहां भूत शब्द ग्रहण करते हो यह मात्र व्यामोह ही है. यह भूत शब्द उपमा वाची

भ० होता है अ० अपि आ० आयुष्मान् गो० गौतम तु० तुम को भी ए० ऐसा रो० रुचता है ॥ ६ ॥ स० वाद सहित भ० भगवान् गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल पुत्र को ए० ऐसा व० कहा आ० आ-युष्मान् उ० उदक नो० नहीं अ० मुझे ए० ऐसा रो० रुचता है जे० जो ते० वे स० श्रमण मा० ब्राह्मण ए० ऐसा आ० कहते हैं जा० यावत् प० प्ररूपते हैं णो० नहीं ख० निश्चय ते० वे स० श्रमण णि० निर्ग्रंथ भा० भाषा भा० बोलते हैं अ० अनुतापित ते० वे भा० भाषा भा० बोलते हैं अ० कलंक

णेआउए भवइ, अवियाइं आउसो गोयमा ! तुब्भंपि एवं रोयइ ॥ ६ ॥ सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा ! नो खलु अम्हे एवं रोयइ, जे ते समणावा, माहणावा, एव माइक्खंति जाव परूवेंति णो खलु ते समणावा णिग्गंथावा

करने का उपदेश अच्छा व न्याय का नहीं हैं, ऐसा मैं जानता हूं. और अहो गौतम ! तुम को भी कहता हूं कि यह बात तुम को रुचिकर व प्रशंसनीय हैं ॥ ६ ॥ उक्त कथन श्रवण कर भगवान् गौतम स्वामी बोले आयुष्मन् उदकपेढालपुत्र ! तुमने जो वचन कहा है वह हम को नहीं रुचता है. और जो साधु निर्ग्रंथ ऐसा बोलते व प्ररूपते हैं वे सत्य भाषा बोलने वाले नहीं हैं. मात्र ताप उत्पन्न करनेवाली भाषा बोलने वाले हैं. ऐसी भाषा निश्चय ही श्रमण ब्राह्मण को कलंक देने वाली है. और अन्य प्राण, भूत, जीव और सत्व में संयम पालना यह भी अभ्याख्यान है. क्यों कि संसारी जीव स्थावर का संपूर्ण

प्रत्याख्यान कराते को ण० नहीं सु० अच्छा प्रत्यख्यान कराना भ० होता है ए० ऐसा ते० वे प० दुसरे को प० प्रत्याख्यान कराते ण० नहीं अ० उलंघन करते हैं स० स्वयं प० प्रतिज्ञा ण० नहीं अ० अन्यत्र अ० अभियोग से गा० गाथापति चो० चोर ग्रहण मो० मुक्त होना त० त्रस भूत पा० प्राणी णि० निवृत्त दं० दंड ए० ऐसी भ० होने पर भा० भाषाका प० पराक्रम वि० जानते जे० जो ते० वे को० क्रोध लो० लोभ प० दूसरे को प० प्रत्याख्यान करता है अ० यह भी णो० नहीं उ० उपदेश णो० नहीं णे० न्याय

त्रियं भवइ, एवं ते परं पच्चक्खावेमाणा णातियरंति. सयं पइण्णं णण्णत्थ अभिओगेणं गा-हावइचोरग्गहणवि मोक्खणया तसभूएहिं पाणेहिं णिहाय दंडं एवमेव सइ भासाए परक्कमे विज्जमाणे जे ते कोहावा, लोहावा, परं पच्चक्खावेंति; अयंपि णो उवएसे णो

अब अहो गौतम ! मैं कहता हूं कि श्रावक को त्रस जीव की घात का प्रत्याख्यान कराते हुवे राजा का अभियोग से चोरवध की रीति रखे, वह तो अच्छा है. परंतु " त्रस भूत " प्राणी की घात करुं नहीं अर्थात् जहां लग त्रस जीव त्रस कायापने होवे, वहां लग उसकी घात करु नहीं. इस तरह ' भूत ' शब्द मिलाकर प्रत्याख्यान करने व कराने से उस का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान कहा जाता है. ऐसी भाषा का पराक्रम होने पर कोइ साधु क्रोध या लोभ से ' भूत ' शब्द छोडकर प्रत्याख्यान करावे तो उन्हे मृषावाद दोष लगता है. और प्रत्याख्यान करने वाले को भी व्रत भंग होता है. इससे पूर्वोक्त रीति से प्रत्याख्यान

प॰ प्रतिज्ञा क॰ कौनसा तं॰ उस हे॰ हेतु को सां॰ संसारी ख॰ निश्चय पा॰ प्राणी था॰ स्थावर पा॰ प्राणी त॰ त्रसपने प॰ उत्पन्न होते हैं त॰ त्रस पा॰ प्राणी था॰ स्थावरपने प॰ उत्पन्न होते हैं था॰ स्थावर का॰ काया में से वि॰ चवकर त॰ त्रस काय में उ॰ उपजते हैं त॰ त्रस काया से वि॰ चवकर था॰ स्थावर काया में उ॰ उपजते हैं ते॰ उस में था॰ स्थावर काया में उ॰ उत्पन्न होते ठा॰ स्थान को घा॰ घात की ए॰ ऐसा प॰ प्रत्याख्यान करते को सु॰ अच्छा प॰ प्रत्याख्यान भ॰ होता है ए॰ ऐसा प॰

> सांसारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति, थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति, तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति, तेसिं च णं थावरकायंसि उववण्णाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ एवं ण्ह पच्चक्खंताणं सुपच्चक्खायं भवइ एवं ण्हं पच्चक्खावेमाणाणं सुपच्चक्खा-

हैं क्यों कि संसारी जीवों स्थावर में से नीकल कर अपने कर्मों के उदय से त्रसपने उत्पन्न होते हैं और त्रस में से नीकल कर स्थावरपने उत्पन्न होते हैं. अब इस तरह त्रस की घातका प्रत्याख्यान करने वाला श्रावक पृथिव्यादि की घात करता त्रस काया की घात करने वाला गीना जाता है. जैसे किसीने ऐसी प्रतीज्ञा की कि मैं नागरिक पुरुषकी घात नहीं करूंगा अब कोई नागरिक नगरको छोड उद्यान में जाकर रहा उस समय उसकी घात करे तो नागरिक की घातकाही पाप लगता है. वैसे ही यहां जानना.

श्रमण नि० निग्रंथ तु० तुम्हारा प० प्रवचनको प० कहते हुवे गा० गाथापति स० श्रमणोपासक को ड० संपन्न ए० ऐसा प० प्रत्याख्यान कराते हैं ण० नहीं अ० अन्यत्र अ० अभियोग से गा० गाथापति चो० चोर ग्ग० ग्रहण वि० छोडने को त० त्रस पा० प्राणी नि० निषेधक दं० दंड ए० ऐसा प० प्रत्याख्यान करते को दु० खराब प्रत्याख्यान भ० होते हैं ए० ऐसे प० प्रत्याख्यान देते को दु० खराब प्रत्याख्यान कराना भ० होते हैं ए० ऐसे ते० वे प० दूसरे को प० प्रत्याख्यान कराते अ० उलंघन करते हैं स० स्वयं

समणा निग्गंथा तुम्हाणं पवयणं पवयमाणा गाहावइं समणोवासगं उवसंपन्नं एवं पच्चक्खावेंति णण्णत्थ अभिओएणं गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं णिहाय दंडं एवंण्हं पच्चक्खंताणं दुप्पच्चक्खायं भवइ एवंण्हं पच्चक्खावेमाणाणं दुपच्च-क्खावियव्वं भवइ, एवं ते परं पच्चक्खावेमाणा अतियरंति सयं पत्तिणं, कस्सणं तं हेउं

ख्यान कराते हैं कि त्रस प्राणी के विनाश का त्याग करना जैसे राजाने गृहस्थ को चोर वध की आज्ञा दी. परंतु उसको मुक्त करने की इच्छासे त्रस की घातसे वह निवर्तो वैसेही गृहस्थ को निवर्तना अर्थात जिनशासन में श्रावक का अधिकार में त्रस प्राणी के वध का निषेध कहा. तो हे गौतम ! ऐसा प्रत्याख्यान करने वालेने दुष्ट प्रत्याख्यान किया ऐसा कहा जासकता है, और कराने वालेने दुष्ट प्रत्याख्यान कराया है, ऐसा गिना जाता है. इसलिये प्रत्याख्यान करने वाला और कराने वाला दोनों अपनी प्रतिज्ञाका उल्लंघन करते

आ० आयुष्मन् गो० गौतम अ० है ख० निश्चय के० कोई प० प्रश्न से० उसे पु० पूछें तं० उसे मे० मुझे आ० आयुष्मन् अ० यथाश्रुत अ० यथादर्शित मे० मुझे वि० कहो स० वाद सहित भ० भगवान् गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल पु० पुत्र को ए० ऐसा व० कहा अ० कहो आ० आयुष्मन् सो० सुनकर नि० अवधार कर जा० जानेंगे ॥ ५ ॥ स० वाद सहित उ० उदक पे० पेढाल पुत्र भ० भगवान् गो० गौतम को ए० ऐसा व० कहा आ० आयुष्मन् गो० गौतम अ० है कु० कुमारपुत्र स०

वयासी आउसंतो गोयमा! अत्थि खलु से केइ पदे से पुच्छियव्वे. तं च मे आउसो अहासुयं, अहादरिसियं मे वियागरेहि, सवायं भगवं गोयमे उदय पेढालपुत्तं एव वयासी—अवियाइ आउसो! सोच्चा निसम्म जाणिस्सामो ॥ ५ ॥ सवायं उदय पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—आउसो गोयमा ! अत्थि खलु कुमारपुत्तिया नाम

बोले कि अहो अयुष्मन् गौतम ! आपको किसी प्रकार का प्रश्न पूछने का है उसे आपने जैसा महावीर स्वामी से सुना होवे और जैसा अवधारा होवे वैसा ही मुझे कहो. तब गौतम स्वामी ने उदक पेढाल पुत्र को ऐसा कहा. अहो अयुष्मन् उदक ! तुम्हारा प्रश्न सुन कर मैं विचार पूर्वक हृदय में जानूंगा इसलिये तूम यथा योग्य प्रश्नकी पृच्छा करो॥५॥ तब उदक पेढाल पुत्र वाद सहित ऐसा बोले कि अहो आयुष्मन् गौतम! कुमार पुत्र नामे एक साधु निर्ग्रंथ तुम्हारे मत के प्ररूपक हैं. वे श्रावकों के नियम युक्त गृहस्थ को ऐसा प्रत्या-

प्रसन्न कर्ता आ० यावत् प० प्रतिरूप ति० उस से० सेसदविया उ० उदकशाला की उ० इशान दि० कोन में ए० तहां ह० हस्तीयाम व० वगीचा हो० था कि० कृष्ण वर्ण व० वगीचाका ॥ ४ ॥ त० उस में ग० गृह प० प्रदेश में भ० भगवान् गो० गौतम वि० विचरते हैं भ० भगवान् आ० वगीचे में अ० अव उ० उदक पे० पेढाल पुत्र भ० भगवान् पा० पार्श्वसंतानिया णि० निर्ग्रंथ मे० मेदार्य गो० गोत्री जे० जरा जे० जहां भ० भगवान् गो० गौतम ते० तहां उ० आये उ० आकर भ० भगवान् गो० गौतम को ए० ऐसा व० कहा

उदगसालाए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थणं हत्थिजामे नामं वणसंडे होत्था, किण्हे वण्णओ वणसंडस्स ॥ ४ ॥ तस्सिं च णं गिहपदेसंमि भगवं गोयमे विहरइ, भगवं च णं अहे आरामंसि अहेणं उदए पेढालपुत्ते भगवं पासावच्चिज्जे, नियंठे मेयज्जे गोत्तेणं, जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता, भगवं गोयमं एवं

काष्टादि जो बचा था उसे लेकर लेप गाथापतिने नालंदा पाडा की इशान कोन में एक सेसदविया नाम की उदक शाला बनवाई थी. वह शाला सैंकडो स्तंभो से वेष्टित व बडी मनोहर थी. उस की इशान कोन में श्याम वर्ण वाला हस्तियाम नामक वनखण्ड था. उस का विशेष वर्णन उववाईजी सूत्र से जानना. ॥ ४ ॥ उस वनखण्ड के गृह प्रदेश में भगवन्त श्री गौतम स्वामी विराजमान थे. उस समय श्री पार्श्वनाथ स्वामी के शिष्य का शिष्य मेदार्यगोत्रिय पेढाल का पुत्र उदक श्री गौमत स्वामी की पास आये और

पो० पोषध स० सम्यक् अ० करता हुवा स० श्रमण नि० निर्ग्रंथ को त० तथा प्रकार ए० शुद्ध अ० अन्न पा० पानी खा० खादिम सा० स्वादिम प० देता हुवा ब० बहुत सी० शील व० व्रत गु० गुण वि० विरमण प० प्रत्याख्यान पो० पोषध उ० उपवास युक्त अ० आत्मा को भा० भावता हुवा ए० ऐसा वि० विचरता है ॥ ३ ॥ त० उस ले० लेप गा० गाथापति की ना० नालंदा वा० बाहिरिका की उ० इशान दि० कौन में ए० तहां से० सेसदविया उ० उदकशाला हो० थी अ० अनेक खं० स्थंभ स० वेष्टित पा०

डिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे, समणे निग्गंथे तहाविहेणं एसणिज्जेणं असणपाण खाइम साइमेणं पडिलाभेमाणे बहुहिं सीलव्वयगुणविरमण पच्चक्खाण पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणे एवं च णं विहरइ ॥ ३ ॥ तस्सणं लेवस्स गाहावइस्स नालंदाए बाहिरियाए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए एत्थणं सेसदविया नामं उदगसाला होत्था. अणेग खंभसयसन्निविट्ठा, पासादिया जाव पडिरूवा. तिस्सेणं सेसदवियाए

थे. राजा का अंतःपुर में भी प्रवेश करते उन को प्रतिबन्ध न था. चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावास्या और कल्याणिक तीथीओंमें प्रतिपूर्ण पोषध व्रत पालने वाले थे और ऐसा धर्म पालने वाले श्रमण, ब्राह्मण को शुद्ध आहार जल से संतोष करते थे. और पांच अनुव्रत, चार शिक्षाव्रत, और तीन गुणव्रत, पालते थे, उपवास, व पोषहादिक कर के भावना भावते हुवे विचरते थे. ॥ ३ ॥ अपने मकानों बनाते

अ० अर्थ ग० गृहीत अ० अर्थ पु० पूछा हुवा अ० अर्थ वि० निश्चय किया हुवा अ० अर्थ अ० जानाहुवा अ०अर्थ अ०अस्थिमिजी पे०प्रेमानुराग से र० रक्त अ० अहो आ०आयुष्मन् नि० निर्ग्रंथ के पा० प्रवचन में अ० यह अ० अर्थ अ० यह प० परमार्थ से० शेष अ० अनर्थ उ० प्रख्यात फ० स्फटिक अ० खुला दु० द्वार वि० व्यक्त अं० अंतःपुर में प० प्रवेश चा० चतुर्दशी अ० [illegible] उ० [illegible] पु० पूर्ण तिथि में प० प्रतिपूर्ण

याविं होत्था, अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ, निग्गंथे पावयणे निस्संकिए, निक्कं-खिए, निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अभिगिहियट्ठे अट्ठि-मिंजा पेमाणुरागरत्ते. अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अयंअट्ठे अयंपरमट्ठे, सेसे अणट्ठे, उसियफलिहे अप्पावयदुवारे, वियत्तंतेउरप्पवेसे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु प-

आदि नव तत्त्व का जानने वाला था. जिन प्रणीत सूत्रों में व जिन मार्ग में शंका रहित था, अन्य मत के पाखण्ड से वह ठगाता नहीं, किया हुवा कार्य में संदेह नहीं रखता था. कदाचित शास्त्रों के ग्रहण किये हुवे अर्थों में संदेह उत्पन्न होजाता तो उसकी पृच्छा कर के खुलासा सहित धारण कर रखता था. उस की हड्डी और हड्डी की मिंजी प्रेमराग से अनुरक्त थें. किसी से वार्तालाप का प्रसंग आता तो कहता कि अहो आयुष्मन्तो! यह जिन प्रवचन निस्संशय व सत्य है, यही परमार्थ है, अन्य सब अनर्थ हैं. अब उन के गुणों बतलाते है. उन का हृदय स्फटिक रत्न समान निर्मल था. वे दानार्थ अपने गृह के द्वार खुल्ले रखते

जा० यान वा० वाहण इ० सहित व० बहुत ध० धन व० बहुत जा० सुवर्ण र० चांदी आ० उपाय प०प्र-
योग सं० युक्त वि० डाला हुवा प० बहुत भ० आहारपानी व० बहुत दा० दासी दा० दास गो० गो म०
महिषी गा० गाडर प्प० युक्त व० बहुत ज० मनुष्यों का अ० अपराभवी हो० था ॥ २ ॥ से० वह ले०
लेप गा० गाथापति स० श्रमणोपासक हो० था अ०जाना हुवा जी०जीव अ०अजीव जा०यावत् वि० विच
रता है नि० निर्ग्रंथ के पा० प्रवचन में नि० शंका रहित नि० आकांक्षा रहित नि० जुगुप्सा रहित ल० प्राप्त

पुलभवणसयणासणजाणवाहणाइण्णे, बहुधणबहुजायरूवरजते, आओग
पओगसंपउत्ते, विच्छडियपउरभत्तपाणे, बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूए बहुज-
णस्स अप्परिभूएयावि होत्था ॥ २ ॥ से णं लेवे नामं गाहावई समणोवासए

पति रहता था. वह अन्य से पराजित न होसके ऐसा सामर्थ्यवन्त, तेजस्वी, और बहुत धनवाला था.
उसको बहुत विस्तारवाले भुवन शय्या आसनादिक तथा रथ वाहनादिक रहे हुवे थे. उसकी पास बहुत सुवर्ण,
धन धान्यादि था. उस के वहां बहुत आहार पानी निपजता था जिस से बहुत लोगों का पोषण
होता था. उस को कार्य करने वाले बहुत दास, दासी, और गाय, भैंस बकरे वगैरह बहुत जानवरों थे. ऐसी
ऋद्धि होने से कोई मनुष्य उस का पराभव नहीं कर सकता था. ॥ २ ॥ लेप गाथापति की यह द्रव्य
संपदा कही अब आगे भाव संपदा बतलाते हैं. वह गाथापति श्रमणोपासक था. वह जीवाजीव

उदक पेढाल पुत्र (नालंदीय) नामकं त्रयोविंशतितम मध्ययनम्.

ते० उस का० काल में ते० उस स० समयमें रा० राजगृही न० नगरी हो० थी रि० ऋद्धि सहित स० समृद्धि सहित व० वर्णन योग्य जा० यावत् प० प्रतिरूप त० उस रा० राजग्रही न० नगरी के ब० बाहिर उ० इशान दि० कोंन में ए० तहां ना० नालंदा बा० बाहिरिका हो० था अ० अनेक भ० भवन स० सो स० सहित जा० यावत् प० प्रतिरूप ॥ १ ॥ त० तहां ना० नालंदा बा० बाहिरिका में ले० लेप गा० गाथापति हो० था अ० धनवन्त दि० तेजस्वी वि० विख्यात वि० विस्तीर्ण वि० बहुत भ० भवन स० शयन आ० आसन

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था, रिद्धिप्फीत समिद्धे वण्णओ. जाव पडिरूवे. तस्सणं रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थणं नालंदा नामं बाहिरिया होत्था. अणेगभवणसयसन्निविट्ठा जाव पडिरूवा ॥ १ ॥ तत्थणं नालंदाए बाहिरियाए लेवे नामं गाहावई होत्था, अड्ढे, दित्ते, वित्ते, विच्छणवि-

उस काल उस समय में रिद्ध सिद्धि से भरपूर और भय रहित राजगृही नामक नगरी थी. इस का सब अधिकार उववाई सूत्र से जानना. उस की इशान कोन में नालंदा नामक पाडा (पूरा) था. वह पाडा भी सेंकडो गृहों से अत्यंत शोभनीय था. ॥ १ ॥ उस नालंदा पाडामें एक लेप नामक गाथा-

म० समाधि में अ० इसमें सु० स्थिर ति० तीन करण से ता० रक्षक त० तीरने को स० समुद्र म० म-हाभव ओ० ओघ को आ० ज्ञानादियुक्त को स० कहे त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ५५ ॥

णाए इमं समाहिं। अस्सि सुट्ठिच्चा तिविहेण ताई ॥ तरिउं समुद्दं च महाभवोघं। आयाणवंतं समुदाहरेज्जा त्ति बेमि ॥ ५५ ॥ इति अद्दइज्जणामं दुवाविस मज्झयणं सम्मत्तं ॥ २२ ॥

स्वामी के सन्मुख जाकर आज्ञा के आराधक हुवे. उपसंहार-श्री महावीर की आज्ञारूप समाधि में प्रवर्तने वाला और त्रिकरण से जीवों की रक्षा करने वाला साधु भयंकर संसार समुद्र को तीरके सम्यक् ज्ञान दर्शन व चारित्रवन्त होता हुवा आर्द्रकुमार जैसे यथावस्थित प्ररूपणा कर के मोक्ष मार्ग प्रगट करे. ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं. यह आर्द्रकुमार नामक बावीसवा अध्ययन समाप्त हुवा. इन अध्ययनमें स्वसमय परसमय की प्ररूपणा की और प्रायः कर के समस्त सूयगडांग सूत्र में साधु के आचार की प्ररूपणा की अब आगे अध्ययन में श्रावक का आचार कहते हैं. इस अध्ययन में परतीर्थिक वाद का निरा करण किया अब आगे स्वतीर्थिक का वाद कहते हैं. ॥ २२ ॥

सं०वर्ष में ए० एकके पा० जीव को ह० हणते अ० अनियत दोषी से० शेष जी० जीवों का अ० अवहे-लना सि० कदाचित् थो० थोडे गि० गृहस्थ त० तैसे ॥ ५३ ॥ सं० वर्ष में ए० एकेक पा० जीव को ह० हणते स० श्रमण के व्व०व्रत में आ० आत्माका अहित कर्ता तं०वह पु०पुरुष अ०अनार्य ण० नहीं ता० तैसा के० केवली णो० नहीं भ० होता है ॥ ५४ ॥ बु० तत्त्वज्ञ आ० आज्ञा इ० इस

एगमेगं । पाणं हणंता अणियत्तदोसा ॥ सेसाणजीवाण वहेलणाय । सियायथोवं गिहिणोवि तम्हा ॥ ५३ ॥ संवच्छरेणावि य एगमेगं । पाणं हणंता समणेव्वएसु ॥ आयाहिए तं पुरिसे अणज्जे । ण तारिसे केवली णो भवंति ॥ ५४ ॥ बुद्धस्स आ-

॥५२॥ अब आर्द्रकुमार उत्तर देते हैं, कि अहो हस्तितापसो! सब जीवों को नहीं हणने का अभिप्रायसे वर्षमें या छमास में एक बडा जीव को हणते, घात से निवर्ते हुवे नहीं कहला सकते हो. तुम को पंचेन्द्रिय जीव की घात का दोष लगता है. साधु पुरुष तो धूसर प्रमाण दृष्टि से प्रकाशित मार्ग में देखते हुवे ईर्यासमिति सहित विचरते हैं, तो उन को आशंसा दोष कहां से होवे ? और पिपीलादिक की घात कैसे होवे ! वैसे तो गृहस्थ भी अपना क्षेत्र छोडकर अन्य जीवों की घात नहीं करने से तुमारे जैसे निर्दोष होना चाहिये ॥५३॥ साधु वृत्ति में रहने पर जो वर्ष में एक जीव की घात करते हैं और ऐसा ही उपदेश देते हैं वे अनार्य केवली नहीं होसकते हैं ॥ ५४ ॥ अब आर्द्रकुमार अन्य मतावलम्बी को प्रतिबोध देकर, और महावीर

निन्द्य ठा० स्थान में व० रहते हैं जे० जो लो० लोक में च० चारित्र उ० सहित उ० कहा तं० उन का स० एकसा म०मतिसे अ० आयुष्मन् वि० विपरीतपना ॥ ५२ ॥ सं० वर्ष में ए० एकेक वा० वाण से मा० मारे म० वडा ग० हाथी से०शेष जी०जीव की द०दयार्थ वा०वर्ष व०हम वि०वृत्ति प०कल्पते हैं ॥ ५२ ॥

ठाणमिहावसंति । जेयावि लोए चरणोववेया ॥ उदाहडं तं तु समंमईए । अहाउसो विप्परियासमेव ॥ ५१ ॥ संवच्छरेणावि य एगमेगं । बाणेण मारेउ महागयं तु ॥ सेसाण जीवाण दयट्ठयाए । वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥ ५२ ॥ संवच्छरेणावि य

के लिये श्रुत चारित्ररूप धर्म प्ररूपते हैं, वे संसार समुद्र से तीर सकते हैं और अन्य को भी समुद्र पार कर सकते हैं ॥ ५० ॥ कोई इस जगत में निंदित स्थान का आश्रय लेनेवाले हैं तो कोई चारित्र कर के सहित है. उन दोनों को तुमारी मतिसे तुमने तुल्य कहा; परंतु अहो एकदंडि सांख्यमतवाले! ऐसा कहनेवालेको विपरीत मतिवाला कहना ॥ ५१ ॥ ऐसा सांख्यमत का निराकरण कर के आर्द्रकुमार जैसे आगे गये कि मार्ग में हस्तितापस आकर बोला, अहो आर्द्रकुमार! जो तापस कंदमूलादिक के सेवन करनेवाले हैं वे बहुत स्थावर व उसके आश्रित त्रस जीवों का विनाश करते हैं. परंतु हमतो वरस में या कभी एक मास में समस्त जीवों की दया के लिये वडी कायावाला एक हाथी को मारकर हम हमारी आजीविका चलाते हैं. इस तरह एकाद जीव की घात कर के जीवों की रक्षा करते हैं, इसलिये हमारा धर्म श्रेष्ठ है.

कीडे प० पक्षी स० सर्प न० मनुष्य स० सर्व त० तथा दे० देव लोक ॥ ४८ ॥ लो० लोक को अ० नहीं जानकर के के० केवल ज्ञान से क० कहते हैं जे० जो ध० धर्म अ० नहीं जानते हुवे णा० नाश करते हैं अ० आत्मा को प० दूसरे को ण० नष्ट सं० संसार घो० घोर अ० अपार ॥ ४९ ॥ लो० लोक वि० जानते हैं के० केवलसे पु० पूर्ण ना० ज्ञान से स० समाधि जु० युक्त ध० धर्म स० सम्यक् क० कहते हैं जे० जो ता० तारे अ० आत्मा को प० दूसरे को ति० तीरे हुवे ॥ ५० ॥ जे० जो ग०

कीडाय पक्खीय सरीसिवाय । नराय सव्वे तह देवलोए ॥ ४८ ॥ लोयं अयाणि-त्तिह केवलेणं । कहंति जे धम्म मजाणमाणा ॥ णासंति अप्पाण परं च णट्ठा । संसार-घोरंमि अणोरपारे ॥ ४९ ॥ लोयं विजाणंतिह केवलेणं । पुन्नेण नाणेण समाहिजुत्ता ॥ धम्मं समत्तं च कहंति जेउ । तारंति अप्पाण परं च तिन्ना ॥ ५० ॥ जे गरहियं

जीव को मरना और नरकादि गति में जाना होवे नहीं, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र ऐसे भेद भी बने नहीं. कीडे, पक्षी, सर्प, देव नरक ऐसा गतिभेद भी होवे नहीं ॥ ४८ ॥ जिनोंने केवलज्ञान से लोक को नहीं जाना है वे अज्ञानी लोक में धर्म कहते हैं. वे अपना आत्मा को और अन्य का आत्मा को भी भ्रष्ट करते हैं इतना ही परंतु अपार संसार समुद्र में स्वयं गिरते हैं और अन्य को भी गिराते हैं. ॥ ४९ ॥ जो केवलज्ञान से लोक को जानते हैं, और संपूर्ण ज्ञान से समाधिवन्त होते हुवे परके हित

अव्यय स० सर्व भू० प्राणी में वि० व्याप्त से० वह चं० चंद्र ता० तारा में स० मस्त रूप ॥ ४७॥ ए० ऐसे ण० नहीं मि० मिरते हैं ण० नहीं सं० जाते हैं ण० नहीं मा० ब्राह्मण ख० क्षत्रिय वे० वैश्य की०

महंतं । सणातणं अक्खयमव्वयं चं ॥ सव्वेसु भूतेसु विसव्वतो से । चंदोव ताराहिं समत्तरूवे ॥ ४७ ॥ एवं ण मिज्जंति ण संसरंति । ण माहणा खत्तिय वेसयस्सा ॥

बहुत अच्छा किया है. हमारा और तुम्हारा सिद्धांत में कुच्छ भी भिन्नता नहीं है. हमारे मत में पच्चीस तत्त्वों का स्वरूप कहा है सो वताते है. हमारा और तुम्हारा धर्म सरिखा है क्यों कि जैसे तुम पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष का सद्भाव मानते हो वैसे ही हम मानते हैं. जैसे तुम्हारे में पंच महाव्रत है वैसे ही हमारे में पंच यम है, ऐसे सब नियमों एक सरिखे हैं. ऐसा समान धर्म में अतीत अनागत व वर्तमान काल में अपन ही प्रवृत्ति करनेवाले हैं अन्य कोई नहीं है अपना आचार को प्रधानशील कहा है और ज्ञान को ही मोक्ष का अंग कहा है. संसार में परिभ्रमण कराने वाला सांपरायिक कर्म हमारे और तुम्हारे दोनों के मत में नित्य है. इसलिये हमारे और तुम्हारे धर्म में कुच्छ भी विशेषता नहीं है॥४६॥ जैसे. जीव को तुम जानते हो वैसे ही हम जीव को अव्यक्तरूप समस्त लोक व्यापी, सनातन, अक्षय, और अव्यय मानते है और जैसे अश्विन्यादि नक्षत्र से चंद्रमा संपूर्ण बंधाता है वैसे ही सब शरीर में आत्मा संपूर्णपने बंधाता है ॥ ४७ ॥ अब आर्द्रकुमार कहता है कि यदि ऐसा ही स्वीकार कीया जावे

॥ ४४ ॥ द० दया रूप व० प्रधान ध० धर्म को दु० दुर्गंछते व० हिंसा रूप ध० धर्म को प० प्रशंसते ए० एकान्त ही भो० भोमवते हैं अ० दुःशील णि० नित्य अंधकार में सं० जावे कु० कहां से सु० देव लोक में ॥ ४५ ॥ दु० दोनों प्रकार ध० धर्म में सा० सावधान अ० इस में सु० स्थिर रहे त० तथा ए० इस काल को आ० आचार शील में बु० फरमाया ना० ज्ञानीने ण० नहीं सं० संसार में वि० ज्यादा है ॥ ४६ ॥ अ० अव्यक्त रूप पु० पुरुष को म० बडा स० स्नातक अ० अक्षय अ०

लोलुवसंपगाढे । तिव्वाभितावी णरगाभि सेवी ॥ ४४ ॥ दयावरं धम्मदुगंछमाणा । वहावहं धम्मपसंसमाणा ॥ एगंपि जे भोययति असीलं । णिग्गोणिसंजाति कुओ सुरेहिं ॥ ४५ ॥ दुहओवि धम्मंमि समुट्ठियामो । अस्सिं सुट्ठिच्चा तह एसकालं ॥ आयारसीले बुइएह नाणी । ण संपसयंमि विसेसमत्थि ॥ ४६ ॥ अव्वत्तरूवं पुरिसं

॥ ४४ ॥ दयामय धर्म की निंदा करने वाला और हिंसामय धर्म की प्रशंसा करने वाला जो कोई पुरुष आचार रहित मनुष्य को जीमाता है वह निरंतर अंधकार वाली भूमि में जाता है तब उन को असुर देवलोक की भी प्राप्ति कहां से होवे ॥ ४५ ॥ इस तरह ब्राह्मण धर्म का निराकरण कर के आर्द्रकुमार आगे गये. वहां एक दंडिये सांख्य मत वाले मिले. वे बोले अहो आर्द्रकुमार! आरंभ में प्रवृत्ति करनेवाले और अपने में गुरुपना मानने वाले राक्षस जैसे ब्राह्मणों का पराभव तुमने किया यह

अत्यर्थ पा० प्राप्त करे सि० श्लाघा ॥ ४२ ॥ सि० स्नातक तु० निश्चय दु० दो हजार के जे० जो भो० भोजन दे नि० नित्य मा० ब्राह्मण को ते० वे पु० पुन्य स्कन्ध सु० उपार्जकर भ० होवे दे० देव इ० ऐसा वे० वेद वाक्य ॥ ४३ ॥ सि० स्नातक तु० निश्चय दु० दो हजार ज० जो भो० भोजन दे णि० सदैव कु० मार्जार को से० वे ग० जावे ल० लोलुपयुक्त सं० दाता युक्त ति० तीव्र भि० वेदना वाली न० नरक में

ववेए । अव्वत्थते पाउणती सिलोगं ॥ ४२ ॥ सिणायगाणं तु दुवे सहस्से । जे भोयए णितिए माहणाणं ॥ ते पुण्णखंधे सुमहज्जणित्ता । भवंति देवा इति वेयवाओ ॥ ४३ ॥ सिणायगाणं तु दुवे सहस्से । जे भोयए णितिए कुलालयाणं ॥ से गच्छति

मार्ग वाले का परास्त करके आगे गये जब उन को ब्राह्मण मीले. वे बोले कि अहो आर्द्रकुमार पूर्वोक्त दोनों मत वेद बाह्य थे उन के मत का तुमने निर्णय किया, और तुम्हारा जैन मत भी वेद बाह्य है. तुम क्षत्रिय हो. क्षत्रियों को ब्राह्मण की सेवा करना सो बतलाते हैं. स्नातक-षट्कर्म के करने वाले दो हजार ब्राह्मणों को निरंतर जीमाने वाला महान पुण्य की उपार्जना कर के देवता होवे ऐसा हमारा वेद वाक्य है ॥ ४३ ॥ आर्द्रकुमार उस का उत्तर देते हैं कि अहो ब्राह्मणो ! तुम्हारे स्नानतक मार्जार समान हैं, क्यों कि वे मार्जार की मुवाफीक एक गृह से दूसरे गृह ऐसे परिभ्रमण करते हैं. ऐसे को जिमाने से उन लोलुपी ब्राह्मणों सहित दातार अत्यंत वेदना वाली नरकमें उत्पन्न होवे

दो० दोष प० दूर करे इ० ऋषि ना० ज्ञात पुत्र उ० उद्दिष्ट भक्त प० दूर करते हैं ॥ ४० ॥ भू० भूता
की घात दु० दुर्गंछते स० सर्व प्राणी को नि० निवर्ते दं० दंडसे त० इसलिये ण० नहीं भुं० भोगवे त० तथा-
प्रकार ए० ऐसा ही धर्म इ० यहां सं० संयति का ॥ ४१ ॥ नि० निर्ग्रन्थ धर्म में इ० यह स० समाधि अ०
इस में सु० स्थिर अ० स्नेह रहित च० विचरे बु० तत्त्वज्ञ मु० साधु सी० शील गुण युक्त अ०

सव्वेसिं जीवाण दयट्ठयाए । सावज्जदोसं परिवज्जयंता ॥ तस्संकिणो इसिणो नाय-
पुत्ता । उद्दिट्ठभत्तं परिवज्जयंति ॥४०॥ भूयाभिसंकाए दुगंछमाणा । सव्वेसिं पाणाण
निहाय दंडं ॥ तम्हा ण भुंजंति तहप्पगारं । एसोणुधम्मो इह संजयाणं ॥ ४१ ॥
निग्गंथधम्मंमि इमं समाहिं । अस्सिं सुठिच्चा अणिहे चरेज्जा ॥बुद्धे मुणी सीलगुणो-

लिये सावद्य दोषों का परिहार करनेवाले और उस से शंकित बनने वाले महावीर देव के शिष्यों
उद्देशिक आहार का त्याग करते हैं ॥ ४० ॥ प्राणी मर्दन की शंका से सावद्यानुष्ठान को निंदते हुवे,
प्राणी के विनाश का त्याग कर के सम्यक् आचार में प्रवर्तते हुवे साधु आधाकर्मादि दोष
वाला आहार भोगवे नहीं. और यही धर्म संजति का है ॥ ४१ ॥ साधु धर्म में पूर्वोक्त समा-
धि प्राप्त कर के माया रहित होता हुवा संयमानुष्ठान पाले और मूलोत्तर गुण सहित तत्त्व का
जान पण्डित इस लोक में और परलोक में श्लाघा प्राप्त करे ॥ ४२ ॥ इस तरह आर्द्रकुमार दोनों

मांस को ॥ ३७ ॥ तं० उसे भु० भोगते हुवे प० बहुत ण० नहीं उ० लेप लगे व० हम र० रजसे इ० इसे आ० कहा अ० अनार्य ध० धर्म अ० अनार्य वा० अज्ञानी र० रससे गृद्ध ॥ ३८ ॥ जे० जो भुं० भोगते हैं त० तथा प्रकार से० सेवते हैं ते० वे पा० पाप न० नहीं जानते हुवे म० मन भी न० नहीं ए० ऐसा कु० कुशल करे व० वचन भी ए० ऐसा बु० बोले मि० मिथ्या ॥ ३९ ॥ स० सर्व जीवों की द० दया के लिये सा० सावद्य

भत्तं च पगप्पएत्ता ॥ तं लोणतेल्लेण उवक्खडेत्ता । सपिप्पलीयं पगरंति मंसं ॥३७॥
तं भुंजमाणा पिसितं पभूतं । ण उवलिप्पामो वयं रएणं ॥ इच्चेव माहंसु अणज्जधम्मं।
अणारिया बालरसेसु गिद्धा ॥ ३८ ॥ जे यावि भुंजंति तहप्पगारं । सेवंति ते
पावमजाणमाणा ॥ मणं न एयं कुसला करेंति । वायावि एसा बुइयाउ मिच्छा॥३९॥

भावार्थ

तुम मानते हो कि एक मेंढा को मारकर, उद्दिष्ट भोजन बना कर, और उस को लवण व तेल की साथ पकाकर खाने योग्य करना ॥ ३७ ॥ ऐसा मांस खाते भी हम पाप कर्म से नहीं लेपाते हैं. ऐसा वचन बोलने वाले अनार्य धर्मी, बाल व रसगृद्धि हैं ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य रस गृद्ध बन कर के मांस भक्षण करते हैं वे निःकेवल पाप का सेवन करते हैं. जो कुशल पुरुष होवे वे मांस भक्षण करने का मन न करे और मांस भक्षण में दोष नहीं है ऐसी असत्य भाषा भी बोले नहीं ॥ ३९ ॥ सब जीवों की दया करने के

त्रि० कहे उ० हिंसास्थान उ० उपजीविका करनेवाले ए० यह ध० धर्म इ० यहां सं० संयति का ॥ ३५ ॥
सि० स्नातक तु० निश्चय दु० दो हजार जे० जो भो० जिमावे नि० सदैव भि० साधु को अ० असयंति
लो० रक्त से पा० हस्त नि० वांछे ग० निन्दा इ० इस लोक में ॥३६॥ थू० वडा उ० बकरा इ० यहां मा०
मारकर उ० उद्दिष्ट भोजन प० कल्पकर तं० उसे लो० लवण ते० तेल उ० निपजावे स० पिपली सहित प० करे मं०

त्रिहाय सोहिं ॥ न वियागरे छन्नपओपजीवि । एसोणुधम्मो इह संजयाणं ॥ ३५ ॥
सिणायगाणं तु दुवे सहस्से । जे भोयए निइए भिक्खुयाणं ॥ असंजएलोहियपाणि-
सेऊ । णियच्छत गरिहंमिहेव लोए ॥ ३६ ॥ थूलं उरब्भं इह मारियाणं । उद्दिट्ठ-

सकता है कि खल्पिड को पुरुष और तुंबडी को बालक मानते हो. अब जानपना में क्या रहा ॥ ३४ ॥
ऐसा उपहास्य करके आर्द्रक मुनि कहते हैं. जिन शासन को प्रतिपन्न पुरुषों जीवों की पीडा जानता हुवा
शुद्ध अन्न पानी ग्रहण करे. तुम हिंसा से आजीविका करनेवाले हो वैसे जैनानुयायी नहीं हैं. ऐसा
निर्दोष आहार लेना यही साधु का धर्म है ॥ ३५ ॥ और भी तुम कहते हो कि बौद्ध मत के दो हजार
साधुओं को निरंतर जिमाने वाले को महा लाभ होता है परंतु वे रुधिर लिप्त हाथ वाले इस लोक में
निंदा को प्राप्त होते हैं और परलोक में भी अनार्य गति में जाते हैं ॥ ३६ ॥ तुम्हारे मत में ऐसा भी

खल पिण्ड में वा० वचन ए० ऐसे बु० बोले अ० असत्य ॥ ३२ ॥ वा० वचन प्रयोग से ज० जो व० बध करे णो० नहीं ता० तैसे वा० वचन उ० कहे अ० अस्थान में व० वचन गु० गुण का. णो० नहीं दि० दीक्षित बू० बोले उ०सार ए० यह ॥ ३३ ॥ ल०प्राप्त हुवे अ०अर्थ ए०ऐसे तु०तुम को जी० जीवानुभागको सु० चिन्तवाहुवा पु० पूर्व स० समुद्र अ० दूसरा पु० पीछे का उ० अवलोका पा० पानी के नीचे ठि०स्थित॥३४॥ जी० जीवानुभागको वि०विचारते आ०आहार करनेवाले अ०अन्नकी विधिमें सो०शुद्ध न०नहीं

याए । वायावि एसा बुइया असच्चा ॥ ३२ ॥ वायाभियोगेण जमावहेज्जा । णो तारिसं वायमुदाहरिज्जा ॥ अट्ठाणमेयं वयणं गुणाणं । णो दिक्खिए बूय मुरालमेयं ॥ ३३ ॥ लद्धे अट्ठे अहो एव तुब्भे । जिवाणुभागे सुविचिंति एव ॥ पुव्वं समुद्दं अवरं च पुट्ठे। उल्लोइए पाणितले ट्ठिएवा ॥ ३४ ॥ जीवाणुभागं सुविचिंतयंता । आहारिया अन्न-

ार्थ

संसार का बढाने वाला होता है ॥ ३२ ॥ जिस वचन बोलने से पाप लगे ऐसे वचन न बोले और जो दीक्षित पुरुप होवे वह कदापि खलपिण्ड को पुरुप या तुम्बडी को बालक न कहे ॥ ३३ ॥ तुम ऐसा कथन अंगीकार करते हो जिस से हम को मालुम होता है कि तुम जीवों का कर्मविपाक को जानते हो, और ऐसा ज्ञान से तमारा यश पूर्व पश्चिम समुद्र तक और नीचे समुद्र के पाताल में पहुंच गया है अहो दर्शनियों ! तुम्हारा अतिशय का हम कहां लग वर्णन करे, तुम्हारा जैसा जानपना कहां भी नहीं मील

रीत सुनते हैं ॥ ३० ॥ उ० ऊर्ध्व अ० नीचा ति० तिर्यक् दि० दिशा में वि० जानकर लिं० लिंग को त० त्रस था० स्थावर भू० भूतघात की अ० शंका से दु० दुर्गच्छा करते व०कहे क० करे कु० कहांसे ॥३१॥ पु०पुरुष वि०बुद्धि न०नहीं ए० ऐसे अ०है अ०अनार्य से०वह पु०पुरुष त० तथा को० कैसा सं० संभव पि०

साहु । वयंति जेया विपडिस्सुणंति ॥ ३० ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु । विन्नाय लिंगं तसथावराणं ॥ भूयाभिसंकाइ दुगंच्छमाणा । वदे करेज्जाव कुओविहत्थि ॥ ३१ ॥ पुरिसेत्ति विन्नत्ति न एव मत्थि । अणारिए से पुरिसे तहाहु ॥ को संभवो पिन्नगपिंडि-

पिण्डी मान कर घात करने का उपदेश देने वाला और उस को अंगीकार करने वाला दोनों असाधु हैं. ॥ ३० ॥ ऐसा बौद्ध मत का तिरस्कार कर के आर्द्रकुमार जैनमार्ग का गुण बतलाते है. उर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में रहे हुवे त्रस स्थावर प्राणियों का जीवत्व चिन्ह जान कर उन की घात न होवे ऐसी शंका करता हुवा धर्मोपदेश करे, और ऐसा ही अनुष्ठान आचरे. ऐसा अनुष्ठान करने वाले और बोलने वाले हमारे पक्ष में तुमारा कहा हुवा दोष कहां से होवे ॥ ३१. ॥ अब खलपिण्डी में पुरुष की बुद्धि का असंभव बतलाते हैं. अत्यंत मूर्ख मनुष्य होवे उस की भी खलपिण्डी में यह पुरुष है ऐसी बुद्धि नहीं होसकती इसलिये ऐसी बुद्धि रखनेवाले अनाचारी गिने गये हैं. खलपिण्डी में पुरुषकी बुद्धि की संभावना ही कैसे होसकती है ? इस से ऐसी भाषा को असत्य कही है उस को बोलने वाला निर्विवेकी और अनंत

पि० भेदकर कु० लडके को सू० शूल से के० कोई प० पचावे जा० अग्नि पि० खलका पिंड स० होने पर मा० मारकरके बु० बुद्ध के क० कल्पे पा० भोजन में ॥ २८ ॥ सि० स्नातक दु० दो स० सहस्र जे० जो भो० जीमावे णि० सदा भि० भिक्षु को ते० वे पु० पुण्यस्कंध सु० बहुत निपजा भ० होवे आ० आरोप्य म० महासत्ववन्त ॥ २९ ॥ अ० अयोग्य इ० यहां सं० साधु को पा० पाप पा० प्राणी का णा० नहीं सं० अच्छा का० करके अ० अबोधिक दो० दोनों तं० उस को अ० असाधु व० कहते हैं जे० जो वि० विप

मूल

रिसं च विद्धूण कुमारगंवा । सूलंमि केइ पएज्जा यतेए॥ पिन्नाय पिंडे सति मारुहेत्ता । बुद्धाण तं कप्पति पारणाए ॥ २८ ॥ सिणायगाणं तु दुवे सहस्से । जे भोयए णितिए भिक्खुयाणं ॥ ते पुन्नखंधं सुमहं जिणित्ता । भवंति आरोप्प महंत सत्ता ॥ २९ ॥ अजोगरूवं इह संजयाणं । पावंतु पाणाणयसंज्झकाउं ॥ अबोहिए दोण्हवि तं अ-

भावार्थ

मन मे ऐसा भाव रखे कि यह खलपिंडी है तो उसे भोगवना बुद्ध को भी कल्पता है तो अन्य का कहना ही क्या ॥ २८ ॥ जो कोई पुरुष बौद्ध मत के दो हजार साधुओं को निरंतर जीमावे तो वह महान् पुण्य की उपार्जना कर के आरोप्य नामक देवलोक में सर्वोत्तम देवता होवे ॥ २९ ॥ बुद्ध लोगों का ऐसा वचन सुनकर आर्द्रकुमार कहते हैं कि तुमने जो जो बातें कही हैं वे संयति पुरुषों के लिये अयोग्य हैं. क्यों कि तुम प्राणी की घात से पाप करके फीर उस में पाप का अभाव बतलाते हो. इस तरह पुरुष को खल

अ० मै ॥ २६ ॥ अ० अथवा वि० भेदे मि म्लेच्छ सू० शूलसे पि० खलकी बु० बुद्धिसे न० पुरुष प० पचावे कु० लडके को अ० तुंबे को न० नहीं लि० लेपावे पा० प्राणी व० वधसे अ० मैं ॥ २७ ॥ पु० पुरुष को

प्पाति पाणिवहेण अम्हं ॥ २६ ॥ अहवावि विद्धूण मिलक्खू सूले । पिन्नागबुद्धिइ नरं पएज्जा ॥ कुमारगं वावि अलावुयंति । न लिप्पइ पाणिवहेण अम्हं ॥ २७ ॥ पु-

का उत्तर देकर आगे चलें, वहां उन को बौद्ध मिलें. वे बोले कि अहो आर्द्रकुमार! गोशालकने दियाहुवा वैश्य का द्रष्टांत को तुमने जो दूषित किया है वह युक्ति पूर्वक है. क्यों कि बाह्य अनुष्ठान प्रायःशून्य है और अंत-रंग अनुष्ठान को मोक्ष का प्रधान अंग कहा है. हमारे सिद्धांतो में भी अंतरंग अनुष्ठान साधने का कहा है सो तुम सुनो. कोई म्लेच्छ पुरुष अचेत खलपिण्ड लेकर उसे वस्त्र से ढके, और उस में शूलों डालकर यह पुरुष ऐसी बुद्धि से उस को पचावे; या तुंबडी लेकर यह कुमार है ऐसी बुद्धि से उसे अग्नि में डाले तो उन दोनों पुरुषों को पुरुष और कुमार की घात का पाप लगता है. ऐसा हमारा सिद्धांत में भाष है. शुभाशुभ बंध का मूल मन के परिणाम ही है और चित्त में जीव घात का परिणाम रहा हुवा है इसलिये घात नहीं करने पर भी उस को पाप लगता हैं ॥ २६ ॥ अथवा कोई म्लेच्छ पुरुष किसी को खल पिंडी मान कर शूलों से विधकर पचावे; या कुमार को तुंबडी जानकर जलावे तो उन दोनों को प्राणी घात का पाप नहीं लगता है ॥ २७ ॥ किसी पुरुष या कुमार को शूल से विधकर अग्नि में पचावे और

त० उस उ० उदय को सा० कहता है ना० रक्षक णा० भगवन्त ॥ २४ ॥ अ० अहिंसक स० सर्व प० प्राणानुकंपी ध० धर्म में स्थित क० कर्म वि० विवेक हेतु को त० उस को आ० आत्म दंड से स० समाचरते अ० अबोधि ते० वे प० प्रतिरूप मे० यह ॥ २५ ॥ पि० खलकापिंडको नि० भेदे सू० शूल से के० कोई प० म्लेच्छ पु० पुरुष इ० यह अ० तुम्बि वा कु० लडका स० वह लि० लेपावे पा० प्राणी व० वधसे अ० वध से

तमुदयं साहयइ ताइ णाइ ॥ २४ ॥ अहिंसयं सव्वपयाणुकंपी । धम्मेठ्ठियं कम्मविवेगहेउं ॥ तमायदंडेहिं समायरंता । अबोहीए ते पडिरूवमेयं ॥ २५ ॥ पिन्नागपिंडीमवि विद्धु सूले । केइ पणजा पुरिसे इमेत्ति ॥ अलाउयं वावि कुमारएत्ति । स लि-

और सर्व वस्तु को जानते हुवे अन्य को भी इस प्रकार का लाभ देते हैं ॥ २४ ॥ देव के किये हुवे समवसरणादि का परिभोग करनेवाले को कर्मबंध क्यों न होवे ऐसी गोशाला की शंका का निवारण करने के लिये आर्द्रकुमार कहते हैं. श्री महावीर देव किसी जीवों की हिंसा नहीं करते हुवे समवसरणादिक का परिभोग करते हैं. उन को उन वस्तुओं की साथ किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है. इसलिये उन को कर्म नहीं लग सकते हैं. तथापि सर्व जीवों की रक्षा करने वाले, धर्म में स्थित, और कर्मोंका क्षय करने वाले श्री महावीर देव को तेरे जैसे आत्मदंड आचरने वाले वणिक का दृष्टांत देते हैं इसलिये वे अज्ञानी प्रतिरूप हैं अर्थात् अपने बोधबीज का नाश करते हैं ॥ २५ ॥ इस तरह गोशालक के वचनों

॥ २२ ॥ आ० आरंभ प० परिग्रह अ० नहीं छोड करके नि० बंधाये हुवे आ० आत्मदंडी उ० उनको से० यह उ० लाभ व० कहा च० चारगतिका अ० अन्त नहीं करनेवाला दु० दुःख दाता॥२३॥ ण० नहीं ए० एकान्त ण० नहीं अ० आत्यन्तिक उ० उदय व० कहते हैं ते० वे दो० दो गु० गुणोदय से० वे उ० लाभ सा० सादि अनंत प० प्राप्त

वन्ना । अणारिया पेमरसेसु गिद्धे ॥ २२ ॥ आरंभगं चेव परिग्गहं च । अविउस्सिया णिस्सिय आयदंडा ॥ तेसिं च से उदए जं वयासी । चउरंतणंताय दुहायणेह ॥२३॥ णेगंत णच्चंतिय उदएवं । वयंति ते दोवि गुणोदयंमि ॥ से उदएसाति मणंतपत्ते ।

वणिक धन की गवेषणा करने वाले, और मैथुन में आसक्त होते हैं तथा भोजन के लिये इधर उधर परिभ्रमण करते हैं. इसलिये हम उन को कामभोग में आसक्त, अनार्य तथा प्रेम रस में मूर्च्छित कहते हैं परंतु भगवन्त ऐसे नहीं हैं ॥ २२ ॥ आरंभ परिग्रह का त्याग नहीं करने वाले और आत्मा को दंडने वाले वणिक लाभ के अर्थी हैं, ऐसा तू कहता है. परंतु वह लाभ उन को चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण कराने का कारण भूत, और दुःख का देने वाला है ॥ २३ ॥ हे गोशालक! उस को वह लाभ एकान्तिक (लाभ की इच्छा करते अलाभ होवे) व आत्यंतिक (सदा काल लाभ न होवे) नहीं है. व्यापारी लोगों भी व्यापार में लाभ व हानि दोनो मानते हैं. तो ऐसा लाभ से क्या फायदा. भगवन्त का केवल ज्ञान की प्राप्तिरूप लाभ सादि अनंत है. ऐसा लाभवाले श्री श्रमण भगवन्त अन्य जीवों की रक्षा करते हुवे

भार्थी स०श्रमण त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २० ॥ स० समरंभ करते हैं व० वणिक भू० जीवों का समुह प० परिग्रह म० ममत्ववान ते० वे णा० ज्ञाति संयोग को अ० नहीं छोडकर आ० लाभके हे० हेतु को प० करता है सं०संग ॥ २१ ॥ वि०वित्तकी ग०गवेषणा करनेवाला मे०मैथुन में सं०आसक्त ते०वे भो० भोजनार्थ व० वणिक व०परिभ्रमण करते हैं व०इंम ,का० काम में अ० आसक्त अ०अनार्य पे० प्रेमरस में गि० गृद्ध

वुत्ता । तस्सोवयट्ठी समणे त्ति बेमि ॥ २० ॥ समारभंते वणिया भूयगामं । परिग्गहं चेव ममायमाणा ॥ ते णातिसंजोगमविप्पहाय । आयस्स हेउं पगरंति संगं ॥ २१ ॥ वित्तेसिणो मेहुणसंपगाढा । ते भोयणट्ठा वणिया वयंति ॥ वयंतु कामेसु अज्झोव-

वह नहीं घट सकती है. क्यों कि सावद्यानुष्ठान रहित श्री महावीर भगवन्त नविन कर्म नहीं करते हैं परंतु पुरातन कर्म का क्षय करते हैं. और दुर्मति का स्वयं त्याग कर के अन्य को भी ऐसा उपदेश देते हैं. कि दुर्मति का त्याग करने से मोक्ष प्राप्ति होती है. ऐसे मोक्षके लाभार्थी बन करके भगवान महावीर स्वामी विचरते हैं ऐसा मैं कहता हूं ॥ २० ॥ और भी वणिक जीवों के समुह का आरंभ और परिग्रह में ममत्व करता है. वह वणिक ज्ञाति स्वजनादि का संयोग का त्याग किये विना ही अन्य की साथ संबंध करता है. परंतु भगवन्त तो छ काय के रक्षपाल, निष्परिग्रही, ज्ञाति स्वजन का त्याग कर के अप्रतिबंधपने धर्म काही लाभ गवेषते देशना देते हैं. इसलिये वणिक की उपमा सर्वदेशीय नहीं है. ॥ २१ ॥

हेतु को प० करता है स० संग त० तैसी ऊ० उपमा स० श्रमण ना० ज्ञात पुत्र इ० ऐसी मे० मेरी हो० है म० मति वि० तर्क ॥ १९ ॥ न० नविन न० नहीं कु० करे वि० क्षयकरे पु० पहिले के वि० त्यजकर अ० दुर्मति ता० रक्षक आ० कहा प० मोक्षगामी बं० मोक्ष व० व्रत बु० जानकर त० उनका उ० ला-

संकमाणा ण उवेति तत्थ ॥ १८ ॥ पन्नं जहा वणिए उदयट्ठी । आयस्स हेउं पगरेति संगं ॥ तऊवमे, समणे नायपुत्ते । इच्चेवमे होति मती वियक्को ॥ १९ ॥ नवं न कुज्जा विहुणे पुराणं । विच्चा मइं ताइयमाह एवं ॥ पन्नात्तया बंभवतित्ति-

में नहीं विचरते थे जिस का यह कारण है कि वे बहुत कर्मी जीवों धर्ममूर्ति भगवन्त को देख द्वेषी बन उन का दर्शन से ही कर्मबन्ध करे, ऐसी शंका से भगवन्त सदैव अलग रहते हैं ॥ १८ ॥ गोशालक कहता है कि भो आर्द्रकुमार ! जैसे वणिक लाभ का अर्थी बनकर के बहुत द्रव्य एकत्रित करता है, और लाभ के लिये दूसरे महाजन का संग करता है, वैसे ही तुम्हारा तीर्थंकर श्रमण ज्ञातपुत्र हैं ऐसी मेरी कल्पना है ॥ १९ ॥ उक्त प्रकार की वणिक की उपमा सुनकर आर्द्रकुमार कहते हैं कि अहो गोशालक तैने जो उपमा दी है वह एकदेशीय है या सर्वदेशीय है. यदि एकदेशीय उपमा होवे तो उस से हम को कुच्छ भी अलाभ नहीं हैं. क्यों कि जैसे वणिक जहां २ लाभ देखता है वहां जाता है; वैसे ही भगवन्त जहां २ उपकार देखते हैं वहां २ विचरते हैं. यदि उस उपमा को तूं सर्वदेशीय कहता है तो

प० प्रश्न न० नहीं स० अपना कार्यकेलिये आ० आर्य ॥१७॥ गं० गये हुवे त० तहां अ० अथवा अ० नहीं गये हुवे को वि० कहे स० सम्यक् आ० सर्वज्ञ अ० अनार्य दं० दर्शन से प० भ्रष्ट इ० ऐसी सं० शंका करते ण० नहीं उ० जाते हैं त० तहां ॥ १८ ॥ प० पण्य ज० जैसे व० वणिक उ० लाभार्थी आ० लाभ का हे०

गरेज्जा पसिणं न वात्ति । सकाम किच्चंणिह आरियाणं ॥ १७ ॥ गंता च तत्था अदुवा अगंता । वियागरेज्जा समियासुपन्ने ॥ अणारिया दंसणाओ परित्ता । इति

नहीं करता है ॥ १६ ॥ ऐसा गोशाला का कथन सुनकर आर्द्रकुमार कहते हैं कि अहो गोशालक ! उसी पुरुष को डर होता है कि जो विना विचार से बालक की मुवाफीक कामकृत्य का करने वाला अज्ञानी होवे. परंतु महावीर प्रभु तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आगम विहारी हैं. वे किसी राजादिक की प्रेरणा से धर्मोपदेश नहीं करते हैं. वैसे ही किसी का भय से वे चूप नहीं रहते हैं मात्र तीर्थंकर नाम कर्म कि जो उपार्जना की है उस की निर्जरा करने के लिये और व्यवहार में परोपकार होवे इसलिये आर्य क्षेत्र में आर्य मनुष्यों की परिषदा में निशंकपने धर्म प्रकाशते हैं ॥ १७ ॥ यदि उपकार का कारण होवे तो भगवन्त वहां जाकर अथवा गये विना ही जैसे भव्य जीवों का उपकार होवे. वैसे धर्मदेशना देवे यदि उपकार न देखे तो पास आये हुवे को भी उपदेश देवे नहीं. क्यों कि उन को रागद्वेष की संभावना नहीं है. और भी भगवन्त राजा रंकादि सब को समभाव से उपदेश देते हैं. अब भगवन्त अनार्य देश

वा० वास द० दक्ष सं० हैं व० बहुत म० मनुष्य ऊ० हीन अ० अधिक ल० तर्की अ० मंत्रवादी ॥१५॥ मे० मेधावि सि० शिक्षापाये हुवे बु० बुद्धिमान सु० सूत्र अ० अर्थ णि०निश्चय करने वाले पु०पूछते हुवे अ० साधु अ० अन्य इ० ऐसी स० शंका करता हुवा ण० नहीं उ० जाता है त० तहां ॥ १६ ॥ णो० नहीं का० काम कृत्य ण० नहीं बा० बाल कृत्य रा० राजाभियोग से कु० कुहां से भ० भय वि० कहे

ऊणातिरित्ताय लवालवाय ॥ १५ ॥ मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता । सुत्तेहिं अत्थेहिंय णिच्छयन्ना ॥ पुच्छिसुमाणे अणगार अन्ने । इति संकमाणो णं उवेति तत्थ ॥ १६ ॥ णो कामकिच्चा णय बालकिच्चा । रायाभिओगेण कुओ भएणं ॥ विया-

अहो आर्द्रकुमार ! तेरा तीर्थंकर अन्य श्रमण ब्राह्मण से डरता हुवा धर्मशालादि शून्य गृह में अथवा उद्यानादि में नहीं रहता है. क्योंकि वे श्रमण ब्राह्मण शास्त्र के जान हैं, और उन में से कोई जात्यादिक गुणों से अधिक है अथवा कोई हीन है, उन से पराभव हो जाय तो मानम्लान होवे इसलिये एकान्त स्थान छोडकर देवतादिक की परिषदा में बैठता है. और भी वे लोगों तर्क के बोलनेवाले अथवा उन की पास अन्य कोई वादी उन के सन्मुख कुच्छ भी नहीं बोलसकते हैं ऐसे रहे हुवे हैं ॥ १५ ॥ कोई सूत्र अर्थ के निश्चय करने वाले, ग्राह्यशक्ति में सामर्थ्यवन्त, तथा आचार्यादिक की पास से शीखे हुवे अनगार मुझे पूछेंगे तो मैं उत्तर नहीं देसकूंगा, ऐसी शंका करने से तेरा गुरु पूर्वोक्त स्थानों में निवास

पा० मगट म० मार्ग इ० यह कि० कहाहुवा आ० आर्य अ० अनुत्तर स० सत्पुरुषोंने अ० सरल ॥ १३ ॥ उ० ऊर्ध्व अ० नीचा ति० तिर्यक् दि० दिशामें त० त्रस जे० जो था० स्थावर पा० प्राणी भू० प्राणघात की सं० शंका से दु० दुर्गछा करते णो० नहीं ग० निन्दा करते हैं वु० संयति किं० किंचित् लो० लोक में ॥ १४ ॥ आ० शून्यागार में आ० उद्यान में स० श्रमण से भी० डरा हुवा ण० नहीं उ० वास करता है

अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू ॥ १३ ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर-
जेय पाणा ॥ भूयाहि संकाभिदुगुंछमाणा । णो गरहाति वुसिमं किंचि लोए ॥ १४ ॥
आगंतगारे आरामगारे । समणेउ भीते ण उवेति वासं । दक्खाहु संते बहवे मणुस्सा ।

करने से पुण्य नहीं है; ऐसे सब तीर्थिकों परस्पर झगडते हैं; और हम मात्र यथावस्थित तत्त्वके कथन करने वाले हैं. हम एकान्त वादी को निंदते नहीं हैं परंतु सत्यके कथन करने वाले हैं. और सत्य कहने में किसी बातका अपवाद नहीं है ॥१२॥ हम किसीके दोषों द्वेष बुद्धि से नहीं प्रगट करते हैं, परंतु हम हमारा मार्ग कहते हैं. ऐसा अनुत्तर व सरल मार्ग सत्पुरुषों का कहा हुवा है ॥ १३ ॥ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में जो कोई त्रस स्थावर जीव रहे हुवे हैं उनकी घात से निवर्तने वाले संयमी पुरुषों किसी वस्तु की निंदा नहीं करते हैं, परंतु यथातथ्य वस्तु का स्वरूप कहते हैं. यदि ऐसा कहते निंदा होती होवे तो अग्नि उष्ण है उदक शीतल है इत्यादिक बातों भी कहना नहीं ॥ १४ ॥ अथ गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक आर्द्रकुमार को कहते हैं कि

पा० अन्यदर्शनी पु० पृथक् कि०कीर्ति करते स० स्वयं २ दि० दर्शनको क०करते हैं पा० प्रगट ॥ ११ ॥ ते० वे अ० अन्योन्य की वि० निन्दा करते अ० कहते हैं स० श्रमण मा० ब्राह्मण स० स्वयं अ०है अ० अन्य के ण० नहीं है ग० निन्दा करते हैं दि०दर्शन को ण० नहीं ग० निन्दा करते हैं कि० किंचित् ॥ १२ ॥ ण० नहीं कि० किंचित् रू० रूप से अ० प्रगट करते हैं स० स्वदृष्टि म० मार्ग को क० करते हैं

करेंति पाउ ॥ ११ ॥ ते अन्नमन्नस्स विगहरमाणा । अक्खंतिओ समणा माहणाय ॥ सतोय अत्थी असतोय णत्थी । गरहामो दिट्ठिं ण गरहामो किंचि ॥ १२ ॥ ण किंचि रूवेण भिधारयामो । सदिट्ठिमग्गं तु करेमि पाउं ॥ मग्गे इमे किट्टिए आरिएहिं ।

अनाचार वचन बोलता है. अहो आर्द्रकुमार ! ऐसे वचन बोलते हुवे तुम सब अन्य दर्शनी की निन्दा करते हो, क्यों कि इस जगत में सब दर्शनियों बीज उदक का सेवन करते हुवे संसार का अन्त करने के लिये प्रवर्तते हैं; तो उन को मानना नहीं. ऐसा उन का वचन सुन कर आर्द्रकुमार बोले अहो गोशालक ! सब दर्शनी अपने २ दर्शन को प्रगट करते हैं, वैसे ही मैं मेरा दर्शनकी प्रभावना करता हूं कि सचित्त पानी और बीजादिक का परिभोग से मात्र कर्म बंध होता है, परंतु संसार का उच्छेद नहीं होता हैं. इस में निन्दा या उत्कर्ष किस बात का है ॥११॥ समस्त श्रमण ब्राह्मण एक दूसरेके धर्म को निंदते हुवे अपने पक्ष का समर्थन करते हैं, और कहते हैं कि हमारा दर्शन अंगीकार करने से पुण्य है, और अन्य का दर्शन अंगीकार

ले स० श्रमण भ० होते हैं अ० गृहस्थ स० श्रमण भ० होवे से० सेवते हैं ते० वे त० तैसे ॥ ९ ॥ जे० जो बी० बीज उ० शीतोदक भो० भोगवने वाले भि० साधु भि० भिक्षा वि० फीरते हैं जी० जीवितव्यार्थी ते० वे णा० ज्ञाति सं० संयोग को प० छोडकर का० काया के उ० उपयोगी ण० नहीं अं० अन्तकरनेवाले भ० होते हैं ॥ १० ॥ इ० इस व० वचन को तु० तुम पा० प्रगट करते पा० अन्यदर्शनी को ग० निंदता है स० सर्व को

पडिसेवमाणा समणा भवंतु ॥ अगारिणोवि समणा भवंतु । सेवंतिउ तेवि तहप्पगारं ॥ ९ ॥ जे यावि बीओदगभोत्ति भिक्खू । भिक्खं विहंजाथति जीवियट्ठी ॥ ते णाति संजोगमविप्पहाय । कायोवगाणंतकरा भवंति ॥ १० ॥ इमं वयंतं तुम पाउ कुव्वं । पावाइणो गरिहासि सव्वएव ॥ पावाइणो पुढो किट्टयंता । सयंसयं दिट्ठि

परंतु साधु नहीं कहा जाता है ॥ ८ ॥ और भी हे गोशालक ! यदि सचित्त पानी, बीजकाय व स्त्री आदि सेवनेवाले साधु होवे तो गृहस्थ भी साधु होना चाहिये, क्योंकि गृहस्थ भी ऐसा परीषह सहन करते हैं ॥ ९ ॥ जो भिक्षुक होने पर बीज उदकादिक का सेवन करे और, आजीविका चलाने के लिये भिक्षा भोगवे वे ज्ञाति आदि का संयोग छोडकर षट् काया के मर्दन करने वाले और अपनी काया को रखने वाले अनंत संसारी बनेंगे ॥ १० ॥ अब गोशालक अन्य तीर्थियों को सहायकारी बना कर

न्त वि० विचरते को अ०हमारे ध० धर्ममें त० तपस्वी को ण० नहीं अ०लगता है पा०पाप ॥ ७ ॥ शीतोदक त० तथा वी० वीजकाय को आ० आधाकर्मी आहार त० तथा इ० स्त्री ए० इनको जा० जानते हुवे प० सेवने वाले अ० गृहस्थ अ० असाधु अ० होता है ॥ ८ ॥ सि० सचित्त वी० शीतोदक इ० स्त्री प० सेवनेवा-

हायकम्मं तह इत्थियाओ ॥ एगंतचारिस्सिह अम्हधम्मे । तवस्सिणो णाभिसमेति पावं ॥ ७ ॥ सीतोदगंवा तह बीयकायं । आहायकम्मं तह इत्थियाओ॥ एयाइं जाणं पडिसेवमाणा । अगारिणो अस्समणा भवंति ॥ ८ ॥ सियाय बीओदग इत्थियाओ ।

गोशाला कहता है कि भो आर्द्रकुमार ! तुम ने कहा कि अन्य के हित को उद्देश कर यदि धर्म कहने में आवे तो दोष नहीं लगता है, और परिवार का भी दोष नहीं लगता है. तो अब मैं कहता हूं सो सुनो. हमारे सिद्धान्त में जो कहा है उस में भी दोष नहीं हैं. वे कहते हैं कि सचित्त पानी का सेवन करो, बीजकाया का उपभोग करो, आधाकर्मी आहार ग्रहण करो, स्त्रियों को भोगवो, अपना व परका उपकार का कारण भूत तथा धर्म का आधार भूत शरीर के लिये जो कुच्छ पाप कर्म किया जावे तो उस में दोष नहीं है. और भी हमारा धर्म में प्रवर्तने वाले किसी तपस्वी को पाप नहीं लगता है. ॥ ७ ॥ अब आर्द्रकुमार कहते हैं कि अहो गोशालक ! सचित्त पानी पीना, बीज काया का भक्षण करना आधाकर्मी आहारका लेना, और स्त्रियादिक का प्रसंग करना, इन सब बातोंको सेवने वाला गृहस्थ कहा जाता है

है दो० दोप खं० क्षमावन्त दं० दमनेन्द्रिय जि० जितेन्द्रिय को भा० भाषा के दो० दोपको वि० वर्जते को गु० गुणको भा० भाषा के णि० सेवते को ॥ ५ ॥ म० महाव्रत पं० पंच अ० अनुव्रत त० तथा पं० पंच आश्रव सं० संवर वि० विरति को सा० संपूर्ण प० प्रज्ञ ल० कर्म क्षय करने वाले स० श्रमण त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ६ ॥ सी० शीतोदक से० सेवो वी० बीज काय आ० आधा कर्मी आहार इ० स्त्री ए० एका-

णत्थि दोसो । खंतस्स दंतस्स जितिंदियस्स ॥ भासाय दोसेय विवज्जगस्स । गुणेय भासाय णिसेवगस्स ॥५॥ महव्वए पंचअणुव्वए य । तहेव पंचासव संवरेय ॥ विरतिं इह सामणियंमिपन्ने । लवावसक्की समणे त्ति बेमि ॥ ६ ॥ सीओदगं सेवउ बीयकायं । आ-

भावार्थ

वाले को किसी प्रकार का दोप नहीं हैं, ऐसा भाव बताते हैं. समस्त लोक का उद्धार करने के लिये भगवन्त देशना करते हैं इस से उन को किसी प्रकार का दोप नहीं है. ऐसे क्षमावन्त, दमितेन्द्रिय, भाषा के दोषों को टालने वाले और भाषा के गुणों का सेवन करने वाले भगवन्त बोलते हुवे भी मौनव्रती है. ॥ ५ ॥ महावीर भगवन्त कैसा धर्म प्ररूपते हैं. सो बताते हैं श्री महावीर देव साधु के पंच महाव्रत तथा श्रावक के पंच अनुव्रत, पंच आश्रव तथा पंच संवर का उपदेश करते हैं. फीर उन को विरति का उपदेश करते हैं इस तरह संपूर्ण संयम में मूलगुण व उत्तरगुण को कहने वाले व कर्म के नाश करने वाले प्रज्ञावंत साधु श्रमण कहे जाते हैं ऐसा मैं कहता हूं ॥ ६ ॥ आर्द्रकुमार का ऐसा वचन सुनकर फीर

लिये पु० पहिले इ० इस में अ० अनागत ए० एकान्त प० धारण करते हैं ॥ ३ ॥ स० जानकर लो०
लोक को त० त्रस था० स्थावर का खे० क्षेम करने वाला स० श्रमण मा० ब्राह्मण आ० कहता हुवा स०
सहस्रमध्यमें ए० एकान्त सा० साधता है त० इस लिये ॥ ४ ॥ ध० धर्म क० कहते हुवे त० उन को ण० नहीं

एगंतमेवं पडिसंधयाति ॥ ३ ॥ समिच्च लोगं तसथावराणं। खेमंकरे समणे माहणेवा ॥
आइक्खमाणो वि सहस्समज्झे । एगंतयं सारयाति तहच्चे ॥ ४ ॥ धम्मं कहं तस्सओ

ही ऐसा करना था. परंतु धूप और छाया जैसा दोनों मार्ग का आचरण परस्पर मिलता नहीं है. यदि मौन में ही धर्म है तो उपदेश क्यों देते हैं ? यदि धर्मदेशना में ही धर्म है तो पहिले मौन व्रत क्यों अंगीकार किया था. ? इसलिये तेरा गुरु विरुद्धाचारी दीखता है. ऐसा गोशाला का वचन सुनकर आर्द्रकुमार उत्तर देते हैं. श्री महावीर देवने पहिले जो मौनव्रत और एकचर्या आदरी थी सो घनघातिक कर्मों का क्षय के लिये थी, और अबी जो धर्मदेशना देते हैं सो अघातियां कर्मों का क्षय करने के लिये है. भूत भविष्य और वर्तमान काल में रागद्वेष का अभाव से एकान्तपना ही है. इसलिये पहिले के और पीछे के आचार में कुच्छ भी भिन्नता नहीं है. ॥ ३ ॥ त्रस स्थावर प्राणियों के क्षेम के करने वाले श्रमण माहण ऐसे जो महावीर देव लोक को सम्यक्प्रकार से जानकर हजारों मनुष्यों के बीच में रागद्वेष रहित धर्म कहते हुवे पहिले जैसे एकान्तपना साधते हैं. अर्थात् उनकी पूर्व की अवस्था में कुच्छ भी फेर नहीं है. बहुत लोकों का परिवार होने पर रागद्वेष के अभाव से एकाकी है ॥ ४ ॥ रागद्वेष विना धर्म कहने-

साधु मध्य में आ० कहता हुवा ब० बहु ज० मनुष्य अ० अर्थ न० नहीं सं० सांधते है अ० पीछे स पु० पहिला ॥ २ ॥ ए० एकान्त अथवा इ० इस में दो० दो व० वर्ग म० मानते को न० नहीं स० योग्य है ज० इस

गणओ भिक्खुमज्झे ॥ आइक्खमाणो बहुजन्नमत्थं न संधयाति अवरेण पुव्वं ॥ २ ॥
एगंतमेवं अदुवा वि इण्हिं । दोवग्गमन्नं न समेति जम्हा ॥ पुव्विं च इण्हिं च अणागतंवा ।

प्रथम मेरी साथ अन्त, प्रान्त आहारी बन शून्य देवकुलादिक स्थानकों में रहता था. अब ऐसा उग्र आचार पालने को असमर्थ होने से मेरा संसर्ग छोडकर बहुत शिष्योंका समुह कर के बैठा हुवा है. और भी बहुत देव मनुष्य की परिषदामें साधु समुदायके बीच बैठा हुवा अनेक मनुष्यों को हितकारक धर्म की प्ररूपणा करता है. परंतु उनका पूर्वापर का आचार नहीं मिलता है. यदि सिंहासन, भामंडल, अशोक वृक्षादि मोक्ष के अंग होवे तो पहिले जो उग्र क्रिया की वह तो निःकेवल थी. यदि वह क्रिया निर्जरा के कारणभूत थी तो अबी की क्रिया पाखण्ड रूप है. और भी पहिले मौन अच्छा जानकर अंगीकार किया था तो अब धर्म देशना देनेका क्या काम है? इसलिये उनका पहिलेका और अबीका आचार मिलता नहीं है. ॥ २ ॥ हे आर्द्रकुमार! एकान्त विचरना ही अच्छा है ऐसा जान कर यदि तेरे गुरुने आचरण किया था तो सदैव उस को ही अंगीकार करना था अथवा साधु का परिवार रखने में मान है तो पहिले

देवलोक में गया और वहां से यहां आर्द्रकुमार पन उत्पन्न हुवा हूं. अब मुझे संयमधर्म का स्वीकार करना उचित है ऐसा विचारकर आर्यदेश में आकर स्वतः दीक्षा अंगीकार कर महावीर स्वामी के दर्शन को जाते थे. मार्ग में गोशालक आदि मतान्तरियों से जो विवाद हुवा सो आगे बताते हैं.

पु० पहिले क० किया हुवा अ० आर्द्रकुमार इ० यह सु० सुन मे० एकान्तचारी स० श्रमण पु० पहिले आ० थे से० वह भि० साधुको उ० इकठेकर अ० अनेक आ० कहते हैं पु०पृथक् वि० विस्तार से ॥ १ ॥ सा० आजीविका प० स्थापन की अ० अस्थिरने स० सभा में ग० समुदाय भि०

पुराकडं अद्द इमं सुणेह । मेगंतयारी समणे पुरासी ॥ से भिक्खुणो उवणेत्ता अणेगे । आइक्खतिण्हिं पुढो वित्थिरेणं ॥ १ ॥ साजीविया पट्ठविता थिरेणं । सभागओ

आर्द्रकुमार को जाते देख गोशालाने उसे बोलाकर कहा भो आर्द्रकुमार! तेरे तीर्थंकरने पहिले जो २ किया है, सो मैं कहता हूं. उसे तू सून. श्री श्रमण भगवंत महावीर पहिले एकल विहारी थे, और अनेक प्रकार के उग्र तप करते थे. अब तपादि आचरण नहीं कररुकने से मेरा परित्याग कर अनेक शिष्यों को एकत्रित कर तेरे जैसे मुग्ध जनों को ठगने के लिये पृथक् २ धर्म विस्तार पूर्वक कहते हैं ॥१॥ अहो आर्द्रकुमार! तेरे गुरुने उपदेश देनेके बहानेसे आजीविका करनी शरू की है. क्यों कि एकाकी विचरनेसे लोक पराभव करते हैं, ऐसा जानकर बहुत परिवार किया; और भी तेरा गुरु अस्थिर है, अर्थात

आर्द्रकीयाख्यं द्वाविंशतितम मध्ययनम् ।

आर्द्रकुमार की कथा—ऐसा सुना जाता है कि आर्द्रकपुर नगरके आर्द्रक राजा के पुत्र आर्द्रकुमार थे. एकदा आर्द्रकराजा राजग्रही नगरी में श्रेणिक राजा की पास कुच्छ उत्तम वस्तु किसी के साथ भेजने लगे; तब आर्द्रकुमारने श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार की साथ स्नेह करने के लिये उसी पुरुष की साथ बहुमूल्य पदार्थ भेजें. उस पुरुषने राजगृही नगरी में जाकर श्रेणिक राजा को तथा अभयकुमार को अलग २ वस्तु दे दी. जब अभयकुमारने आर्द्रकुमार का वृतान्त पूछा तब उस ने आर्द्रकुमार के गुणानुवाद के साथ सब हकीकत कह सुनाइ. उनकी बातचीतसे मालूम हुवा कि यह आर्द्रकुमार भव्य प्राणी दीखते हैं. इसलिये उनको धर्मका स्वरूप समजाने के लिये उसी पुरुष की साथ पीछे धर्मोपकरण मुखपति आदि भेजे. उन उपकरणों को लेकर आर्द्रकुमार को दिये. आर्द्रकुमार उसे लेकर अरिसा भुवन में गये और धर्म के उपकरण उनोंने देखे. देखकर आश्चर्य हुवा. मुखवस्त्रिका को शरीर के सब विभागो में बांधी परंतु किसी स्थानपे शोभित हुइ नहीं. जब उसे मुखपर बांधी और अरिसा में देखते विचार हुवा कि ऐसा रूप मैंने पूर्वभव में देखा है. ऐसा विचार करते उन को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा. और उस से उनों ने अपना पूर्वभव जाना. कि मैं वसंतपुर नामक नगर का गृहस्थ था और मैंने मेरी स्त्री साथ धर्मघोषअनगार की पास दीक्षा लीथी. मेरी स्त्री को देख मुझे राग उत्पन्न हुवा. उस की आलोचना किये विना संथारा से मृत्युपा पाकर

अ० है ण० नहीं है पु० फिर ण० नहीं वि० बोले मे० पण्डित सं० शान्ति म० मार्ग को बु० कहे ॥ ३२ ॥ इ० इन ठा० स्थानों से जि० जिन से दि० उपदेशाये सं० संयति धा० धारण करे अ० आत्मा को आ० मोक्ष प्राप्त तक प० प्रवर्ते त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ३३ ॥ * * *

ज्ज मेहावी । संति मग्गं च बुहए ॥ ३२ ॥ इच्चेएहिं ठाणेहिं । जिणदिट्ठेहिं संजए ॥ धारयंतेउ अप्पाणं । आमोक्खाए परिवएज्जासिच्चि बेमि ॥ ३३ ॥ इति अणायार णामं एगवीसममज्झयणं सम्मत्तं ॥ २१ ॥ * * *

ऐसा कहे ॥ ३२ ॥ पूर्वोक्त जिनोपदिष्ट स्थानों में संयति साधु जहां लग मोक्ष होवे वहां लक्ष आत्मा को रखे. ऐसा मैं श्री तीर्थंकर देव के कथनानुसार कहता हूं. यह अनाचारश्रुत नामक इक्कीसवा अध्ययन पूर्ण हुवा ॥ ३३ ॥ इस में आचार की प्ररूपणा व अनाचार का परिहार कहा ऐसा त्याग आर्द्रकुमार जैसे महाभाग्यवान पुरुष से ही किया जासकता है इसलिये आर्द्रकुमार का गोशाला की साथ जो वादविवाद हुवा सो बतलाते हैं ॥ २१ ॥ *

वे० वैर तं० उस को न० नहीं जा० जानते हैं स० श्रमण बा० बाल पण्डित ॥ २९ ॥ अ० सर्व अ० अक्षय स० सर्व दु० दुःखी पु० फिर व० वध योग्य पा० प्राणी न० नहीं व० वध्य वा० वचन न० नहीं नी० नीकाले ॥ ३० ॥ दी० दिखता है स० समाचारी भि० भिक्षा वृत्ति से सा० साधु जी० जीवन वाला मि० मिथ्या जी० जीवता है दि० दृष्टि न० नहीं धा० धारण करे ॥ ३१ ॥ द० दक्षिणा प० प्राप्त

विज्जइ ॥ जं वेरं तं न जाणंति । समणा बालपंडिया ॥ २९ ॥ असेसं अक्खयंवावि । सव्वदुक्खेतिवा पुणो ॥ वज्झा पाणा न वज्झंति । इति वायं न नीसरे ॥ ३० ॥ दीसंति समियाचारा । भिक्खुणा साहुजीविणो ॥ एए मिच्छोव जीवंति । इति दिट्ठिं न धारए ॥ ३१ ॥ दक्खिणाए पडिलंभो । अत्थिवा णत्थिवा पुणो ॥ ण वियागरे-

जगत में समस्त वस्तु शाश्वत है अथवा सर्व जगत दुःखात्मक है ऐसा बोले नहीं. अमुक प्राणी वध योग्य है और अमुक पुरुष अवध्य है ऐसी भाषा बोले नहीं ॥ ३० ॥ इस जगत में कितनेक चारित्रिय साधुओं सदाचार पालने वाले हैं और भिक्षा वृत्ति से ही आजीविका करते हैं ऐसे साधु को देखकर ये साधुओं मिथ्यात्व से उपजीविका करने वाले हैं ऐसी दृष्टि रखे नहीं ॥ ३१ ॥ गृहस्थ की दान देने की प्रवृत्ति देखकर साधु को उस में गुण या दोष कुच्छ भी कहना नहीं, परंतु मोक्ष मार्ग की वृद्धि होवे

सिद्धि अ० असिद्धि ण० नहीं स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है सि० सिद्धि अ० असिद्धि स० संज्ञा नि० धारण करे ॥२५॥ ण० नहीं है सि० सिद्धि नि० निज स्थान ण० नहीं स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है सि० सिद्धि णि० निज स्थान स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २६ ॥ ण० नहीं है सा० साधु अ० असाधु ण० नहीं स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है सा० साधु अ० असाधु सं० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २७ ॥ ण० नहीं है क० कल्याण पा० पाप ण० नहीं स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है क० कल्याण पा० पाप स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २८ ॥ क० कल्याण में पा० पाप में व० व्यवहार ण० नहीं वि० है जं० जो

सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी असिद्धीवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ २५ ॥ णत्थि सिद्धी नियंठाणं । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी नियंठाणं । एवं सन्नं निवेसए ॥ २६ ॥ णत्थि साहू असाहूवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि साहू असाहूवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ २७ ॥ णत्थि कल्लाण पावेवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कल्लाण पावेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ २८ ॥ कल्लाणे पावए वावि । ववहारो ण

॥ २७-२८ ॥ अब एकान्त मार्ग का दूषण बतलाते हैं. यह पुरुष एकान्त कल्याणवन्त है या एकान्त पापकारी है ऐसा व्यवहार नहीं हो सकता है क्यों कि संसार में एकान्त कुच्छ भी नहीं है. एकान्त पक्ष का आश्रय लेने से जो पाप कर्म बंधते हैं उनको शाक्यादि साधु ब्राह्मण नहीं जान सकते हैं ॥ २९ ॥ इस

मा० माया लो० लोभ स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २१ ॥ ण० नहीं है पे० राग दो० द्वेष ण० नहीं स०
संज्ञा नि० धारण करे अ० है पे० राग दो० द्वेष स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २२ ॥ ण० नहीं है चा०
चतुर्गतिक सं० संसार ण० नहीं स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है चा० चतुर्गति सं० संसार
स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २३ ॥ ण० नहीं है दे० देव दे० देवी ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि०
धारण करे अ० है दे० देव दे० देवी ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २४ ॥ ण० नहीं है सि०

लोहेवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि मायाव लोहेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ २१ ॥
णत्थि पेज्जेव दोसेवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि पेज्जेव दोसेवा । एवं सन्नं निवे-
सए ॥ २२ ॥ णत्थि चाउरंते संसारे । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि चाउरंते
संसारे । एवं सन्नं निवेसए ॥ २३ ॥ णत्थि देवोव देवीवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥
अत्थि देवोव देवीवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ २४ ॥ णत्थि सिद्धी असिद्धीवा । णेवं

परंतु रागद्वेष है ऐसी संज्ञा करे ॥ २२ ॥ चतुर्गतिक संसार नहीं है ऐसा न कहे परंतु चतुर्गतिक संसार
है ऐसा कहे ॥ २३ ॥ देव, देवी सिद्धि और असिद्धि नहीं हैं ऐसा न कहे परंतु देव, देवी, सिद्धि, असिद्धि
हैं ऐसा कहे ॥ २४-२५ ॥ सिद्धि का निजस्थान नहीं है ऐसा न कहे परंतु निजस्थान है ऐसा कहे ॥२६॥
साधु, असाधु, कल्याण, पाप नहीं है ऐसा न कहे परंतु साधु, असाधु कल्याण, व पाप है ऐसा कहे

धारण करे अ० है आ० आश्रव सं० संवर स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १७ ॥ ण० नहीं है वे० वेदना नि० निर्जरा ण० नहीं स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है वे० वेदना णि० निर्जरा ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १८ ॥ ण० नहीं है कि० क्रिया अ० आक्रिया ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है कि० क्रिया अ० अक्रिया स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १९ ॥ ण० नहीं है को० क्रोध मा० मान ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है को० क्रोध मा० मान स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २० ण० नहीं है मा० माया लो० लोभ ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है

संवरेवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि आसवे संवरेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १७ ॥ णत्थि वेयणा निज्जरावा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि वेयणा णिज्जरावा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १८ ॥ णत्थि किरिया अकिरियावा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि किरिया अकिरियावा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १९ ॥ णत्थि कोहेव माणेवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कोहेव माणेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ २० ॥ णत्थि मायाव

नहीं परंतु आश्रव व संवर है ऐसा कहे ॥ १७ ॥ कर्म का अनुभव रूप वेदना तथा उन की निर्जरा नहीं है ऐसा कहे नहीं परंतु वेदना व निर्जरा है ऐसी संज्ञा करे ॥ १८ ॥ क्रिया अक्रिया नहीं है ऐसा न कहे परंतु क्रिया अक्रिया है ऐसा कहे ॥ १९ ॥ क्रोध मान माया और लोभ नहीं है ऐसा कहे नहीं परंतु क्रोध मान, माया और लोभ है ऐसा कहे ॥ २०-२१ ॥ पुत्र कलत्रादिकमें राग व अन्यमें द्वेष नहीं है ऐसाभी कहे नहीं

णा करे ॥ १३ ॥ ण० नहीं है ध० धर्म अ० अधर्म ण० नहीं ए० ऐसी सं० संज्ञा नि० धारण करे अ० ह ध० धर्म अ० अधर्म स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १४ ॥ ण० नहीं है बं० बंध मो०मोक्ष ण०नहीं स०संज्ञा नि० धारण करे अ० है बं० बंध मो० मोक्ष ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १५ ॥ ण० नहीं है पु० पुन्य पा० पाप ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० हैं पु० पुन्य पा० पाप ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १६ ॥ ण० नहीं है आ० आश्रव सं० संवर ण० नहीं स० संज्ञा नि०

वेसए ॥ १३ ॥ णत्थि धम्मे अधम्मे वा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि धम्मे अधम्मे वा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १४ ॥ णत्थि बंधेव मोक्खे वा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि बंधेव मोक्खेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १५ ॥ णत्थि पुण्णेव पावेवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि पुण्णेव पावेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १६ ॥ नत्थि आसवे

संज्ञा करना नहीं, परंतु जीव व अजीव है ऐसा कहना ॥ १३ ॥ श्रुत चारित्र रूप धर्म व मिथ्यात्वादि रूप अधर्म नहीं है ऐसी संज्ञा करना नहीं, परंतु धर्म अधर्म है ऐसा कहना. ॥ १४ ॥ प्रकृत्यादि बंध व मोक्ष नहीं है ऐसा न कहे परंतु बंध व मोक्ष है ऐसा कहे ॥ १५ ॥ शुभ प्रकृति लक्षण वाला पुण्य व अशुभ प्रकृति वाला पाप नहीं है ऐसा न कहे; परंतु पुण्य पाप है ऐसा कहे ॥ १६ ॥ प्राणातिपातादि रूप कर्म ग्रहण करने का कारण भूत आश्रव तथा आते कर्मों को रोकने वाला संवर नहीं है ऐसा नहीं कहे

पूर्ववत् ॥ ११ ॥ ण० नहीं है लो० लोक अ०अलोक ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि०धारण करे अ० है लो० लोक अ० अलोक ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १२ ॥ ण० नहीं है जी० जीव अ० अजीव ण० नहीं स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है जी० जीव अ० अजीव ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धार-

॥ १० ॥ ए० । व० । ए० । अणा० ॥ ११ ॥ णत्थि लोए अलोएवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि लोए अलोएवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १२ ॥ णत्थि जीवा अजीवा वा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि जीवा अजीवा वा । एवं सन्नं नि-

अन्य दर्शनी आश्री बोलने का अनाचार कहते हैं. उदारिक, वैक्रेय, आहारिक, तैजस और कार्माण इन पांचो शरीर को एक ही मानना नहीं अथवा भिन्न भी मानना नहीं. और भी सर्व पदार्थ में अन्य पदार्थ का वीर्य है अथवा वीर्य नहीं है ऐसा भी बोले नहीं ॥ १० ॥ ऐसे दोनों स्थानक से व्यवहार नहीं होता है और इस में अनाचार होता है. ॥ ११ ॥ अब सब शून्यवादी के मत का निराकरण करते हैं. पंचास्ति काय रूप लोक व आकाशास्ति काय रूप अलोक नहीं है ऐसा बोलना नहीं, परंतु पंचास्तिकाय रूप लोक व आकाशास्ति काय रूप अलोक है ऐसी संज्ञा करे ॥ १२ ॥ उपयोग लक्षण वाला सांसारिक व मुक्ति गत जीव नहीं है, वैसे ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गलात्मक अजीव भी नहीं हैं, ऐसी

॥ ६ ॥ पूर्ववत् ॥ ७ ॥ अ० आधाकर्मी आहार भुं० भोगते हैं अ० अन्योन्य स० कर्म से उ० उपलिप्त जा० जाने अ० अनुपलिप्त वा० अथवा पु० फिर ॥ ८ ॥ पूर्ववत् ॥ ९ ॥ जं० जो इ० यह उ० औदारिक शरीर क० कार्मण त० तथा ए० तैजस् स० सर्वत्र वी० वीर्य अ० है ण० नहीं है स० सर्वत्र वीर्य ॥१०॥

पाणा । अदुवा संति महालया ॥ सरिसंतोहिंति वेरंति । असरिसंतीय णो वदे ॥ ६ ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं । ववहारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं । अणायारं तु जाणए ॥ ७ ॥ अहाकम्माणि भुंजंति । अण्णमण्णे सकम्मुणा ॥ उवलित्ते ति जाणिजा । अणुवलित्तेति वा पुणो ॥ ८ ॥ ए० । व० । ए० । अ० ॥ ९ ॥ जमिदं उरालमाहारं । कम्मगं च तहेवय ॥ सव्वत्थ वीरियं अत्थि । णत्थि सव्वत्थ वीरियं

वैर होता है, या एक सरिखा वैर नहीं होता है, ऐसा एकान्त वचन बोले नहीं ॥ ६ ॥ इन दोनों एकान्त स्थानक से व्यवहार नहीं होता है और इन दोनों स्थानक से अनाचार होता है ॥ ७ ॥ जो कोई साधु आधाकर्मी आहार भोगवे तो उन को पाप से लेपाये हुवे भी कहना नहीं; वैसे ही पाप से नहीं लेपाये हुवे भी कहना नहीं: क्यों कि आधाकर्मी आहार को भी कारणसे या अजानपने भोगवने से कर्म नहीं बंधाते हैं, और शुद्ध आहार को भी गृद्धपने जीमनेसे कर्म बंधाते हैं. इसलिये ऐसा एकान्तवचन बोले नहीं ॥८॥ इन दोनों स्थानक से व्यवहार नहीं होता है वैसेही इन दोनों स्थानकों से अनाचार जाना जाता है ॥ ९ ॥

स० विच्छेद होंगे स० सर्वज्ञ स० सर्व पा० प्राणी अ० सरिखे गं० ग्रंथ (कर्म) सहित भ० होंगे सा० शाश्वत णो० नहीं व० बोले ॥ ४ ॥ ए० इन दो० दो ठा० स्थान से व० व्यवहार ण० नहीं वि० है ए० इन दो० दो ठा० स्थान से अ० अनाचार को जा० जाने ॥ ५ ॥ जे० जो के० कोई खु० सुक्ष्म पा० प्राणी अ० अथवा म० वडी काया वाले स० सरिखा ते० उन से वे० वैर अ० नहीं सरिखा णो० नहीं व० बोले

हिं । अणायारं तु जाणए ॥ ३ ॥ समुच्छिहिंति सत्थारो । सव्वे पाणा अणेलिसा ॥ गंठिगात्रा भविस्संति । सासयंतिव णो वए ॥ ४ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं । ववहारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं । अणायारं तु जाणए ॥ ५ ॥ जे केइ खुद्दगा

नित्य वस्तु में लोक व्यवहार नहीं घट सकता है. इसलिये इन दोनो स्थानकों को अनाचार जानना ॥ ३ ॥ सब भव्य जीवों मोक्ष में चले जायेंगे जिससे भव्य शून्य लोक होजायगा, सर्व प्राणी विलक्षण स्वभाव वाले हैं, सब जीवों कर्म रूप ग्रंथि सहित रहेगे तथा तीर्थंकर सर्वज्ञ सदा काल शाश्वतें रहेंगे ऐसे एकान्त वचन बोले नहीं ॥ ४ ॥ इन दोनों स्थानकों से व्यवहार नहीं होता है और इन दोनों स्थानकों से अनाचार जाना जाता है. ॥ ५ ॥ इस संसार में जो कोई सूक्ष्म या वडे जंतु रहे हुने हैं उन को मारने से एक सरिखा

॥ अनाचार श्रुताख्यमेकविंशतितम मध्ययनम् ॥

आ० ग्रहण कर के बं० ब्रह्मचर्य आ० बुद्धिमान इ० इस व० वचन को अ० इस ध० धर्म में अ० अनाचार न० नहीं आ० आचरे क० कदापि ॥ १ ॥ अ० अनादि प० जानकर अ० अनंत पु० फिर सा० शाश्वत अ० अशाश्वत इ० ऐसी दि० दृष्टि न० नहीं धा० धारण करे ॥ २ ॥ ए० इन दो० दो ठा० स्थान से व० व्यवहार ण० नहीं वि० है ए० इन दो० दो ठा० स्थान से अ० अनाचार जा० जाने ॥ ३ ॥

आदाय बंभचेरं च । आसुपन्ने इमं वइं ॥ अस्सिं धम्मे अणायारं । नायरेज्ज कयाइवि ॥ १ ॥ अणादीयं परिन्नाय । अणवदग्गेति वा पुणो ॥ सासय मसासए वा। इति दि- ट्ठिं न धारए ॥ २ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं । ववहारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणे-

विवेकी पुरुष ब्रह्मचर्य (जैन शासन) के अंगीकार कर के यह लोक शाश्वत है, ऐसा वचन बोले नहीं और इस धर्म में प्रवर्तता हुवा सावद्यानुष्ठान रूप अनाचार का सेवन करे नहीं. ॥ १ ॥ आचार और अनाचार बतलाने की इच्छासे लोक का स्वरूप बताते हैं. चउदह रज्ज्वात्मक लोक को अनादि अनंत जा- नकर यह एकांत शाश्वत है अथवा एकांत अशाश्वत है ऐसी दृष्टि रखे नहीं ॥ २ ॥ सब लोक नित्य ही है या अनित्य ही है ऐसे दो कारणों से लोकका व्यवहार नहीं होता है अर्थात् एकांत नित्य और एकांत अ-

निवृत्त ए० यह ख० निश्चय भ० भगवान ने अ० कहा सं० संयति वि० विरति प० प्रतिहत प० प्रत्याख्यान पा० पापकर्म में अ० अक्रिय सं० संवृति ए० एकान्त पं० पण्डित भ० होता है त्ति० ऐसा बे० कहता हू ॥ १२ ॥ * * *

संते परिनिव्वुडे; एस खलु भगवया अक्खाए संजयविरयंपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, अकिरिए, संवुडे, एगंतपंडिएयावि भवइ त्ति बेमि ॥ १२ ॥ इति पच्चक्खाण किरिया णामं वीसम मज्झयणं सम्मत्तं ॥ २० ॥ *

वीस वा अध्ययन समाप्त हुवा. इस में प्रत्याख्यान क्रिया का स्वरूप कहा. जो प्रत्याख्यानी नहीं होते हैं वे अनाचारी कहे जाते हैं इसलिये अनाचार श्रुत नामक इक्कीसवा अध्ययन कहते हैं. *
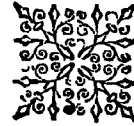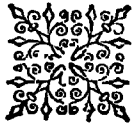
सत्व न० नहीं हं० हणना जा० यावत् ण० नहीं उ० उद्वेग देना ए० यह ध०धर्म धु० ध्रुव णि० निस सा० शाश्वत स० सम्यक् लो० लोक खे० खेदज्ञने प० प्ररूपा ए० ऐसे से० वह भि० साधु वि० विरति पा० प्राणातिपात से जा० यावत् मि० मिथ्यादर्शन शल्य से० वह भि० साधु णो० नहीं दं० दांतण से दं० मूख धोवे णो० नहीं अं०अंजन णो० नहीं व० वमन णो० नहीं धू० धोना तं० उस को न०नहीं आ० ग्रहण करे से० वह भि० साधु अ० अक्रिय अ० अरूक्ष अ० अक्रोधी जा० यावत् अ० अलोभी उ० उपशान्त प०

णेवा, जाव उद्दविज्जमाणेवा, जाव लोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारं दुक्खं भयं पडिसंवेदे-ति;एवं णच्चा सव्वे पाणा जाव सव्वेसत्ता,न हंतव्वा जाव ण उद्दवेयव्वा.एस धम्मे धुवे,णिइए, सासए, समिच्च लोगं खेयन्नेहिं पवेदिए. एवं से भिक्खू विरते पाणातिवायातो जाव मिच्छादंसणसल्लाओ. से भिक्खू णो दंतपक्खालेणं दंतपक्खालेज्जा,णो अंजणं, णो वमणं, णो धूवणं, तंपि न आदते. से भिक्खू—अकिरिए, अलूसए, अकोहे, जाव अलोहे, उव-

में अंजन डाले नहीं, वमन, धोवनादिक क्रिया करे नहीं. ऐसे अक्रिय, अक्रोधी, अमानी यावत् अलोभी उपशान्त, और शीतल कहे जाते हैं. और श्री भगवन्तने कहा है कि ऐसा साधु संयमी, विरती प्रतिहत प्रत्याख्यान पाप कर्म वाला, अक्रिय, संयमी और एकान्त पंडित होता है. यह प्रत्याख्यान क्रिया नामक

दं० दंड से अ० अस्थि से मु० मुष्टि से ले० पत्थर से क० ठींकरी से आ० आक्रोश करते हुवे जा० यावत् उ० उद्वेग पाते हुवे जा० यावत् लो० रोम मात्र भी उखेडना हिं० हिंसाकारी दु० दुःख भ० भयको प० वेदता हूं इ० ऐसा जा० जानकर स० सर्व पा० प्राणी जा० यावत् स० सर्व स० सत्व दं० दंड मे. जा० यावत् क० ठींकरी से आ० आक्रोश करते हुवे ह० हणाते हुवे त० तर्जना पाते हुवे ता० ताडना पाते हुवे जा० यावत् उ० उद्वेग पाते हुवे जा० यावत् लो० रोम मात्र भि उखेडते हिं० हिंसाकारी दु० दुःख भ० भय प० वेदते हैं ए० ऐसा जा० जानकर स० सर्व पा० प्राणी जा० यावत् स० सर्व स०

तसकाइया से जहा णामए—मम अस्सातं दंडेणवा, अट्ठीणवा, मुट्ठीणवा, लेलूणवा, कवालेण वा, आतोडिज्जमाणस्सवा जाव उद्दविज्जमाणस्सवा जाव लोमुक्खणण-मायमवि हिंसाकारं दुक्खं भयं पडिसंवेदेमि इच्चेवं जाणं सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता दंडेणवा, जाव कवालेणवा, आतोडिज्जमाणेवा, हम्ममाणेवा, तज्जिज्जमाणेवा, तालिज्जमा-

करी से दुःख देते यावत् रोम मात्र उखेडते दुःख भय अनुभवते हैं. ऐसा जान कर सर्व प्राणी यावत् सर्व सत्व को मारना नहीं यावत् उद्वेग उपजाना नहीं. यह धर्म शाश्वत, ध्रुव, नित्य तथा खेदज्ञों ने प्ररूपा है. इस तरह प्राणातिपातादिक अठारह पापस्थान से निवर्तने वाला साधु दंतप्रक्षालन करे नहीं आंख

नित्य प० पूर्ववत् ॥ ११ ॥ चो० शिष्य से० वह किं० क्या कु० करता हुवा किं० क्या का० कराता हुवा क० कैसे सं० संयति वि० विरति पा० प्रतिहत प० प्रत्याख्यान प० पाप कर्ममें भ० होता है आ० आचार्य आ० बोले त० तहां ख० निश्चय भ० भगवानेन छ० छ जी०जीवनिकाय हे० हेतु को प० प्ररूपा तं० वह ज० जैसे पु० पृथ्वीकाय जा० यावत् त० त्रस काय से० वे ज० जैसे म० मुझे अ० असाता

से बाले अवियारमणवय-किरिए, असंवुडे, एगंतदंडे, एगंतबाले, एगंतसुत्ते, कायवके सुविणमवि ण पस्सइ पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ ११ ॥ चोदक से किं कुव्वं किं कारवं कहं संजयविरयप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे भवइ, आयरिय आह—तत्थ खलु भगवया छज्जीवणिकायहेउं पण्णत्ता—तंजहा—पुढविकाइया, जाव

अविचारित मन वचन और काया के योग से स्वप्नान्तर में भी नहीं देखा हुवा पदार्थ का पाप कर्म लगता है ॥ ११ ॥ अब शिष्य पूछता है कि हे भगवन् ? जीव कैसा अनुष्ठान करता हुवा व अन्य को पास कराता हुवा कैसा संयम, विरति, प्रतिहतप्रत्याख्यान कर्म वाला होवे ? ऐसा सुन कर आचार्य कहते हैं श्री श्रमण भगवंत ने पृथ्वी काया यावत् त्रस काया ऐसे षट् काया के भेद कहे हैं जैसे दंड से, अस्थि से, पाषाण से ठींकरी से दुःख देते यावत् पीडा उत्पन्न करते या रोम मात्र उखेडते मुझे असाता होती है, मैं दुःख, भय वेदता हूं वैसे ही सब प्राणी, सब भूत, सब जीव, और सब सत्व को दण्ड यावत् ठीं

हुवे अ० असंज्ञी काया से स० संज्ञी काया में सं० संक्रमते हैं स० संज्ञी काया से अ० असंज्ञी काया में सं० संक्रमण करते हैं स० संज्ञी काया से स० संज्ञी काया में सं० संक्रमते हैं अ० असंज्ञी काया से अ० असंज्ञी में सं० संक्रमते हैं जे० जो ए० ये स० संज्ञी अ० असंज्ञी स० सर्व ते० वे मि० मिथ्याचारी नि०

मंति सन्निकायाओवा असन्निकायं संकमंति, सन्निकायाओवा सन्निकायं संकमंति, असन्निकायाओवा असन्निकायं संकमंति; जे एए सन्निवा असन्निवा सव्वे ते मिच्छा-यारा, निच्चं पसढविउवायचित्तदंडा, तं पाणातिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले एवं खलु भगवया अक्खाए असंजए, अविरए, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, स-

है, तो फीर अन्य भव का कहना क्या. यह द्रष्टांत संज्ञी असंज्ञी पर रहा हुआ है, जीवों ने पहिले जो कर्म बांधे हैं उन को क्षय नहीं करने मे, नहीं छेद से, नहीं नशाने से असंज्ञी काय में से संज्ञी काय में जावे यह प्रथम भंग (१) संज्ञी काय से असंज्ञी में जावे दूसरा भंग (२) संज्ञी काय में से संज्ञी काय में जावे तीसरा भंग (३) असंज्ञी काय में से असंज्ञी काय में जावे यह चतुर्थ भंग (४) जो ये संज्ञी या असंज्ञी हैं वे सब प्रत्याख्यान नहीं करने से मिथ्याआचार वाले, अत्यंत शठ और प्राणी की घात करने वाले यावत् मिथ्या दर्शन शल्य में प्रवृत्ति करने वाले हैं. ऐसे असंयति, अविरति, अप्रतिहत प्रत्याख्यान पाप कर्म वाले, तथा सक्रिय, असंवरी, एकान्त दंड के करने वाले और एकान्त बाल जीवको

जाते हैं जा० यावत् अ० रात्रि दिवस प० परिग्रह में उ० कहे जाते हैं जा० यावत् मि० मिथ्या दर्शन शल्य में उ० कहे जाते हैं ए० ऐसे भू० भूतवादी स० सर्व योनिवाले ख० निश्चय स० सत्व स० संज्ञी हु०होकर अ०असंज्ञी हो० होते हैं अ० असंज्ञी हु०होकर सं० संज्ञी हों०होते हैं हो०होकर स० संज्ञी अ०अथ-वा अ० असंज्ञी त० तहां से० वे अ० बांधे हुवे अ० नहीं खपाये हुवे अ० नहीं छेदे हुवे अ० नहीं तपाये

उवक्खाइज्जंति, जाव अहोनिसिं परिग्गहे उवक्खाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले उवक्खाइज्जंति एवं भूतवादी सव्वजोणियावि, खलु सत्ता सन्निणो हुज्जा, असन्निणो होंति. असन्निणो हुज्जा सन्निणोहोंति. होच्चा सन्नी अदुवा असन्नी तत्थ से अविवि-चित्ता अविधूणित्ता असंमुच्छित्ता अणणुतावित्ता, असन्निकायाओवा सन्निकायं संक-

होने पर प्राणातिपात मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का बंध करते हैं. यहां पर शिष्य प्रश्न करताहै कि वेदान्त वादी की मान्यता ऐसीहै कि जोपुरुष होवे सो जन्मान्तरमें पुरुष होवे और जो स्त्री होवे सो जन्मान्तरमें स्त्री होवे. वैसे ही क्या संज्ञी होवे सो जन्मान्तर में संज्ञी होवे या असंज्ञी का असंज्ञी रहे ? आचार्य उत्तर देते हैं. सव योनिवाले जीव संज्ञी वन कर असंज्ञी भी हो जाते हैं और असंज्ञी वन कर संज्ञी भी हो जाते हैं. ऐसे संज्ञी असंज्ञी दोनों होवे. यहां पर प्रत्यक्ष में भी देखते हैं कि कितनेक संज्ञी मूर्च्छादिक की अवस्था से असंज्ञीभूत होते है और फीर संज्ञी बन जाते हैं. जब एक ही भव में ऐसा परिवर्तन होता

शठ वि० हिंसा चि० मन दं० पाप में तं० उनको पा० प्राणातिपात जा० यावत् मि० मिथ्यादर्शन शल्य इ० इतने जा० यावत् णो० नहीं चे० निश्चय म० मन णो० नहीं व०वचन पा० प्राणी के जा० यावत् स०सत्व के दु०दुःख उत्पन्न करने से सो०शोक उपजाने से जू० झूराने से पि०मारने से प०परिताप उपजाने से ते० वे दु० दुःख सो० शोक जा० यावत् परिताप व० वध बं० बंधन प० क्लेश से अ० अनिवृत्त भ० होते हैं ॥ १० ॥ से० वे अ० असंज्ञी स० सत्व अ० रात्रिदिवस पा० प्राणातिपात में उ० कहे

तं पाणाइवाते जाव मिच्छादंसणसल्ले; इच्चेव जाव णो चेव मणो, णो चेव वई, पाणाणं जाव सत्ताणं—दुक्खणत्ताए सोयणत्ताए जूरणत्ताए तिप्पणत्ताए पिट्टणत्ताए परितप्पणत्ताए ते दुक्खणसोयण जाव परितप्पणवहबंधनपरिकिलेसाओ अप्पडिविरया भवंति ॥ १० ॥ इति खलु से असन्निणोवि सत्ता अहोनिसिं पाणातिवाए

के व्यापार से रहित हैं और सब प्राणी यावत् सत्व को दुःख, शोक, झूरण, पिट्टणादिक नहीं करते हैं तथापि अविरति भाव से सब जीवो को दुःख देना, शोक, झूरण, तिप्पण, पिट्टण, यावत् बाह्य आभ्यंतर पीडा उपजाना और वध बंधन का करना ऐसे क्लेशों से नहीं निवर्ते हुवे हैं. इसलिये वे अविरति कहलावें और विरति के अभाव से जीवों कर्मों से बंधावें ॥ १० ॥ इसी तरह से पृथ्वीकायादिक असंज्ञी

अ० असंज्ञी दि० दृष्टांत जे० जो इ० ये अ० असंज्ञी पा० प्राणी तं० वह पु० पृथ्वी काय जा० यावत् व० वनस्पति काय छ० छठा ए० कितनेक त० त्रस पा० प्राणी जे० जिस को णो० नहीं त० तर्क स० संज्ञा प० प्रज्ञा म० मन व० वचन स० स्वयं क० करना अ० दूसरे मे का० कराना क० करते को स० अच्छा जानना ते० वे बा० अज्ञानी स० सर्व पा० प्राणी के जा० यावत् स० सर्व सत्वको दि० दिवस में रा० रात्रि में सु० सोया हुवा जा० जागता हुवा अ० शत्रुरूप मि० मिथ्यात्व में सं० रहा हुवा नि० नित्य प०

जाव वणस्सइकाइया, छट्ठा वेगइया तसापाणा, जेसिं णो तक्काइवा, सन्नातिवा, पन्नाति वा, मणाति वा, वईवा, सयंवा करणाय, अन्नेहिं वा कारावेंतए, करंतं वा, समणुजाणित्तए, तेविणं बाले सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं दियावाराओवा सुत्तेवा, जागरमाणे वा, अमित्तभूते मिच्छासंठिया, निच्चं पसढविउवातचित्तदंडा

नहीं हैं. उन को कार्य करने का, अन्य की पास कार्य कराने का, और कार्य करने वाले को अच्छा जानने का भाव नहीं हैं. ऐसे असंज्ञी जीवों अहोरात्रि सोते या जागते सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्व को शत्रु समान होवें. मिथ्यात्व में रहे परमार्थ को नहीं जानते सदैव प्राणी घात में चित्त रखें, मिथ्यात्वादि अठारह पापस्थानों में नहीं प्रवर्तने पर भी उनको कर्म बंध होता है. वे असंज्ञी जीव यद्यपि मन वचन

तं० उस पा० प्राणातिपात में ते० वह जा० यावत् मि० मिथ्या दर्शन शल्य में ए० यह भ० भगवानने अ० कहा अं० असंयति अ० अविरति अ० अप्रतिहत प्रत्याख्यान पा० पापकर्म वाला सु० स्वप्न में भी अ० नहीं देखा हुवा पा० पापकारी क० कर्म क० करता है से० अब तं वह स० संज्ञी द्रष्टांत से ॥ ९ ॥

जाव मिच्छादंसणसल्ले, एस खलु भगवया अक्खाए असंजए अविरए, अप्पडिहय पच्चक्खायपावकम्मे सुविणमवि अपस्साओ पावेयसे कम्मे कज्जइ, से तं सन्निदिट्ठं-तेणं ॥ ९ ॥ से किं तं असन्निदिट्ठंते—जे इमे असन्निणोपाणा तं पुढविकाइया

निकाय में अविरति, असंयति कहा जावे. इस तरह प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत अठारह पापस्थानों में असंयति, अविराति यावत् प्रत्याख्यानसे पाप को नहीं दूर करनेवाले जीव अव्रत भावसे अद्रष्ट पाप कर्म बांधे ऐसा श्री भगवन्तने निश्चय से कहा है. यह संज्ञी का द्रष्टांत समाप्त हुवा ॥ ९ ॥ अब असंज्ञी का द्रष्टांत कहते हैं. इस संसार में पृथ्वी काय, अप्काय, तेउ काय, वायु काय और वनस्पति काय, ये पांच स्थावर तथा कोई त्रस प्राणी भी असंज्ञी हैं. इन असंज्ञियों को तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन तथा वचन (१)

(१) यद्यपि द्वीन्द्रियादिक को जिव्हा इन्द्रिय रही हुइ है परंतु स्पष्ट अर्थ वाला उच्चार नहीं होने से वचन नहीं ग्रहण कीया है.

क्रश्गा हैं से० वह त० तब पु० पृथ्वी काया से अं० असंयति अ० अविरति अ० अप्रतिहत प०प्रत्याख्यान
करगा हैं से० वह त० तब पु० पृथ्वी काया से अं० अस्यति अ० अविराति अ० अप्रतिहत प०प्रत्याख्यान
पा० पापकर्म वाला भ० होवे ए० ऐसे जा० यावत् त० त्रस काया का भा० कहना से० अव ए० कोई एक
छ० षट् जीवनिकाय से कि० कार्य क० करे का० करावे त० उन को ए० ऐसा भ० होवे ए० ऐसे अ०
मैं छ० षट् जीवनिकाय से कि० कार्य क० करता हूं का० कराता हूं णो० नहीं से० उन को ए० ऐसा
भ० होवे इ० अमुक ए० इन छ० षट् जीवनिकाय से जा० यावत् का० करावे से० वह ए० इन छ०
छह जी० जीवनिकाय से अ० असंयति, अ० अविराति अ० अप्रतिहत प० प्रत्याख्यान पा० पापकर्मों से

भवइ, एवं जाव तसकाएत्ति भाणि-
अविरय, अप्पडिहयपच्चक्खाणपावकम्मेयावि
यव्वं, से एगइओ छजीवनिकाएहिं किच्चं करेइवि कारावेइवि, तस्सणं एवं भवइ—एवं
खलु अहं छजीवनिकाएहिं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि, णो चेवणं से एवं भवइ इमे-
हिंवा से एतेहिं छजीवनिकाएहिं जाव कारवेइवि, से एतेहिं छहिं जीवनि-
काएहिं असंजय, अविरय, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मेहिं तं पाणातिवाए

कार्य करूंगा. जहां लग उन को ऐसा अभिप्राय नहीं है कि मैं अमुक पृथ्वी काय से कार्य करूंगा वहां
लग उन को सब पृथ्वी काया का कर्म लगता है ऐसे पृथ्वी काया से करने वाले व कराने वाले असंयति
अविराति यावत् प्रत्याख्यान से पाप को दूर करने वाले नहीं हैं. ऐसे ही छह जीव काया का स्वरूप
जानना. कोई पुरुष छह जीवनिकाया से कार्य करे अन्य की पास कार्य करावे तो वह पुरुष छ जीव-

बोलो त० तहां भ० भगवंतने दु० दो द० दृष्टांत प० कहे तं० वह स० संज्ञी दृष्टांत अ० असंज्ञी दृष्टांत से० अब किं० कैसे तं० वह स० संज्ञी दृष्टांत जे० जो इ० यह स० संज्ञी पंचेन्द्रिय प० पर्याप्त ए० उनका छ० षट् काया का प० आश्रय लेकर तं० वह पु० पृथ्वी काय जा० यावत् त० त्रस काय से० अब ए० कोई एक पु० पृथ्वी काया से कि० कार्य क० करता है का० कराता है त० उसको ए० ऐसा भ० होवे ए० ऐसे अ० मैं पु० पृथ्वी काया से कि० कार्य क० करता हूं का० कराता हूं णो० नहीं से० उन्हे ए० ऐसा भ० होवे इ० अमुक २ से० वह ए० इस पु० पृथ्वी काया से कि० कार्य क० करता है का०

पण्णता तंजहा—सन्निदिट्ठंतेय असन्निदिट्ठंतेय. से किं तं सन्निदिट्ठंते—जे इमे सन्नि पंचिंदिया पज्जत्तगा एतेसिणं छजीवनिकाए पडुच्चं तं पुढविकायं जाव तसकायं. से एगइओ पुढविकाएणं किच्चं करेइवि, कारावेइवि तस्सणं एवं भवइ—एवं खलु अहं पुढविकाएणं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं भवइ—इमेणवा २ से एतेणं पुढविकाएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि, से णं ततो पुढविकायाओ असंजय,

नने दो दृष्टांत कहे हुवे हैं एक संज्ञी का दृष्टांत और दूसरा असंज्ञी का दृष्टांत. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव में से कोई जीव पृथिव्यादि षट् काया के संबंध में ऐसी प्रतिज्ञा करे कि मैं मात्र पृथ्वी काय से ही कार्य करूंगा और अन्य की पास कार्य कराऊंगा. पृथ्वी काया से कार्य करने की व कराने की जिनों ने प्रतिज्ञा ली है उन का उस में ऐसा अभिप्राय नहीं है कि मैं श्वेत, लाल, पीली आदि अमुक पृथ्वी काय से

हुत पा० प्राणी जे० जो इ० उनके म० शरीर से णो० नहीं दि० देखें सु० सुनें न० नहीं अ० जाणें वि० विशेष जाणें जे० जिसमें णो० नहीं प० प्रत्येक चि० मन स० ग्रहण दि० पूर्ववत् ॥ ८ ॥ आ० आचार्य आ०

अमित्तभूए मिच्छासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंडे भवइ ॥ ७ ॥ णो इणट्ठे समट्ठे चोदक इह खलु बहवे पाणा जे इमे णं सरीरसमणुस्सएणं णो दिट्ठावा, सुयावा, नाभिमयावा, विन्नायावा, जेसिं णो पत्तेयं २ चित्तसमायाए, दियावा, राओवा, सुत्तेवा, जागरमाणेवा, अमित्तभूते मिच्छासंठिते निच्चं पसढ विउवाय चित्तदंड तं पाणातिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले ॥८॥ आयरिया आह—तत्थ खलु भगवया दुवेदिट्ठंता

कथन होने पर शिष्य बोला कि हे भगवन् ? तुमने जो अर्थ कहा वह योग्य नहीं है क्योंकि इस लोक में अनंत प्राणी रहे हुवे हैं उन को कभी भी दृष्टि से देखे नहीं हैं सुने नहीं हैं, और विशेष प्रकार से जाने नहीं हैं और प्रत्येक२ जीवोंका विनाश की चिन्तवना भी करते नहीं हैं तथापि अहो रात्रि सोते या जागते शत्रु सम मिथ्यात्व में संस्थित, निरंतर शठ प्राणियोंकी घात नहीं करने वालेको घातक कैसे कहाजाय और प्राणातिपातादिक अठारह पाप स्थानों को नहीं करने से पाप कर्म कैसे लग सके अर्थात् लगे नहीं ॥ ८ ॥ ऐसा होने से सब को प्रत्याख्यान करने की जरूरत नहीं है. मात्र जो जीव हिंसा में प्रवृत्त हुवे होवे उन को ही प्रत्याख्यान करने की जरूरत है ऐसा कथन सुनकर आचार्य उत्तर देते हैं कि इस विषय में भगवा-

पूर्ववत् ॥ ६ ॥ पूर्ववत् ॥ ७ ॥ णो० नहीं इ०यह अर्थ स० योग्य चो० शिष्य इ० यहां ख० निश्चय व० व-

अक्खाए असंजए, अविरए, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, साकिरिए, असंवुडे, एगंत-दंडे, एगंतबाले एगंतसुत्तेयावि भवइ, से बाले अवियरमणवयणकायवक्के सुवि-णमवि णपस्सइ पावेय से कम्मे कज्जइ ॥ ६ ॥ जहा से वहए तस्सवा गाहावइस्स जाव तस्सवा रायपुरिसस्स पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राओवा सुत्तेवा, जाग-रमाणेवा, अमित्तभूते मिच्छासंठिते निच्चं पसढविउवाय चित्तदंडे भवइ, एवमेव बाले स-व्वेसिं पाणाणं जाव सत्ताणं पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राओवा सुत्तेवा जागरमाणेवा,

वन्त मन वचन और काया वाले बाल जीवों स्वप्नांतर में नहीं देखे पाप कर्मों का बंधन करे नहीं ॥ ६ ॥ जैसे वह वधक पुरुष सब गृहस्थादिक की घात करने की चिन्तवना करता हुवा अहोरात्रि सोता या जागता हुवा भी शत्रु सम मिथ्यात्व में रहे और अपना चित्त को निरंतर घात में प्रवर्तावे और पाप कर्म बांधे वैसे ही वे बाल एकेन्द्रियादि जीवों भी सर्व प्राणी, भूत, जीव और सत्व में अविरतिपना से प्रत्येक २ जीवों की घात चिंतवते रात्रि दिन सोते या जागते शत्रु सम मिथ्यात्व में रहे हुवे निरंतर प्राणी की घात चिन्तवे, प्राणीयों को दंड करने वाला होवे. इस तरह से वह पाप कर्म बांधे ॥ ७ ॥ इतना आचार्य का

जागता हुवा अ० शत्रुपने मि० मिथ्यात्व में सं० रहा हुवा नि० नित्य प० शठ वि० हिंसा चि०मन दं० पाप में भ० होता है ए० ऐसा वि० बोलते हुवे स०सत्य वि० कहा चो० शिष्य ने हं० वधक भ० होता है ॥५॥

त्तभूते मिच्छासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंडे भवति, एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरे चोयए हंता भवति ॥ ५ ॥ आयरिय आह—जहा से वहए तस्स गाहवइस्स वा, तस्स गाहावइपुत्तस्स वा, रण्णोवा रायपुरिसस्स खणं निद्दाए पविसिस्सामि, खणं लद्धूणं वहिस्सामित्ति पहारेमाणे दियावा राओवा सुत्तेवा आगरमाणेवा अमित्तभूए मिच्छासंठित्ते, निच्चं पसढविउवायचित्तदंडे, एवमेव बालेवि सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिंसत्ताणं दियावा राओवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूए मिच्छासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंडे तं पाणातिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले. एवं खलु भगवया

प्रवर्तता हुवा भी घातक कहा जाता है वैसे ही अज्ञानी जीव सब प्राणी भूत, जीव, और सत्व की सोते या जागते रात्री दिन घात चिन्तवते प्राणातिपात यावत् मिथ्या दर्शन शल्य ऐसे अठारह पाप स्थानों में अनिवृत्त होवे. इसलिये श्री भगवन्तने फरमाया है कि वह जीव अव्रति, असंयति अप्रतिहत, सक्रिय, संवर रहित, एकान्त दंड का देने वाला, एकान्त बाल, और एकान्त शयन करने वाला होवे. वैसे अविचार

वधक का दि० दृष्टांत से प० प्ररूपा से० वह ज० जैसे व० वधक सि० होवे गा० गाथापति को गा० गाथापति पुत्र को र० राजा को रा० राजपुरुष को ख० अवसर नि० प्राप्त कर प० प्रवेश करूंगा ख० अवसर ल० प्राप्त कर व० हणूंगा प० विचारता हुवा से० वह व० वधक त० उस गा० गाथापति को गा० गाथापतिके पुत्र को र० राजा को रा० राजपुरुष को ख०अवसर को नि०प्राप्त कर प० प्रवेश करूंगा ख० अवसर ल० प्राप्त कर व० वध करूंगा प० विचारता हुवा दि० दिवस में रा० रात्रि में सु० सोता हुवा जा०

मए वहए सिया गाहावइस्स वा, गाहावइपुत्तस्स वा, रण्णो वा, रायपुरिसस्स वा, खणं निद्दाए पविसिस्सामि, खणं लद्धूणं, वहिस्सामि, पहारेमाणे से किं तु हु नाम से वहए तस्स गाहवइस्सवा गाहावइपुत्तस्सवा रण्णोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाएविसिस्सामि खणंलद्धूणं वहिस्सामि पहारेमाणे दियावा राओवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमि-

करते हैं. जैसे कोई एक घातक गृहपतिपर गृहपति के पुत्र पर, राजापर या राजपुरुष पर कुपित बनकर ऐसी चिन्तवना करे कि अवसर पाकर मैं उन के गृह में प्रवेश करूंगा और उसे मारूंगा. ऐसी रात्रि दिन चिन्ता करता हुवा तथा परमार्थ को नहीं जानता हुवा प्राणी घात में ही रात्रि दिन चित्त रखे. ऐसा करने वाला वधक कहा जाय या नहीं ? तब शिष्य बोला आपने सत्य कहा वह वधक कहा जाता है. ॥ ९ ॥ जैसे वह के पुरुष गृहपति, गृहपति के पुत्र, राजा अथवा राज पुरुष की घात चिन्तवते घात की क्रिया में नहीं

स तं० उन हे० हेतु को आ० आचार्य आ० कहे त० तहां ख० निश्चय भ० भगवान ने छ० छजीवनिकाया हे० हेतु प० प्ररूपा तं० वह ज० जैसे पु० पृथ्वीकाय जा० यावत् त० त्रसकाया इ० इन छ० छजीवनिकाय से आ० आत्मा अ० अप्रतिहत प० प्रत्याख्यान पा० पापकर्म नि० नित्य प० शठ वि० हिंसा चि० चित्त दं० पाप में तं० वह ज० जैसे पा० प्राणातिपात जा० यावत् प० परिग्रह को० क्रोध जा० यावत् मि० मिथ्यादर्शन शल्य ॥ ४ ॥ आ० आचार्य आ० कहे त० तहां ख० निश्चय भ० भगवान ने व०

तत्थ खलु भगवया छजीवणिकाय हेऊ पण्णत्ता तं जहा पुढविकाइया जाव तस-काइया. इच्चेयेहि छहिं जीवणिकाएहिं आया अपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे निच्चं पसढविउवातचित्तदंडे, तंजहा पाणातिवाए जाव परिग्गहे कोहे जाव मिच्छादंसण सल्ले ॥ ४ ॥ आयरिय आह—तत्थ खलु भगवया वहए दिट्ठंते पण्णत्ते—से जहा णा-

जीव निकाय कही हैं. इन छहों काया के प्रत्याख्यान कर के आत्मा ने पाप कर्म दूर नहीं किये हैं और सदा काल जड जैसा बन कर प्राणातिपातादि से लेकर परिग्रह तक और क्रोध से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य इस अठारह पापस्थानों में अनिवृत्ति पने रहा है. इसलिये एकेन्द्रिय जीव को भी मिथ्यात्वादि दोषों से अप्रत्याख्यान क्रिया का बंध होता है. ॥ ४ ॥ पूर्वोक्त प्रश्न को फीर वधक के दृष्टांत से सिद्ध

ए० ऐसा आ० कहते हैं मि० मिथ्या ते० वे ए० ऐसा आ० कहते हैं ॥ ३ ॥ त० तहां प० आचार्यने चो० शिष्य को ए० ऐसा व० कहा तं० वह स० सम्यक् जं० जो म० मैंने पु० पूर्वे वु० कहा अ० अविद्यमान म०मन से पा०पापकारी अ० अविद्यमान व०वचन से पा०पापकारी अ० अविद्यमान का०काया से पा०पापकारी अ०नहीं हणते हुवे अ०मन रहित अ०विचार रहित म० मन व० वचन का० काया व० वाक्यवाले को सु०स्वप्न में अ०नहीं देखता हुवा पा०पाप कर्म क० करता है तं० उनको स० सम्यक् क० कि

जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एव माहंसु ॥ ३ ॥ तत्थ पन्नवए चोयगं एवं वयासी तं सम्मं जं मए पुव्वे वुत्तं असंतएणं मणेणं पावएणं, असंतियाए वत्तिए पावियाए, असंतएणं काएणं पावएणं; अहणंतस्स, अमणक्खस्स अवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सउ पावेकम्मे कज्जति, तं सम्मं. कस्सणं तं हेउं ? आयरिया आह—

बोलते हैं ॥ ३ ॥ ऐसा आचार्य का पक्ष को शिष्यने दूषित किया तव आचार्य कहते हैं कि अहो शिष्य! मैंने जो पहिले कहा कि मन वचन काया पाप में प्रवृत्ति नहीं करने वाले को यावत् अविचारवन्त मन वचन व काया वाले को पाप कर्म लगता है वह सत्य है. जव शिष्य प्रश्न करता है कि कौनसा हेतु से तुमारा कथन सत्य हैं? आचार्य उत्तर देते हैं कि भगवानने पथ्वी काया यावत् त्रस काया नामक छ

पा० पापकर्म क० करता है ह० हणते हुवे स० मन सहित को स० विचारवन्त म० मन व० वचन का० काया व० वाक्यवाला को सु० स्वप्न में भी पा० देखा हुवा ए० ऐसा गु० गुण जा० जाति के पा० पाप कर्म क० करता है पु० फीर चो० शिष्य ए० ऐसा व० बोला त० तहां जे० जो ते० वे ए० ऐसे आ० कहते हैं अ० अविद्यमान म० मनसे पापकारी अ० अविद्यमान व० वचनसे पा० पापकारी अ० अविद्यमान का० काया से पा० पापकारी अ० नहीं हणते हुवे अ० मन रहित य० विचार रहित म० मन व० वचन का काया म० वाक्यवाले को सु० स्वप्न में अ० नहीं देखा हुवा पा० पापकर्म क० करता है त० तहां जे० जो ते० वे

अन्नयरेणं काएणं पावएणं कायवात्तिए पावेकम्मे कज्जइ, हणंतस्स समणक्खस्स सवियारमणवयकायवक्कस्स, सुविणमवि पासओ; एवं गुणजातीयस्स पावे कम्मे कज्जइ, पुणरवि चोयए एवं बवीति, तत्थणं जे ते एवमाहंसु, असंतएणं मणेणं पावएणं, असंतीयाए वत्तिए पावियाए, असंतएणं काएणं पावएणं, अहणंतस्स अमणक्खस्स अवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सओ पावे कम्मे कज्जइ, तत्थणं

पूर्वक हिंसा करे और स्वप्नान्तर में पाप कर्म देखे तो वही पाप कर्म बांधे. और भी शिष्य आचार्यादिक से ऐसा कहता है कि मन, वचन व कायासे पाप कर्ममें प्रवृति नहीं करने वालेको, हिंसा नहीं करने वाले को पाप कार्य में मन के परिणाम जिस के नहीं है ऐसे को, अविचारवन्त मन, वचन व काया वाले को तथा स्वप्नान्तर में भी पाप कर्म नहीं देखने वाले को पाप कर्म लगता है ऐसा जो बोलते हैं वे मिथ्या

शिष्य प० गुरु को ए० ऐसा व० पूछा अ० अविद्यमान म० मनसे पा० पापकारी अ० अविद्यमान व० वचन से पा० पापकारी अ० विद्यमान का० काया में पा० पापकारी अ० नहीं हणते को अ० मन रहित अ० विचार रहित म० मन व० वचन का० काया व० वाक्यवाला सु० स्वप्न में भी अ० नहीं देखता हुवा पा० पापकर्म णो० नहीं क० करता है क० किस तं० उन हे० हेतु को चो० शिष्य ए० ऐसा व० कहता है अ० अन्यतर म० मन से पा० पापकारी म० मन निमित्त पा० पापकर्म क० करता है अ० अन्यतर व० वचन से पा० पापकारी व० वचन निमित्त पा० पापकर्म क० करता है अ० अन्यतर का० काया से पा० पापकारी का० काया निमित्त

वयासी— असंतएणं मणेणं पावएणं असंतियाए वत्तियाए पावियाए, असंतएणं काएणं पावएणं अहणंतस्स, अमणक्खस्स, अवियारमणवयकायवक्कस्स, सुविणमवि अपस्सओ पावकम्मे णो कज्जइ कस्सणं तं हेउं चोयए एवं वत्तीति अन्नयरेणं मणेणं पावएणं मणवत्तिए पावे कम्मे कज्जइ, अन्नयरीए वत्तिए पावियाए वत्तिवत्तिए पावेकम्मे कज्जइ.

वाले को, जीव की घात नहीं करने वाले को, पाप कर्म पर जिस का परिणाम नहीं है ऐसे को, अविचारवंत मन वचन और काया वाले को तथा स्वप्नांतर में भी पाप कर्म नहीं देखने वाले जीव को पाप कर्म का बंध नहीं होता हैं. यहां पर अज्ञानता से जो पाप कर्म लगे वे बंध के कारण नहीं हैं. परंतु मन वचन और काया से जो प्राणातिपातादिक पाप कार्य करे, हिंसादिक पाप कर्म में मन के परिणाम रखे इरादा

मन व० वचन का० काया व० वाक्य वाला भ० होता है आ० आत्मा अ० अप्रतिहत अ० अप्रत्याख्यान पा० पापकर्मी भ० होता है ए० ऐसे ख० निश्चय भ० भगवान ने अ० कहा अ० असंयति अ० अविरति अ० अप्रतिहत प्रत्याख्यानी पा० पापकर्मी स० क्रिया युक्त अ० आश्रवी ए० एकांत दंडी ए० एकांत बा० अज्ञानी ए० एकांत सु० सोयाहुवा से० वह बा० अज्ञानी अ० अविचारी म० मन व० वचन का० काया व० वाक्य वाला सु० स्वप्न में भी ण० नहीं प० देखा हुवा है पा० पाप का क० कर्म क० करता है ॥२॥ त० तहां चो०

वयणकायवक्केयावि भवति, आया अप्पडिहयअपच्चक्खायपावकम्मेयावि भवति; एस खलु भगवता अक्खाए. असंजते, अविरते, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, सकिरिये, असंवुडे, एगंत दंडे, एगंतबाले, एगंतसुत्ते से बाले, अवियारमणवयणकायवक्के, सुविणमवि ण पस्सति पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ २ ॥ तत्थ चोयए पन्नवगं एवं

भावार्थ- [illegible] विचारे काम करनेवाले मन वचन और कायावाला होवे, और आत्मा अप्रतिहतभी होवे. ऐसा जीव श्री भगवन्तने कहा है. वैसा असंयति, अविरति, अप्रतिहत, सक्रिय, असंवरी, एकान्त बाल, एकान्त शयन करने वाला [illegible] मन वचन और काया से विना विचारा कार्य करने वाला जीव स्वप्नान्तर में भी नहीं देखा हुवा पाप कर्म बांधे ॥ २ ॥ यहां पर शिष्य कहता है कि मन वचन व काया से पाप कर्म में नहीं प्रवर्तने

॥ प्रत्याख्यान क्रिया नामकं विंशतितम मध्ययनम् ॥

सु० सुना मे० मैंने आ० आयुष्मन् भ० भगवान ने ए० ऐसा अ० कहा इ० यहां ख० निश्चय प० प्रत्याख्यान क्रिया अ० अध्ययन त० उसका अ० यह अ० अर्थ प० प्ररूपा ॥ १ ॥ आ० आत्मा अ० अप्रत्याख्यानी भ० होता है आ० आत्मा अ० अक्रिया में कु० कुशल भ० होता है आ० आत्मा मि० मिथ्यात्व में सं० रहा हुवा भ० होता है आ० आत्मा ए० एकांत दंडी भ० होता है आ०आत्मा ए० एकांत बा० अज्ञानी भ० होता है आ० आत्मा ए० एकांत सु०सोया हुवा भ० होता है आ०आत्मा अ० अविचारी म०

सुयं मे आउसंतेणं भगवया एव मक्खायं, इह खलु पच्चक्खाण किरियाणामज्झयणे तस्सणं अयमट्ठे पण्णत्ते ॥ १ ॥ आया अपच्चक्खाणीयावि भवति, आया अकिरिया कुसलेयावि भवति, आया मिच्छासंठियावि भवाति, आया एगंतदंडेयावि भवति, आया एगंतबालेयावि भवाति, आया एगंत सुत्तेयावि भवाति, आया अवियारमण

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं कि अहो आयुष्मन्! मैंने श्री श्रमण भगवंत महावीर स्वामी से प्रत्याख्यान क्रिया नामक अध्ययन का ऐसा अर्थ सुना है और वैसे ही तुझे कहता हूं ॥ १ ॥ आत्मा अप्रत्याख्यानी होवे और वही आत्मा प्रत्याख्यानी भी होवे. आत्मा सदाचार रहित भी होवे, मिथ्यात्व सहित भी होवे, आत्मा एकान्त दण्ड का करने वाला होवे, बाल होवे, शयन करने वाला होवे,

संक्रमण वाले स० शरीराहारी क० कर्म को प्राप्त क० कर्म निदान वाले क० कर्मानुसार गति वाले क० कर्मानुसार स्थिति वाले क० कर्म से वि० विपरीतपना को स० प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ से० उनको ए० ऐसे आ० जानो से० उनको ए० ऐसा आ० जानकर आ० आत्मगुप्त स० सहित स० सामितिवन्त स० सदा ज० यत्नावंत त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ३० ॥ २ ॥ १९ ॥ * *

विहसंभवा, णाणाविहवुक्कमा, सरीरजोणिया, सरीर संभवा, सरीर वुक्कमा, सरीराहारा, कम्मोवग्गा, कम्मनियाणा, कम्मगतीया, कम्मट्ठिइया, कम्मणा चेव विप्परियासमुवेंति ॥२९॥ से एव मायाणह. से एव मायाणित्ता, आहारगुत्ते, साहिए, समिए, सयाजए, त्ति बेमि ॥३०॥ इति आहारपरिण्णा णामं एगोणविंस मज्झयणं सम्मत्तं ॥ १९ ॥

करते हैं. वे एक अवस्था में कदापि नहीं रहते हैं और कर्मवश से ही विपरीत पना को प्राप्त होते हैं. ॥ २९ ॥ अहो जम्बू! इस में सब जीवों के आहार का स्वरूप कहा. ऐसा जान कर विवेकी मनुष्यों सदोष आहार का त्याग करे और ज्ञान दर्शन चारित्र व पांच समिति सहित सदा काल यत्ना पूर्वक विचरें ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं ॥ ३० ॥ यह आहार परिज्ञा नामक उगणीशवा अध्ययन समाप्त हुवा इस में आहार से कर्मवन्ध होते हैं. वे कर्मवन्ध प्रत्याख्यान करने से तूटते हैं इसलिये प्रत्याख्यान क्रिया नामक अध्ययन कहते हैं. ॥ १९ ॥ * *

वो० जानना चं० चंद्रप्रभ वे० वेरुलि ज० जलकांत सू० सूर्यकांत ए० इन से ए० इन में भा० कहना ए० इन गा० गाथा से जा० यावत् सू० सूर्यकांतपने वि० उपजते हैं पूर्ववत् ॥ २८ ॥ अ० अब पु० पहिले अ० कहा स० सर्व पा० प्राणी स० सर्व भू० भूत स० सर्व जी० जीव स० सर्व स० सत्व णा० त्रिविध योनिवाले णा० विविध उत्पत्ति वाले णा० विविध संक्रमण वाले स० शरीर योनिक स० शरीर में उत्पाचे वाले स० शरीर में

एयाओ एएसु भाणियव्वा एओ गाहाओ जाव सूरकंताए विउट्टंति. ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेह माहारेंति. ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं तसथावरजोणियाणं पुढवीणं जाव सूरकंताणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं सेसं तिण्णि आलवगा जहा उदगाणं ॥ २८ ॥ अहावरं पुरक्खायं—सव्वे पाणा, सव्वेभूया, सव्वे जीवा, सव्वेसत्ता, णाणाविहजोणिया, णाणा-

रत्न १४ सोगंधिक रत्न १५ चंद्रप्रभ रत्न १६ वेरुलि रत्न १७ जलकान्त रत्न १८ सूर्यकान्त रत्न ऐसे पृथ्वी के भेदपने उत्पन्न होवे और त्रस स्थावर प्राणियों के स्नेह का आहार करे इत्यादि सब पूर्ववत् ॥ २८ ॥ श्री तीर्थंकर देवने सब जीवों के संबंध में इस तरह स्वरूप फरमाया है. इस जगत में सर्व प्राणी, सर्व भूत, सर्व जीव, और सर्व सत्व अनेक प्रकार की योनि में अनेक स्थान से संक्रमण कर के आते हैं, शरीर पने उपजते हैं, वहां यथा योग्य शरीर का आहार करते हैं, अपने कर्मानुसार चक्कर कर्मों के कारणों से अनेक गति में उत्पन्न होते हैं और कर्मानुसार ही ऊंच नीच व मध्यम गति प्राप्त

शिला लो० निमक अ० लोहा त० तरुवा तं० तांबा सी० सीसा रु० चांदी सु० सुवर्ण व० वज्र ह० हरताल हिं० हिंगलू म० मनःसीला सा० सासक अं० अंजन प० प्रवाले अ० अभ्रक अ० आकाश धूल वा० बादरकाय म० माणि वि० विधान गो० गोमेध रत्न रू० रजत रत्न अं० अंक फ० स्फटिक लो० लोहिताक्ष म० मरकत म० मसारगल भू० भुजमोचक इं० इन्द्रनील चं० चंदन गे० गेरु हं० हंस गर्भ पु० पुलाक सो० सोगंधिक

वीय सक्करा वालुयाय, । उवले सिलाय लोणूसे ॥ अयतउय तंब सीसग । रुप्पसु-वण्णेय वइरेय (१) हरियाले हिंगुलए । मणोसिला सासगंजणपवाले ॥ अब्भ-पडलब्भवालुय । बायरकाए मणिविहाणा (२) गोमेजएय रूयए । अंकेफलिहिय लोहियक्खेय ॥ मरगय मसारगल्ले । भूयमोयग इंदणीलेय (३) चंदणगेरुय हंस-गब्भे । पुलए सोगंधिएय बोद्धव्वे ॥ चंदप्पभवेरुलिए । जलकंते सूरकंतेय (४)

कंकर ३ रेती ४ सीला पत्थर ५ लवण ६ लोहा, ७ तरुवा ८ तांवा, ९ सीसा १० चान्दी ११ सोना १३ वज्र १४ हरिताल १५ हिंगलु १६ मणः सीला १७ सासक १८ प्रवाल १९ अभ्रक (भोडल) २० आकाशधूल. ये बादर पृथ्वी काया के भेद कहे. अब रत्नों के व माणि के भेद कहते हैं. १ गोमेध रत्न २ रजत रत्न ३ अंक रत्न ४ स्फटिक रत्न ५ लोहिताक्ष रत्न ६ मरकत रत्न ७ मशारगल रत्न ८ भुज मोचक रत्न ९ इन्द्र नील रत्न १० चंदन रत्न ११ गेरु रत्न १२ हंसगर्भ रत्न १३ पुलाक

॥२५॥ पूर्ववत् ॥२६॥ पूर्ववत् ॥२७॥ अ०अत्र पु०पाहिले अ०कहा इ०यहां ए०कितनेक स०सत्व णा०विविध प्रकार के जो०योनिवाले जा० यावत् क० कर्म निदान से त० तहां वु० संक्रमण णा० विविध प्रकार के त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी के स० शरीर में स० सचित्त अ० अचित्त पु० पृथ्वी पने स० कंकरपने वा० वालुपने इ० इन गा० गाथा से अ० जानना पु० पृथ्वी स० कंकर वा० वालु उ० पाषाण सि०

जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु साचित्तेसु वा अचित्तेसु वा वायुकायत्ताए विउट्टंति जहा अगणीणं तहा भाणियव्वा चत्तारिगमा ॥ २७ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कम्मा, णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा, पुढवित्ताए, सक्करत्ताए, वालुयत्ताए, इमाओ गहाओ, अणुगंतव्वाओ. "पुढ-

में कोई जीव विविध प्रकार की योनि में उत्पन्न होने के कर्मों के वश से विविध प्रकार के त्रस स्थावर जीवों के सचित्त अचित्त शरीर में सचित्त अचित्त पने उत्पन्न होवे इत्यादिक जैसे अग्नि काय के चार आलावे कहे वैसे ही वायुकाय के चार आलावे कहना. ॥ २७ ॥ अत्र पृथ्वीकाया की व्याख्या बतलाते हैं. इस जगत में अनेक योनिमें रहे हुवे जीवों अपने संचित कर्मानुसार अनेक प्रकार के त्रस व स्थावर जीवों के सचित्त, अचित्त शरीर में पृथ्वी के आकार में परगमते हैं. उन के नाम १ पृथ्वी, २

णियाणं जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु तसपाणत्ताए विउट्टंति; ते जीवा तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं सिणेह माहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरे वि य णं तेसिं उदगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणा-वण्णा जावमक्खायं ॥ २५॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मानियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसु वा अगणिकायत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं तसथावरजोणियाणं अगणीणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं। सेसा तिन्नि आलाव-गा उदगाणं ॥ २६ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं

वाला उदक में पूहरादिक त्रसपने उत्पन्न होवे वहां उत्पन्न हुवे उनके शरीर का आहार करे इत्यादिक सब पूर्ववत् ॥२५॥ विविध प्रकारकी योनिवाले कोई जीव त्रस स्थावर प्राणी सचित्त अचित्त शरीरमें अग्नि काय पने उत्पन्न होवे वहां उत्पन्न हुवे त्रस स्थावर प्राणी का आहार करे शेष पूर्ववत् यहां उदक के आलावा जैसे अग्नि कायाके भी शेष तीन आलावा कहना ॥ २६ ॥ अब वायु काय के सम्बन्ध में कहते हैं. इस जगत

शुद्धोदक ते०वे जी० जीव ते० उन में णा० पूर्ववत् ॥ २२ ॥ पूर्ववत् ॥ २३ ॥ पूर्ववत् ॥ २४ ॥ पूर्ववत्

भवा जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा तसथावरजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउ-ट्टंति ते जीवा तेसिं तसथावरजोणियाणं उदगाणं सिणेह माहारेंति. ते जीवा आ-हारेंति पुढवि सरीरं जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं तस थावरजोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ २३ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा उदगजोणिएसु उदगत्ताए विउट्टंति. ते जीवा तेसिं उदगजोणियाणं जीवाणं उदगाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवि सरीरं जाव संतं अवरे वि य णं जीवाणं उदगजोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ २४ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजो-

जीव अपने कर्मोंके उदयसे त्रस स्थावर योनिवाला उदकमें उत्पन्न होवे. वे जीवों वहां उदकके स्नेहका आहार करे इत्यादि शेप पूर्ववत् ॥ २३ ॥ कोइ जीव तथाविध कर्मों के उदय से उदकयोनि वाला उदक में उदक-पने उत्पन्न होवे वहां उत्पन्न हुवा उदकजीव का आहार करे शेप पूर्ववत् ॥ २४ ॥ कोई जीव उदकयोनि

था०स्थावर पा०प्राणी के स०शरीरमें स०सचित्त में अ०अचित्त में तं०वह स०शरीर वा०वायुसे सि०उत्पन्न वा० वायुसे ग०ग्रहीत वा०वायुसे प०संग्रहीत उ०ऊर्ध्व वायुमें उ०ऊर्ध्व भागी भ०होता है अ०अधोवायु में अ० अधो- भागी भ०होता है तं०वह ज०जैसे ओ०ओस हि० हिम म० धुंधर क० ओले ह० तृण पर रहाहुवा पानी सु०

वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु, सचित्तेसु वा, अचित्तेसु वा, तं सरीरगं वायसं सिद्धंवा, वायसं गहियं वा, वायं परिगहियं उड्ढवाएसु उड्ढभागी भवति, अहेवाएसु अ- हेभागी भवति तंजहा-ओसा हिमए, महिया, करए, हरतणुए, सुद्धोदए. ते जीवा तेसिं णाणा विहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेह माहारेंति, ते जीवा आहारेंति, पुढवि सरीरं जाव संतं, अवरे वि य णं तेसिं तसथावरजोणियाणं ओसाणं जाव सुद्धोदगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ २२ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसं-

वायु से मिलाया गया. ऊर्ध्व गत वायु मे पानी भी ऊर्ध्वगत होवे, निचे वायु रहने से पानी भी नीचे होवे और तिर्च्छी वायु होवे तो पानी भी तिर्च्छी रहे. अब पानी नाम बताते हैं [१] ओस (२) हिम (३) धूण [४] गंड (ओले) [५) हरे घास पर रहा हुवा पानी और (६) शुद्ध पानी इत्यादिक पानी की जात में उत्पन्न होवे. वहां उत्पन्न होते विविध प्रकार के त्रस स्थावर जीवों का आहार करे शेष पूर्ववत् यह वायुयोनिक अप्काय कहा ॥ २२ ॥ अब अप्काय योनिक अप्काय बतलाते हैं कोई

पने शेष पूर्ववत् ॥ २१ ॥ अ० अब पु० पहिले अ० कहा इ० यहां ए० कितनेक स० सत्व णा० विविध प्रकार की जो० योनिवाले जा० यावत् क० कर्म निदान से त० तहां क० संक्रमण णा० विविध प्रकार के त० त्रस

पुढविसरीरं जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं तसथावरजोणियाणं अणुसूयगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ एवं दुरूवसंभवत्ताए । एवं खुरदुगत्ताए ॥ २१ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्माणियाणेणं तत्थ

कहते हैं जैसे सचित्त अचित्त शरीर की नेश्राय से जीव होते हैं वैसे ही उन के मल मूत्र वमनादिक में कृम्यादिक भाव से उत्पन्न होते हैं. वे जीव उन पृथिव्यादिक में उत्पन्न होते उन का ही आहार करे इत्यादिक सब पूर्ववत् जानना. जैसे मल मूत्रादिक में जीव उत्पन्न होते हैं वैसे ही तिर्यंच के शरीर में कीड़ कादि उत्पन्न होवे. वे उन के चर्म व मांस का भक्षण करे. चर्म में छिद्र बनावे और उस में जो अशुद्ध पुद्गल नीकले उस का आहार करे. सचित्त गवादिक शरीर में जीव उत्पन्न होवे तथा सचित्त अचित्त वनस्पति में घूण कीटकादिक उत्पन्न होवे. वे उत्पन्न होते उन वनस्पत्यादि शरीर का आहार करे इत्यादिक सब पूर्ववत् ॥ २१ ॥ अब अप्काया का प्रतिपादन करते हैं. कोई प्राणी तथाविध कर्म के उदय से त्रस स्थावर प्राणी के सचित्त अचित्त शरीर में वायु कर के अप्काय का शरीर बना, वायु से ग्रहा गया और

अ० पूर्ववत् ॥ २० ॥ अ० विकलेन्द्रिय पने ए० ऐसे कु० कुरूप जन्म पने ए० ऐसे खु० चर्म में कु० कीटक

तिरिक्खजोणियाणं चम्मपक्खीणं जाव मक्खायं ॥ २० ॥ अहावरं पुरक्खायं इहे गतिया सत्ता णाणाविहजोणिया, णाणाविहसंभवा, णाणाविहवुक्कमा, तज्जोणिया, तस्संभवा, तदुवुक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा, णाणाविहाणं, तस-थावराणं पोग्गलाणं सरीरेसुवा, सचित्तेसुवा, अचित्तेसुवा, अणुसूयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं, तसथावराणं पाणाणं, सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति

स्था में माता के स्नेह का आहार करते है ॥ २० ॥ पूर्वे जो मनुष्य तिर्यंच का अधिकार कहा उस से दूसरा स्थानक कहते हैं. विविध प्रकार की योनि वाले, संभव वाले व उपक्रम वाले जीवों कर्म के वश से आकर्षाते हुवे नाना प्रकार के त्रस स्थावर जीवों के पुद्गलोंमें, शरीर में, (१) सचित्तमें, अचित्त में(२) अन्य शरीर की नेश्राय से विकलेन्द्रिय पने उत्पन्न होवे. वहां पर उत्पन्न हो कर त्रस स्थावर जीवों का आहार करे यावत् अपनी काया बढावे इत्यादिक सब पूर्ववत्. पंचेन्द्रिय के मलमूत्र में उत्पन्न होने के संबंध में

---

(१) मनुष्य के शरीर में जूं लीखादिक उत्पन्न होवे सो

(२) मनुष्य को भोगवने योग्य मांचादिक में खटमलादिक उत्पन्न होवे सो

मूषक मं० मंगूस प० पयाली वि० विराली चं० चतुष्पद के ते० उनमें अ० पूर्ववत् ॥ १९ ॥ अ० अब पु० पहिले अ० कहा णा० विविध प्रकार के ख० खेचर पं० पंचेन्द्रिय ति० तिर्यंचयोनि वाले तं० वह ज० जैसे च० चर्म पक्षी लो० लोम पक्षी स० समुद्र पक्षी वि० वितत पक्षी के ते० उसमें

हाणं भुयपरिसप्पपंचिंदियथलयरतिरिक्खाणं तं गाहाणं जाव मक्खायं ॥ १९ ॥ अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियातिरिक्खजोणियाणं, तंजहा—चम्मपक्खीणं, लोमपक्खीणं, समुग्गपक्खीणं, विततपक्खीणं, तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावगासेणं इत्थीए जहा उरपरिसप्पाणं नाणत्तं, ते जीवा डहरासमाणा माउगात्तसिणेह माहारेंति; आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सतिकायं तसथावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवि य णं, तेसिं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदिय

यथाअवकाश से इत्यादिक सब अधिकार पहिले उरसर्पिका कहा वैसे ही कहना. वे जीव बढते हुवे पृथिव्यादिक का आहार करे, इत्यादिक सब पूर्ववत् जानना ॥ १९ ॥ इस संसार में विविध प्रकार के खेचर पंचेन्द्रिय हैं जैसे कि चर्म पक्षी वल्गुली प्रमुख लोम पक्षी सारस, राजहंसादि, और समुद्र पक्षी व वितत पक्षी वे दोनों मनुष्य क्षेत्र से बाहिर रहते हैं इस का सब अधिकार पूर्ववत् जानना. वे जीव बाल्याव

के ते० उन में अ० पूर्ववत् ॥ १८ ॥ अ० अब पु० पहिले अं० कहा णा० विविध प्रकार के भु० भुजपरि सर्प थ० स्थलचर पं० पंचेन्द्रिय ति० तिर्यंचयोनिवाले तं० वह ज० जैसे गो० गोयरे न० नकुल के सि० सिहल स० सरले भ० सरगा स० सरवा खा० खाल घ० घरकोली वि० विसमरी मृ०

थलयरतिरिक्खा पंचिंदियअहीणं जाव महोरगाणं सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा जाव मक्खायं॥ १८॥ अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियातिरिक्खजो-णियाणं तंजहा—गोहाणं, नउलाणं, सिहाणं, सरडाणं, सल्लाणं, सरघाणं, खाराणं, घरकोइलियाणं, विस्संभराणं, मूसगाणं, मंगुसाणं, पयलाइयाणं, बिरालियाणं, जोहाणं, चउप्पाइयाणं, तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावगासेणं इत्थिए पुरिसस्स य, जहा उरपरिसप्पाणं तहा भाणियव्वं, जाव सारूवि कडं संतं अवरेवि य णं तेसिं णाणावि-

स्था में वायुकाय का आहार करे, वृद्धि पाये बाद वनस्पति काय यावत् त्रस स्थावर जीवों का आहार करे इत्यादिक सर्व पूर्ववत् ॥ १८ ॥ श्री तीर्थंकर देवने भुजा से चलनेवाले स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय के भेद फरमाये हैं, जैसे कि गोयरे नकुल, सिहल सरल (किरकट) सरगा, सरवा, खाल (ताली) घरकोली (गिलहरी) विसमरी, मूषक, खिसकोली, वायाली इत्यादिक जीवों हैं वे यथा बीज से व

में अ० पूर्ववत् ॥१७॥ अ०अब पु० पहिले अ० कहा णा० विविध प्रकारके उ० उरपरिसर्प थ०स्थलचर पं० पंचेन्द्रिय ति० तिर्यंच योनि वाले तं० वह ज० जैसे अ० सर्प अ० अजगर अ० असालिये म० महोरग

एगखुराणं जाव सणप्पयाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ १७ ॥ अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा—अहीणं अयगराणं, असालियाणं महोरगाणं तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावगासेणं इत्थीए पुरिस जाव एत्थणं मेहुणे एवं चेव नाणत्तं, अंडं वेगइया जणयंति, पोयं वेगइया जणयंति, से अंडे उब्भिज्जमाणे इत्थिं वेगइया जणयंति पुरिसंपि णपुंसगंपि. ते जीवा डहरासमाणा वाउकाय माहारेंति, आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवि य णं तेसिं णाणाविहाणं उरपरिसप्प

करे इत्यादिक सब पूर्ववत् जानना ॥ १७ ॥ श्री तीर्थंकर देवने अपर स्थलचर पंचेन्द्रिय का स्वरूप कहा है सो बतलाते हैं इस जगत में सर्प, अजगर असालिये महोरग ऐसे उरपर के चार भेद है. वे यथा बीज से यथावकाश से स्त्री पुरुष का संयोग होवे जब उत्पन्न होवे. फीर योनि से अंडेरूप या पोतरूप उत्पन्न होवे. और वे अंडे या पोत तूटनेसे पुरुष, स्त्री व नपुंसक उत्पन्न हो जावे. वे बाल्याव-

ति० तिर्यंच योनि वाले ए० एक खुर वाले दु० दो खुर वाले गं० गंडी पद वाले स० नख वाले ते० उन

थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराणं दुखुराणं, गंडीपयाणं; सणप्पयाणं, तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावगासेणं, इत्थिपुरिसस्सय कम्म जाव मेहुणवत्तिए णामं संजोगे समुपज्जइ, ते दुहओ सिणेहं संचिणंति तत्थणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए, जाव विउट्टंति, ते जीवा माउओयं पिउसुक्कं एवं जहा मणुस्साणं इत्थिविवेगया जणयंति पुरिसंपि नपुंसगंपि. ते जीवा डहरासमाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं

खुर अश्वादिक द्विखुर, गोमहिषादिक, गंडीपद हस्त्यादिक, तथा सनीपद सिंहव्याघ्रादिक स्थलचर चतुष्पद प्राणी रहेहुवे हैं. वे यथाबीज से और यथा अवकाशसे स्त्री पुरुष के संयोग होने से उत्पन्न होते हैं. और उत्पन्न होते माता का रुधिर व पिता के वीर्य के आहार करे और जैसे मनुष्य उत्पन्न होवे वैसे पुरुष, स्त्री, नपुंसकपने उत्पन्न होवे बाल्यावस्था में माता के दुग्धादिक का आहार करे और अनुक्रम में बढते २ त्रस स्थावर जीवों का आहार

आ० पानी का सि० स्नेहका आ० आहार लेते हैं आ०अनुक्रम से बु० वृद्धि पाते हुवे व०वनस्पति कायाको त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी को ते० वे जी० जीव आ० आहार लेते हैं पु० पृथ्वी कायाको जा० यावत् सं० होते अ० दूसरे को ते० उन में णा० विविध प्रकार के ज०जलचर पं० पंचेन्द्रिय ति० तिर्यंच योनि वाले म० मच्छके जा० यावत् सु० सुसुमारके स० शरीर णा० विविध वर्ण वाले जा० यावत् प० कहा ॥ १६ ॥ अ० अब पु० पहिले अ० कहा णा०विविध प्रकार के च०चतुष्पद थ०स्थलचर पं०पंचेन्द्रिय

जणयंति, ते जीवा डहरासमाणा आउसिणेहमाहारेंति, आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सति-कायं तसथावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाणं, जलचरपंचिंदियातिरिक्खजोणियाणं मच्छाणं जाव सुसुमाराणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ १६ ॥ अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं चउप्पय-

आहार ग्रहण करते हैं वहां अनुक्रम से वृद्धि पाते अंडेरूप या पोत (थेली रूप) नीकले. और उस अंडे अथवा थेली में से स्त्री पुरुष नपुंसक पने उत्पन्न होवे. वे बाल्यावस्था में अपकाया का आहार करे और वृद्धि पाये बाद वनस्पति त्रस स्थावर प्राणी के शरीर का आहार करे. जिस पुद्गलों का वे आहार करते हैं उन को अपने शरीर रूप परगामा देते हैं शेष पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इस संसार में एक

प्रकार के ज० जलचर के पं०पंचेन्द्रिय ति०तिर्यंच योनिवाले के तं०वह ज०जैसे म० मच्छके जा०यावत् सु० सुपुमारके ते०उनमें अ० यथा बीज अ०यथावकाश इ०स्त्री का पु० पुरुष का यं०जो क०कर्म क० किये हुवे त० तैसे जा०यावत् त० पीछे ए० एक देशसे आ०ओज आ०आहार लेते हैं आ०अनुक्रम से वृ० वृद्धिपाये हुवे प० परिपाक को अ० मास त० पीछे का० काया से अ० निकलता हुवा अं० अंडेको ए० एकदा ज० जने पो० पोत ए० एकदा ज० जने से० उस अं० अंडेको उ० फोडे हुवे इ० स्त्री को ए० एकदा ज० जने पु० पुरुष को ए० एकदा ज० अने न० नपुंसक को ए० एकदा ज० जने ते० वे जी० जीव ड० बालक

तंजहा-मच्छाणं जाव सुसमाराणं तेसिं च णं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए पुरिसस्सयं क-म्मकडा तहेव जाव तता पच्छा एगदेसेणं ओयमाहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा पलि मागमणु-चिन्ना, ततो कायाओ अभिनिवट्टमाणा अंडं वेगया जणयंति, पोयं वेगया जणयंति; से अंडे उब्भिज्जमाणे इत्थिं वेगया जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति नपुंसगं वेगया

अब तिर्यंचयोनि में जलचर पंचेन्द्रिय के आहार का स्वरूप कहते हैं. इस जगत में कितनेक मच्छ, कच्छ, मगरमच्छ यावत् सुपुमारादिक जलचर प्राणी रहे हुवे हैं यथाबीजसे व यथाअवकाश से स्त्री पुरुषादिक वेदके उदय होने पर मैथुन सेवन करते वे प्राणी वहां उत्पन्न होते हैं. और उत्पन्न होते समय ओज

एकदा ज० जने पु० पुरुष को ए० एकदा ज० जने ण० नपुंसक को ए० एकदा ज०जने ते० वे जी० जीव ड० बालक मा० माता का क्खी० दूध स० घृतका आ०आहार लेते हैं अ० अनुक्रमसे वु० वृद्धि पाते ओ० ओदन कु० उडिद त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी का आ० आहार लेते हैं पु० पृथ्वी काया को जा० यावत् सा० स्वरूप क० बनाया हुवा अ० दूसरे को ते० उन में णा० विविध प्रकार के म० मनुष्य क० कर्म भूमि के अ० अकर्म भूमिके अ० अन्तर द्वीप के अ० आर्य के मि० म्लेच्छ के स० शरीर णा० विविध वर्ण वाले भ० होते हैं इ० ऐसा म० कहा ॥ १८ ॥ अ० अब पु० पहिले अ० कहा णा० विविध

ओयणं कुम्मासं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव सारूविकडं संतं अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाणं मणुस्सगाणं, कम्मभूमगाणं, अकम्मभूम-गाणं, अंतरदीवगाणं, आरियाणं, मिलक्खूणं, सरीरा णाणावण्णा भवंती तिमक्खायं ॥ १९ ॥ अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं जलचराणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं

स्तन के दूध का आहार करे और बडे होवे जब ओदन उडिदादिक त्रस स्थावर प्राणी का आहार करे और पृथ्वी के शरीर जो लवणादिक का भी आहार करे. इस तरह आहार कर के उस को अपनी धातु रूप परणमावे और कर्मभूमि के, अकर्मभूमि के, अतंर द्वीप के आर्यके, व म्लेच्छ के शरीर विविध प्रकार के शरीर वर्ण गंध रस स्पर्श सहित होवे. ऐसे अपने कर्मों से उत्पन्न होवे, इत्यादिक सब पूर्ववत् जानना ॥१८॥

पने पुं० पुरुष पने ण० नपुंसक पने वि० उत्पन्न होता है ते० वह जी० जीव मा० माता का ओ० रुधिर पि० पिता का सु० शुक्र तं०उन उ० दोनो सं० मिलाहुवा क० मलीन कि० विभित्स तं० उस को प० प्रथम समय, आ०आहार आ०करता है त० पीछे जं० जो से० उनकी मा० माता णा० अनेक प्रकार का र० रस वाला आ० आहार आ० करती है त० पीछे ए० एक देशसे ओ० ओज आ० आहार करता है आ०अनुक्रमसे वु० वृद्धि पाता प० परिपाक अ० प्राप्त त० तहां का० काया से अ० निकलता हुवा इ० स्त्री को ए०

समयाए विउट्टंति, ते जीवा माओओयं, पिउसुक्कं, तं तदुभयं संसट्ठं कलुसं किव्विसं तं पढमत्ताए आहारमाहारेति; ततो पच्छा जं से माया णाणाविहाओ रसविईओ आहारमाहारेंति, ततो एगदेसेणं ओयमाहारेंति. आणुपुव्वेणवुड्ढा पलिभागमणुविन्ना ततो कायातो अभिनिवट्टमाणा इत्थि वेगया जणयंति, पुरिसं वेगया जणयंति, णपुंसगं वेगया जणयंति, ते जीवा डहरासमाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेतिं आणुपुव्वेणं वुड्ढा

मैथुन सेवन करते तैजस व कार्माण शरीर को लेकर उत्पन्न होते हैं. वहां उत्पन्न होते माता का रुधिर व पिता का शुक्र का पहिले समय में आहार लेवे, बाद में माता नाना प्रकार के रस वाले जो आहार लेवे उस का एक देश का वे जीव ओज आहार करे. अनुक्रम से वहां वृद्धि पाते कोई पुरुप पने, कोई स्त्री पने, और कोई नपुंसकपने उत्पन्न होवें. बाल्यावस्था में माता के

अब पु० पहिले अ० कहा णा० विविध प्रकारके म० मनुष्य के तं० वह ज० जैसे क० कर्मभूमि के अ० अकर्म भूमिके अं० अंतरद्वीप के आ० आर्यके मि० म्लेच्छ के ते० उन में अ० यथाबीज अ० यथावकाश इ० स्त्री पु० पुरुष क० कर्म से क० निर्मित जो० योनिमें ए० यहां मे० मैथुन प्रत्ययिक सं० संयोग में स० उत्पन्न होता है ते० वह दु० दोनोंका सि० स्नेह को सं० संचय करता है त० तहां जी० जीव इ० स्त्री

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं मणुस्साणं तंजहा—कम्मभूमगाणं, अकम्मभूमगाणं, अंतरदीवगाणं, आरियाणं, मिलक्खुयाणं, तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावकासेणं, इत्थीए पुरिसस्सयं कम्मकडाए जोणिए एत्थणं मेहुणवत्तियाएव णामं संजोगे समुप्पज्जइ ते दुहओवि सिणेहं संचिणंति; तत्थणं जीवा इत्थित्ताए, पुरिसत्ताए, णपुं-

अकर्म भूमि के, अंतर द्वीप के आर्य अनार्य, ऐसे विविध प्रकार के मनुष्य हैं. वे यथा बीज से (जैसा जिस का बीज वैसे ही उस की उत्पत्ति १) और यथावकाश से (२) स्त्री पुरुष को वेद का उदय होने पर

---

(१) शुक्र अधिक होवे तो पुरुष, रुधिर अधिक होवे तो स्त्री और दोनों बराबर होवे तो नपुंसक यह बीज है.

[२] माताकी वाम कुक्षिमें स्त्री उत्पन्न होवे, दक्षिण कुक्षिमें पुरुष और वामदक्षिणाश्रित कुक्षिमें नपुंसक ।

जोणियाणं, मूलजोणियाणं, कंदजोणियाणं, जाव बीयजोणियाणं, आयजोणियाणं, कायजोणियाणं, जाव कूरजोणियाणं, उदगजोणियाणं, अवगजोणियाणं, जाव पुक्खलत्थिभगजोणियाणं, तस पाणाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ १४ ॥

स्पर्शवाले होवे. ये जीवों अपने किये हुवे कर्मों से उत्पन्न होते हैं यावत् श्री तीर्थंकर देवो ने कहा है यहां तक का ऐसा सब आलापा जानना. यह वनस्पति काया का स्वरूप कहा और पृथ्वी आदि चार आदि के एकेन्द्रिय का स्वरूप आगे कहेंगे ॥१४॥ अब त्रस काया का अधिकार कहते हैं त्रस काया में नारकी (१) देवता (२) मनुष्य, और तिर्यंच इस में से मनुष्य का अधिकार कहते हैं. इस जगत में कर्म भूमि के,

---

(१) नारकी अप्रत्यक्षपने अनुमानग्राही जानना अथवा दुष्कृत के फलको भोगनेवाले हैं. उन को अशुभ पुद्गल का ओज आहार रहा हुवा है, परंतु कवल आहार नहीं है ।

(२) देवता को भी आहार अनुमानगम्य है यह आहार एकान्त शुभ है. उनको भी ओज आहार है. यह आहार दो प्रकार का है एक आभोगिक और दूसरा अनाभोगिक. अनाभोगिक समयर में होता है और आभोगिक जघन्य चतुर्थ भक्त आहार और उत्कृष्ट तेत्तीस हजार वर्षका है ।

रुक्खजोणियाणं, अज्झारोहजोणियाणं, तणजोणियाणं, ओसहिजोणियाणं, हरिय जोणियाणं, रुक्खाणं; अज्झारुहाणं, तणाणं, ओसहीणं, हरियाणं, मूलाणं, जाव बीयाणं, आयाणं, कायाणं, जाव करवाणं, उद्गाणं, अवगाणं, जाव पुक्खलत्थिभगाणं, सिणेह माहारेंति. ते जीवा आहारेंति पुढवि सरीरं जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं, अज्झारोहजोणियाणं, तणजोणियाणं, ओसहिजोणियाणं, हरिय

से वैसे ही अध्यारोह के, तृण के, धान्य के और हरिकाय के तीन आलावे जानना. उदक योनिक, उदक अवकपन का यावत् जिस में से पान नीकले उस में त्रस प्राणी उत्पन्न होवे यह सब मिलकर बत्तीस आलावे हुवे और आगे के ४२ मिलकर ७४ आलावे हुवे. वे जीव वनस्पति में उत्पन्न होते पृथ्वी योनिक, उदक योनिक, वृक्ष योनिक, अध्यारोह योनिक, तृण योनिक, धान्य योनिक, व हरित योनिक वृक्ष का, अध्यारोह का, तृण का, धान्य का, हरित का, मूल का यावत् बीज का, आय, काय यावत् कुरवंद का, उदक का अवगाहि यावत् पुखलत्थि की चीकास का आहार करे. आहार करके अपने स्वरूप में परगमावे यह सब अर्थ पूर्ववत् जानना. वे वृक्षयोनिक, अध्यारोह योनिक, तृण योनिक यावत् पुष्कलार्क योनिक जीवों त्रस प्राणियों के शरीर का विविध प्रकार के वर्ण, गंध, रस यावत्

जम्बूणाल पने पु० पुष्कर कमल पने प० उनकी जाति पने वि० उत्पन्न होते हैं पूर्ववत् ॥१३॥ पूर्ववत् ॥ १४॥ अ०

पुढविजोणिएहिं जाव बीएहिं, रुक्खजोणिए, रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं एवं अज्झारुहेहिंवि तिण्णि, तणेहिंवितीण्णि आलावगा, ओसहीहिंवितिण्णि, हरिएहिंवि तिण्णि, उदगजोणिएहिं उदएहिं, अवएहिं, जाव पुक्खलत्थिभ एहिं तस पाणत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं पुढविजोणियाणं, उदगजोणियाणं,

पुढविजोणिएहिं णिएहिं अज्झारुहेहिं, अज्झारोह जोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं, पुढविजोणिएहिं तणेहिं, तणजोणिएहिं तणेहिं, तणजोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं एवं ओसहीहिं वि- तिन्नि आलावगा. एवं हरिएहिं वि तिन्नि आलावगा. पुढविजोणिएहिंवि आएहिं, काएहिं जाव कूरेहिं; उदगजोणिएहिं, रुक्खेहिं, रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं एवं अज्झारुहेहिंवि

वृक्ष योनिक मूल से यावत् बीज से, वृक्ष योनिक अध्यारोह से, अध्यारोह योनिक अध्यारोह से तथा अध्यारोह योनिक मूलसे यावत् बीजसे और पृथ्वी योनिक तृण से, तृण योनिक तृण से तथा तृण योनिक मूलसे यावत् बीज से ऐसे इन तीनों के तीन २ आलावे मिलकर नव हुवे ऐसे ही धान्यके तीन, हरिकाय के तीन, पृथ्वी योनिक आर्य नामक वनस्पति, काय नामक वनस्पति, यावत् कुरंवाद नामक वनस्पति उदक योनिका वृक्ष से, वृक्ष योनिक का वृक्ष से, वृक्ष योनिक का मूल से यावत् बीज

नीपने सु० सुभोगिक पने सो० सुगन्ध पने पो० श्वेत कमल पने स० सप्तपर्ण पनें स० सहस्र पर्ण पने ए० ऐसे क० कल्हार पने को० कोकन पने अ० अरविन्द पने ता० तामरस कमल पने भि० बिष

तामरसत्ताए, भिसभिसमुणाल पुक्खलत्ताए, पुक्खलत्थिभगत्ताए, विउट्टंति. ते जीवा तेसिं णाणाविहजोणियाणं उदगाणं सिणेह माहारेंति, ते जीवा आहारेंति, पुढवि सरीरं जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं जाव पुक्खलत्थि-भगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं एगो चेव आलावगो ॥ १२ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता तेसिं चेव पुढविजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खेजोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं रुक्खजोणिएहिं, अज्झारोहेहिं, अज्झारोहजो-

जाति पने महापुंडरीक कमल पने, सो पांखडी वाले कमल पने, सहस्र पांखडीवाले कमल पने, कल्हार जाति पने, को कणा पने, अरविन्द कमल पने, तामरस कमलपने, कमलतंतु पने, पुष्करपने, और ऐसे अन्य जाति पने, उत्पन्न होवे वे जीव नाना प्रकार की योनिवाले उदक का आहार करे शेष सर्व पूर्ववत् यों उदक योनिके २१ आलापक हुवे और सब मिलकर वनस्पति काया ४२ आलावे हुवे. ॥ १२ ॥ अब अन्यत्र प्रकार से वनस्पति का स्वरूप कहते हैं पृथ्वी योनिक वृक्ष से, वृक्ष योनिक वृक्ष से, तथा

तैसे उ० उदकयोनि वाले रु० वृक्ष के इ० एकेक ॥ १२ ॥ अ० अत्र पु० पहिले अ० कहा इ० यहां ए० कितनेक स० सत्व उ० पानीपने अ०आवगपने प० फूलनपजे से० सेवालपने क० कलंवूकपने ह० आहाड पने क० कसेरुगपने क० कच्छभानपने उ० उत्पल कमल पने प० पद्म पने क० कुमुदिनी पने न० नालि-

इक्केक्के ॥ १२ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा, णाणाविहजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए अवगत्ताए, पणगत्ताए, सेवालत्ताए, कलंबुगत्ताए, हडत्ताए, कसेरुगत्ताए, कच्छभाणियत्ताए, उप्पलत्ताए, पउमत्ताए, कुमुयत्ताए, नलिणत्ताए, सुभगत्ताए, सोगंधियत्ताए, पोंडरीय महापोंडरीरत्ताए, सयपत्ताए, सहस्सपत्ताए, एवं कहलारकोकणयत्ताए, अरविंदत्ताए;

योनिक वनस्पति के और २० पानी योनिक वनस्पतिके यों सब मिलकर ४१ आलापक वनस्पति के हुवे ॥ १२ ॥ श्री तीर्थंकर भगवानने फरमाया है कि इस जगत में कितनेक सत्व उदक योनिक वन वनस्पति में उत्पन्न होने का कर्मबंध कर विविध प्रकार की योनिवाले उदक में उदकपने, अवनकपने पणग (सेवाल) पने, कलम्बुक पने, आहड पने, कसेरुग पने, कच्छभाण पने उत्पल कमलपने, सूर्यविकाशी कमल पने, चंद्रविकाशी कमलपने, नलिनकमल पने, सुभग कमल पने, सुगंध कमल पने, पुंडरीक कमल की

रु० वृक्ष पने वि० उपजते हैं ते० वे जी० जीव ते० उन वि० विविध जो० योनि वाला उ० पानी का सि० स्नेह का आ० आहार करते हैं ते० वे जी० जीव आ० आहार करते हैं पु० पृथ्वी काया को जा० यावत् सं० होते अ० दूसरे के ते० उनमें उ० उदक योनि वाले रु० वृक्षका स० शरीर णा० विविध वर्ण जा० यावत् म० कहा ज० जैसे पृ० पृथ्वी योनिक के च० चार आ आलाप अ० अध्यारोह का भी त० तैसे त० तृणके ओ० धान्यके ह० हरिके च० चार आ० आलाप भ० कहना ए० एकेक त०

ते जीवा तेसिं णाणाजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति, पुढवि सरीरं जाव संतं अवरेविय णं तेसिं उदगजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं, जहा पुढविजोणियाणं चत्तारि गमा अज्झारुहाणवि तहेव तणाणं, ओस-हीणं, हरियाणं, चत्तारि आलावगा भणियव्वा एक्केक्के तहा उदगजोणियाणं रुक्खाणं

करतेहैं, फीर पृथिव्यादिक का संबंध जैसा मिलताहै वैसा आहार करतेहैं इत्यादि सब पूर्ववत् जानना जैसे पहिले पृथ्वीयोनिक वृक्ष के चार आलापक कहे वैसे यहां पानीयोनिक व तृण. धान्य और हरिकाय योनिक वृक्ष के आलापक चारों भी जानना. पृथ्वी योनिक वृक्ष के चार, अध्यारोह वृक्ष के चार, तृण योनिक के चार, धान्य के चार, और हरी काय के चार, आर्यादिक वनस्पति का एक यों २१ आलापक पृथ्वी

छ० छत्रगपने वा० वासाणीपने कू० कूरपने वि० उपजते हैं पूर्ववत् यावत् "आदमक्खायं" ए० एक आ० आलाप से० शेप ति० तीन ण० नहीं हैं॥ ११॥ अ० अब पु० पाहिले अ० कहा इ० यहां ए० कितनेक स० सत्व उ० उदकयोनिक उ० उदक संभव जा० यावत् क० कर्म के नि० निदान से त० तहां वु० संक्रमण णा० निविध जो० योनिवाला उ० पानीमें

विउट्टंति. ते जीवा तेसिं णाणाविहजोणियाणं पुढवीणं सिणेह माहारेंति तेवि जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं पुढविजोणियाणं आयत्ताणं जाव कूराणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं एगोचेव आलावगो सेसा तिण्णि-णत्थि ॥ ११ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया, उदगसंभवा, जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति.

है कि इस जगत में कोई प्राणी अपने कर्मों से खींचा कर पृथ्वी योनिक वनस्पति में उत्पन्न होवे-जिनके नाम आर्य नामा वनस्पति, वाय; काय, कुहाण (तोइ) कंदुक, उवहीणिक, सछत्र, वासाणिका, कूर नामा, इत्यादि अनेक प्रकार की वनस्पति उपजकर पृथ्वी काया का आहार करके अपनी काया जैसा रूप बनावे. इस का एक ही आलावा जानना क्यों कि यह वनस्पति अन्य प्रकार की वनस्पति में उत्पन्न नहीं होती है. ॥ ११ ॥ अब अप्काय योनिक वनस्पति का विशेष बतलाते हैं. इस जगत में कोई जीव अपने कर्मों से खींचा कर पानी के स्थान में वनस्पतिपने आकर उत्पन्न होते हैं. वे पानीका ही आहार

के भी च० चार आ० आलाप पूर्ववत् ॥ १० ॥ आ० आर्यवनस्पतिपने वा० वायवनस्पतिपने का० काया वनस्पतिपने कू० कोहाण वनस्पतिपने कं०कंदुकपने उ० उपहीणिकपने नि०निपहनीतपने स० सछत्रपने

तणत्ताए विउट्टंति जाव मक्खायं (२) एवं तणजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति तणजोणियं तण सरीरं च आहारेंति जाव मक्खायं (३) एवं तण जोणिएसु तणेसु मूलत्ताए जाव बीएत्ताए विउट्टंति ते जीवा जाव एव मक्खायं (४)एवं ओसहीणं वि चत्तारि आलावगा ॥ एवं हरियाणवि चत्तारि आलावगा ॥ १० ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहजोणियासु पुढवीसु आयत्ताए, वायत्ताए, कायत्ताए, कूहणत्ताए, कंदुकत्ताए, उव्वेहणियत्ताए, निव्वेहणियत्ताए, सछत्ताए, छत्तगत्ताए, वासाणियत्ताए, कूरत्ताए,

तृण में उत्पन्न होवे आगे का सब पूर्ववत् (२) तीसरे आलावे में तृण योनिक तृण में तृणपने उत्पन्न होवे (३) चौथे आलावे में तृण योनिक तृण में मूल कंदादिकपने उत्पन्न होवे शेष पूर्ववत् (४) इस तरह धान्य की जाति के भी चार आलापक जानना वैसे ही हरितकाय के भी चार आलापक ऐसे सब मिलकर बीस आलावे हुवे ॥ १० ॥ श्री तीर्थंकरों ने अन्य वनस्पति आश्री ऐसा फरमाया

सि० स्नेहका आ० आहार लेते हैं पूर्ववत् ॥ ७ ॥ पूर्ववत् ॥ ८ ॥ पूर्ववत् ॥ ९ ॥ ए० ऐसे ओ० धान्य

सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोहसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थवुक्कमा अज्झा रोहजोणिएसु अज्झारोहेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोह जोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेह माहारेंति जाव अवरे वि य णं तेसिं अज्झारोहजोणि- याणं मूलाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावन्ना जाव मक्खायं ॥ ९ ॥ अहावरं पुरक्खा यं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंभवा जाव णाणाविहजोणियासु पुढवीसु तणत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविह जोणियाणं पुढवीणं सिणेह माहारेंति जाव ते जीवा कम्मोववन्ना भवंतीति मक्खायं (१) एवं पुढविजोणिएसु तणेसु-

कि कोइ जीव अध्यारोहयोनिक उस अध्यारोह के मूलकंदादिक में उत्पन्न होवे और वहां उनके शरीर का आहार करे शेष पूर्ववत् ॥ ९ ॥ अब वृक्ष छोड कर अन्य वनस्पति काय के संबंध में कहते हैं. इस जगतमें कोई एक पृथ्वी काय योनिक पृथ्वी में वस्नपाति काय का संभव है, उस में बढे यावत् नानाप्रकार के योनिवाली पृथ्वी में तृणपने उत्पन्न होवे और पृथ्वी का आहार करे ऐसे ही सब वृक्ष का पहिला आलावा कहा वैसे ही जानना वैसे ही चारों आलावें वृक्ष की समान जानना. (१) दूसरे आलावे में पृथ्वी योनिक

रोहपने वि० उत्पन्न होते हैं ते० वे जी० जाव ते० उस में अ० अध्यारोह योनिवाले के अ०अध्यारोह के

रोहेसु अज्झारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सि-णेह माहारेंति. ते जीवा आहारेंति ते जीवा पुढविसरीरं जाव सारूविकडं संतं अ-वरेवि य णं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जाव मक्खा-यं ॥ ७ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोह सं-भवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थवुक्कमा अज्झारोहजोणिएसु अज्झारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरा आउसरीरा जाव सारूविकडं संतं अवरे वि य णं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ ८ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया

ग्रहण किया हुवा आहार में से कुछ विभाग लेकर आहार करे और शरीर में परगमावे यावत् सब पूर्ववत् जानना. ॥ ७ ॥ उस अध्यारोह वृक्षमें उत्पन्न हुवे अन्य जातिके जीवों भी उस अध्यारोह शरीर का आहार करते हैं यावत् सब पूर्ववत् जानना ॥ ८ ॥ अब अध्यारोह की चौथी वक्तव्यता भगवन्तने ऐसी फरमाइ है

पूर्ववत् ॥ ५ ॥ ए० कितनेक स० सत्व अ० अध्यारोहणपने वि० उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥ अ० अब पु० पहिले कहा इ० यहां ए० कितनेक स० सत्व आ० अध्यारोह योनिवाले अ० अध्यारोह सं० संभव जा० यावत् क० कर्म नि० निदान से त० तहां वु० संक्रमण रु० वृक्ष योनिवाले अ० अध्यारोह मे अ० अध्या

रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तदुवक्कम्मा कम्मोववन्न-गा कम्मनियाणेणं तत्थवुकमा रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं अज्झारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवी स-रीर जाव सारूविकडं संतं अवरे वि या णं तेसिं रुक्खजोणियाणं अज्झारुहाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ ६ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोह जोणिया अज्झारोहसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थवुकमा रुक्खजोणिएसु अज्झा-

होता है उस संबंध में भी तीर्थंकरों का फरमान बताते हैं. जगत्वासी जीव वैसे ही प्रकार के कर्म करके एक वृक्षमें अन्य रूप से-जैसे पिंपलादि वृक्षपर वाल्लि आदि-उत्पन्न हो उस मूलवृक्ष का परगामा हुवा आहार वे स्वयं आकर्ष कर और उस का आहार कर अपने रूप, वर्ण, गंध रस संस्थान में परगमा कर अपने शरीर की पुष्टि करते हैं. यह भी कर्मों की विचित्रता श्री तीर्थंकर देवोंने फरमाइ है. ॥ ६ ॥ उस अध्यारोह वृक्षके अन्य स्थानो में और भी जीवों आकर उत्पन्न होवे और उस अध्यारोह वृक्ष का

पने सा० शाखापने प० प्रवालपने प० पत्रपने पु० पुष्पपने फ० फलपने वी० वीजपने वि० उत्पन्न होते हैं

स्संभवा तदुवक्कमा कम्मोवगा कम्मानियाणेणं तत्थवुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु मूलत्ताए, कंदत्ताए, खंधत्ताए, तयत्ताए, सालत्ताए, पवालत्ताए, पतत्ताए, पुप्फत्ताए, फलत्ताए वीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवी सरीरं—आउ—तेउ—वाउ—वणस्सइ णाणाविहाणं तसथावरा. णं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं तं सरीरगं जाव सारूविकडं संतं अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं मूलाणं, कंदाणं, खंधाणं, तयाणं, सालाणं, पवालाणं जाव बीयाणं सरीरा, णाणावण्णा णाणागंधा, जाव णाणाविहसरीरपुग्गलं विउव्वित्ता ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंती ति मक्खायं ॥ ५ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता

अब अन्य स्थान आश्रित कहते हैं. इस जगत् में कोई एक वृक्षयोनिक अथवा अन्य अवयवरूप प्राणी उत्पन्न होवे और एक वनस्पति का जीव सर्व वृक्ष के अवयव व्यापार से या अन्य जीव उस के व्यापारसे उस के मूल, कंद, स्कंध, शाखा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, प्रवाल और अंकुरपने उत्पन्न होवे. वे जीव वहां उत्पन्न होते वृक्ष की चीकास का आहार लेवे यावत् वे जीव मूल कंदादिक वन वनस्पति के अवयवरूप कर्म के वश से उत्पन्न होवे. ऐसा श्री तीर्थंकर देवने कहा है ॥ ५ ॥ अब एक वृक्ष के उपर दूसरा वृक्ष

उत्पन्न भ० होते हैं म० कहा ॥ ३ ॥ पूर्ववत् ॥ ४ ॥ मू० मूलपने कं० कंदपने खं० स्कंधपने त० त्वचा-

रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तदुवकम्मा, कम्मोवगा, कम्माणियाणेणं, तत्थवुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवी सरीरं आउ-तेउ—वाउ-वणस्सइ सरीरं तस थावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणामियं सारूविकडं संतं अवरेवि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खा णं सरीरा णाणावण्णा जाव ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंति ति मक्खायं ॥ ४ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया त-

जीवों वृक्ष में उपजने का कर्मोपार्जन करके वृक्ष के किसी विभाग में उत्पन्न होते हैं, उस में ही वृद्धि पाते हैं, वारंवार चवकर कर्मों के वश से वहां ही उत्पन्न होते हैं, वे जीवों भी वृक्ष ने ग्रहण किया हुवा आहार मेंसे आहार का कुच्छ हिस्सा स्वयं लेते हैं, और उसे शरीर रूप परगमाकर वृद्धि पाते हैं. फिर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति व अनेक प्रकार के त्रस जीवों के शरीर का आहार कर अपने शरीर जैसा परगमाकर मूलरूप, स्कन्धरूप, शाखारूप तथा पुष्प, फल आदि अनेक रूप, अनेक वर्ण, गंध, रस, स्पर्श तथा संस्थान मय बन जाते हैं. यह सब कर्मों की विचित्रता है ऐसा श्री तीर्थंकर देव का कथन है. ॥ ४ ॥

हैं प० विध्वंश तं० उस स० काया को पु० पहिले आ० आहार लिया हुवा त० त्वचा से आ० आहार लिया वि० परगमा कर सा० अपना स्वरूप किया सं० हुवा अ० दूसरे ते० उसमें रु० वृक्ष योनि वाले रु० वृक्ष के स० शरीर णा० विविध वर्ण णा० विविध गंध णा० विविध रस णा० विविध स्पर्श णा० विविध संठाण सं० रहे हुवे आ० विविध शरीर पु० पुद्गल वि० वैक्रेय ते० वे जी० जीव क० कर्म से उ०

तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विप्परिणामियं सारुविकडं संतं अवरेवि य णं तेसिं रु-क्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा णाणारसा णाणाफासा णाणा-संठाणसंठिया णाणाविह सरीर पुग्गल विउव्विया ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंति ति मक्खायं ॥ ३ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगातिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा

प्राप्त पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और अनेक प्रकार के त्रस प्राणियों के शरीर का आहार कर अचित्त कर देते हैं. वह आहार उन की त्वचा से शरीर में परगमता है. और उन के शरीर रूप अनेक वर्ण, गंध, रस और स्पर्शमय बन अनेक प्रकार के आकार में बन जाते हैं. और वैक्रेय शरीर जैसे उन के शरीर के पुद्गल बन जाता है. इस तरह कर्मों से जीवों की विचित्रता होती है ऐसा श्री ती-र्थंकर देवने फरमाया है ॥ ३ ॥ अब वनस्पति के अवयवों का अधिकार कहते हैं. इस जगत् में कितनेक

हैं म० कहा ॥ २ ॥ अ० अब पु० पहिले कहा इ० यहां ए० कितनेक स० सत्व रु० वृक्ष योनिक रु० वृक्ष में संभव रु० वृक्ष में वु०संक्रम पु० पृथ्वी की योनिवाले रु० वृक्ष से रु० वृक्षपना में वि०उपजते हैं ते० वे जी० जीव ते० उस में पु० पृथ्वी योनिवाले रु० वृक्ष के सि० स्नेह का आ० आहार करते हैं ते० वे जी० जीव आ० आहार करते हैं पु० पृथ्वी काया को आ० अप् ते० अग्नि वा० वायु व० वनस्पति स० काया को णा० विविध त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी के स० शरीर को अ० निर्जीव कु० करते

ति मक्खायं ॥ २ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया, त्तस्संभ वा, तदुक्कमा, कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थवुक्कम्मा पुढविजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं पुढविजो णियाणं रुक्खाणं सिणेह माहारेंति. ते जीवा आहारेंति पुढवी सरीरं आउ तेउ वाउ वणस्सइ सरीरं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं

ईश्वरादि कुच्छ भी नहीं कर सकते हैं ॥ २ ॥ अब पृथ्वीयोनिक वनस्पति में अन्य जीव उत्पन्न होते हैं सो बतलाते हैं. जिन जीवों की कर्मों के वश से उत्पत्ति वृक्ष में रही हुइ है वे जीव पृथ्वीयोनिक वृक्ष में आकर उत्पन्न होते हैं, संक्रमते हैं वृद्धि पाते हैं, और वृक्ष रूप ही बनजाते हैं. वे जीवों उस पृथ्वी योनिक जीवने जो आहार ग्रहण किया था उस में से कुच्छ हिस्सा स्वयं खींचकर अपने शरीर में परगमाते हैं, उस से वृद्धि पाते हैं परंतु उस वृक्ष को पीडा नहीं देते हैं. वडे हुवे बाद उस वृक्ष का और उपर से

प॰प्राणीके स॰शरीरको अ॰निर्जीव कु॰करतेहैं प॰विध्वंस तं॰उस स॰शरीरको पु॰पूर्वाहार त॰त्वचाआहारित रि॰परमगाकर सा॰अपने रूपबनाते सं॰हुवे को अ॰दूसरे रूप ते॰उसमें पु॰पृथ्वी जो॰ योनिवाले रु॰ वृक्ष के स॰ शरीर वि॰विविध ार्ण वि॰विविधगंध णा॰विविध रस णा॰विविध स्पर्श णा॰विविध संठान सं॰रहे हुवे णा॰ विविध स॰ शरीर पु॰ पुद्गल वि॰ विकुर्वी कर ते॰ वे जी॰ जीव क॰ कर्म से उ॰ उत्पन्न भ॰ होते

रिविद्धत्थं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणयं सारुवियकडं संतं अवरेवि य णं तेसिं पुढविजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा णाणारसा णाणाफासा णाणासंठाणसंठिया णाणाविह सरीर पुग्गल विउव्वित्ता ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंति

फिर अनेक प्रकार के वृक्ष के भाव पावें. वे वहां उत्पन्न हुवे बाद पृथ्वी में रही हुइ चीकास का आहार करते हैं. परंतु पृथ्वी को कुच्छ भी दुःख नहीं होता है. (माता पुत्रवत्) जैसे पृथ्वी का आहार वे जीवों करते हैं वैसे ही पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति व त्रस जीवों के शरीर का आहार करते हैं. और उन के शरीर का आहार कर उन के पुद्गलों को निर्जीव कर देते हैं. फिर त्वचा, छालसे ग्रहण किया हुवा वह सब वनस्पति को शरीर रूप होकर परगमता है जिस से मूल, शाखा, प्रतिशाखा, पत्र, फूल, फल इत्यादि अवयवों में अनेक प्रकार के वर्ण, गंध, रस, स्पर्शपने परगमते हैं. अनेक प्रकार के संस्थान मय वनस्पति के शरीर वैक्रेय जैसे दीखते हैं. इस तरह कर्मों से ही जीवों की विचित्रता दीखती है परंतु

अ० यथा बीज से अ० यथावकाश इ० यहां ए० कितनेक स० सत्व पु० पृथ्वीयोनिक पु० पृथ्वी में सं० संभव पु० पृथ्वी में वु० संक्रमण त० तद्योनिक त० तत् संभव त० तत् संक्रमण क० कर्म को प्राप्त क० कर्म निदान से त० वहां वु० उत्पन्न णा० विविध प्रकार की जो० योनिके पु०पृथ्वी में रु० वृक्षपने वि० उत्पन्न होते हैं ते० वे जी०जीव ते०उन णा०विविध जो०योनिवाली पु०पृथ्वीका सि०स्नेह का आ० आहार करते हैं ते० वे जी० जीव आ० आहार करते हैं पु० पृथ्वी काय को आ० अप्काय को ते० अग्नि काय को वा० वायु काय को व० वनस्पति काय को णा० विविध प्रकार के त० त्रस था० स्थावर

णिया तस्संभवा तदुवकम्मा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थवुकम्मा णाणाविह जोणियासु पुढवीसु रुक्खत्ताए विउट्टन्ति ते जीवा तेसिं णाणाविह जोणियाणं पुढवीणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउसरीरं तेउसरीरं वाउसरीरं वणस्सइसरीरं णाणाविहाण तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति प-

पोर बीज वनस्पति इक्षु प्रमुख (४) स्कन्ध बीज वनस्पति डाली काटकर रोपने से उत्पन्न होवे सो वट आदि तथा जिस का बीज उत्पत्ति का कारण है वही उस का बीज जानना. जैसे शाली के अंकुर के शाली बीज उत्पत्ति कारण होता है. यों पृथ्वी, पानी, बीज, आकाश और काल के संयोग मिलने से तथा विध कर्मों के उदय से वनस्पति काया में उत्पन्न होनेवाले होवे. परंतु वहां वनस्पति में उत्पन्न होता पृथ्वी काया में उत्पन्न होवे. उसी में अंकूर रूप संक्रमण पाकर उसी योनि में उसी रूप को प्राप्त होवें

॥ आहार परिज्ञा नामक मेकोनविंशतितम मध्ययनम् ॥

सु० सुना मे० मैंने आ० आयुष्यवान् भ० भगवानने ए० ऐसा अ० कहा इ० यहां ख० निश्चय आ० आहार परिज्ञा अ० अध्ययन त० उस का अ०यह अ० अर्थ ॥ १ ॥ इ० यहां ख० निश्चय पा० पूर्वादि दिशा में स० सर्व से स० सर्व लो० लोक में च० चार बी० बीज काया ए० ऐसे आ० कही जाती हैं तं० वह ज० जैसे अ० अग्रबीज मू० मूलबीज पो० गंठ बीज खं० स्कन्ध बीज ते० उन में

सुयं मे आउसंतेणं भगवया एव मक्खायं इह खलु आहारपरिण्णाणामज्झयणे तस्स णं अयमट्ठे ॥१॥ इह खलु पाईणं वा सव्वतो सव्वावंति च णं लोगंसि चत्तारि बीयकाया एव माहिज्जंति तंजहा अग्गबीया मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, तेसिं च णं अहाबीएणं अहावगासेणं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया, पुढविसंभवा, पुढविवुक्कमये तज्जो-

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू आहार परिज्ञा का जैसा अर्थ मैंने श्री महावीर प्रभुसे सुना है वैसाही तुझे कहता हूं॥१॥ इस जगत् की पूर्वादिक दिशी विदिशि रूप सब लोक में चार प्रकार के बीज-उत्पत्ति के स्थान श्री तीर्थंकर देवने कहे हैं. (१) अग्रबीज वनस्पति अग्र भाग में उत्पन्न होनेवाली तिल, ताड सहकार वगैरह (२) मूलबीज वनस्पति जिस का बीज मूल होवे आर्द्रकादिक (३)

आ० आत्म हितैषी आ० आत्मगुप्त आ० आत्मयोगी आ० आत्म पराक्रमी आ० आत्म रक्षक आ० आत्मा नुकंपा आ० आत्म निस्तारक आ० आत्मा को प० पार करेगा त्ति० ऐसा वे० कहता हूं ॥ ५२ ॥

यहिते आयगुत्ते आयजोगे आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकंपए आयानिप्फेडए आयाणमेव पडिसाहरेज्जासि त्तिबेमि ॥ ५२ ॥ इति किरियाट्ठाण णामं अट्ठारस मज्झयणं सम्मत्तं ॥ २ ॥ १८ ॥ * *

निवर्तनेवाला महा पुरुष कहा जाता है, ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं यह क्रियास्थान नाम अठारवां अध्ययन समाप्त हुवा इस में क्रिया का अधिकार कहा क्रियावन्त जीव आहार लेते हैं. इस लिये आहार परिज्ञा नामक अध्ययन कहते हैं. ॥ २ ॥ १८ ॥ * *
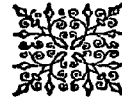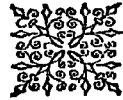
नहीं मु० मुक्त हुवे णो० नहीं प० निर्वाण पाये जा० यावत् णो० नहीं स० सर्व दु० दुःख का अं० अन्त किया णो० नहीं क० करते हैं णो० नहीं क० करेंगे ॥ ५१ ॥ ए० इस ते० तेरवे कि० क्रिया स्थानक में व० रहते हुवे जी० जीव सि० सिद्ध हुये बु० समझे मु० मुक्त हुये प० निर्वाण पाये जा० यावत् स० सर्व दु० दुःख का अं० अन्त किया क० करते हैं क० करेंगे ए० ऐसे से० वह भि० साधु आ० आत्मार्थी

जाव णो सव्वदुक्खाण अंतकरेंसुवा णो करिस्संति णो करिसंति वा ॥ ५१ ॥ एयंसि चेव तेरसमे किरियाट्ठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिसु बुज्झिसु मुच्चिंसु परिणिव्वाइंसु, जाव सव्व दुक्खाणं अंतं करेंसुवा करेंति करिस्संति वा एवं से भिक्खू आयट्ठी आ-

जाना है कर्म से मुक्त नहीं वने हैं. यावत् सर्व दुःखों का अंत भी किया नहीं है, करेंगे नहीं और वर्तमान कालमें करते भी नहीं हैं. क्यों कि वारह प्रकार के क्रिया स्थानक अधर्म पक्ष में ही गिने गये हैं ॥ ५१ ॥ तेरवां स्थानक में रहने वाले जीव अतीत काल में सिद्ध हुवे, उनों ने तत्त्वमार्ग को जाना, अष्ट कर्म से मुक्त हुवे, शीतली भूत वने यावत् सर्व दुःखों का अंत अतीत काल में किया, आगामिक काल में करेंगे और वर्तमान काल में कर रहें हैं. ऐसा साधु मोक्षार्थी, आत्मार्थी, आत्मा का हित चिन्तवनेवाला, आत्मा को गोपनेवाला, योग को अपने वश करनेवाला, आत्मा के लिये पराक्रम का करनेवाला, आत्माका रक्षक आत्मा की अनुकंपा करनेवाला, आत्मा को संसार से मुक्त करनेवाला, तथा क्रिया का स्थानक से

मरण जो० योनिमें ज० जन्म सं० संसार पु० फिर भ० होवे ग० गर्भवास भ० होवे ए० ऐसे क० कंकाशके भा० भागी भ० होवेंगे ते० वे णो नहीं व० वहुत दं० दंडन जा० यावत् णो० नहीं व० वहुत मुं० मुंडन जा० यावत् व० वहुत दु० दुःख दो० दुर्मन के णो० नहीं भा० भागी भ० होंगे अ० अनादि अ० अपार दी० दीर्घ चा० चारगति सं० संसार कं० अटवी में भु० वारंवार णो० नहीं प० परिभ्रमण करेंगे ते० वे सिं० सिद्ध होवेंगे जा० यावत् स० सर्व दु० दुःख का अं० अन्त करेंगे ॥ ५० ॥ इ० इन वा० वारह कि० क्रिया स्थानक में व० रहते हुवे जी० जीव णो० नहीं सि० सिद्ध हुवे णो० नहीं बु० समझे णो०

णं जाव णो बहूणं मुंडणाणं, जाव बहूणं दुक्ख दोमणस्साणं णो भागिणो भविस्संति अ-णादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारे भुज्जो भुज्जो णो परियट्टिस्संति तेसिं सिज्झंति जाव सव्व दुक्खाण अंतं करिस्संति ॥ ५० ॥ इच्चेतेहिं बारसहिं कि-रियाट्ठाणेहिं वट्टमाणा जीवा णो सिज्झिसु णो बुज्झिसु णो मुच्चिंसु णो परिनिव्वायंसु

भी भागी नहीं होंगे. और भी वे वहुत दंडावेंगे नहीं यावत् दौर्मनस्य का भागी नहीं वनेंगे और दीर्घ काल पर्यंत चतुर्गतिक संसार रूप अटवि में परिभ्रमण नहीं करेंगे. इस तरह दया धर्म के प्ररूपक जीवों सीझेंगे, बुझेंगे, कार्य सिद्धि करेंगे, यावत् सब दुःखों का अंत करेंगे ॥ ५० ॥ पूर्वोक्त वारह प्रकार के क्रिया स्थान में रहने वाले जीवों अतीतकाल में सिद्ध नहीं हुवे हैं, लोकालोक का स्वरूप उनोंने नहीं

नहीं स० सर्व दु० दुःख के अं० अन्त करेंगे ए० यह तु० तुल्य ए० यह प० प्रमाण ए० यह स० न्याय प० प्रत्येक तु० तुल्य प० प्रत्येक प० प्रमाण प० प्रत्येक स० न्याय ॥ ४९ ॥ त० तहां जे० जो ते० वे स० श्रमण मा० ब्राह्मण ए० ऐसे आ० कहते हैं जा० यावत् प० प्ररूपते हैं स० सर्व पा० प्राणी स० सर्व भू० भूत स० सर्व जी० जीव स० सर्व स० सत्व ण० नहीं हं० हणो ण० नहीं अ० पीडो ण० नहीं प० घात करो ण० नहीं उ० उद्वेग उपजावो ते० वे णो० नहीं आ० आगामिककाल में छे० छेदावेंगे ते० वे० णो० नहीं आ० आगमिक काल में भे० भेदावेंगे जा० यावत् जा० जन्म ज० जरा म०

एस तुल्ला एस पमाणे एस समोसरणे पत्तेयं तुल्ला, पत्तेयं पमाणे, पत्तेयं समोसरणे(१) ॥ ४९ ॥ तत्थ णं जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सव्वे पाणा सव्वे भूया, सव्वे जीवा; सव्वे सत्ता, ण हंतव्वा ण अज्झावेयव्वा ण परिघेतव्वा, ण उद्दवेयव्वा, ते णो आगंतु छेयाए ते णो आगंतु भेयाए जाव जाइजरामरणजोणिजम्मणसंसारपुणभवगब्भवासभवं एवं कलंकली भागिणो भाविस्संति. ते णो बहूणं दंडणा-

जीवों को अपनी आत्मा तुल्य मानना. ॥ ४९ ॥ और जो श्रमण ब्राह्मण सर्व प्राणी, भूत, जीव और सत्व को मारना नहीं यावत् उद्वेग उपजाना नहीं ऐसा उपदेश देते हैं: वे छेदावेंगे नहीं, भेदावेंगे नहीं, यावत् जन्म जरा मरण नहीं भोगवेंगे, उनको अनेक योनियोंमें उत्पन्न नहीं होना होगा, वे संसारके प्रपंच तथा कलकलाटके

बहुत मुं० मुंडन त० तर्जना ता० ताडना अ० अथवा वं० वंधन जा० यावत् घो० घोलना मा० मातृ मरण पि० पितृ मरण भा० भाइ मरण भ० भगिनी मरण भ० भार्या पु० पुत्र धू० पुत्रि सु० पुत्रवधू म० मरण द० दरिद्र दो० दुर्भागी अ० अप्रिय सं० वास पि० प्रिय वि० वियोग ब० बहुत दु० दुःख दो० दुर्मन आ० भागी भ० होंगे अ० अनादि अ० अपार दी० दीर्घ काल चा० चारगति सं० संसार कं० अटवी में भु० वारम्वार अ० परिभ्रमण करेंगे ते० वे णो० नहीं सि० सिद्ध होंगे णो० नहीं वु० जानेंगे जा० यावत् णो०

बहूणं मुंडणाणं, तज्जणाणं, तालणाणं, अदुबंधणाणं, जाव घोलणाणं, माइमरणाणं पियामरणाणं भाइमरणाणं भगिणीमरणाणं भज्जा—पुत्ता—धूया—सुण्हामरणाणं, दरिद्दाणं दोहग्गाणं, अप्पियसंबासाणं, पियविप्पओगाणं, बहूणं दुक्खदोमणस्साणं, आभागिणो भविस्संति अणादियं च णं अणयवग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं भुज्जो भुज्जो, अणुपरियट्टिस्संति ते णो सिज्झिस्संति णो बुज्झिस्संति जाव णो सव्व दुक्खाणं अंतकरिस्संति

भावार्थ वेंगे, उन को माता, पिता, भाइ, बहिन, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू इत्यादि प्रिय जनों का वियोग होगा, सब प्रिय वस्तु का वियोग होगा, अप्रिय वस्तु का संयोग होगा, महा दुःखी, दुर्भागी व दरिद्री होंगे, आदि अंत रहित अपार संसार रूप वन में वारंवार परिभ्रमण करेंगे, वे पाखंडी लोकों सीझेंगे नहीं, वैसे ही लोकाः लोक का स्वरूप जानेंगे भी नहीं यावत सर्व दुःख का अंत नहीं करेंगे. इस लिये पंडित पुरुषों को सब

हो ए० इस तु० तुल्य ए० इस प० प्रमाण ए० इस न्याय से प० प्रत्येक् तु० तुल्य प० प्रत्येक प० प्रमाण प० प्रत्येक स० न्याय त० तहां जे० जो ते० वे स० श्रमण मा० ब्राह्मण ए० ऐसा आ० कहते हैं जा० यावत् प० प्ररूपते हैं स० सर्व प्राणी जा० यावत् स० सत्व ह० हणने योग्य अ० ताडने योग्य प० लूंटने योग्य प० परीताप देने योग्य कि० किलामना देने योग्य उ० उद्वेग करने योग्य ते० वे आ० आगामिक काल में छे० छेदावेंगे ते० वे आ० आगामिक काल मे भे० भेदावेंगे जा० यावत् ते० वे आ० आगामिक काल में जा० जाति ज० वृद्धावस्था म० मरण जो० योनि में ज० जन्म सं० संसार में पु० पुनर्भव ग० गर्भवास भ० भवप्रपंच कं० कंकाश के भा० भागी भ० होंगे ॥ ४८ ॥ ते० वे ब० बहुत दं० दंड

रणे तत्थणं जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परुवेंति सव्वे पाणा जाव सत्ता हंतव्वा अज्जावेयव्वा, परिघेतव्वा, परितावेयव्वा, किलामेतव्वा, उद्दवेतव्वा, ते आगंतु छेयाए ते आगंतु भेयाए, जाव ते आगंतु जाइजरामरणजोणिजम्मणंससारपुण भवगब्भवासभवपवंचकलंकलीभागिणो भविस्संति ॥ ४८ ॥ ते बहूणं दंडणाणं

भोगवना पडेगा और अनेक योनियों में परिभ्रमण करना पडेगा. इस तरह परिभ्रमण करते हुवे नविन भव में उत्पन्न होने का या गर्भवासमें रहने का होगा और संसारका प्रपंच और दुःख का भागी होना होगा. ॥ ४८ ॥ ऐसे जीवों बहुत दंडावेंगे, मुंडावेंगे, ताडन, तर्जना पावेंगे, दुःखानुबंध से आम्रफल जैसे घोला-

पा० हस्त को प० खींचलेते हैं त० उस से से० वह पु० पुरुष ते० उन स० सर्व पा० पापवादियों को आ० आदि कर्ता ध० धर्म के जा० यावत् णा० विविध अ० अध्यवसाय सं० युक्त ए० ऐसा व० कहता है हं० अहो पा० पापवादिओ ! आ० आदि कर्ता ध० धर्म के णा० विविध प० प्रज्ञा जा० यावत् णा० विविध अ० अध्यवसाय सं० युक्त कि० क्यों तु० तुम्हारा पा० हस्त को प० खींचलेते हो पा० हस्त णो० हम्हारा ड० जले द० जलनेसे किं०क्या भ० होगा दु०दुःख होता है म०मानते हुवे प०खींचलेते

रा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाज्झवसाणसंजुत्ता पाणिं पडिसाहरंति तएणं से पुरिसे ते सव्वे पावाउए आदिगरे धम्माणं जाव णाणाज्झवसाणसंजुत्ता एवं वयासी हं भो पावादुया ! आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाज्झवसाणसंजुत्ता कम्हाणं तुब्भे पाणिं पडिसाहरह? पाणिं णो डहिज्जा दड्ढे किं भविस्सइ? दुक्खंति मन्नमाणा पडिसाहरह, एसतुला एसप्पमाणे एस समोसरणे पत्तेयं तुला, पत्तेयंपमाणे, पत्तेयं समोस-

कि जैसे तुम अग्नि से डरते हुवे हाथ पीछे खींचलेते हो, क्यों कि इस से तुम को दुःख होता है वैसे ही सब जीवों को जानना. वहां जो श्रमण ब्राह्मण हैं वे ऐसा प्ररूपते हैं कि सर्व प्राण भूत जीव यावत् सत्व को मारना यावत् उद्वेग उपजाना ऐसे वचन बोलनेवाले को छेदन भेदन यावत् जन्मजरामरण

व० बहुत अ० अग्नि थं० स्थंभित कु० करो णो० नहीं व० बहुत सा० साधर्मिक की वे० सहायता कु० करो णो० नहीं बहुत प० परधर्मीकी वे० सहायता कु० करो उ० सरल णि० मोक्षको प० प्राप्त अ० अमाया कु० करते हुवे पा० हस्त प० प्रसारो इ० ऐसा वु० कहकर से० वह पु० पुरुष ते० उन पा० पापवादिओं को तं० उस सा० अग्नि का इं० अंगार का पा० पात्र को व० बहुत प० प्रतिपूर्ण अ० लोहे की सं० संडासी से ग० ग्रहण कर पा० हस्तपे णि० मूकता है त० उस से ते० वे पा० पापवादी आ० आदि कर्ता ध० धर्म के णा० त्रिविध प० प्रज्ञा जा० यावत् णा० विविध अ० अध्यवसाय सं० युक्त

डासगं संसारियं कुज्जा, णो बहु आग्गिथंभाणियं कुज्जा, णो बहु साहम्मियवेयावाडियं कुज्जा, णो बहुपरधम्मियं वेयावाडियं कुज्जा, उज्जयाणियागपडिवन्ना अमायं कुव्वमाणा पाणिं पसारेह इति वुच्चा से पुरिसे तेसिं पावादुयाणं तं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपाडिपुन्नं अउमएणं संडासएणं गहाय पाणिसु णिसिरिंति तएणं ते पावादुया आइग-

वे अपना हाथ पीछे खींचलेते हैं ऐसा देखकर वह उन्हे बोला हे प्रावादुक! तुम्हारा हाथ पीछे क्यों खेंचते हो? वे उत्तर देते हैं कि हम्हारे हाथ जलते हैं इस लिये पीछे खींच लेते हैं. फिर प्रश्न किया कि तुम्हारे हाथ जलने से क्या होने का है? वे उत्तर देते हैं कि इस से हम को दुःख होता है. जब वह बोलता है

पु० कोई पुरुष सा० अग्नि के इं० अंगारका पा० पात्र व० बहुत प० प्रतिपूर्ण ग० ग्रहण कर अ० लोहेकी सं० संडासीसे ग०ग्रहणकर ते०उन स०सर्व पा०पापवादीको आ०आदिकर्ता धि०धर्मके णा०विविध प्रज्ञावाले जा० यावत् णा० विविध अ० अध्यवसाय से सं० युक्त ए० ऐसा व० बोलना है हं० अहो पा० पापवादि-यो ! आ० आदि कर्ता ध० धर्मके णा० विविध प्रज्ञावाले जा० यावत् णा० विविध अ० अध्यवसाय सं० युक्त इ० इस तु० तुम सा० अग्निका इं० अंगारका पा० पात्र व० बहुत प० प्रतिपूर्ण ग० ग्रहण करो मु० मुहूर्तमात्र पा० हस्तमें ध० रखो णो० नहीं व० बहुत सं० संडासी की सं० सहायता कु० करो णो० नहीं

पुरिसेणं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं गहाय अउमएणं संडासएणं गहाय ते सव्वे पावाउए आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाज्झवसाणसंजुत्ते एवं वयासी हंभो पावाउया ! आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाज्झवसाणसंजुत्ता इमं ताव तु-म्ह सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं गहाय मुहुत्तयं पाणिणा धरेह णो बहुसं-

किसी मंत्रादिक का प्रयोग भी करना नहीं तुम्हारे स्वधर्मियों की मदद भी मांगना नहीं, मात्र तुम्हारे हाथ में इस को उठाकर एक मुहूर्त मात्र रखो. अब सरल बनकर तुम तुम्हारा हाथ अग्नि का पात्र उठाने के लिये लम्बा करो. ऐसा कहकर वह पुरुष उस अग्निवाला पात्र उन के हाथ में रखने को जाता है कि

यावादी अ० अज्ञानवादी वे० विनयवादी ते० वे नि० निर्वाण आ० कहते हैं ते० वे प० मोक्ष आ० कहते हैं ते० वे ल० कहते हैं सा०श्रावक ते०वे ल०कहते हैं सा०देशना देने वाले ॥४६॥ ते० वे स० सर्व पा० पापवादी आ० आदि कर्ता ध० धर्म के णा० विविध बुद्धिवाले णा० विविध छ० आचरण वाले णा०विविध सी०शील वाले णा०विविध दृष्टि णा० विविध रुचि णा० विविध आरंभ णा० विविध अध्यवसाय जु० युक्त ए० एक म० बडा मं० मंडल बं० बांध कर स० सर्व ए० एक स्थानमें चि० रहते हैं॥४७॥

रियावाईणं अकिरियावाईणं अन्नाणियवाईणं वेणइयवाईणं तेवि णिव्वाण माहंसु तेवि परिमोक्ख माहंसु तेंवि लवंति सावगा तेविलवंति सावइत्तारो ॥ ४६ ॥ ते सव्वे पावाउया आदिकरा धम्माणं णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिट्ठी णाणारुई णाणारंभा णाणाज्झवसाणसंजुत्ता एगं महं मंडलिबंधंकिच्चा सव्व एगयाउ चिट्ठंति ॥४७॥

कर्म से मुक्त होने का उपाय कहते हैं और कहते हैं कि अहो श्रावको! हम जो धर्म कहते हैं उसे तुम स्वीकार करो ॥ ४६ ॥ पूर्वोक्त सब पाखण्डियों अपनी २ स्वच्छंदता से धर्म की स्थापना करते हैं. नाना प्रकार की बुद्धि, स्वच्छंद, अभिप्राय, रुचि, आरंभ व अध्यवसाय वाले वे पाखंण्डियों एक मंडल करके अमुक मर्यादित विभाग में रहते हैं ॥४७॥ अहिंसा धर्म जाननेवाला कोई पुरुष अंगार से भराहुवा एक लोह पात्र को संडासी से पकडकर उन हिंसा धर्म स्थापक को कहे कि तुम इस पात्र को विना संडास से उठावो,

इस स्थानक में आ० आरंभ णो० अनारंभ ट्ठा० स्थानक ए० इस स्थानक में आ० आर्य जा० यावत् स० सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त स० सम्यक्त्वी सा० साधु ॥ ४४ ॥ ए० ऐसे स० सम्यक् अ० जानने वाले इ० इन दो० दो ट्ठा० स्थान में स० समावेश अ० हो जाता है तं० वह ज० जैसे ध० धर्म अ० अधर्म उ० उपशान्त अ० अनुपशान्त ॥ ४५ ॥ त० तहां जे० जो प० प्रथम ट्ठा० स्थानक अ० अधर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा जाता है त० उन का इ० इस ति० तीनसोत्रेसठ पा० पापवाद स० सो भ० होते हैं इ० ऐसा म० कहा तं० वह ज० जैसे कि० क्रियावादी अ० अक्रि-

सूत्र

माणा इमेहिं चेव दोहिं ट्ठाणेहिं समोअवतरंति तंजहा धम्मे चेव अधम्मेचेव उवसंते चेव अणुवसंतेचेव ॥ ४५ ॥ तत्थणं जेसे पढमट्ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए तस्सणं इमाइं तिन्नितेवट्ठाइं पावादुयसयाइं भवंतीति मक्खाइ तंजहा कि-

भावार्थ

स्थान आर्य पुरुषों को आचरणीय और अनुक्रम से सर्व दुःख से मुक्त करनेवाला है ॥ ४४ ॥ इस जगत् में जितने मार्ग हैं उन सबों का समावेश धर्म, अधर्म उपशान्त और अनुपशान्त इनों में हो जाता है॥४५॥ क्रियावादी के एकसो अस्सी, अक्रियावादी के चौरासी, अज्ञानवादी के सनसठ और विनयवादी के बत्तीस ऐसे सब मिलकर तीनसो त्रेसठ भेद अधर्म पक्ष के रहे हुवे हैं. वे अपने २ अनुराग से ही मोक्षमार्ग, तथा

आश्री बा० बालपंडित आ० कहा जाता है त० तहां जा० जो स० सर्वथा अ० अविरति ए० इस ठ्ठा० स्थानक में आ० आरंभ स्थानक में अ० अनार्य जा० यावत् अ० नहीं स० सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त मि० मिथ्यात्वी अ० असाधु त० तहां जा० जो० स० सर्वथा वि० विरति ए० इस ठ्ठा० स्थानक में अ० निरारंभी ठ्ठा० स्थानक में आ० आर्य जा० यावत् स० सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त स० सम्यक्त्वी सा० साधु त० तहां जा० जो स० सर्वथा वि० विरताविरति ए०

ट्ठाणे अणारिए जाव असव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहू । तत्थणं जासा सव्वतो विरइ एसट्ठाणे अणारंभठाणे आरिए जाव सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एगंत सम्मे साहू । तत्थणं जासा सव्वओ विरयाविरइ एसट्ठाणे आरंभणोरंभट्ठाणे एसट्ठाणे आरिए जाव सव्वदुक्खप्पहीण मग्गे एगंत सम्मेसाहू ॥ ४४ ॥ एवमेव समणुगम्म-

के स्थानों का संक्षेप से वर्णन करते हैं. (१) जिनोंने किसी प्रकार के व्रत नियमों का आचरन किये नहीं है, तथा आरंभमय ही जिनों की वृत्ति है, ऐसे बाल अधर्म पक्ष का ही सेवन करते हैं. (२) जिनोंने सर्व प्रकार के आरंभ का त्याग कर व्रतों अंगीकार किये हैं, वे पंडित कहाये जाते हैं. (३) जो थोडा बहुत व्रत अंगीकार करते हैं और बहुतसा आरंभ से निवर्ते हैं और थोडासा आरंभ रहा है यह भी

व० वहुत भ० अन्न पानी ज० अनशनके लिये छे० परिहार कर आ० आलोचकर प० प्रायश्चित कर स० समाधिको प्राप्त का० काल के अवसर में का० काल करके अ० अन्यतर दे० देव लोक में दे० देवता उ० उत्पन्न भ० होता है तं० वह ज० जैसे म० महर्द्धिक म० महाद्युति जा० यावत् म० महा सुख में से० शेष त० तैसे जा० यावत् ए० यह ठा० स्थान आ० आर्य जा० यावत् ए० एकान्त स० सम्यक् सा० साधु त० तीसरा ठा० स्थान मि० मिश्र पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ ४३ ॥ अ० अविरति प० आश्री वा० अज्ञानी आ० कहा जाता है वि० विरति प० आश्री पं० पंडित आ० कहा जाता है वि० विरति अविरति प०

इत्ता आलोइय पडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालंकिच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो भवंति तंजहा महड्ढिएसु महज्जुइएसु जाव महा सुखेसु सेसं तहेव जाव एसट्ठाणे आयरिए जाव एगंत सम्मे साहू तच्चस्स ठ्ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगे एवमाहिए ॥ ४३ ॥ अविरइं पडुच्च बाले आहिज्जइ, विरइं पडुच्च पंडिए आहिज्जइ, विरयाविरइं पडुच्च बालपंडिए आहिज्जइ । तत्थणं जासा सव्वतो अविरइ एसट्ठाणे आरंभ-

समाधिप्राप्त करे. समाधि प्राप्त किये बाद काल के अवसर में काल करके महा ऋद्धिवन्त महा द्युतिवन्त यावत् बहुत सुखवाले देवलोक में उत्पन्न होवे. यह स्थानक आर्य अर्थात् धर्म पक्ष का है यावत् एकान्त सम्यक्त्व मार्ग तक सर्व आलापक कहना. इस तरह मिश्र पक्ष का स्वरूप कहा ॥ ४३ ॥ उक्त तीनों प्रकार

शीलव्रत गु० गुणव्रत प० प्रत्याख्यान पो० पोषध उ० उपवास अ० यथा प० परिग्रहित त० तप क० कर्म आ० आत्मा को भा० भावता हुवा वि० विचरता है ॥ ४२ ॥ ते० उस से ए० इस रू० रूप वि० विहार से वि० विचरता हुवा ब० बहुत वा० वर्ष स० श्रमणोपासक प० पर्याय पा० पालता है पा० पालकर आ० आबाधा उ० उत्पन्न होवे अ० उत्पन्न नहीं होवे ब० बहुत भ० आहार पानी अ० अनशन प० पच्चखता है ब० बहुत भ० आहार पानी अ० अनशन के लिये प० प्रत्याख्यान कर ब० बहुत भ० अन्न पानी अ० अनशन के लिये छे० परिहरता है

ग्गहिएहिं तवो कम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥ ४२ ॥ तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणंति पाउणंतित्ता आबा-हंसि उप्पन्नंसिवा अणुप्पन्नंसिवा बहुइं भत्ताइं अणसणाए पच्चक्खाए बहुइं भत्ताइं अ-णसणाए पच्चक्खाएत्ता बहुइं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ बहुहिं भत्ताइं अणसणाए छेदे-

अपनी योग्यता से लिये हुवे को पालनेवाले तथा नवकारसी, पोरसी प्रमुख प्रत्याख्यान करनेवाले, और पोषध, उपवासादिक अपनी इच्छानुसार करनेवाले तपकर्म से अपनी आत्मा को भावते हुवे विचरते हैं॥४२॥ इस तरह श्रावकके आचार में प्रवर्तता हुवा बहुत काल तक श्रावकपना पाले. बाद में आबाधा उत्पन्न होवे या न होवे सो भी भात पानी का परिहार करके अनशन करे, अनशन का प्रत्याख्यान किये बाद आलोच कर, और जो पाप लगे होवे उसे अरिहंतादिक को कहकर और उस का मिथ्या दुष्कृत देकर

निर्ग्रन्थ के पा० प्रवचन अ० यह प० परमार्थ से० शेष अ० अनर्थ उ० निर्मल फ० स्फटिक अ० खुल्लाद्वार अ०अप्रीतिकर अं०अंतःपुर प० दूसरेके घ०गृहमें प० प्रवेश चा० चतुर्दशी अ०अष्टमी उ० उत्तमतिथि पु०पूर्णिमा प०प्रतिपूर्ण पो० पोषध स० सम्यक् अ० पालता हुवा स० श्रमण नि० निर्ग्रन्थको फा० फासुक ए० शुद्ध अ० अन्न पा० पानी खा० खादिम सा० स्वादिम व० वस्त्र प० पात्र कं० कंबल पा० रजोहरण ओ० औषध भे० भैषज्य पी० पाट फ० पाटला से० शैय्या सं० संथारा प० प्रतिलाभता हुवा ब० बहुत सी०

वगुयदुवारा अचियत्तंतेउरपरघरपवेसा चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णिमासिणीसु पडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसा- इमेणं वत्थपडिग्गहकंबलपायपुच्छणेणं ओसहभेसज्जेणं पीढफलगसेज्जा संथार- एणं पडिलाभेमाणा बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमण पच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अहापरि

सिद्धांत हैं वे ही आत्मा के लिये मोक्ष साधन रूप मार्ग हैं और दूसरे कपिलादिक के ग्रंथ अनर्थकारी हैं. राजा का अंतःपुर की मुवाफिक अन्य लोकों के घर में प्रवेश करने का त्याग करनेवाले होते हैं, अष्टमी, चतुर्दशी, महा कल्याणिक तिथि, पूर्णिमा, और अमावास्या इतने दिनों में प्रतिपूर्ण पोषध करते हैं. और श्रमण, निर्ग्रंथ तपस्वी को फासुक अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, औषध, भैषज्य, पीढ, फलक, शैय्या, संथारा देते हैं. कितनेक सदाचारी, स्थूल प्राणातिपात विरमणादिक व्रत व गुणव्रत

मोक्ष कु० कुशल अ० सहाय रहित दे०देव अ०असुर ना० नाग सु० सुवण ज० यक्ष र० राक्षस कि० कि-न्नर किं० किंपुरुष ग० गरुड गं० गन्धर्व म० महोरगादि दे० देवगण से नि० निर्ग्रंथ के पा० प्रवचन से अ० चलित न करशके इ० ये नि० निर्ग्रंथ के पा० प्रवचन में णि० निःशंकित णि० कांक्षा रहित नि० नियाणा रहित अ० अर्थ को प्राप्त ग० अर्थ ग्रहण किये हुवे पु० पूछा है अर्थ वि० निर्णय किया हैं अर्थ अ० अर्थ के ज्ञाता अ० अस्थि मिं० मिंजी पे० प्रेमानुराग में र० रक्त अ० अहो आ० आयुष्मन् नि०

सुवन्नजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा इणमेव निग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया निव्वितिगिंच्छा लद्धट्ठा गहीयट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा, अभिगयट्ठा अट्ठिमिंज पेम्मा-णुरागरत्ता अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे उसियफलिहा अ-

कर सकते हैं. वे जिन प्रवचन में शंका, कांक्षा, वितिगिच्छा, व दुगंछा रहित हैं. शास्त्रादिक के जो अर्थ ग्रहण किये हैं उसमें यदि संशय उत्पन्न होजावे तो अपने गीतार्थ गुरुओं को पूछकर निर्णय करते हैं जहांतक पूरा निर्णय न होजावे, वहांतक वारंवार पूछते रहते हैं, बाद में निर्णय कर विनीत भाव से हृदय में स्थापन करते हैं. उन की हड्डी तथा हड्डी की मिंजी भगवन्त के सिद्धांतरूप कसुंबादिक में प्रेमरूप राग से रंगाइ गइहैं, थोडे बहुत मनुष्यों का समुह मिले तो वहां भी ऐसा उपदेश करते हैं कि निर्ग्रंथ के जो प्रवचन

चनी सु० आनंदी सा० साधु ए० एकेक पा० प्राणातिपात से प० निवृत्त जा० जावजीव ए० एकेकसे अ० अनिवृत्त जा० यावत् जे० जैसे त० तथा प्रकार के सा० सावद्य अ० अबोधिक क० कर्म प० दूसरे पा० प्राणी प० परीताप क० करते हैं० त० उस ए० एकेकसे अ० अनिवृत्त ॥ ४१ ॥ से० वह ज० जैसे स० श्रमणोपासक भ० होते हैं अ० जाना हुवा जी० जीव अ० अजीव उ० जाना हुवा पु० पुण्य पा० पाप आ० आश्रव सं० संवर वे० वेदना णि० निर्जरा कि० क्रिया अ० अधिकरण बं० बंध मो०

सूत्र

अप्पडिविरया जाव जेयावण्णे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता, पर-पाणपरितावणकरा कज्जंति; ततोवि एगच्चाओ अप्पडिविरया ॥ ४१ ॥ से जहा णामए समणोवासगा भवंति अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपावा आ-सवसंवरवेयणाणिजराकिरियाहिगरणबंधमोक्खकुसला असहेज्ज देवासुरनाग

भावार्थ

कारण कर्म रूप व्यापार तथा अन्य जीवों को परितापना देना उस में भी एक पक्ष से विरति और एक पक्ष से अविरति है इस लिये उन को विरताविरत कहते हैं॥४१॥ वे श्रमणोपासक जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, वेदना, निर्जरा क्रिया के अधिकार बंध और मोक्ष का स्वरूप जानने में कुशल हैं. कष्ट आने पर देवतादिक की सहाय वांच्छे नहीं, विमानवासी देव, असुर कुमार, नाग कुमार, सुवर्ण कुमार, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, अश्व, गरूड, गंधर्व, महोरगादिक भी उन को निग्रंथ के वचन से चलित नहीं

मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त स० सम्यक् सु० सुसाधु दो० दूसरा ठा० स्थानक ध० धर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ ४० ॥ अ० अब त० तीसरा ठा० स्थान मी० मीश्रपक्षका वि० विचार ए० ऐसे आ० कहाजाता है इ० यहां ख० निश्चय पा० पूर्वादि दिशामें सं० हैं० ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं तं० वह ज० जैसे अ० अल्पइच्छावाले अ० अल्पारंभी अ० अल्पपरिग्रही ध० धर्मात्मा ध० धर्मानुयायी जा० यावत् ध० धर्मसे वि० वृत्ति क० करने वाले वि० विचरते हैं सु० सुशील सु० सुव-

माहिए ॥ ४० ॥ अहावरे तच्चस्स ट्ठाणस्स मीसगस्स विभंगं एवमाहिज्जइ—इह खलु पाईणं वा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तं जहां—अप्पिच्छा, अप्पारंभा, अप्पपरिग्गहा, धम्मिया, धम्माणुया, जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, सुसीला, सुव्वया, सुपडियाणंदा, साहू एगच्चाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ

है. यह दूसरा धर्म पक्ष का विचार कहा ॥ ४० ॥ अब तीसरा मिश्र पक्ष का विचार कहते हैं. यद्यपि यह स्थानक धर्म अधर्म से मिश्रित हैं परंतु धर्म का बहुलपना होने से धर्म पक्ष ही कहा है. इस संसार में कितनेक मनुष्य अल्प इच्छावाले, अल्पारंभी, अल्प परिग्रही, धर्मीष्ठ, धर्मानुगामी यावत् धर्म से आजीविका करनेवाले हैं. ऐसे सुशील, सुव्रती, व आनंदी, पुरुष स्थूल प्राणातिपात से जावजीव निवर्ते हुवे हैं और सूक्ष्म प्राणातिपात जो—पृथ्वी आदि की घात—उस से नहीं निवर्ते हुवे हैं, ऐसे पूर्वोक्त सावद्य, व अबोधि के

ध० धरने वाले भा० देदीप्यमान वा० शरीर पे प० लटकती मा० माला ध० धरने वाले दि० दिव्य स्व० रूप से दिं० दिव्य व० वर्ण से दि० दिव्य गं० गंध से दि० दिव्य फा० स्पर्श दि० दिव्य सं० संघातन दि० दिव्य सं० संठान दि० दिव्य इ० ऋद्धि दिं० दिव्य जु० द्युति दि० दिव्य प० प्रभा दि० दिव्य छा० कान्ति दि० दिव्य अ० अर्चा दि० दिव्य ते० तेज दि० दिव्य ले० लेश्या द० दशोंदिशा में उ० उद्योत करने वाले प० प्रभा करने वाले ग० कल्याणकारीगति ठि० कल्याण कारी स्थिति आ० आगामिक भ० कल्याण कारी भ० होते हैं ए० यह ठा० स्थान आ० आर्य जा० यावत् स० सर्व दु० दुःख से प०

सूत्र

दिव्वेणं, संघाएणं, दिव्वेणं संठाणेणं, दिव्वाए इड्डिए, दिव्वाए जुत्तीए, दिव्वाए पभाए, दिव्वाए छायाए, दिव्वाए अच्चाए, दिव्वेणं तेयणं, दिव्वाए लेसाए, दसदिसाओ उज्जो- वेमाणा, पभासेमाणा, गइकल्लाणा, ठिइकल्लाणा आगमेसि भद्दयावि भवंति, एसट्ठाणे आयरिए जाव सव्वदुक्खपहीणमग्गे; एगंतसम्मे सुसाहू दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एव

भावार्थ

हुइ वनमाला रूप आभरण को धरनेवाले, प्रधान रूप, वर्ण, गंध, स्पर्श, संघातन, संठाण, ऋद्धि, द्युति, प्रभा, कान्ति, अर्चा, तेज की ज्वाला, तथा लेश्या को धारण करनेवाले, दशोंदिशि में प्रकाश करनेवाले, तथा गति स्थिति में प्रधान देवों ऐसें उत्पन्न होतेहैं. वे मनुष्य भवरूप संपदा पातेहैं इस लिये उनको भद्रक कहेहैं. यह धर्मस्थानक आर्य यावत् सर्व दुःख से मुक्त करनेवाला तथा एकान्त सम्यक्, सत्य और सुसाधु का स्थानक

नुभाव म० महा सुखवाले ते० उस में त० तहां दे० देव भ० होते हैं म० महर्द्धिक म० महा द्युतिवान जा० यावत् म० महासुखी हा० हारसे वि० विराजित व० हृदय वाले क० कडे तु० त्राजुबन्ध थं० स्थंभित भु० भुजा अं० अंगद कुं० कुंडल म० शोभित गं० गंडस्थल क० कुंडल धा० धरने वाले वि० विचित्र ह० हस्त के आ० आभरण वि० विचित्र मा० माला म० मुकुलित म० मुकुट क० कल्याण कारी गं० गंध प० श्रेष्ठ व० वस्त्र प० पहिनने वाले क० कल्याण कारी प० श्रेष्ठ म० माल्यानुलेपन

भवंति, महड्ढिया महज्जुत्तिया, जाव महासुखा; हारविराइयवच्छा, कडगतुडियथंभियभूया, अंगयं कुंडलमट्ठगंडयल कन्नपीढधारी, विचित्तहत्थाभरणा, विचित्तमालामउलिमउडा, कल्लाणगंधपवरवत्थपरिहिया, कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा, भासुरबोंदीपलंबवणमालधरा; दिव्वेणं रूवेणं, दिव्वेणं वन्नेणं, दिव्वेणं गंधेणं, दिव्वेणं फासेणं

देवलोक में देवतापने उत्पन्न होते हैं. बडी ऋद्धिवाले, द्युतिवाले, पराक्रमवाले, यशवाले, अतिशयवाले तथा वहुत सुखवाले देवलोक में द्युतिवन्त, ऋद्धिवन्त, यावत् सुखी तथा हारादि आभूषणों से विराजित, कडे, केयूरादिक से स्थंभित भुजावाले, अंगद, कुंडल से घसाये हुवे गालतलों जिनों के, कर्णपीठधारी, विचित्र हस्त के आभरण पहिननेवाले, विचित्र प्रकार की मालाओं को धारण करनेवाले, कल्याणकारी सुगंधित वस्त्र पहिननेवाले, कल्याणकारी माल्य विलेपन करनेवाले, देदीप्यमान शरीर पर लटकती

प्रतिपूर्ण के० केवल व०श्रेष्ठ णा०ज्ञान दं०दर्शन म०प्राप्त करते हैं स०प्राप्तकर त०पीछे सि०सिद्ध होते हैं बु० समजते हैं मु० मुक्त होते हैं प० निवर्तते हैं स० सर्व दु० दुःखको अं० क्षय करते हैं ॥३९॥ ए० कितनेक पु० फिर ए० एक भव में भ० मोक्षगामी भ० होते हैं अ० दूसरे पु० फीर पु० पूर्व कर्म अ० अवशेष रहने से का०कालके अवसरमें का०काल करके अ० अन्यत्र दे०देवलोकमें दे० देवता उ० उपजने वाले भ० होते हैं तं० वह ज० जैसे म० महर्द्धिक म० महाद्युति म० महापराक्रमी म० महायशस्वी म० महा बलवान म० महा

कसिणं पडिपुण्णं केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति, समुप्पाडेंतित्ता, ततोपच्छा सिज्झंति, बुज्झंति मुच्चंति परिण्णिव्वायंति, सव्वायंति, सव्वदुक्खाणं अंतकरेंति ॥ ३९ ॥ एग-च्चाए पुणएगे भयंतारोभवंति, अवरेगं पुण पुव्वकम्मावसेसेणं कालमासे कालंकिच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—महड्डिएसु, महज्जुत्तिएसु, महापरिक्कमेसु, महाजसेसु, महाबलेसु, महाणुभावेसु, महासुखेसु, तेणं तत्थ देवा

रित्र की आराधना करके अनंत, निर्व्याघात, संपूर्ण केवल ज्ञान केवल दर्शन की प्राप्ति करे बाद में उन को सर्व अर्थ की सिद्धी होवे, तथा चौदह राज लोक का ज्ञान होवे, वे सर्व दुःखसे मुक्त होवे, और सब दुःखों का अन्त करने से शतिल बने ॥ ३९ ॥ कितनेक पुरुष तो उसी भव में सिद्ध गति में चले जाते हैं और कितनेक तो पूर्वकृत कर्मों का शेष होने से काल के अवसर में काल करके

रहित भू० भूमिपे शयन करे फ० पाटपे शयन करे क० काष्ठ के पर शयन करे के० लोच करे व० ब्रह्म-चर्य पाले प० परघर जावे ल० प्राप्त अ० अप्राप्त मा० मान अ० अपमान ही० हेलना नि० निन्दा खिं० अति हेलना ग० गर्हा त०तर्जना ता०ताडना उ० ऊंचा व० नीचा गा० ग्राम्य लोक के वचन वा० वाइस प० परिसह उ०उपसर्ग अ०सहन करते हैं त०उस अ०अर्थ को आ०आराधते हैं त०उस अ०अर्थको आ०आराध कर च०छेल्ले उ०उश्वास निश्वास से अ०अन्तरहित अ०प्रधान नि०निर्व्याघात नि०आवरण रहित क०संपूर्ण प०

त्तए अणोवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे लद्धा अलद्धा माणा अमाणणाउ हीलणाउ निंदणाउ खिंसणाउ गरहणाउ तज्जणाउ तालणाउ उच्चावयागामकंटगा बावीसं परिसहोवसग्गा अहियासिज्जंति तमट्ठं आराहंति तमट्ठं आराहित्ता चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं अणंतअणुत्तरं निव्वाघातं निरावरणं

चले, भूमिका में शयन करे, पाट, पटिया, काष्ठ पाषाणादि पर शयन करे, मस्तक के उपर रहे हुवे बालों का लोच करे, ब्रह्मचर्य पाले, भिक्षा के लिये दूसरे के घरों में भ्रमण करे, आहार की प्राप्ति व अप्राप्ति में सम्यक् भाव धारण करे, मान, अपमान, हेलना में समताभाव रखे, कोई निंदा करे, अन्य की पास या स्वतः की पास हेलना करे, या कोई तर्जना, ताडना करे तो उसे तथा ग्राम्य लोकों के कंटक मानस शब्दों को सहन करे और बाइस परिषह तथा देवादिक से कराये हुवे उपसर्ग सहन करे. ज्ञान दर्शन व चा-

सर्व गा० अवयव प० शुश्रूषा वि० रहित चि० रहते हैं ॥ ३८ ॥ ते० वे ए० इस वि० विहार से वि०
विहरते हुवे ब० बहुत वा० वर्ष सा० चारित्र प० पर्याय पा० पालते हैं ब० बहुत २ आ० आबाधा उ० उत्पन्न
अ० अनुत्पन्न प० बहुत भ० आहार पानी के प० प्रत्याख्यान करते हैं प० प्रत्याख्यान कर ब० बहुत
वर्ष अ० अनशन छे० पालता है अ० साधु पना छे० पालकर ज० जिस के लिये की० करते हैं न० प्रमाण
शुल्क वस्त्र मुं० संवरे अ० स्नान का त्यागकरे अ० दांतन करे नहीं अ० छत्र रहित अ० पगरखी

मंसरोमनहा सव्वगाय पडिक्कम विप्पमुक्का चिट्ठंति ॥ ३८ ॥ ते णं एतेणं विहारेणं
विहरमाणा बहुइं वासाइं सामन्नपरियागं पाउणंति बहुबहु आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अनु-
प्पन्नंसिवा बहुइं भत्ताइं पच्चक्खाइ पच्चक्खाइत्ता बहुइं वासाइं अणसणाइं छेदिंति अ-
णसणाइं छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरति नग्गभावे मुंडभावे अण्हाणभावे अदंतवणगे अछ-

भावार्थ

की शुश्रूषा से रहित होते हुवे विचरते हैं ॥ ३८ ॥ इस तरह उग्र विहार से विचरते हुवे बहुत वर्ष तक चा-
रित्र पर्याय पाले, और चारित्र पर्याय पालते को रोगादिक की आबाधा होवे या न होवे तो भी भात पानी
का प्रत्याख्यान करे, और बहुत काल तक अनशन पाले. इस तरह अनशन पालता हुवा लोहगोलक के
जैसा निरास्वाद, तथा खड्ग जैसा दुःसाध्य चारित्र पाले, प्रमाण सहित वस्त्र रक्खे, पांचों इन्द्रिय तथा चार
कषाय को संवरे, स्नान मंजन रहित होवे, दांतन का परिहार करे, शिर पें छत्र रखे नहीं, उघाडे पॉव से

आहारी पं० प्रान्त आहारी अ० निरस आहारी लू० रूक्ष आहारी तु० तुच्छ आहारी अं० अन्त आहार से जीवे पं० प्रान्त आहार से जीवे आ० आयंबिल करे पु० दोपहोरसीकरे वि० निवीकरे अ० मद्य मांस के त्यागी णो० नहीं णि० अत्यंतरस आहार के भोगी ठा० कायोत्सर्ग करने वाले प० प्रतिमाधारी उ० उकडु आसन बैठने वाले णि० निषिध आसनपे बैठने वाले वी० वीरासन बैठने वाले दं० दंडासन बैठने वाले ल० लगड आसन बैठने वाले अ० वस्त्र रहित अ० खाज न कुचेरे अ० थूंके नहीं धु० केशनखादि सुधारे नहीं स०

त्तिया परमित्तपिंडवाइया सुद्धेसणिया अंताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुच्छाहारा अंतजीवी पंतजीवी आयंबिलिया पुरिमाट्ठिया विगइया अमज्जमंसासिणो णोणियामरसभोई ट्ठाणाइया पडिमाट्ठाणाइया उक्कडुआसणिया णेसज्जिया वीरासणिया दंडायतिया लगडसाइणो अप्पाउडा अगत्तया अकंडुया अणिट्ठुहा धुतकेस

दाति की संख्या करनेवाले, प्रमाण युक्त आहार लेनेवाले, शुद्ध आहार की गवेषणा करनेवाले, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, अरस, विरस, रूक्ष, तुच्छ आहार लेनेवाले, अन्तजीवी, प्रान्तजीवी, आयंबिल करनेवाले, सदाकाल दो प्रहर गये बाद आहार करनेवाले, नीवी करनेवाले, मद्य मांस के त्यागी, सरस आहार के त्यागी, कायोत्सर्ग करनेवाले, प्रतिमा को निभानेवाले, उत्कट आसन पे बैठनेवाले, निषेध आसन पे बैठनेवाले, वीर आसन, दंडासन, लगड आसन पे बैठनेवाले, वस्त्र रहित, शरीर में खाज नहीं खणनेवाले, मुख का थुंक नहीं थुंकनेवाले, शिर, मूछ, दाढी के बाल या नखों को अच्छा नहीं करनेवाले और शरीर

लू०रुक्ष आहार का लेनेवाला स०बहुत घरका आहार लेनेवाला सं०भरे हाथसे आहार लेनेवाला अ०स्वच्छ हाथ से आहार लेनेवाला त०वस्तु सहित हाथ से आहार लेनेवाला दि०देख करके लेनेवाला अ०बिना देखे लेनेवाला पु०पूछकर लेनेवाला अ०बिनापूछे लेनेवाला भि०निन्दा करके देदे सो लेनेवाला अ०प्रशंसा करदेवे सो लेनेवाला अ० अज्ञातकुल का लेनेवाला अ० अज्ञातकुल में कुत्सित आहार लेनेवाला उ० नजीक का लेने वाला सं०दात से लेनेवाला प० प्रमाण युक्त आहार लेनेवाला सु० शुद्ध आहार का लेनेवाला अं० अंता-

चाउमासिए पंचमासिए छम्मासिए अदुत्तरं च णं उक्खित्तचरया णिक्खित्तचरया उक्खित्तणिक्खित्तचरगा अंतचरगा पंतचरगा लूहचरगा समुदाणचरगा संसट्ठचरगा असंसट्ठचरगा तज्जातसंसट्ठचरगा दिट्ठलाभिया अदिट्ठलाभिया पुट्ठलाभिया अपुट्ठलाभिया भिक्खुलाभिया अभिक्खुलाभिया अन्नायचरगा अन्नायलोगचरगा उवनिहिया संखाद-

आहार को लेनेवाले, रुक्ष आहार को लेनेवाले, हर्ष से जो आहार देवे सो लेनेवाले, भरा हाथ से आहार देवे सो लेनेवाले, स्वच्छ हाथ से दिया आहार लेनेवाले, जिस द्रव्य से जो हाथ या कुडछी भरी होवे, उसी हाथ से वही द्रव्य देवे तो लेनेवाले, दृष्ट आहार को लेनेवाले, अदृष्ट आहार को लेनेवाले, पूछकर आहार लेनेवाले, विना पूछे आहार लेनेवाले, तुच्छ आहार लेनेवाले, अतुच्छ आहार लेनेवाले, अज्ञात कुल का आहार लेनेवाले, अज्ञात लोक में कुत्सित आहार लेनेवाले, अपनी नजीक का आहार लेनेवाले,

हुवे वि० विचरते हैं ॥ ३७ ॥ ते० उन भ० भगवान को इ० यह ए० तद्रूप जा० संयम मा० मात्रा वि० वृत्ति हो० होवे तं० वह ज० जैसे च० एक उपवास छ० दो उपवास अ० तीन उपवास द० चार उपवास दु० पांच उपवास च० छ उपवास अ० अर्ध मासके उपवास मा० एक मास के उपवास दो० दोमास के ति० तीन मास के चा० चारमास के पं० पांच मास के छ० छमास के अ० अथवा उ० उत्क्षिप्त चर्या नि० निक्षिप्त चर्या उ० उत्क्षिप्त निक्षिप्त चर्या अं० अन्त आहार का लेने वाला पं० प्रांत आहार का लेने वाला

संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरंति ॥ ३७ ॥ तेसिणं भगवंताणं इमा एतारूवा जायामायावित्ती होत्था तंजहा चउत्थेभत्ते छट्ठेभत्ते अट्ठमेभत्ते दसमे भत्ते दुवालसमेभत्ते चउदसमेभत्ते अद्धमासिएभत्ते मासिएभत्ते दोमासिए तिमासिए

संयम से आत्मा को भावते हुवे विचरे ॥ ३७ ॥ अब साधु को इस प्रकार की यात्रा मात्रा रूप वृत्ति होती है:—एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, तथा पन्दरह दिनके उपवास, महिनेके उपवास, दो महिने के उपवास, तीन महिने के, चार महिने के, पांच महीने के तथा छह मासीक तप के करनेवाले हैं और कोई ऐसे भी अभिग्रह करनेवाले हैं उत्क्षिप्त चर्या-अपने लिये हंडी में से नीकालाहुवा निस्सार धान्य को लेनेवाले, निक्षिप्त चर्या—परुसने के लिये हंडी मे से नीकाला और हंडी में फीर डाल दिया होवे ऐसा आहार की याचना करनेवाले, पूर्वोक्त दोनों प्रकार के आहार की गवेषणा करनेवाले, अंत आहार प्रान्त

स्पर्श अ० सहने वाले सु० जलती हु० अग्नि जैसे ते० तेजस्वी ज० जलते ॥ ३६ ॥ ण० नहीं हैं ते० उन भ० भगवान् को क० कहां से भी प० प्रतिबन्ध भ० होवे से० वह प० प्रतिबन्ध च० चार प्रकार का प० प्ररूपा तं० वह ज० जैसे अ० अंड से (वो० कपास के वस्त्र) पो० पोतज से उ० पीढ फलगादि से प० प्रग्रहित से ज० जो जो दि० दिशा में इ० इच्छते हैं त० उस २ दि० दिशा में अ० अप्रतिबद्ध सु० शुचिभूत अ० लघु भूत अ० अल्पग्रन्थी सं० संयम से त० उस से आ० आत्मा को भा० भावते

यसा जलंता ॥ ३६ ॥ णत्थिण तेसिं भगवंताण कत्थवि पडिबंधे भवइ से पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा अंडएइ वा (बोडजेइवा) पोयएइ वा, उग्गहेइवा, पग्गहेइ वा, जन्नं जन्नं दिसं इच्छंति तन्नं तन्नं दिसं अपडिबद्धा, सुइभूया, अप्पलहुभूया, अप्पगंथा

वन्त दीखती है वैसे ही साधु ज्ञान गुणों से सदाकाल तेजवन्त दीखते हैं ॥ ३६ ॥ ऐसे साधुओं को किसी स्थान पर प्रतिबंध नहीं है. वह प्रतिबन्ध चार प्रकार का है, (१) अण्डे से उत्पन्न होनेवाले पक्षी मयूरादिक का (अंडज शण के वस्त्र, बोडज कपास के वस्त्र का) (२) थेली से उत्पन्न होनेवाले हस्ती आदि का प्रतिबंध, (३) वसति, पीढफलगादिक का प्रतिबंध (४) तथा उपग्रहिक-उपकरण का प्रतिबंध. इन चारों प्रतिबंध से रहित बनकर जिस २ दिशा में साधु जाने को वांच्छे वहां २ अप्रतिबंधपने विचरे. वैसे ही शुचीभूत, निर्मल आत्मावाले, अल्पपरिग्रही, अल्प ग्रंथ रखनेवाले तथा बहुश्रुत साधु पुरुष तप और

जैसे अ० अप्रतिबन्ध स० शरद ऋतु के स० पानी जैसे सु० शुद्ध हृदयी पु० कमल के पत्ते जैसे नि० निरुपलेप कु० कूर्म जैसे गु० गुप्तेन्द्रिय वि० पक्षि जैसे वि० संग रहित खा० गेंडे के शिंग जैसे ए० एक जाता भा० भारंड पक्षी जैसे अ० अप्रमादी कु० हस्ती जैसे सों० शूरवीर व० वृषभ जैसे जा० भारवाहक सी० सिंह जैसे दु० प्रभावी मं० मेरु समान अ० स्थिर सो० सागर जैसे गं० गंभीर चं० चंद्र जैसे सो० शीतल सू० सूर्य जैसे दि० देदीप्यमान ज० उत्तम कं० सुवर्ण जैसे जा० निर्मल व० पृथ्वी जैसे स० सर्व

जीवइव अपडिहयगती, गगणतलंपिव, निरालंबणा, वाउरिव अपडिबंधा, सारदसलिलइव सुद्धहियया, पुक्खरपत्तंइव निरुवलेवा, कुम्मोइव गुत्तिंदिया, विहगइव विप्पमुक्का, खग्ग-विसाणंव एगजाया, भारंडपक्खीव अप्पमत्ता, कुंजरोइव सोंडीरा, वसभोइव जातत्थिमा, सीहोइवदुद्धरिसा, मंदरोइव अप्पकंपा, सागरोइव गंभीरा, चंदोइवसोमलेसा, सूरोइवदित्त तेया, जच्चकंचणगंचइव जातरूवा, वसुंधराइव सव्वफासविसहा सुहुयहुयासणोत्रिव ते-

अकेला रागद्वेष रहित, भारंडपक्षी जैसे अप्रमत्त, हस्ती जैसे शूरवीर, वृषभ जैसे बलवन्त, सिंह जैसे दुर्द्धर्ष--पराभव नहीं पायाहुवा, मेरु पर्वत जैसे अप्रकंप, समुद्र जैसे गंभीर, चंद्र समान शीतल, सूर्य समान प्रदीप्त, सच्चा सुवर्ण जैसे जातरूप, पृथ्वी समान सर्व स्पर्श को सहनेवाले हैं. और घृतादिक सींचने से जैसे अग्नि तेज

स० समिति वाले म० मन समिति वाले व० वचन समिति वाले का० काया समिति वाले मु० मन गुप्तिवाले व० वचन गुप्ति वाले का० काया गुप्ति वाले गु० गुप्त गु० गुप्तेंद्रिय गु० गुप्त ब्रह्मचारी अ० अक्रोधी अ० अमानी अ० अमायी अ० अलोभी स० शान्त प० प्रशान्त उ० उपशान्त प० निवृत्त अ० अनाश्रवी अ० अग्रन्थी छि० छेदा हुवा सो० श्रोत नि० निरुपलेप कं० कांस्यके पात्र जैसे मु० लेप रहित सं० शंख के जैसे णिं० अरंगित जी० जीव जैसे अ० अप्रतिहत गति ग० आकाश जैसे नि० निरावलम्बी वा० वायु

णभंडमत्तणिक्खेवणासमिया; उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपरिट्ठावणियासमिया; मणसमिया; वयसमिया, कायसमिया, मणगुत्ता, वयगुत्ता, कायगुत्ता, गुत्ता, गुत्तिंदिया गुत्तबंभयारी; अकोहा, अमाणा, अमाया, अलोहा; संता, पसंता, उवसंता, परिणिव्वुडा, अणासवा, अग्गंथा, छिन्नसोया, निरुवलेवा, । कंसपाइव मुक्कतोया, संखइवणिरंजणा

मन गुप्ति, वचन गुप्ति तथा काया गुप्तिवाले, गुप्तेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, क्रोध, मान, माया तथा लोभ रहित, शान्त, प्रशान्त, उपशान्त, व्रतधारी, अनाश्रवी, निर्ग्रंथ, पापरूप प्रवाह को काटनेवाले, कर्ममल से रहित, कांस्य पात्र की मुवाफिक पापरूप पानी से रहित, शंख की सदृश रंग रहित, जीव की मुवाफिक अस्खलित गतिवाले, आकाश जैसे निरालम्ब, वायु जैसे अप्रतिबंध, शरद ऋतु के जल जैसे निर्मल हृदयवाले कमलपत्र जैसे निरलेपी, कूर्म जैसे गुप्तेन्द्रिय, पक्षी जैसे विप्रमुक्त:—सर्व ममत्व रहित; गेंडे के सींग जैसे

यायी ध० धर्मार्थी ध० धर्म से वि० वृत्ति क० करने वाले वि० विचरते हैं सु० सुशील सु० सुवचनी सु० शुभकार्य में आनंदी सु० साधु स० सर्व पा० प्राणातिपात से प० निवृत्ति जा० जाव जीव जा० यावत् जे० जैसा त०तथा प्रकारके सा०सावद्य अ० अबोधिक क० कर्म प० दूसरे पा० प्राणी प० परीताप क० करने वाले त० उससे प० निवृत्त जा०जावजीव ॥३५॥ से० वह ज०जैसे अ० अनगार भ०भगवान् इ० ईर्यासमिति वाले भा० भाषा समिति वाले ए० एषणा समिति वाले आ० आदान भं० भाजन म० पात्र नि० निक्षेपन स० समिति वाले उ० उच्चार पा० प्रस्रवण खे० श्लेष्म सिं० नासिका का मेल ज० मेल प० परिठावन

जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, सुस्सीला, सुव्वया, सुप्पडियाणंदा, सुसाहु सव्वातो पाणातिवायाओ पडिविरया जावजीवाए जाव जेयावन्ने तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जंति ततो विपडिविरता जावजीवाए ॥ ३५॥ से जहा णामए अणगारा भगवंतो इरियासमिया; भासासमिया; एसणासमिया; आया-

आजीविका करनेवाले हैं. और भी वे सुशील, सुव्रत, अच्छे कार्य में आनंद माननेवाले, सुसाधु तथा सुखसाध्य पद्वी रूप गुणों से विराजमान यावत् सर्व प्रकार के प्राणातिपातादिक से निवर्तनेवाले और भी ऐसे पापकारी कार्यों तथा अन्य को परिताप होवे ऐसे कार्यों से निवर्ते हुवे हैं ॥ ३५ ॥ अब अन्य प्रकारसे साधु के गुण बताते हैं. साधु भगवन्त ईर्या समिति, भाषा समिति, ऐषणा समिति, आयाणभंडमत्तनिक्षेपनसामिति, उच्चार पासवण खेल सिंघाण जल परिठावणिया सामिति, मन सामिति, वचन सामिति, काया सामिति,

मिक कालमें दु० दुर्लभ बो० बोधिक भ० होता है ए० यह ठा० स्थान अ० अनार्य अ० अशुद्ध जा० यावत् अ० नहीं स० सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म० मार्ग ए० एकांत मि० मिथ्या अ० असाधु प० पाहिला ठा० स्थानक अ० अधर्म पक्षका वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ ३४ ॥ अ० अव दो० दूसरा ठा० स्थान ध० धर्म पक्षका वि० विचार ए० ऐसे आ० कहा जाता है इ० यहां ख० निश्चय पूर्वादि दिशामें स० हैं ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं तं० वह ज० जैसे अ० अनारंभी ण० अपरिग्रही ध० धर्मात्मा ध० धर्मानु-

ल्लभबोहिएयावि भवइ; एसट्ठाणे अणारिए, अकेवले; जाव असव्वदुक्खपहीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहू पढमस्स ट्ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए ॥३४॥ अहावरे दोच्चस्स ट्ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणं वा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तंजहा अणारंभा, अपरिग्गहा, धम्मिया, धम्माणुया, धम्मिट्ठा,

से मरण व नरक से नरक के दुःख भोगवे. इस तरह दक्षिण दिशा-नरकमें जानेवाला भी आगामिक काल में भी दुर्लभ बोधि होवे. और यह मार्ग अनार्य, अकेवल यावत् इस में सर्व दुःखों से मुक्त होने का नहीं है. यह प्रथम अधर्म पक्ष का विचार कहा ॥ ३४ ॥ अब धर्म पक्ष का विचार कहते हैं. इस जगत् में पूर्वादिक दिशा में कितनेक मनुष्य निरारंभी, निष्परिग्रही, धार्मिक, धर्मानुगामी, धर्मार्थी यावत् धर्म से ही

मति उ० पाते हैं ते० इस से त० तहां उ० उत्कृष्ट वि० वहुत प० गाढ क० कडवी क० कर्कश चं० रौद्र दु० दुःख दु०दुर्ग ति०तीव्र दु०दुःखसे सहन होवे णे०नारकी वे०वेदना प० अनुभवतेहुवे वि० विचरते हैं से० वह ज० जस रु० वृक्ष सि० होवे प० पर्वत के अग्र में जा० उत्पन्न मू० मूल में छि० छेदा हुवा अ० अग्र भाग ग०बडा ज० जहां णि० नीचा ज० जहां वि० विषम ज० जहां दु० दुर्ग त० तहां प० गीरता है ए० ऐसा त० तथा प्रकार के पु० पुरुष जात ग० गर्भसे गर्भ में ज० जन्म से जन्म में मा० मरण से मरण में ण०नरकसे नरकमें दु०दुःखसे दुःखमें दा० दक्षिण में रही हुई णे० नरक में क० कृष्ण पक्षी आ० आगा-

तिं वा मतिं वा उवलभंते, तेणं तत्थ उज्जलं, विउलं, पगाढं, कडुयं, कक्कसं, चंडं, दुक्खं दुग्गं तिव्वं दुरहियासं णेरइया वेयणे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ॥ से जहा णामए रु-क्खसिया पव्वयग्गे जाए मूलछिन्ने अग्गे गरुए जओणिन्नं जओविसमं जओदुग्गं त-ओ पवडंति, एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए गब्भातो गब्भं; जम्मातो जम्मं; माराओ मारं; णरगाओ णरगं; दुक्खाओ; दुक्खं दाहिणगामिए णेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं दु-

बुद्धि की प्राप्ति नहीं होती है. और वहां पर वे तीव्र, रौद्र तथा दुःसह दुःखों भोगवते हुवे रहते हैं. जैसे पर्वत पर रहाहुवा कोई बडा भारी वृक्ष का मूल काटने से वह नीचे सम विषम भूमि में पडे वैसे ही दुष्ट पुरुष कर्म रूप वायु से प्रेरायाहुवा नरकगति में जावे. वहां से निकलकर गर्भ से गर्भ, जन्म से जन्म, मरण

अंदर से व० वर्तुलाकार वा० बाहिर से च० समचोरस अ० नीचे से खु० क्षुरके सं० आकार से सं० रहे हुवे णि० नित्य अ० बहुत अंधकार व० रहित ग० ग्रह चं० चंद्र सू० सूर्य न० नक्षत्र जो० ज्योति प० रस्ता मे० मेद व० चरबी मं० मांस रु० रुधिर पू० राध प० पसीना चि० कर्दम लि० लिप्त अ० लेपन त० तल अ० अशुचि वी० सहित प० बहुत दु० दुरभिगंध क० कृष्ण अ० अग्नि जैसा भ० प्रकाश क० कर्कश फा० स्पर्श दु० दुःख से सहन होवे अ० अशुभ ण० नरक अ० अशुभ ण० नरक में वे० वेदना ॥२३॥ णो० नहीं ण० नरकमें ने० नारकी णि० निद्रालेतेहैं प० बहुत निद्रालेतेहैं सू० श्रुति र० आनंद धी० धृति म०

संठाण संठिया, णिच्चंधकारतमसा, ववगयग्गहचंद सूरनक्खत्तजोइसप्पहा; मेद-वसामंसरुहिरपूयपडलचिक्खललित्ताणुलेवणतला असूई वीसा, परमदुब्भिगंधा कण्हा, अगणिवन्नाभा, कक्खडफासा दुरुहियासा; असुभा णरगा असुभा णरएसु वेयणा-ओ ॥ २३ ॥ णो चेव णरएसु नेरियाणिद्दायंति वा; पलायंति वा सूइं वा रतिं वा धी-

ग्रह, नक्षत्र का प्रकाश कदापि नहीं होता हैं, उन के भूमितल मेद, वसा, मांस, रुधिर, और पसीना से अनुलिप्त हैं. अशुचि से खरडाये हुवे दुर्गंधवाले, तथा कृष्ण वर्णवाले हैं. स्मशान की अथवा धमाहुवा लोह की अग्नि के वर्ण जैसा आकार है, और वहां दुःसह कर्कशादि कठोर स्पर्श रहे हुवे. हैं ऐसी नरक में बहुत अशुभ वेदना रहीहुइ है ॥ २३ ॥ नारकी के जीवों को वहां नरक में निद्रा, प्रचला, श्रुति, रति, धैर्य तथा

का गोला उ० पानी में प० डालने से उ० पानी के तलेपे म० जावे अ० नीचे ध० भूमि तलेपे प० रहा हुवा भ० होता है ए० ऐसे त० तथा प्रकार के पु० पुरुष जात व० वज्र ब० बहुत धू० कर्म ब० बहुत पं० कादव ब० बहुत वे० वैर ब० बहुत अ० अपयश आ० अविश्वास दं० कपट णि० वेष पलटाना सा० साति उ० ऊष्ण त० त्रस प्राणी का घा० घातिक का० काल के अवसर में का० काल करके ध० धरणी तल में म० जावे अ० नीचे ण० नरक तल में प० रहने वाले भ० होते हैं ॥३२॥ ते० वे ण० नरक अं०

धरणितलपइट्ठाणे भवइ; एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाते वज्जबहुले, धूतबहुले, पंकबहुले, वेरबहुले, अयसबहुले, आप्पत्तिय बहुले, दंभबहुले, णियडिबहुले, साइबहुले; उसन्नतस्सपाणघाती कालमासे कालं किच्चा धरणितल मइवइत्ताइ अहे णरगतल पइट्ठाणे भवइ ॥ ३२ ॥ ते णं णरगा अंतोवट्टा बाहिंचउरंसा अहे क्खुरप्प

है वैसे ही पूर्वोक्त स्वभाववाला पुरुष बहुत कर्म रूप रज, कीचड, वैरभाव, दुर्ध्यान, अपयश, ठगाइ आदि करके तथा जीवों की घात करताहुवा काल के अवसर में काल करके पृथ्वी तल में नरकादिक में उत्पन्न होवे ॥ ३२ ॥ वे नरक के स्थान अंदर से गोल और बाहिर से चौकोने हैं. नीचे उस्त्रे की धार जैसे हैं, वहां पर सदा काल मेघ छाया या कृष्ण पक्ष की रात्रि मुवाफिक बहुत अंधकार है, जहांपर चंद्र, सूर्य,

जू० झूरणा पि० पीटना प० परीताप व० वध बं० बन्धन प० क्लेश से अ० अनिवृत्त भ० होता है ॥ ३१ ॥ ए० ऐसा ते० वे इ० स्त्री के का० काम भोग में मु० मूर्च्छित गि० गृद्ध ग० आसक्त अ० एकचित्तीभूत जा० यावत् वा० वर्ष च० चार पं० पांच छ० छ द० दश अ० थोडे भु० बहुत का० काल को भुं० भोगकर भो० काम भोग को प० पाप के प्रसूत वे० वेरानुबन्ध को सं० एकठा कर ब० बहुत पा० पाप क० कर्म उ० ऊष्ण सं० भाररूप क० किये हुवे क० कर्म से० वह ज० जैसे अ० लोहे का गोला से० पत्थर

परितप्पण वहबंधण परिकिलेसाओ अप्पडिविरया भवंति ॥ ३१ ॥ एवमेव ते इत्थि कामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइं वा अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं भुंजित्तु भोगभोगाइं पविसुइत्ता वेरायतणाइं संचिणित्ता बहूइं पावाइं कम्माइं उसन्नाइं संभारकडेण कम्मणा, से जहा णामए अयगोलइ वा, सेलगोलइ वा, उदगंसि पक्खित्ते समाणे उदगतलमइवइत्ताइ अहे

झूरणा करावे, निंदा करावे यावत् महान क्लेश का करनेवाला होवे ॥ ३१ ॥ वैसे पूर्वोक्त स्वभाववाले पुरुषों निर्दयी बनकर स्त्रियादिक कामभोगों में मूर्च्छित होते हुवे चार पांच तथा सात दश यावत् अल्पकाल या बहुत काल तक भोगवने योग्य काम भोगों भोगवकर अनेक जीवों की साथ वैर की वृद्धि करके पापरूप नरक स्थान में जावें. जैसे लोहे का या पाषाण का गोला को पानी में डालने से नीचे तलेपे जाता

अ० अन्यतर अ० अशुभ कु० खराब मार से मा० मारो ॥ १० ॥ जा० जिस में अ० आभ्यन्तर प० परिपदा भ० है तं० वह ज० जैसे मा० माता पि० पिता भा० भाइ भ० भगिनी भ० भार्या पु० पुत्र धू० पुत्री सु० पुत्रवधू ते० उस में अ० अन्यतर अ० अध ल० छोटा अ० अपराध को स० स्वयं ग० बडा दं० दंड को णि० प्रयुंजता है सी० शीतोदक वि० प्रासुक उ० डुबानेवाला भ० होता है ज० जैसे मि० मित्रदोष प्रत्ययिक जा० यावत् आ० कहा प० परलोक में ते० वह दु० दुःख पाता है सो० शोक करता है जू० झूरता है ति० रोता है पि० पीटता है प० परीताप पाता है ते० वह दु० दुःख सो० शोक

रेणं मारेह ॥ ३० ॥ जावियसे अब्भितरिया परिसा भवइ तंजहा मायाइ वा, पियाइ वा, भायाइ वा, भगिणीइ वा, भज्जाइ वा, पुत्ताइ वा, धूताइ वा सुण्हाइ वा, तेसिं पियणं अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं णिवत्तेइ सीओदगवियडंसि उच्छोलित्ता भवइ जहा मित्तदोसवत्तिए, जाव आहिए परंसि लोगंसि ते दुक्खंति, सोयंति, जूरंति, तिप्पंति, पिट्टंति, परितप्पंति, ते दुक्खण सोयण जूरण पिट्टण

प्रकार के दंड देवो ॥ १० ॥ अब आभ्यंतर परिपदा बताते हैं; माता, पिता, भाइ, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू इत्यादि में से कोइ भी अल्प अपराध करे तो भी बडा भारी दंड देवे शीतकाल में ठंडे पानी में डुबोवे यावत् सब अधिकार मित्रदोष प्रत्ययिक मुवाफिक कहना. वह अनेक जीवों को दुःख देवे, शोक उत्पन्न करे,

दं० दांत उ० उखेडना व० वृषण उ० उखेडना जि० जिव्हा उ० उखेडना ओ० डुबाना क० करो घ० घसना क० करो घो० घोलना क० करो सू० सूलीपे आरोपण क० करो सू० मूलीसे भि० भेदन क० करो खा० क्षार के सिंचन क० करो व० दर्भ से छेदन क० करो सी० सिंह की पु० पूंछ से क० बांधो व० वृषभ की पु० पूंछसे क० बांधो द० दावाग्नि में द० जलाना का० काक के मं० मांस खा० खिलाना भ० आहार पानी का नि० निषेध इ० इस को जा० जाव जीव व० वध वं० बंधन क० करो इ० इस को

रेह, इमं दंसणुप्पाडियं वसणुप्पाडियं जिब्भुप्पाडियं ओलंबियं करेह, घसियं करेह, घोलियं करेह, सूलाइयं करेह, सूलाभिन्नयं करेह, खारवत्तियं करेह, वब्भवत्तियं करेह, सीहपुच्छियंगं करेह, वसभपुच्छियंगं करेह, दवग्गिं दड्ढयंगं कागणिमंसखावियंगं भत्तपाणनिरुद्धगं इमं जावजीवं वहबंधणं करेह; इमं अन्नयरेणं असुभेणं कुमा-

पाषाण पर घसो, खाल उखेडो उसे ऊंचे बंधन से बांधो, उसे कुवे में डालो, उसको आम्र की मुवाफीक घोलो, शूली पर आरोपण करो, त्रिशूल से भेदो, और शस्त्र से छेदकर लूण का पानी डालो, सिंह बैल के पूंछ को बांधो, दावानल में डालो, काक पक्षी का मांस नीकाल कर उसको खिलावो, भात पानी का विरोध करो, जावजीव तक उनको बांधकर रखो, और भी ऐसे अनेक अशुभ दंड से दुःख देवो. ऐसे अनेक प-

इ० इस को त० तर्जना करो ता० ताडन करो अ० अथवा ब० बन्धन क० करो नि० निविड ब० बन्धन क० करो ह०हड्डि के ब० बन्धन करो चा० कैदखानेके ब० बन्धन क० करो नि० नीविड जु० युगलसे सं० संकोच मो० मोडना क० करो ह० हस्त छि० छेदन करो पा० पग छि० छेदन क० करो क० कर्ण छि० छेदन क० करो न० नाक ओ० ओष्ठ सी० मस्तक मु० मुख छि० छेदन क० करो वे० वेद छ० छेदन अ० अङ्ग छेदन पु० त्वचा उ० उखेडना क० करो ण० आंख उ० उखेडना क० करो

इमं तालेह, इमं अदुय बंधणं करेह, इमं नियलबंधणं करेह, इमं हडिबंधणं करेह, इमं चारगबंधणं करेह, इमं नियलजुयलसंकोडियमोडियं करेह इमं हत्थछिन्नयं करेह, इमं पायछिन्नयं करेह, इमं कन्नछिन्नयं करेह, इमं नक्क-ओट्ठ-सीस-मुहछिन्नयं करेह, वेयगछहियं, अंगछहियं, इमं पुक्खावफोडियं करेह, इमं णयणुप्पाडियं क-

कोई पुरुष किंचिन्मात्र अपराध करे तो उन को बडा भारी जो दंड देवे, सो बताते हैं:—इन का सर्वस्व लूटलो, दंडादि से मारो, मस्तक मुंडो, चपेटादि से ताडना करो, हस्त पाँव पीछे करके बांधो, मजबूत बांधो, हाथों में हथकडी, पावों में बेडी डालकर भाकसी मे डालो, इस के अङ्गोपाङ्ग मरोडकर तोड डालो, इसके हाथ, पांव, कान, नाक, ओष्ठ को काटो, आंख फोडो, जीव्हा खेच कर नीकालो, वेद का छेदन करो,

ति० तीतर व० बटेर ला० लवे क० कपोत क० कपिंजल मि० मृग म० महिष व० सूवर गा० मयूर गो० गौ० कु० कूर्म सि० सर्प आदि अ० अयत्न कू० क्रूर मि० मिथ्या दंड प० प्रयुंजते हैं जा० जिससे बा० बाहिरकी० प० परिषदा भ० होती हैं तं० वह ज० जैसे दा० दास पे० नोकर भ० भृत्य भा० भागी क० कर्म कर भो० भोग के लिये पुरुष ते० उस मे अ० अन्य प्रकार अ० अथ ल० छोटे अ० अपराध से स० स्वयं ग० बडा दं० दंड नि० प्रयुंजता है तं० वह ज० जैसे इ० इस को दं० दंडो इ० इस को मु० मुंडो

राहगाहगोहकुम्मसिरिसिवमादिएहिं अयंते कूरे मिच्छादंडं पउंजंति जावियसे बा-हिरिया परिसा भवइ तंजहा दासेइ वा, पेसेइ वा, भयएइ वा, भाइल्लेइवा, कम्मकरएइ वा, भोगपुरिसेइ वा, तोसिं पियणं अन्नयरांसि वा, अहालहुगांसि अवराहांसि सयमेव गरुयं दंडं निवत्तेइ, तंजहा इमं दंडेह, इमं मुंडेह, इमं तज्जेह,

से मिथ्या दंड करे वैसे ही वे तीतर, वटेर, लावक, कपोत, कपिंजल, मृग, महिष, सूकर, मयूर, गो, नकुल, घो, कूर्म, तथा सर्प को प्रयोजन से अथवा निष्प्रयोजन से निर्दय बनकर घात करें. उन की बाहिर की परिषदा बताते हैं. दासी का पुत्र सो दास, कार्यार्थ भेजाजावे सो प्रेशक, परिश्रम करके काम करे सो नोकर, भाग का लेनेवाला सो भागीदार, तथा अपना कार्य के लिये रखा सो भोगिक. उनमेंसे

प० अतिक्लेशसे अ० अनिवृत्त जा०जावजीव जे० जो अ० अन्य त० तथा प्रकारके सा०सावद्य अ० अबो-
धिक क० कर्म प० दूसरे पा० प्राणी प० परिताप क० करनेवाले जे० जो अ० अनार्य क० करते हैं त०
उससे अ० अनिवृत्त जा० जावजीव ॥ २९ ॥ से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष क० बटले म०
मसूर ति० तेल मु० मूंग मा० उडिद नि० वाल कु० कुलथ अ० अलसी प० कावली चने आ० आदि
अ० अयत्न कू० क्रूर मि० मिथ्या दंडको प० प्रयुंजते हैं ए० ऐसे त० तथा प्रकारके पु० पुरुष जात

वज्जा, अबोहिया, कम्मंता, परपाणपरियावणकरा, जे अणारिएहिं कज्जंति ततो अप्पडि-
विरया जावजीवाए ॥ २९ ॥ से जहा णामए केइ पुरिसे कलममसूरतिलमुग्ग
मासनिप्फावकुलत्थआलिसंदगपलिमंथगमादिएहिं अयंते कूरे मिच्छादंडं पउंजंति
एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिरवट्टगलावगकवोतकविंजलमियमहिसव-

प्रकार के आरंभ स्वयं करते हैं, अन्य की पास कराते हैं, सर्वथा प्रकार से करण, करावण, पचन पाचन
से निवृत्त नहीं हुवे हैं. इस तरह अन्य को दुःख उत्पन्न होवे ऐसे पाप कार्यों से तथा बोध बीज को
नष्ट करनेवाले कर्मों से भी निवृत्त नहीं बने हैं ॥ २९ ॥ जैसे कोई पुरुष बटले, मसूर, तिल, मूंग, तुवर,
उडिद, चणा, कुलथी इत्यादि अनाज को अपने लिये या अन्य के लिये पचन पाचनादिक क्रिया करके क्रूरता

घारवखार वि० समुदायसे अ० अनिवृत्त जा० जाव जीव स० सर्व क० क्रय वि० विक्रय मा० माषा अ० अर्ध माषा रू० रूपक सं० व्यवहारसे अ० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व हि० चांदी सु० सुवर्ण ध० धन ध० धान्य म० मणि मो० मौक्तिक सं० शंख० सि० शिला प्प० प्रवालेसे अ० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व कू० खोटे तोल कू० खोटे माप से अ० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व आ० आरंभसे स० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व क० करने क० करानेसे अ० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व प० पचन पचावनेसे अ० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व कु० कूटना पी० पीटना त० तर्जना ता० ताडना व० वध बं० बन्ध

हिरण्णसुवण्णधणधण्णमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालओ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाओ कूडतुलकूडमाणाओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ आरंभसमारंभा-ओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ करणकारावणाओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ पयणपायाणाओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ कुट्टणपिट्टणतज्जण ताडणवहबंधपरिकिलेसाओ अप्पडिविरया जावजीवाए, जे आवण्णे तहप्पगारे सा-

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, अलंकार से अनिवृत्त बने हैं, शकट, रथ, वगी, पालखी, विमानादि अनेक वाहनों को भोगवनेवाले हैं, क्रयविक्रयादि व्यवहार को आचरनेवाले हैं, हिरण्य, सुवर्ण, चंद्रकान्त मणि, आदि से जीवन पर्यंत नहीं निवर्तनेवाले बने हैं, सर्वथा प्रकार से खोटे तोले खोटे माप रखनेवाले बने हैं, सर्वथा प्रकार के आरंभ से अनिवृत्त हैं, कूटना, पीटना, ताडना, तर्जना करना, और भी अनेक

अ० अनिवृत्त जा० जाव जीव जा० यावत् स० सब परिग्रह से अ० अनिवृत्त जी० जावजीव स० सर्व को० क्रोध से जा० यावत् मि० मिथ्यादर्शनशल्य से अ० अनिवृत्त स० सर्व ण्हा० स्नान म० मर्दन व० वर्ण गं० गंध वि० विलेपन स० शब्द फ० स्पर्श र० रस रू० रूप गं० गंध म० माला अ० अलंकार से अ० अनिवृत्त जा० जाव जीव स० सर्व स० गाडे र० रथ जा० यान जु० विमान गि० डोली थि० हस्ती पलान सि० शिबीका सं० पालखी स० शयन आ० आसन जा० यान वा० वाहन भो० भोग भो० भोजन प०

प्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ कोहाओ जाव मिच्छादंसणसल्लाओ अप्पडिविरया सव्वाओ ण्हाणुच्चण-मद्दण-वण्ण-गंध-विलेवण-सद्द-फरिसरस रूव गंधमल्लालंकाराओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ सगडरहजाणजुगगिल्लिथिल्लिसियासंदमाणि-यासयणासणजाणवाहणभोगभोयणपवित्थरविहीओ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाओ कयविक्कयमासद्धमास रूवगसंववहाराओ अप्पडिविरया; जावजीवाए सव्वाओ

उत्पन्न करनेवाले होते हैं. उन के हस्त सदाकाल रुधिरवाले होते हैं, वे तीव्र क्रोधी, रौद्र ध्यानवाले, क्षुद्र, साहसात्कार करनेवाले, उठाने व ठगने में कुशल, माया कपट करनेवाले, असाधु, दुष्टाचारी, तथा दुःख में आनंद माननेवाले हैं. और भी वे किंचिन्मात्र हिंसा, मृषा, अदत्त, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, यावत् मिथ्यादर्शन सल्य-इन अठारह पापस्थानों से नहीं निवर्ते हुवे हैं. स्नान, मंजन, वर्ण, गंध, विलेपन

को अनुसरने वाले अ० अधर्म में रहे हुवे अ० अधर्म कहने वाले अ० अधर्म पाप जीवन वाले अ० अधर्म प्र० देखने वाले अ० अधर्ममें र० रहे हुवे अ० अधर्म शील स० समुदाय वाले अ० अधर्म से वि० वृत्ति क० करने वाले वि० विचरते हैं ॥२८॥ ह० हणो छिं० छेदो भि० भेदो वि० उखेडो लो० लोही से भरे हाथवाले चं० क्रोधी रु० रौद्र खु० क्षुद्र सा० साहसीक उ० ऊंचा करना वं० वंचना मा० माया कू० कूड कपट सं० प्रयोग सहित ब० बहुत दु० दुःशील दु० दुर्वचनी दु० खराब दर्प अ० असाधु स० सर्व पा० प्राणातिपात से

अधम्माणुया, अधम्मिट्ठा अधम्मक्खाई, अधम्मपावजीवी, अधम्मपलोई, अधम्मपलज्ज- णा, अधम्मसीलसमुदायारा अधम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ॥ २८ ॥ ह- ण, छिंद, भिंद, विगत्तगा, लोहियपाणी, चंडा, रुद्दा, खुद्दा, साहस्सिया, उक्कंचण वंचण मायाणियडि कूडकवडसाइ संपओगबहुला दुस्सीला दुव्वया दुप्पडियाणंदा असाहु सव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरया जावजीवाए जाव सव्वाओ परिग्गहाओ अ-

हैं. वे गृहस्थ बडी इच्छावाले, महा आरंभी, महा परिग्रही, अधर्मी, अधर्मानुचारी, अधर्म में रहे हुवे, अधर्म बोलनेवाले, अधर्म से आजीविका करनेवाले, अधर्म देखनेवाले, अधर्म में राचनेवाले, अधर्म स्वभाववाले तथा अधर्म की ही वृत्ति करनेवाले हैं ॥ २८ ॥ ऐसे अधर्माचारी स्वयं अधर्मी बनकर के अन्य को भी ऐसा ही उपदेश करते हैं कि जीवों को मारो, छेदो, व चमडी उखेडो. ऐसा बोलकर अन्य प्राणी को दुःख

अ० अनार्य अ० अशुद्ध जा० यावत् अ० नहीं स० सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त मि० मिथ्या अ० असाधु ए० यह ख० निश्चय त० तीसरा ठा० स्थानक मि० मिश्रपक्ष का त्रि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ २७ ॥ अ० अब प० प्रथम ठा० स्थान अ० अधर्म पक्ष का त्रि० विचार ए० ऐसा आ० कहा जाता है इ० यहां ख० निश्चय पा० पूर्वादि दिशामें सं० हैं ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं गि० गृहस्थ म० बडी इच्छा वाले म० महारंभी म० महा परिग्रही अ० अधर्मी अ० अधर्म

मूयत्ताए पच्चायंति, एसट्ठाणे अणारिए, अकेवले, जाव असव्वदुक्खपहिणमग्गे, एगंतमिच्छे, असाहु, एस खलु तच्चस्स ट्ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगे एव माहिए ॥ २७ ॥ अहावरे पढमस्स ट्ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगं एव माहिज्जइ, इह खलु पाईणं वा संतेगतिया मणुस्सा भवंति गिहत्था, महिच्छा, महारंभा, महापरिग्गहा, अधम्मिया,

पूर्ण कर वाहिरे, गुंगे होवे और चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण करे. इस लिये यह स्थान अनार्य, व महान पुरुषों को अनाचरणीय है. उस में रहनेवाले जीव को केवल ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है, यावत् सर्व दुःख का क्षय करनेवाला यह स्थानक नहीं है परंतु एकान्त मिथ्यात्व का और असमाधि का स्थानक है. यह तीसरा मिश्र पक्ष हुवा ॥ २७ ॥ अब पूर्वोक्त जो तीन प्रकार के स्थानक कहे वे ही विशेषता से कहते हैं. उस में से प्रथम अधर्मपक्ष का स्वरूप कहते हैं. इस संसार में पूर्वादिक चारों दिशाओं में कितनेक मनुष्य

जा० यावत् स० सर्व दु० दुःख प० मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त स० सम्यक् सा० साधु दो० दुसरा ठा० स्थान ध० धर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ २६ ॥ अ० अब त० तीसरा ठा० स्थान मि० मिश्रपक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा जाता है जे० जो इ० यहां भ० हैं आ० अरण्य वासी आ० पर्णकूटी निवासी गा० ग्राम निवासी क० कितनेक र० गुप्ताचारी जा० यावत् ते० वे त० तहां से वि० चवकर भु० वारंवार ए० वधिर मू० मूक प० परिभ्रमण करते हैं ए० इस ठा० स्थानक में

दुक्खपहीणमग्गे, एगंतसम्मे, साहु, दोच्चस्स ट्ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एव मांहिए ॥२६॥ अहावरे तच्चस्स ट्ठाणस्स मिस्सगस्स विभंग एव माहिज्जइ जे इमे भवंति आरण्णिया, आवसहिया, गामणियंतिया, कण्हुइरहास्सित्ता जाव ते तओ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एल-

वाला, एकान्त सम्यक् व साधु मार्ग है यह धर्म पक्ष का विचार कहा ॥ २६ ॥ अब तीसरा मिश्र पक्ष का+ स्वरूप कहते हैं. जो तापसादि जंगल में अथवा ग्राम या गृह के नजीक रहते हैं, अनेक गुप्त कार्य करते हैं, यावत् यद्यपि वे यहां पर कायाक्लेश करे तोहपि वे किल्विषी देव में उत्पन्न होवे और वहां से आयुष्य

+ अधर्म पक्ष से मिश्रित जो धर्म पक्ष है उसे मिश्र पक्ष कहते हैं. परंतु अधर्म पक्ष की इस में वहुलता विशेष आती है इस लिये उसे अधर्म पक्ष ही जानना. यद्यपि कितनेक मिथ्यात्वी भी व्रतादि अंगीकार करते हैं परंतु चित्त की अशुद्धता से व परमार्थ की अज्ञानता से शर्कर मिश्रित दुग्ध समान उन के व्रत हैं.

इ० यहां ख० निश्चय पा० पूर्व प० पश्चिम उ० उत्तर दा० दक्षिण दिशायें सं० हैं ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होतेहैं तं० वह ज० जैसे आ० आर्य ए० कितनेक अ० अनार्य उ० ऊंचगोत्री णी० नीचगोत्री का० लंबी काया वाले ह० छोटी काया वाले सु० सुवर्ण दु० खराब वर्ण सु० सुरुप दु० कुरूप ते० उसमें खे० क्षेत्र व० वस्त्र प० परिग्रह भ० हैं ए० यह आ० आलापक ज० जैसे पों० पौंडरीक अध्ययन में त० तैसे णे० जानना ते० उस आ० आलाप से जा० यावत् स० सर्व उ० उपशांत स० सर्वात्मता से प० निवृत्त त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ए० यह ठा० स्थानक आ० आर्य के० केवल ज्ञान

इह खलु पाईणं वा, पडीणं वा, उदीणं वा, दाहिणं वा, संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा आयरियावेगे, अणारियावेगे, उच्चागोयावेगे, णीयागोयावेगे, कायमंतावेगे, हस्समंतावेगे, सुवन्नावेगे, दुवन्नावेगे, सुरूवावेगे, दुरूवावेगे. तेसिं च णं खेत्तवत्थूणि परिग्गहियाइं भवंति, एसो आलावगो जहा पोंडरीए तहा णेतव्वो, तेणेव आलावेण जाव सव्वोवसंता सव्वत्ताए परिनिव्वुडं तिबेमि ॥ एसट्ठाणे आरिए, केवले, जाव सव्व

चारों दिशाओं में आर्य, अनार्य, ऊंच गोत्रिय, नीच गोत्रिय, लम्बी कायावाले, ठींगने शरीरवाले, सुरूप, कुरुप ऐसे कितनेक मनुष्य रहते हैं. उनको क्षेत्र, गृह आदि परिग्रह होताहै जिसका सब अधिकार पौंडरीक अध्ययनसे जानना यावत् सर्व कषाय को उपशमाकर और सर्व पापस्थान का त्याग कर मोक्षकी प्राप्ति करे. यह स्थानक आर्य पुरुषों का है, इस में केवलज्ञान उत्पन्न हो सकता है यावत् सर्व दुःखों को दूर करने-

अ० वांच्छते हैं अ० असावधान हुवे ए० कितनेक अ० वांच्छते हैं अ० तृष्णावंत अ० वांच्छते हैं ए० यह ठा० स्थान अ० अनार्य अ० अशुद्ध अ० अपूर्ण अ० अन्याय में प्रवर्तक अ० मलयुक्त अ० शल्य रहित अ० सिद्धि मार्ग रहित अ० मुक्ति मार्ग रहित अ० निर्वाण मार्ग रहित अ० मोक्ष को नहीं जानने वाले अ० नहीं स० सर्व दु० दुःख प० क्षय किया म० मार्ग ए० एकान्त मि० मिथ्या अ० असाधु ए० यह ख० निश्चय प० प्रथम ठा० स्थान अ० अधर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ २९ ॥ अ० अथ दो० दूसरा ठा० स्थान ध० धर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा जाता है

इच्चेयस्स ठाणस्स उट्ठियावेगे अभिगिज्झंति, अणुट्ठियावेगे अभिगिज्झंति; अभिझंझाउरा अभिगिज्झंति, एस ठाणे अणारिए, अकेवले, अप्पडिपुन्ने, अणेयाउए, असंसुद्धे, असल्लगत्तणे, असिद्धिमग्गे, अमुत्तिमग्गे, अनिव्वाणमग्गे, अणिजाणमग्गे, असव्वदुक्ख पहीणमग्गे, एगंतामिच्छे, असाहु, एस खलु पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए ॥ २५ ॥ अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिज्जइ

पूर्वोक्त ऐश्वर्यादिक की इच्छा करे और लोभी बनकर राजादिक की पद्वी की वांच्छना करे परंतु ये स्थानक अनार्य, केवलज्ञान रहित, अप्रतिपूर्ण, अन्यायप्रवर्तक, शल्यको नहीं काट सके ऐसे, हैं और सर्व दुःख का क्षय करनेवाले नहीं है, ये कर्मबंध के स्थानक, असमाधि के स्थानक तथा असाधु-खराब हैं, यह प्रथम अधर्मपक्ष स्थानक का वर्णन कहा ॥ २९ ॥ अथ दूसरा धर्म पक्ष का स्वरूप बताते हैं. इस जगत की

ऐसा व० बोलते हैं दे० देव अ० यह पु० पुरुष दे० देव सि० स्नातक अ० यह पुरुषं दे० देव जैसा जीव-
वाला अ० यह पुरुष अ० दूसरे अ० इससे उ० पोषाते हैं त० उस को पा० देख कर आ० आर्य व०
कहते हैं अ० दुष्ट कू० क्रूर कर्मी अ० यह पु० पुरुष अ० बहुतधूर्त अ० आत्मा को र० रखने
वाला दा० दक्षिण में रही हुइ ने० नरक में क० कृष्ण पाक्षवाली आ० आगामिक काल में दु०
दुर्लभ बो० बोधी भ० होगा ॥ २४ ॥ इ० इतने ठा० स्थान को उ० सावधान हुवे ए० कितनेक

स्स सयइ; तमेव पासित्ता अणारिया एवं वयंति, देवे खलु अयं पुरिसे, देवसिणाए
खलु अयं पुरिसे, देवजीवणिज्जे खलु अयं पुरिसे, अन्नेणवि णं उवजीवंति; तमेव पा-
सित्ता आरिया वयंति, अभिक्कंतकूरकम्मे खलु अयं पुरिसे; अतिधुत्ते, अइयायरक्खे,
दाहिणगामिए, नेरइए, कण्हपक्खिए, आगामिस्साणं, दुल्लहबोहियाए, यावि भविस्सइ ॥ २४ ॥

चाहते हो ? जो आप कहें सो हम करने को तत्पर हैं. ऐसा उनका ठाठ देख कर अनार्य लोकों
ऐसा कहते हैं कि, यह पुरुष प्रत्यक्ष देव समान है, इन के आश्रय से बहुत लोक जीते हैं, उन की बहुत
पुरुष सेवा कर रहे हैं. और आर्य पुरुष उन को देखकर ऐसा बोलते हैं कि यह पुरुष अत्यंत क्रूर क्रिया में
प्रवर्तता है, अत्यंत धूर्त है, बहुत कर्म का करनेवाला है, इस लिये वह नरक में जानेवाला होगा, और वहां
आगामिक काल में दुर्लभबोधि होगा ॥ २४ ॥ उपसंहार कितनेक पाखंडी साधु अथवा गृहस्थ

न० नट गी० गीत वा० वाजित्र तं० तंती त० वीणा ता० ताल तु० कसाल घ० घाण मु० मृदंग प० पडह पा० प्रवाह र० नाद से उ० प्रधान मा० मनुष्य के भो० कामभोग को भुं० भोगवता हुवा वि० विचरता है त० उस का ए० एक को अ० आज्ञादेते था० मनुष्य जा० यावत् च० चार पं० पांच ज० मनुष्य आ० बोलाये अ० तैयार होते हैं भ० कहो दे० देवानुप्रिय किं० क्या क० करें किं० क्या आ० खाओगे किं० क्या उ० लादेवे किं० क्या अ० रखें किं० क्या मे० तुमारा हि० हृदय को इ० इच्छित किं० क्या आ० मुखको स० स्वाद लगता है त० उस को पा० देख कर अ० अनार्य ए०

यायमाणाणं महयाहयनट्टगीयवाइयं तंततिलतालतुडियघणमुइंगपडुपावाइयं रवेणं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ तस्स णं एगमवि आण-वेमाणस्स जाव चत्तारि पंचजणा आवुत्ता चेव अब्भुट्ठंति, भणह देवाणुप्पिया किं करेमो; किं आहारेमो; किं उवणेमो; कि आविट्ठावेमो, किंभे हियं इच्छियं, किं भे आसग-

प्रकार की दीप की ज्योति से प्रकाशित वडे २ मनोहर नाटक, पडदे, वीणा, ताल, कंसाल, मृदंग, पडह इत्यादि अनेक वादिंत्रोंवाले मनुष्यसंबंधि प्रधान कामभोगों भोगवे. किसी कार्य के लिये किसीकी जरूर होवे और वह किसी एक को बुलावे तो चार पांच आकर आज्ञा उठानेवाले होजावें और विनंति करे कि अहो देवानुप्रिय ! क्या आज्ञा है ? हम क्या कार्य करे ? कैसा आहार आप करेगें या कैसा आहार हम बनावे ? कोनसी वस्तु ला देवें ? क्या स्थापन करें ? या कोनसे आभूषण धारण करोगें ? तुम क्या

कर्म क० करे क० कौतुक मं० मंगल पा० प्रायश्चित सि० शिर स्नान कं० गले में मा० माला क० धारण करे आ० आवद्ध म० मणि सु० सुवर्ण क० कल्पित मा० माला म० मुकुट प० प्रतिबद्ध स० शरीर व० लटकताहुवा सो० कंदोरा म० पुष्प माला क० गुच्छा अ० अच्छे व० वस्त्र प० पहिने चं० चंदन उ० लगावे गा० शरिर के गात्र में म० बहुत बडी कू० कूटाकार शिला म० पडा सी० सिंहासनपे इ० स्त्री गु० परीवार से सं० रहा हुवा स० सर्व रा० रात्रि जो० ज्योति से झि० अजवाला म० बडा

कयबलिकम्मे, कयकोउयमंगलपायच्छित्ते, सिरस्साण्हाए, कंठे मालाकडे, आबद्धमणिसुवन्ने, कप्पियमालामउली, पडिबद्धसरीरे वग्घारियसोणिसुत्तगमल्लदामकलावे अहतवत्थपरिहिए, चंदणोक्खित्तगायसरीरे महति महालियाए कूडागारसालाए महतिमहालयंसि सीहासणंसि इत्थीगुम्मसंपरिवुडे सव्वराइएणं जोइणाझि-

समय अच्छा पानी पीवे, नवनवा वस्त्र धारण करे, मनोहर मकान में रहे, पुष्पोपल शैय्या में शयन करे, सदैव प्रभात और संध्या में स्नान करे, देवतादिक निमित्त बली दान करे, अनेक कौतुक उतारणादिक करे, दधि दुर्वादिक मंगल करे, शिर में स्नान कर कंठ में माला धारण करे, मणि, सुवर्ण यथायोग्य स्थान में पहिने, कुसुम की माला पहिने, अत्यंत श्वेत वस्त्रों पहिने, गात्र में चंदनादिक का विलेपन करे, तथा कूटके आकारवाली शिला के मध्यभाग में रहा हुवा सिंहासन पर बैठ कर स्त्रीवृन्द से परवरा हुवा सर्व रात्रि विविध

अर्थ

पाते हैं ते० वे दु० दुःख जू० झूरना सो० शोक ति० रुदन पि० पीटना प० परीताप व० वध वं० बन्धन प० अति क्लेप से अ० नहीं निवर्ते हुवे भ० हैं ते० वे म० बडा आ० आरंभ से बडा स० समारंभ से ते० वे म० बडा आ० आरंभ समारंभ से वि० विविध पा० पापकर्म कि० करने से उ० प्रधान म० मनुष्य के भो० काम भोगों को भु० भोगवने वाले भ० हैं तं० वह ज० जैसे अ० आहार अ० आहार के समय में पा० पानी पा० पानी के समय में व० वस्त्र व० वस्त्र काल में ले० उपाश्रय ले० उपाश्रय काल में स० शयन स० शयन काल में पु० पहिले अ० पीछे ण्हा० स्नान क० कियाहुवा व० वली

सूत्र

बहुवंधणपरिकिलेसाओ अप्पडिविरया भवंति, ते महया आरंभेणं, ते महया समारंभेणं, ते महया आरंभसमारंभेणं, विरूवरूवेहिं पावकम्मे किच्चेहिं, उरालाइं मणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजित्तारो भवंति; तंजहा अन्नं अन्नकाले, पाणं पाणकाले, वत्थं वत्थकाले, लेणं लेणकाले, सयणं सयणकाले, पुव्वावरं च णं ण्हाए

भावार्थ

प्रशंसा करे. ऐसे अपवाद बोलनेवाले परलोक के लिये कुच्छ भी साधन नहीं कर सकते हैं; परंतु अन्य को दुःख देने से वे स्वयं दुःखी होवे, अधिक शोक करें, झूरें, सुख से भ्रष्ट होवें, पीडित होवें यावत् खेदित होवें. इस तरह दुःख, शोक, खेद करता हुवा व कराता हुवा, सुख का मिटानेवाला, दुःख का करनेवाला, पश्चाताप का करनेवाला, वध बंधन का करनेवाला, तथा क्लेश से नहीं निवर्तनेवाला मनुष्य मधु मांसादिक अनेक कामभोगों को भोगवनेवाला होवे. जैसे कि भोजन के समय में भोजन करे, पिपासा के

हुवे को अ० अन्न पा० पानी जा० यावत् णो० नहीं दे० दिलानेवाले भ० होते है जे० जो इ० ये भ० होते है वो० डुवाने वाले भा० भार से थके हुवे अ० प्रमादी वे० क्षुद्रजाति कि० कृपण नि० निरुद्यमी व० होकर स० साधुपना प० ग्रहण करते हैं ते० वे इ० ऐसे जी० जीवितव्य को धि० धिक्कार जी० जीवितव्य को सं० प्रशंसा करते हैं ना० नहीं ने० वे प० परलोक के लिये किं० किंचिदपि सि० करते हैं ते० वे दु० दुःख पाते हैं ते० वे सो० शोक करते हैं जू० झूरते है ति० रोते हैं पि० पीटते हैं प० परीताप

णो देवावेत्ता भवइ; जे इमे भवइ वोनमंता, भारक्कंता, अलसगा, वेसलगा, किवणगा, निउज्जमा, वणगा समणगा, पव्वयंति. ते इणमेव जीवितं, धिज्जीवितं संपडिबुहेंति, ना- इ ते परलोगस्स अट्ठाए किंचिवि सिलीसंति, ते दुक्खंति, ते सोयंति, ते जूरंति ते तिप्पंति, ते पिट्टंति, ते परितप्पंति; ते दुक्खण, जूरण, सोयण, तिप्पण, पिट्टण, परितप्पण

मार्ग में से दूर करावे, अथवा चपेटा मारकर साधु का तिरस्कार करे, अथवा कठोर वचन बोले, अथवा भिक्षा समय में भिक्षा लेने को प्रवेश करता हुवा देख जो कोई अशनादि देता होवे उस को न देनेदेवे. और ऐसा दुर्वचन बोले कि यह काष्ट लानेवाला है, कुटुम्ब का निर्वाह नहीं कर सकने से साधु हुवा है, यह आलसु, क्षुद्र जाति का, तथा कृपण है, किसी प्रकार का उद्यम नहीं मिलने से साधु हुवा है. ऐसे अवर्णवादी कहते हैं कि ऐसा साधु का जीवितव्यधिक् है. इस तरह अन्य की निन्दा करे और स्वतः की

श्रमण का मा० ब्राह्मण का छ० छत्र दं० दंड जा० यावत् च० चर्म छेदक स० स्वयं अ० लेजाता है जा० यावत् स० अच्छा जानता है इ० ऐसा से० वह म० महान् जा० यावत् उ० डाला हुवा भ० होता है ॥२३॥ से० वे ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण को दि० देखकर णा० विविध प्रकार के पा० पाप कर्मों से अ० आत्मा को उ० डालने वाले भ० होते हैं अ० अथवा अ० अपशकुन मानी आ० तिरस्कार करने वाले भ० होते हैं अ० अथवा प० कठोर व० बोलने वाले भ० होते हैं का० वक्त में अ० आये

व समणुजाणइ ॥ से एगइओ णो वितीगिंछइ तं समणाणं वा माहणाणं वा, छत्तगं वा दंडगं वा जाव चम्मच्छेदणगं वा, सयमेव अवहरइ जाव समणुजाणइ इति से महया जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ २३ ॥ से एगइओ समणं वा माहणं वा दिस्सा णाणाविहेहिं पावकम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ अदुवा णं अच्छराए आफालित्ता भवइ, अदुवा णं फरुसं वदित्ता भवइ; कालेणावि से अणुपविट्ठस्स असणं वा पाणं वा जाव

श्रमण ब्राह्मण के दंड, छत्र यावत् चर्म छेदक हरण करे. हरण करावे और हरण करनेवाले को अच्छा जाने यावत् कर्मोपार्जन करे ॥ २३ ॥ अब मिथ्यादृष्टि के पापों का अधिकार कहते हैं. कोई मिथ्यादृष्टि पुरुष साधु को देख कर नाना प्रकार के पापों से अपनी आत्मा को दुर्गति में डाले वही बताते हैं. किसी स्थान में अकेला साधु को देख कर ऐसा जाने कि मुझे अपशुकन हुवा. और ऐसा जानकर साधु को अपना

वा, गोणाण वा, घोडगाण वा, गद्दभाण वा, सयमेव धूराओ कप्पइ, अन्नेणावि कप्पावेति अन्नंपि कप्पंतं समणुजाणइ ॥ से एगइओ णो वितिगिंछइ तं गाहावतीण वा, गाहावइपुत्ताण वा, उट्टसालाओ वा, जाव गद्दभसालाओ वा, कंटकबोंदियाहिं पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं ज्झामेइ जाव समणुजाणइ ॥ से एगइओ णो वितिगिंछइ तं गाहावतीण वा, गाहावइपुत्ताण वा, जाव मोत्तियं वा सयमेव अवहरइ, जा-

ए० अकेला णो० नहीं वि० विचारता है तं० उस को गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का उ० उंट शाला जा० यावत् ग० गर्दभ शाला को कं० कांटे से प० ढक कर स० स्वयं अ० अग्नि से ज्झा० जलाता है जा० यावत् स० अच्छा जानता है से० वह ए० अकेला णो० नहीं वि० विचारता है तं० उस को गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का जा० यावत् मो० मौक्तिक स० स्वयं अ० लेजाता है जा० यावत् स० अच्छा जानता है से० वह ए० अकेला णो० नहीं वि० विचारता है तं० उस को स०

पुरुष गृहस्थादिक के ऊंट, वृषभ, अश्व, व गर्दभ के अंगोपांग छेदे, अन्य की पास छेदावे और छेदनेवाले को अच्छा जाने. तथा ऊंटशाला, वृषभशाला, अश्वशाला, और गर्दभशाला को कंटक आदि से ढक कर उस में स्वयं अग्नि लगावे अन्य की पास लगवावे और अग्नि लगानेवाले को अच्छा जाने यावत् पापकर्म उपार्जन करे. ऐसा ही पुरुष गृहस्थ तथा गृहस्थ के पुत्र के कुंडलादिक आभरण तथा

चे० वस्त्र चिं० पडदा च० चर्म छे० चर्म छेदनक च० चर्म कोश स० स्वयम् अ० हरता है जा० यावत् स० पूर्ववत् ॥ २२ ॥ से० वह ए० अकेला णो० नहीं वि० विचारता है तं० उस को गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का स० स्वयं अ० अग्नि से ओ० धान्य ज्झा० जलाता है जा० यावत् अ० दूसरे को ज्झा० जलाते को स० पूर्ववत् से० वह ए० अकेला णो० नहीं वि० विचारता है तं उस को गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का उ० उंट गो० वृषभ घो० अश्व ग० गर्दभ के स० स्वयं धू० अवयव क० काटता है अ० दूसरे से क० कटवाता है अ० दूसरे को क० काटते को स० अच्छा जानता है से० वह

सूत्र

लगं वा चिलिमिलिगं वा, चम्मगं वा, छेयणगं वा, चम्मकोसियं वा, सयमेव अवहरंति जाव समणुजाणइ, इति से महया जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ २२ ॥ से एगइओ णो वितिगिंछइ तं गाहावतीण वा, गाहावइपुत्ताण वा सयमेव अगणिकाएणं ओसहीओ ज्झामेइ जाव अन्नंपि ज्झामंतं समणुजाणइ इति से महया जाव उवक्खाइत्ता भवति ॥ से एगइओ णो वितिगिंछइ तं गाहावतीण वा, गाहावइपुत्ताण वा, उट्टाण

भावार्थ

॥ २२ ॥ अब निष्कारण पाप बताते हैं. कितनेक मूर्ख मनुष्यों को ऐसा विचार नहीं होता है कि ऐसे अकार्यों से मुझे इस भव में तथा परभव में अनिष्ट फल की प्राप्ति होवेगी अथवा मेरा अनुष्ठान अत्यंत खराब है ऐसा भी विचार नहीं करता हुवा गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र का धान्य में विना कारण स्वयं अग्नि प्रज्वाले, अन्य की पास प्रज्वालावे और प्रज्वालनेवाले को अच्छा जाने यावत् पाप उपार्जन करे. ऐसा

कारण से वि० विरुद्ध अ० अथवा ख० अल्प दान से सु० कोशादिक से गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का कुं० कुंडल म० मणि मो० मौक्तिक स० स्वयं अ० हरता है अ० दूसरे से अ० हराता है अ० हरते को अ० दूसरे को स० अच्छा जानता है इ० ऐसा से० वह म०पूर्ववत् से० वह ए० अकेला के० कोई आ० कारण से वि० विरुद्ध को अ० अथवा ख०अल्प दान से सु० कोशा दिक स० श्रमण का मा० ब्राह्मण का छ०छत्र दं० दंड भं० पात्र म० मात्र ल० लकडी भि० आसन

समाणे, अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएणं गाहावतीणवा, गाहावइ-पुत्ताण वा, कुंडलं वा, मणिंवा, मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ, अन्नेणवि अवहरावेइ, अवहरंतंपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव भवइ ॥ से एगइओ केणइवि आयाणेणं विरुद्धेसमाणे, अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएणं; समणेण वा, माहणेण वा; छत्तगं वा, दंडगं वा भंडगं वा, मत्तगं वा, लट्ठिंवा भिसिगं वा, चे

ऐसा पुरुष गृहस्थ के कुंडल, मणि, रत्न, मोती या अन्य आभरणों स्वयं हरण करे अन्य की पास हरण करावे; और हरण करनेवाले को अच्छा जाने यावत् पाप उपार्जन करे. ऐसे ही कोई पुरुष श्रमण ब्राह्मण, के छत्र, दंड, पात्र, मात्र, लकडी, पाट, वस्त्र, आच्छादन का वस्त्र, चर्म, चर्म छेदनक और चर्म की थैली को स्वयं ले जावे अन्य की पास लेवावे और लेनेवाले को अच्छा भी जाने यावत् पाप उपार्जन करे

अ० दूसरे को स० अच्छा जानता है इ० ऐसा से० वह म० पूर्ववत् से० वह ए० अकेला के० कोई आ० कारण से वि० विरुद्ध ख० अल्प दान से सु० कोशादिक से गा० गृहस्थ की गा० गृहस्थ के पुत्र की ज० उंटशाला गो० गौशाला घो० अश्व शाला ग० गर्दभ शाला कं० कांटेसे प० ढांक करके स० स्वयम् अ० अग्नि से ज्झा० जलाता है अ० दूसरे से ज्झा० जलवाता है ज्झा० जलाते अ० दूसरे को स० अच्छा जानता है इ० ऐसा से० वह म० पूर्ववत् से० वह ए० अकेला आ०

अन्नेणवि कप्पावेंति, कप्पंतंपि अन्नं समणुजाणइ, इति से महया जाव भवइ॥ से एगइओ केणइ आयाणेणंवाविरुद्धेसमाणे, अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएणं गाहावतीणवा, गाहावइ पुत्ताणवा, उट्टसालाओवा, गोणसालाओवा, घोडगसालाओवा, गद्दभसालाओवा, कंटकबोंदियाए पडिपेहित्ता, सयमेव अगणिकाएणं ज्झामेइ, अन्नेणवि ज्झामावेइ, ज्झामंतंपि अन्नं समणुजाणइ, इति से महया जाव भवइ ॥ से एगइओ केणइ आयाणेणं विरुद्धे

भावार्थ

इसीतरह क्रुद्ध बना हुवा कोई पुरुष गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र के उंट, घोडा, वृपभ, व गर्दभ के अंगोपांग स्वयं छेदे, अन्य की पास छेदावे और छेदनेवाले को अच्छा जाने यावत् महान पाप उपार्जन करे. और भी वह पुरुप गृहस्थ की उंटशाला, वृपभशाला, अश्वशाला या गर्दभशाला को कंटक से वंध करके अग्नि लगावे, अन्य की पास अग्नि लगवावे और अग्नि लगानेवाले को अच्छा जाने यावत् पाप उपार्जन करे.

स्वयं अ० अग्नि से स० धान्य ज्झा०जलाता है अ०दूसरे से अ०अग्नि से स०धान्य ज्झा० जलवाता है अ० अग्नि से स० धान्य ज्झा० जलाते अ० दूसरे को स० अच्छा जानता है इ० ऐसा स० वह म० पूर्ववत् से० वह ए० अकेला के० कोई आ० कारण से वि० विरुद्ध अ० अथवा अ० अल्प दान से सु० कोशादिक से गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का उ० ऊंट के गो० वृषभके घो० अश्व ग० गर्दभ स० स्वयं धू० शरीर के अवयव क० काटता है अ० दूसरे से क० कटवाता है क० काटते

विरुद्धेसमाणे, अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएणं, गाहावतीण वा, गाहावइ पुत्ताण वा, सयमेव अगणिकाएणं सस्साइं ज्झामेइ अन्नेणवि अगणिकाएणं सस्साइं ज्झामावेइ, अगणिकाएणं सस्साइं ज्झामंतंपि अन्नं समणुजाणइ, इति से महया पावकम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ से एगइओ केणइ आयाणेणंवा विरुद्धेसमाणे अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएणं, गाहावतीण वा, गाहावइ पुत्ताणवा, उट्टाणवा, गोणाणवा, घोडगाणवा, गद्दभाणवा, सयमेव धूराओ कप्पेंति,

हुवा धान्य का दान मिलने से (खला में अल्प दान मिलने से) अथवा अधिकारादिक में इच्छित लाभ की प्राप्ति नहीं होने से गृहस्थका या गृहस्थ पुत्र का खला में रहाहुवा धान्यको स्वयं जाले, दुसरेसे जलावे और जालते को अच्छा जाणे इस तरह महान पापों से अपना आत्मा को बांधे यावत् संसार में परिभ्रमण करे.

अ

शिकार करने वाले का भा० भाव को प० जानकर तं० उस प० पथिक को अ० अन्य त० त्रस पा० पूर्ववत् (१४) ॥ २० ॥ से० वह ए० अकेला प० परिषदा में से उ० उठकर अ० मैं ए० इस को ह० हणता हूं त्ति० ऐसा क० करके ति० तित्तर व० वटेर ला० लवा क० कपोत क० पारेवा अ० दूसरा भी त० त्रस पा० पूर्ववत् ॥ २२ ॥ से० वह ए० अकेला के० कोई आ० कारण से वि० विरुद्ध ख० अल्प दान से सु० कोशादिक से गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का स०

सूत्र

वा तसं पाणं हंता जाव आहारं आहरेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ (१४) ॥ २० ॥ से एगइओ परिसामज्झाओ उट्ठित्ता अहमेयं हणामि त्तिकट्टु तित्तिरं वा, वट्टगं वा, लावगं वा, कवोयगं वा, कविंजलं वा, अन्नयरं वा तसं पाणं हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ २१ ॥ से एगईओ केणइ आयाणेणं

भावार्थ

श्वान से ही आनेवाले पथिक को या अन्य किसी को हणे यावत् संसार में परिभ्रमण करे. ये आजीविका निमित्त पाप के कारण कहे. ॥ २० ॥ पूर्वोक्त हिंसा लोक में प्रच्छन्नपने की जाति है अब आगे जो हिंसा के कारण बतावे हैं सो प्रगटपने कियेजाते हैं. जैसे कोई पुरुष मांस भक्षण की इच्छासे अथवा क्रीडा निमित्त बहुत मनुष्यों की परिषदामेंसे उठकर और मैं अमुक प्राणी की घात करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा कर तीतर, कपोत, लवा, वटेर या अन्य त्रस प्राणी को छेदे, भेदे यावत् संसार में परिभ्रमण करे ॥ २१ ॥ कोई क्रोधी पुरुष सदा

मच्छको अ० अन्य त० त्रस पा० पूर्ववत् (१०) से० वह ए० अकेला गो० गोघातक का भा० भाव को प० जानकर त० उस गो० गौको अ० अन्य त० त्रस पा० पूर्ववत् (११) से० वह ए० अकेला गो० गवली का भाव को प० जानकर तं० उस को गो० गौको प० प० दूरकर २ हं० पूर्ववत् (१२) से० वह ए० अकेला सो० श्वान से निर्वाह चलाने वाले का भा० भाव को प० जानकर तं० उस सु० पशु आदि को अ० अन्य त० त्रस पा० पूर्ववत् (१३) से० वह ए० अकेला सो० श्वान से

भावं पडिसंधाय मच्छं वा अण्णतरं वा, तसं पाणं हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (१०) से एगईओ गोघायभावं पडिसंधाय तमेव गोणंवा अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (११) से एगईओ गोवालभावं पडिसंधाय तमेव गोवालं वा परिजविय परिजविय हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (१२) से एगईओ सोवणि-य भावं पडिसंधाय तमेव सुणगं वा अन्नयरं वा तसं पाण हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (१३) से एगईओ सोवणियंतियं भावं पाडिसंधाय तमेव मणुस्सं वा अन्नयरं

संसार में परिभ्रमण करे (१०) कोई अधर्मी क्रूरकर्म का करनेवाला गाय आदि त्रस प्राणी को हणे, छेदे, भेदे यावत् संसारमें परिभ्रमण करे (११) कोई गोपाल बनकरके क्रोधके वशीभूत हो गोकुलमें से किसी गौ आदि को हणे यावत् संसार में परिभ्रमण करे (१२) कोइ पुरुष श्वानसे आहार करने की इच्छा से अनेक जीवों को हणे यावत् संसार में परिभ्रमण करे (१३) कोई पुरुष श्वान का परिग्रह रखे और

अथवा अ० अन्यतर त० त्रस पा० प्राणी को हं० पूर्ववत् ए० यह अ० अभिलाप स० सर्वत्र (६) से० वह ए० अकेला सो० सूवरसे निर्वाह करने वालाका भा० भावको प० जानकर म० महिष अ० अन्य त० त्रस पा० पूर्ववत् (७) से० वह ए० अकेला वा० वाघरी का भाव को प० जानकर मि० मृगको अ० अन्य त० त्रस पा० पूर्ववत् [८] से० वह स० पाश नाखने वाला का भाव को प० जानकर स० पक्षि को अ० अन्य त० त्रस पा० प्राणी को हं० पूर्ववत [९] से० वह ए० अकेला मि० मच्छी मार का भा० भाव को प० जानकर म०

एगइओ सोवरियभावं पडिसंधाय महिसं वा अण्णतरं वा तसं पाणं जाव उवक्खाइत्ता भवइ (७) से एगईओ वागुरिवभावं पडिसंधाय मियंवा अण्णतरं वा तसं पाणं हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (८) से एगइओ सउणियभावं पडिसंधाय सउणिंवा अण्णतरं वा, तसं पाणं हंता जाव उघक्खाइत्ता भवइ (९) से एगईओ मिच्छिय-

वाले बकरें तथा अन्य त्रसप्राणी की घात करे जिस से वह नरकादिक के दुःख भोगवे (६) कोई पुरुष सौकरिक अर्थात् खाटकी का भाव अंगीकार करके महिपादिक त्रस प्राणी को हणे, छेदे, भेदे यावत् संसार में परिभ्रमण करे (७) कोई पुरुष वाघरीभाव को धारण कर मृगादिक त्रस प्राणी की घात करे, छेदे, भेदे यावत् संसार में परिभ्रमण करे (८) कोई पुरुष पक्षियों का विनाश कर आजीविका करे यावत् संसारमें परिभ्रमण करे (९) कोई अधम माछी बनकर मच्छिआदिक जलचर प्राणीको हणे यावत्

[३] से० वह ए० अकेला सं० चोर का भाव को प० जानकर तं० उस को सं० चोरी छे० पूर्ववत् (४) से० वह ए० अकेला गं० ग्रन्थि छोडने काभाव को प० जानकर त० उस गं० ग्रंन्थि को छे० पूर्ववत्(५) से० वह ए० अकेला उ० बकरे से निर्वाह चलाने वाले काभाव को प० जानकर उ० बकरे को वा०

(३) से एगइओ संधिछेदगभावं पडिसंधाय तमेव संधिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ४ ॥ से एगइओ गंठिच्छेदभावं पडिसंधाय तमेव गंठिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ (५) से एगईओ उरब्भियभावं पाडिसंधाय उरब्भं वा अण्णतरं तसं पाणं हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (६) (एसो अभिलावो सव्वत्थ) से

वाला नरकादि गति में उत्पन्न होवे (३) किसी पुरुष के घर में द्रव्यादि वस्तु जानकर खातादि लगाकर उसे छेदे, भेदे यावत् उपद्रव करे, और उस धन को अपना भोगोपभोग में खर्च करे. ऐसा क्रूर कर्म करनेवाला नरकादि गति में जाता है (४) कोई पुरुष गंठी छोड का भाव धारण कर अनेक उपायों से लोकोंको हणे, छेदे, भेदे यावत नरकादि में दुःख भोगवे (५) बकरें आदि के मांस से आजीविका करने-

आत्माको उ०नाखने वाला भ०होता है (१) से०वह ए०अकेला उ०उपचरक भावको प०जानकर त० उसका उ० उपचरकको हं० हणने वाला छे०छेदनेवाला भे० भेदने वाला लुं० काटने लला वि० टुकडा करने वाला उ०उद्वे उपजाने वाला आ० आहार आ० आहार करता है० इ० ऐसा पूर्ववत् (२) से० वह ए० अकेला पा० प्रतिपन्थिकका भाव को प० जानकर तं० उस को पा० सन्मुख हो कर हं० पूर्ववत्

महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ (१) से एगईओ उवचरयंभावं पडिसंधाय, तमेव उवचरियं हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपइत्ता, विलुंपइत्ता, उद्दवइत्ता आहारं आहारेंति इति से महया पावकम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ (२) से एगईओ पाडिपाहियभावं पडिसंधाय तमेव पाडिपहे ट्ठिच्चा हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपइत्ता, विलुंपइत्ता, उ-द्दवइत्ता आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताण उवक्खाइत्ता भवइ

भावार्थ

तिर्यंचादि गति में डाले. (१) कोई पुरुष धनवन्त पुरुष को ठगने के लिये उपचारक भाव से विश्वास उपजाकर उस को हणे, छेदे, भेदे, लूंटे, उपद्रव करे और उस का धन लेकर अनेक प्रकार के कामभोग भोगवे. इस तरह से वह पुरुष क्रूर कर्म करके नरकादिक गति में जावे (२) ऐसे ही किसी द्रव्यवन्त पुरुष को ग्रामान्तर जाते देख उन के मार्ग में सन्मुख आकर खडा रहे और उसको विश्वास देकर फिर हणे. छेदे, भेदे, लूंटे, उपद्रव करे, और उस का धन लेकर भोगोपभोग भोगवे. ऐसा क्रूर कर्मका करने-

आजीविका करने वाला सो० सुवर से निर्वाह करने वाला वा० वाघरी सो० पाश नाखने वाला म० माछी गो० गोघातक गो० गवली सो० श्वान से निर्वाह करने वाला सो० श्वान से शिकार करने वाला ॥ १९ ॥ से० वह ए० अकेला आ० जाने वाला का भ० भाव को प० जानकर त० उस को आ० जाने वालाको आ० जाने हे० हरने वाला छे० छेदने वाला भे० भेदने वाला लुं० काटने वाला वि० टुकडा करने वाला उ० उद्वेग उपजाने वाला आ० आहार आ० आहार करता है इ० ऐसा से० वह म० महान् पा० पाप क० कर्म से अ०

अदुवा मच्छिए, अदुवा गोघायए, अदुवा गोवालयए, अदुवा सोवणिए, अदुवा सोवणियंतिए ॥ १९ ॥ से एगईओ आणुगामियभावं पडिसंधाय तमेव आणुगामियाणुगामियं हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपइत्ता, विलुंपइत्ता, उद्दवइत्ता, आहारं आहारेंति इति से

का कार्य करनेवाले वाघरी होवें (९) पक्षियों को पाशमें डालने वाले होवें, (१०) मच्छिमार होवें, (११) गोघातक कसाई होवें, (१२) गोपाल होवें, (१३) कुत्ते को रखनेवाले होवें अथवा (१४) कुत्ते से शिकार खेलनेवाले होवें. सब मिल कर ऐसे चउदह प्रकार से बहुत जीवों का विनाश करे ॥ १९ ॥ अन्य ग्रामान्तर जानेवाला पुरुष की पास द्रव्य है ऐसा जानकर कोई पुरुष उस की पीछे २ जावे. फिर उस को विश्वासु बनाकर हणे, छेदे, भेदे, लूंटे, उपद्रव करे. और उस का धन लेकर उस को अनेक प्रकार के भोगोपभोग में लगावे. इस तरह वह क्रूर पापकर्मानुष्ठान से अपना आत्मा को नरक

स्थान में उ० उपजने वाले भ० होते हैं त० तहां से वि० चवकर भु० फिर ए० बधिर मू० मूक त० अंध
प० परिभ्रमण करते हैं ॥ १८ ॥ से० वे ए० कितनेक अ० आत्मा के लिये णा० ज्ञाति के० किये स०
स्वजन के० लिये अ० गृह के लिये प० परिवार के लिये ना० परिचित स० पडोशी णि० नेश्राय अ०
अथवा अ० पीछे जाने वाला उ० उपचारक प० प्रति पन्थिक सं० चोर ग० ग्रन्थि छोड उ० बकरें से

त्र

अन्नयराइं आसुरियाइं, किब्बिसियाइं ठाणाइं उववत्तारो भवंति, ततोवि विप्पमुच्चमाणा
भुज्जो एल मूयताए तमअंधयाए पच्चायंति ॥ १८ ॥ से एगइओ, आयहेउं या, णायहे-
उं वा, सयणहेउं वा, अगारहेउं वा, परिवारहेउं वा, नायगं वा, सहवासियं वा, णि-
स्साए अदुवा अणुगामिए, अदुवा, उवचरए, अदुवा पाडिपहिए, अदुवा संधिच्छेदए,
अदुवा गंठिच्छेदए, अदुवा उरब्भिए, अदुवा सोवरिए, अदुवा वागुरिए. अदुवा सोउणिए

त्यार्थ

गुंगे, बहिरे, अंधे होवे. बाद में नरक तिर्यंचादिक गति में परिभ्रमण करे. यह अधर्मपक्ष आश्रित-त्रसधा-
री को पाप का विपाक कहा. अब गृहस्थ को उद्देश कर अधर्म पक्ष कहते हैं ॥ १८ ॥ इस जगत् में
कितनेक निर्दय मनुष्यों परभव का डर बिलकुल नहीं रखते हुवे अपने लिये, ज्ञाति के लिये, स्वजन के
लिये, गृह के लिये, परिवार के लिये, परिचित्त पुरुष के लिये, तथा पडोशी के लिये (१) अकार्य करने
वाले की पीछे जावे, (२) अकार्य के लिये अनेक उपचारों करें, (३) पथिक जनकी सन्मुख आवे,
(४) चोरी करें, (५) ग्रंथी भेद करें, (६) बकरें आदि से अजीविका करें, (७) खाटकी होवे (८) मृग मारने

आहार के लिये प० प्रकाशते हैं पा० पानी के लिये प० प्रकाशते हैं व० वस्त्र के लिये प० प्रकाशते हैं ले० उपाश्रय के लिये प० प्रकाशते हैं स० शयन के लिये प० प्रकाशते हैं अ० और भी वि० विविध र्द०. काम भोग के लिये प० प्रकाशते हैं ति० शस्त्ररूप ते० उस वि० विद्याको से० सेवते हैं ते० वे अ० अनार्य वि० विपरीत का० काल के समय में का० काल करके अ० अन्य आ० आसुरिक कि० किल्विषीक ठा०

आओ विज्जाओ; अन्नस्स हेउं पउंजंति, पाणस्स हेउं पउंजंति, वत्थस्स हेउं पउंजंति, लेणस्स हेउं पउंजंति, सयणस्स हेउं पउंजंति, अन्नेसिं वा विरूवरूवाणं कामभोगाण हेउं पउंजंति, तिरित्थं ते विज्जं सेवेंति ते अणारिया विप्पडिवन्ना कालमासे कालंकिच्चा

[३०] गांधारी [३१] अवपातिनी नीचे गिराने की विद्या [३२] उत्पातिनी ऊंचे जाने की [३३] जृंभणी [३४] स्तंभनी [३५] श्लेषनी [३६] आमय करणी [३७] विशल्य करणी [३८] प्रक्रामिणी [३९] अदृश्य करणी [४०] आत्मणी तथा और भी प्रज्ञप्त्यादिक विद्याओंवाले शास्त्रों का अध्ययन करे. अध्ययन करके यदि वे अन्न, पानी, वस्त्र, उपाश्रय, शयन, तथा विविध प्रकार के कामभोगों के लिये उन विद्याओं को प्रयुंजे अथवा सदनुष्ठान की घात करनेवाली विद्याओं का सेवन करे तो आर्य क्षेत्र में उत्पन्न होने पर भी अनार्य के कार्य करनेवाले कहाये गये हैं. वे कालके अवसर में काल करके अज्ञान तप के प्रभाव से आसुरिक किल्विषी देवलोक में उत्पन्न होवे. वहां से चवकर मनुष्य लोक में

का शब्द पं० धूल वृष्टि के० बाल वृष्टि मं० मांस वृष्टि रू० रुधिर वृष्टि वे० वैतालीक अ० अर्ध वैतालीक उ० उपशामिनी ता० ताला खोलने की सो० चांडालिनी सो० शांवरी दा० द्राविडी का० कालिंगी गो० गोरी गं० गंधारी उ० अवपातिनी उ० उत्पातिनी जं० जृंभिणी थं० स्थंभिणी ले० श्लेषकी आ० आमय की वि० विशल्य की प० पराक्रम की अं० अदृश्य की आ०आत्मणी ए० ऐसे आ०आदि वि० विद्या अ०

पंसुवुट्ठिं, केसवुट्ठिं, मंसवुट्ठिं, रुहिरवुट्ठिं, वेतालिं; अद्धवेतालिं, उसोवाणिं, तालुघाडाणिं सोवागिं, सोवरिं, दामिलिं; कालिंगिं; गोरिं, गंधारिं, उवतिणिं, उप्पयणिं, जंभणिं, थंभणिं, लेसाणिं; आमयकरणिं; विसल्लकरणिं; पक्कमणिं, अंतद्धाणिं, आयामिणं; एवमाइ-

[६] इन्द्रजाल [७] मधु घृतातिक द्रव्य से उच्चाटनादिक कार्य के लिये होम करे सो द्रव्य होम [८] क्षत्रियों की धनुर्विद्या [९] चंद्र चरित्र [१०] सूर्य चरित्र [११] शुक्र का चरित्र [१२] बृहस्पति का चरित्र [१३] उल्कापात [१४] दिग्दाह [१५] मृगादिक वनचर जीवों का शकुन [१६] काकादिक पक्षी का शब्द विचार [१७] धूलि की वृष्टि [१८] केश वृष्टि [२०] मांस वृष्टि [२१] रक्त वृष्टि [२२] वैतालीक विद्या × [२३] अर्ध वैतालीक सो दंड उपशमाने की [२४] विना कुन्जी ताला खोलने की विद्या [२५] चांडालणी [२६] शांवरी विद्या [२७] द्राविडी विद्या [२८] कालिंगी [२९] गोरी

× अमुक अक्षर प्रमाण है जिस का अमुक दिनतक जाप करने से अचेत काष्ट में अग्नि उत्पन्न होवे.

च० चक्र के लक्षण छ० छत्र के लक्षण च० चर्म के लक्षण दं० दंड के लक्षण अ० असि के लक्षण म० मणि के लक्षण का० कांगणि के लक्षण सु० सौभाग्य मंत्र दु० दौर्भाग्य मंत्र ग० गर्भ का मंत्र मो० मोहिनी मंत्र आ० अनर्थ कर्ता पा० इन्द्र जाल द० द्रव्य होम ख० क्षत्रिय विद्या च० चन्द्र चलन सू० सूर्य चलन सु० शुक्र चलन व० बृहस्पति चलन उ० उल्कापात दि० दिशा दाह मि० मृगचक्र वा० वायस

दंडलक्खणं; असिलक्खणं; मणिलक्खणं, कागिणिलक्खणं; सुभगाकरं, दुब्भगाकरं, गब्भाकरं मोहणकरं, आहव्वणिं, पागसासणिं, दव्वहोमं, खत्तियविज्जं, चंदचरियं, सूरचरियं, सुक्कचरियं, वहस्सइचरियं, उक्कापायं, दिसादाहं, मियचक्कं, वायसपरिमंडलं

काक शिवादिक स्वर विचारण (७) पद्म, यव शंख चक्रादिक लक्षण, (८) मसतिलकादिक व्यंजन (९) स्त्री के लक्षण (१०) पुरुष के लक्षण (११) अश्व के लक्षण (१२) हस्ती के लक्षण (१३) गो वृषभ के लक्षण, (१४) बकरे के लक्षण, (१५) कुर्कट के लक्षण (१६) तितर के लक्षण (१७) बटेर के लक्षण (१८) लवे के लक्षण (१९) चक्र के लक्षण, (२०) छत्र के लक्षण (२१) चर्म के लक्षण, (२२) दंड के लक्षण (२३) खड्ग के लक्षण (२४) मणि के लक्षण (२५) कांगणी के लक्षण अब मंत्र विधा कहते हैं. [१] सौभाग्य बताने का मंत्र, [२] दौर्भाग्य बताने का मंत्र [३] गर्भ धारन कराने का मंत्र [४] मोहनी मंत्र अथवा वेद का उदय होवे ऐसा मंत्र [५] अनर्थ करनेवाली विद्या

विविध सी० शील णा० विविध दि० दृष्टि णा० विविध रु० रुचि णा० विविध आ० आरंभ णा० विविध अ० अध्यवसाय सं० सहित णा० विविध पा० पाप स० श्रुताध्ययन ए० ऐसे भ० होता है तं० वह ज० जैसे भो० भूमिकंप उ० उत्पात सु० स्वप्न अं० उल्कापात अं० अंग स० स्वर ल० लक्षण वं० मस इ० स्त्री के लक्षण पु० पुरुष के लक्षण ह० अश्व के लक्षण ग० हस्ति के लक्षण गो० वृषभ के लक्षण मिं० अजा के लक्षण कु० कुकडे के लक्षण ति० तित्तर के लक्षण व० बटेर के लक्षण ला० लावक के लक्षण च०

णाणारंभाणं; णाणाज्झवसाणं, संजुत्ताणं णाणाविहपावसुयाज्झयणं एवं भवइ, तंजहा भोमं, उप्पायं, सुविणं; अंतलिक्खं; अगं सरं लक्खणं, वंजणं, इत्थिलक्खणं, पुरिसलक्खणं, हयलक्खणं, गयलक्खणं; गोणलक्खणं, मिंढलक्खणं, कुक्कडलक्खणं, तित्तिरलक्खणं वट्टगलक्खणं; लावयलक्खणं, चक्कलक्खणं, छत्तलक्खणं, चम्मलक्खणं

सत्ववंत पुरुष का ज्ञान व क्रिया विशेष कहेंगे. इस लोक में विविध प्रकार की प्रज्ञावाले, विविध प्रकार के अभिप्रायवाले, नाना प्रकार के आचारवाले, नाना प्रकार की दृष्टिवाले, नाना प्रकार की रुचिवाले, नाना प्रकार का आरंभ करनेवाले, और नाना प्रकार के अध्यवसाय से युक्त पुरुषों इस तरह के पाप सूत्रों का अध्ययन करते हैं जैसे कि:—(१) भूमि कंपादिक ग्रंथ, (२) उत्पात आकाश से रुधिरवृष्ट्यादिक का होना (३) स्वप्न, (४) आकाश में उल्कापातादि चिन्ह बतानेवाला (५) अंग नेत्र स्फुरणादिक (६)

जाती है ते० तेरवी कि० क्रिया इ० ईर्यापथिक आ० कही ॥ १६ ॥ से० वह बे० कहता हूं जे० जो
अ० अतीत जे० जो प० वर्तमान जे० जो आ० आगामिक अ० अर्हंत भ० भगवन्त स० सर्व ते० वे ए०
इस ते० तेरह कि० क्रिया भा०कही भा० कहते हैं भा० कहेंगे प० प्ररूपी प० प्ररूपते हैं प० प्ररूपेंगे ते० तेरवी
कि० क्रिया को से० सेवन की से०सेवन करते हैं से० सेवन करेंगे ॥१७॥ अ० अब उ० उत्तर पु० पुरुष वि० अल्प
सत्व वि० विचार आ०कहूंगा इ०यहां ख० निश्चय णा० विविध प० प्रज्ञा णा० विविध छं० आचार णा०

॥ १६ ॥ से बेमि जेय अतीता जेय पडुपन्ना जेय आगमिस्सा अरिहंता भगवंता स-
व्वे ते एयाइं चेव तेरसकिरियाट्ठाणाइं भासिंसु वा, भासेंति वा, भासिस्संति वा, पन्न-
विंसु वा पन्नविंति वा, पन्नविस्संति वा; एवं चेव तेरसमं किरियाट्ठाणं सेविंसु वा, सेवं-
ति वा सेविस्संति वा ॥ १७ ॥ अदुत्तरं च णं पुरिसविजयं विभंग माइक्खिस्सामि,
इह खलु णाणापण्णाणं, णाणाछंदाणं, णाणासीलाणं; णाणादिट्ठीणं, णाणारूईणं,

यह क्रिया वीतराग को ही होती है. यह तेरवी क्रिया ईर्यापथिक नाम की कही ॥ १६ ॥ भूत, भविष्य
और वर्तमान काल के तीर्थंकरोंने यही तेरह प्रकार की क्रिया फरमाई है, फरमाते हैं, और फरमावेंगे, और
तेरवी क्रिया का सेवन गतकाल में किया, करते हैं और करेंगे. जैसे जम्बूद्वीप में दो सूर्य प्रकाश करते
हैं, वैसे ही भूत, भविष्य, व वर्तमानकाल में विचरनेवाले तीर्थंकर एक सारिखा उपदेश करते हैं ॥ १७ ॥
उक्त तेरह प्रकार की क्रिया सिवाय जो कोई अन्य पापस्थान रहे हुवे हैं सो बतलाते हैं. अब अल्प

भु० खाने वाले को आ० उपयोग सहित भा० बोलने वाले को आ० उपयोग सहित व० वस्त्र प० पात्र कं० कंबल पा० रजोहरण गि० ग्रहण करने वाले को णि० रखने वाले को जा० यावत् च० चक्षुसे प० निमेष मारने वालेको अ० है वि० विविध मायावाली सु० सूक्ष्म कि० क्रिया इ० ईर्या पथिक क० करता है सा० वह प० प्रथम स० समय में ब० बधाइ पु० स्पर्शाइ बि० द्वितीय स० समय में वे० वेदाइ त० तीसरा स० समयमें णि० निर्जराइ सा० वह ब० बंधाइ पु० स्पर्शाइ उ० उदीराइ वे० वेदाइ णि० निर्जराइ से० थोडा का० समय में अ० कर्म रहित भ० होते हैं ए० ऐसे ख० निश्चय त० उसका त० प्रत्यार्थिक सा० सावद्य आ० कही

त्तंभासमाणस्स, आउत्तंवत्थं, पडिग्गहं, कंबलं, पायपुंछणं, गिण्हमाणस्स वा, णिक्खिवमाणस्स वा, जाव चक्खुपम्हणिवायमवि अत्थिविमाया सुहुमा किरिया इरियावहिया नाम कज्जइ, सा पढमसमए बद्धा पुट्ठा, बितीयसमए वेइया, तइयसमए णिज्जिन्ना सा बद्धा, पुट्ठा, उदीरिया, वेइया, णिज्जिन्ना, सेयं काले अकम्मयावि भवंति. एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ, तेरसमे किरियाट्ठाणे इरियावहिएत्ति आहिए

हित वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण लेनेवाला व रखनेवाला यावत् चक्षु को खोलते बंध करते उपयोग रखनेवाला साधु को विविध प्रकार की मात्रावाली सूक्ष्म ईर्यापथिक क्रिया लगती है. यह क्रिया जीव को पहिले समयमें बंधाती है तथा स्पर्शाती है दूसरे समय मे वेदाती है और तीसरे समयमें निर्जरती है. इस तरह क्रिया बंधाने से, वेदाने से, और निर्जरने से तीसरे समय में जीव कर्म रहित होता है.

समितिवंत को भा० भाषा समितिवंत को ए० एषणा समितिवंत को आ० आदान भंड निक्षेपन समितिवंत को उ० वडीनीत पा० लघुनीत खे० खेल ज० मेल प० परिठावणिया स० समिति वंत को म० मन समितिवंत को व० वचन समितिवंत को का० काया समितिवंत को म० मनगुप्तिवंत को व० वचन गुप्तिवंत को का० काया गुप्तिवंत को गु० गुप्तेन्द्रिय को गु० ब्रह्मचारी को आ० उपयोग सहित ग० चलने वाले को आ० उपयोग सहित चि० खडा रहने वाले को आ० उपयोग सहित णि० बैठने वाले को आ० उपयोग सहित तु० सोने वाले को आ० उपयोग सहित

णासमियस्स; आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमियस्स, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्ल परिट्ठावणियासमियस्स, मणसमियस्स, वयसमियस्स, कायसमियस्स मणगुत्तस्स, वय गुत्तस्स, कायगुत्तस्स, गुत्तिंदियस्स, गुत्तबंभयारिस्स आउत्तंगच्छमाणस्स, आउत्तंचि-ट्ठमाणस्स, आउत्तंणिसियमाणस्स, आउत्तंतुयट्टमाणस्स, आउत्तंभुजमाणस्स, आउ-

लगती है. ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भंड मात्रा निक्षेपन समिति, उच्चार पासवर्ण खेल जल परिठावणिया समिति, मन समिति, वचन समिति, व काया समिति से सहित तथा मन गुप्ति वाला, वचन गुप्ति वाला, और काय गुप्ति वाला, गुप्तेन्द्रिय, विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालने वाला, उपयोग से चलने वाला, खडा रहने वाला, बैठने वाला, सोने वाला, भोजन करने वाला, बोलनेवाला तथा उपयोग स-

अ

वि० चवकर भु० वारंवार ए० विरूप मू० मूक त० जात्यंध जा० जन्मसे मूक प० परिभ्रमण करते हैं ख० निश्चय त० उनका त० प्रत्ययिक सा० सावद्य आ० कहा जाता है दु० बारवी कि० क्रिया लो० लोभ प्रत्ययिक आ० कही ॥ १४ ॥ इ० ये दु० बारह कि० क्रिया द० मुक्ति के योग्य स० श्रमण से मा० ब्राह्मण से स० सम्यक् स० अच्छी तरह ज्ञात भ० होती हैं ॥ १५ ॥ अ० अब ते० तेरवी कि० क्रिया इ० ईर्या पथिक आ० कही जाती हैं इ० यहां ख० निश्चय अ० आत्मा के लिये सं० संवृती की अ० अनगार की इ० ईर्या

कालं किच्चा अन्नयरेसु आसुरिएसु किब्बिसिएसु ठाणेसु उववत्तारो भवंति ततो विप्प-मुच्चमाणे भुज्जो २ एलमूयत्ताए तमूयत्ताए जाइमूयत्ताए पच्चायंति; एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ, दुवालसमे किरियाट्ठाणे लोभवत्तिएत्ति आहिए ॥ १४ ॥ इच्चियाइं दुवालस किरियाट्ठाणाइं दविएण समणेण वा माहणेण वा सम्मं सुपरिजाणि-अव्वाइं भवंति ॥ १५ ॥ अहावरे तेरसमे किरियाट्ठाणे इरियावहिएत्ति आहिज्जइ इह खलु अत्तताए संव्वुडस्स अणगारस्स इरिया समियस्स; भासा समियस्स; एस-

भावार्थ

गुंगा जात्यंध, व जन्म वधिर होवे. इस तरह वे फीर यहां आतेहैं. और उन को जो कर्म बंधता है उसे लोभ प्रत्ययिक कहते हैं. ॥ १४ ॥ मुक्ति गमन योग्य साधु उक्त द्वादश क्रिया को ज्ञपरिज्ञासे संसार का कारण जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञासे छोडे ॥ १५ ॥ अब ईर्यापथिक नामक तेरवी क्रिया का स्वरूप कहते हैं. अपनी आत्मा का उद्धारके लिये मन, वचन, व काया के योगों को रुंधन करने वाला साधु को यह क्रिया

दार्थ आज्ञा देने योग्य अ० मैं ण० नहीं प० ग्रहण करने योग्य अ० अन्य प० ग्रहण करने योग्य अ० मैं ण० नहीं प० परिताप कराने योग्य अ० अन्य प० परिताप कराने योग्य अ० मैं ण० नहीं उ० उद्वेग उपजाने योग्य अ० अन्य उ० उद्वेग उपजाने योग्य ए० ऐसे ते० वे इ० काम भोग में मु० मूर्च्छित गि० गृद्ध ग० आसक्त ग० गर्हने योग्य अ० एक चित्तीभूत जा० यावत् वा० वर्ष च० चार पं० पांच छ० छ द० दश अ० अल्प काल भु० दीर्घ काल भुं० भोगकर भो० काम भोग को का० काल के अवसर में का० काल करके अं० अन्य आ० आसुरिक कि० किल्विषी ठा० स्थान में उ० उपजने वाला भ० होता है त० तहां से

व्वो अन्नेहंतव्वा; अहं ण अजावेयव्वो अन्ने अजावेयव्वा, अहं ण परिघेतव्वो अन्ने परिघेतव्वा, अहं ण परितावेयव्वो अन्ने परितावेयव्वा; अहं ण उद्दवेयव्वो अन्ने उद्दवेयव्वा एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया, गिद्धा, गढिया, गरहिया, अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइं; अप्पयरो वा भुज्जयरो वा भुंजितु भोगभोगाइं कालमासे

रना नहीं, हम को आज्ञा देना नहीं, हम को परिताप उपजाना नहीं, तथा हम को उपद्रव करना नहीं, परंतु अन्य क्षुद्र प्राणी को हणना, मारना, परिताप देना, उद्वेग उपजाना. ऐसा उपदेश करनेवाले मूढ स्त्रियादिक काम भोगों में मूर्च्छित, आसक्त, व एकचित्तीभूत बनकर के पांच दश वर्ष यावत् थोडा कालतक गृहवास छोड और पांखड से कामभोगों को भोगव कर काल के अवसर में काल करके बाल तप के प्रभाव से आसुरिक-किल्विषी देवमें उत्पन्न होवे. और वहांसे चवकर मनुष्य भव मिलभी जाय तो काना

जाता है ए० इग्यारवी क्रि० क्रिया मा० माया प्रत्ययिक आ० कही ॥ १२ ॥ अ० अब बा० बारवी क्रि० क्रिया लो० लोभ प्रत्ययिक आ०कही जाती है जे०जो इ०ये भ० है तं०हव ज०जैसे आ० अरण्यवासी आ० पर्णकूटीनिवासी गा० ग्रामनिवासी क० कितनेक र० रहस्य कार्य के करने वाले णो० नहीं व० बहुत सं० संयमी णो० नहीं व० बहुत प० अव्रति स० सर्व पा० प्राणी भू० भूत जी० जीव स० सत्त्व से ते० वे अ० आत्मा को स० सत्य मो० मृषा वचन से ए० ऐसा वि० कहते हैं अ० मैं ण० नहीं ह० हणने योग्य अ० दूसरा ह० हणने योग्य अ० मैं ण० नहीं अ० आज्ञादेने योग्य अ० अन्य अ०

यं सावज्जंति आहिज्जइ; एकारसमे किरियाट्ठाणे मायावत्तिएत्ति आहिए ॥ १२ ॥ अहावरे बारस्समे किरियाट्ठाणे लोभवत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे भवंति तंजहा आरण्णिया, आवसहिया, गामंतिया; कण्हुई रहस्सिया णो बहुसंजया; णो बहुपडिविरिया सव्वपाणभूतजविसत्तेहिं ते अप्पणो सच्चामोसाइं एवं विउंजंति अहं ण हंत-

क्रिया कही ॥ १२ ॥ अब बारहवा लोभ प्रत्यायिक क्रिया स्थानक कहते हैं. कितनेक अरण्य में वास करने वाले, कितनेक पर्णकूटी में रहनेवाले, कितनेक ग्राम के नजीक में वास करके रहनेवाले, और कितनेक गुप्त कार्य करनेवाले साधु सब त्रस जीवों की विराधना नहीं करते हैं, परंतु एकेन्द्रियादिक की विराधना से उपजीविका करनेवाले होते हैं. वे सर्वथा संयती नहीं है सर्वथा सर्वप्राण भूत, जीव व सत्व की हिंसा से नहीं निवर्ते हुवे हैं, ऐसे पाखंडी इस तरह सत्यमृषा (मिश्र) भाषा बोलते हैं कि हम ब्राह्मण हैं इसलिये हम को मा-

है णो० नहीं कहता है णो० नहीं वि० विशुद्ध होता है णो० नहीं अ० नहीं करने को अ० सावधान होता है णो० नहीं अ० यथायोग्य त० तप क० कर्म का पा० प्रायश्चित्त प० अंगीकार करता है मा० मायी अ० इस लो० लोक में प० परिभ्रमण करे मा० मायी प० परलोक में प० परिभ्रमण करता है नि० निन्दता है ग० गर्हता है प० प्रशंसा करता है णि० रतिकरता है ण० नहीं नि० निवर्तता है णि० किया हुवा दं० दंड को छा० छुपाता है मा० मायी अ० दूरकरे सु० शुभ लेश्या भ० होता है ए० ऐसे ख० निश्चय त० उनका त० प्रत्ययिक सा० सावद्य आ० कहा

अकरणाए अब्भुट्ठेइ, णो अहारिहं तवो कम्मं पायाच्छित्तं पडिवज्जइ माई अस्सिंलोए पच्चायइ; माई परंसिलोए पच्चायइ; निंदइ, गरहइ, पसंसइ, णिच्चरइ, ण नियट्टइ णिसिरियं दंडच्छाएति, माई असमाहड सुहलेस्सेयावि भवइ; एवं खलु तस्स तप्पात्ति-

साफ करे नहीं, अकार्य का नाश करने को ऊठे नहीं, तथा यथायोग्य तपकर्म रूप प्रायश्चित्त अंगीकार करे नहीं. वैसे मायावी इस लोक में अविश्वसनीय होवे, और पर लोक में भी नरकादि गति में या स्त्रीलिंग धारण कर परवश बन अनेक दुःख के भोक्ता बने. और भी वह मायावी पुरुष पर की निन्दा व आत्मप्रशंसा करे, अकार्य में आनंद माने, अपना अपराध को छुपा रखे, और शुभ लेश्या का त्याग करे. इस तरह सदैव अशुभ लेश्या में प्रवर्तनेवाले को कर्म बंध होवे यह इग्यारवी माद। प्रत्ययिक

हैं अ० दूसरा पु० पुछाया हुवा अ० दूसरा वा० कहते हैं अ० अन्य आ० कहाये हुवे अ० दूसरा आ० कहते हैं से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष अं० गुप्त स० शयल्य से तं० उस स० शल्य को णो० नहीं स० स्वयं णि० दूरकरते हैं णो० नहीं अ० दूसरे से णि० दूरकराते हैं णो० नहीं प० विनाश होता है ए० ऐसा नि० छुपाते है अ० पीडाया हुवा अ० अन्दर २ में रि० रीवाता हैं ए० ऐसा मा० मायी मा० माया क० करके णो० नहीं आ० आलोचता है णो० नहीं प० प्रतिक्रमता है णो० नहीं णिं० निन्दता है णो० नहीं ग० गर्हा करता

अंतोसल्लं तं सल्लं णो सयं णिहरति णो अन्नेण णिहरावेति, णो पडिविद्धंसेइ, एवमेव निण्हावेइ आविउट्टमाणे अंतोअंतोरियाइ, एवमेव माई मायं कट्टु, णो आलोएइ, णो पडिक्कमेइ, णो णिंदइ, णो गरहइ, णो विउट्टइ, णो विसोहेइ णो

भावार्थ

और जहां जो कहने का हैं वहां उसे न कहते दूसरा ही कहते हैं. जैसे युद्ध में से आया हुवा किसी शूरवीर पुरुष को उस के शरीर में तीर भाला आदि लोह के टुकडे रह गये होवे तो उस को नीकालने से वेदना होवेगी उस डर से वह स्वयं नीकाले नहीं वैसे ही अन्य को नीकालने का कहे नहीं, तथा वैद्य की औषधियों से भी इस का विनाश नहीं होगा ऐसा जानकर उसे छुपावे और उसे कोई पुछे तो भी अपना दुःख प्रगट करे नहीं, वैसे ही मायावी पुरुष अकार्य करके गुरु की पास आलोवे नहीं, आत्मा की साक्षि से निंदे नहीं, पर की साक्षी से गर्हे नहीं, शुभ भाव रूप पानी से अपना अतिचार

निन्दनीक भ० होता है ए० ऐसे से० वह तं० उसको त० मत्यायिक सा० सावद्य आ० कहा जाता है दं० दशवी क्रिया मि० मित्र दोष मत्यायिक आ० कही ॥ १२ ॥ अ० अब ए० इग्यारहवी कि० क्रिया मा० माया मत्यायिक आ० कही जाती है जे० जो० इ० यह भ० हैं गू० गुप्ताचारी त० अंधकार में विचरने वाले उ० उलुक की प० पांख से ल० हलके प० पर्वत से गु० बडे ते० वे आ० आर्य सं० हैं अ० अनार्य भा० भाषा वि० बोलते हैं अ० दूसरे सं० होते अ० अपनेको अ० दूसरे म० मान

हिए ॥ १२ ॥ अहावरे एक्कारसमे किरियाट्ठाणे मायावत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे भवंति गूढायारा तमोकासिया, उलुगपत्तलहुया, पव्वय गुरुया, ते आयरियावि संता अणारियाओ भासाओ विपउज्जंति अन्नहा संतं अप्पाणं अन्नहा मन्नंति, अन्नं पुट्ठं अन्नं वागरंति, अन्नं आइक्खियव्वं अन्नं आइक्खंते । से जहा णामए केइ पुरिसे

होवे. इस तरह वर्तनेवाले को जो सावद्य क्रिया लगती है उसे क्रिया स्थानक नामक मित्र दोष मत्यायिक कहा जाता है ॥ १२ ॥ अब इग्यारहवां माया मत्यायिक क्रिया स्थानक कहते हैं. इस जगत में कितनेक ठगारे, धूत, नाना प्रकार के उपायों से लोकों को ठगनेवाले. गुप्त कार्य करनेवाले, उलुक के पांख से हलके होने पर भी पर्वतसम माननेवाले, आर्य देश में उत्पन्न होने पर भी अनार्य भाषा बोलनेवाले वैसे ही लीपि भी ऐसी लिखनेवाले, व स्वतः को अन्य माननेवाले हैं. उन को कोई पुछे तो अन्य बात कहते हैं

जोत्र से वे० वेंत से णे० छडी से त० त्वचा से क० चाबुक से छि० नाड से ल० वालु से पा० पार्श्व उ० उखाडा हुवा भ० होता है दं० दंड से अ० हड्डी से मु० मुष्टि से ले० पत्थर क० ठींकरे से का० काया को आ० कटा हुवा भ० होता है त० तथा प्रकार पु० पुरुष जा० जाति सं० रहता हुवा दु० दुर्मन वाला भ० होता है प० अलग रहने से सु० सुमन वाला भ० होता है त० तथा प्रकार पु० पुरुष दं० दंडदाता दं० दंड गु० बडा दं० दंड पु० प्रधान आ० कहा इ० इस लो० लोक में सं० संज्वल को० क्रोधी पि०

लयाए वा, पासाइं उद्दालिता भवति, दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलूण वा, कवालेण वा, कायं आउडित्ता, भवति तहप्पगारे पुरिसजाए, संवसमाणे, दुम्मणा भवति पवसमाणे सुमणा भवति, तहप्पगारे पुरिस जाए, दंडपासी, दंडगुरुए, दंड-पुरक्कडे, आहिए इमंसि लोगंसि संजलणे कोहणे पिट्ठिमं सियावि भवति एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ दसमे किरियाट्ठाणे मित्तदोसवत्तिएन्ति आ-

भावार्थ बालु से उन के पीछे के भाग का उखेडनेवाला होवे, दण्ड, अस्थि, मुष्टि इत्यादि से उन के शरीर को ताडना करे. ऐसे मनुष्य की साथ रहते सज्जन पुरुष जो मात पितादिक हैं वे भी दुःखी होवे और उन को छोडने से सुखी होवे. ऐसे अल्प अपराध का भी वडा दंड करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोक ऐसे दोनों लोक में अहितकारी है. क्योंकि वे क्षण २ में क्रोध करनेवाले, तथा अन्य की निन्दा करनेवाले

से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष मा० माता के पि० पिता के भा० भाइ के भ० भगिनी के भ० भार्या के धू० पुत्री के पु० पुत्र के सु० पुत्रवधू के स० साथ सं० रहता हुवा ते० उन में अ० दूसरे से अ० थोडा भी अ० अपराध स० स्वयं ग० वडा दं० दंड नि० देता है तं० वह ज० जैसे सी० शीतोदक वि० फ्रासुक का० काया को उ० डुबायी हुयी भ० होती है उ० ऊष्णोदक से वि० फ्रासुक का० काया को ओ० सिंचा हुवा भ० होता है अ० अग्नि से का० काया को उ० उजला हुवा भ० होता है जो०

केइ पुरिसे माइहिं वा, पियाहिं वा, भाइहिं वा, भइणीहिं वा, भज्जाहिं वा, धूयाहिं वा, पुत्तेहिं वा, सुण्हाहिं वा, सार्द्धं संवसमाणे तेसिं अन्नयरंसि, अहालहुगंसि, अवराहंसि, सयमेव गरुयं दंडं निवत्तेति, तंजहा सीओदगवियडंसि वा कायं उच्छोलित्ता भवति, उसिणोदगवियडेण वा कायं ओसिंचित्ता, भवति. अगणिकाएणं कायं उवडहित्ता भवति, जोतेण वा, वेतेण वा, णेतेण वा, तयाइ वा, कसेण वा, छियाए वा,

हैं. माता, पिता, भाइ, वहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू की साथ रहता हुवा किसी पुरुष का अजानपने से भी कोई छोटा अपराध करे तो क्रोधित बनकर उन को वडा भारी दंड देता है. सो वतलाते हैं. शीत ऋतु में ठंडा पानी में अपराधियों का शरीर डुबोवे. ऊष्णकाल में ऊष्ण तेल या पानी से उन के शरीर का सिंचन करे, अग्नि से उन के शरीर को जलावे. जोत्र, वेंत, छडी, त्वचा, चाबुक, नाडा, व

अर्थ

अ० मैं हूं पु० फिर वि० विशिष्ट जा० जाति कु० कुल ब० बलादि गु० गुण उ० युक्त ए० ऐसे अ० आत्मा को स० अभिमान करे दे० देह से चु० भ्रष्ट क० कर्म वि० दुसरा अ० परवश प० जाता है तं० वह ज० जैसे ग० गर्भ से ग० गर्भ में ज० जन्म से न० जन्म में मा० मृत्यु से मा० मृत्यु में ण० नरक से न० नरक में चं० क्रोधी थ० करडा च० चपली मा० मानी भ० होता है ए० ऐसे ख० निश्चय त० उसका त० प्रत्ययिक सा० सावद्य आ० कहा जाता है ण० नवमी कि० क्रिया मा० मान प्रत्ययिक आ० कही ॥ ११ ॥ अ० अब द० दशमी कि० क्रिया मि० मित्र दोष प्रत्ययिक आ० कही जाती है

सूत्र

अप्पाणं समुक्कसें, देहाच्चुए कम्मवित्तिए अवसे पयाइं, तंजहा गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं; माराओ मारं, णरगाओ णरगं, चंडे, थद्धे, चवले, माणियावि भवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ, णवमे किरियाट्ठाणे माणवत्तिएत्ति अहिए ॥ ११ ॥ अहावरे दसमे किरियाट्ठाणे मिच्छा दोसवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए

भावार्थ

मान करे. यह जाति कुलादि से हीन है, मैं जाति कुल बलादिक गुणों से विशिष्ट हूं, ऐसा मद करे. इस तरह मद करनेवाला इस लोक में निंदा को प्राप्त होता है, परलोक में भी निन्दा का स्थानक होता है और कर्म वश बन करके गर्भ से गर्भ, मरण से मरण, जन्म से जन्म, नरक से नरक, यों तीव्र दुःखों के भोक्ता बनता है. ऐसा चपल, रौद्र, अहंकारी व स्तब्ध पुरुष निश्चय से ही ऐसी क्रिया बांधता है. वह नवमा क्रिया स्थानक मान प्रत्ययिक कहा ॥ ११ ॥ अब दशवां क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्यायिक कहते

यिक सा० सावद्य आ० कही जाती है अ० अष्टम कि० क्रिया अ० अध्यात्मिक प्रत्ययिक आ० कही ॥ १० ॥ अ० अब ण० नवमी कि० क्रिया मा० मान प्रत्ययिक आ० कही जाती है से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष जा० जातिमद से कु० कुल के मद से ब० बल का मद से रू० रूपमद से त० तप मद से सु० सूत्र का मद से ला० लाभ का मद से इ० प्रभुत्व का मद से प० बुद्धिका मद से अ० अन्य प्रकार के म० मद से म० उन्मत्त बनकर प० दूसरे को हि० हेलना करता है नि० निन्दा करता है खि० चिडाता है ग० गर्हा करता है प० पराभव करता है अ० अपमान करता है इ० दूसरे अ० यह

त्तिएत्ति आहिए ॥ १० ॥ अहावरे णवमे किरियाट्ठाणे माणवत्तिएत्ति आहिज्जइ—से जहा णामए केइ पुरिसे जातिमएण वा, कुलमएण वा, बलमएण वा, रूवमएण वा, तवमएण वा, सुयमएण वा, लाभमएण वा, इस्सरियमएण वा, पन्नामएण वा, अन्नतरेण वा, मयट्ठाणेणं मत्तेसमाणे परं हिलेति, निंदेति, खिंसति, गरहति, परिभवइ, अवमण्णेति, इत्तरिए अय अहमंसि पुण विसिट्ठे, जाइकुलबलाइगुणोववेए, एवं

इन चारों से ही जीवों को जो कर्म बंध होते हैं, उसे अध्यात्मिक क्रिया कहते हैं ॥१०॥ अब नवमा क्रिया स्थान कहते हैं. कोई पुरुष जाति, कुल, बल, रूप, तप, सूत्र, लाभ, ऐश्वर्य, प्रज्ञा व अन्य भी ऐसे किसी प्रकार के मद से मदोन्मत्त बनकर दूसरे की हेलना करे, निंदा करे, गर्हा करे, पराभवकरे अप-

प० प्रत्ययिक आ० कही जाती है से० वह ज० जैसे के० कोई० पु० पुरुष ण० नहीं है के० कोई वि० विपंवाद करे स० स्वयं ही० हीन दी० दीन दुं० दुष्ट दु० खराब मन वाला उ० अनवस्थित म० मन संकल्प चिं० चिंता सो० सोक सा० सागर सं० प्रवेश किया हुवा क० हथेलीमें प० रहा हुवा मु० मुख अ० आर्त ध्यान उ० प्राप्त भू० भूमिगत दि० दृष्टि ज्झि० ध्यान त० उसका अ० अध्यात्मनी आ० इच्छाकारी च० चार ठा० स्थान ए० एसे आ० कहे जाते हैं त० वह ज० जैसे को० क्रोध मा० मान मा० माया लो० लोभ अ० अध्यात्मिक को० क्रोध मा० मान मा० माया लो० लोभ ए० ऐसे ख० निश्चय त० उसका त० प्रत्य-

त्ति आहिज्जइ—से जहा णामए केइ पुरिसे णत्थि णं केइ किं विसंवादेति, सयमेव हीणे, दीणे, दुट्ठे, दुम्मणे, उहयमणसंकप्पे, चिंतासोगसागरसंपविट्ठे, करतलपल्लहत्थमुहे, अट्टज्झाणोवगए, भूमिगयदिट्ठिएज्झियाइं, तस्सणं अज्झत्थया आसंसइया चत्तारि ठाणा एव माहिज्जइ तंजहा कोहे, माणे, माया, लोहे, अज्झत्थ मेव कोहमाणमाया लोहे, एवं खलु तस्स तप्पात्तियं सावज्जंति आहिज्जइ, अट्ठमे किरियाट्ठाणे अज्झत्थ व-

भाव से कर्मबंध होवे वैसा ही भाव मनमें उत्पन्न होवे तो उसे अध्यात्मिक क्रिया कहते हैं. किसी पुरुषका किसीने पराभव नहीं किया है, ताहंपि वह पुरुष हीन, दीन, दुष्ट, व दुर्मन वाला होवे. चित्त की अनवस्था से चिंता शोक रूप समुद्र में निमग्न बनकर हस्ततल पे मस्तक को रखता हुवा भूमि सन्मुख दृष्टि रखकर आर्त रौद्र ध्यान ध्यावे. उस समय उस के चित्तमें क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार स्थानक को की उत्पत्ति होवे.

जाता है छ० छठी क्रिया मो० मृषा प्रत्ययिक आ० कहा ॥ ८ ॥ अ० अब स० सप्तम कि० क्रिया अ० अदत्तादान व० प्रत्यायिक आ० कही जाती है से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष आ० आत्मा के लिये जा० यावत् प० परिवारके लिये स० स्वयं अ० अदत्त आ० ग्रहण करता है अ० दूसरेसे अ० अदत्त आ० ग्रहण कराता है अ० अदत्त आ० ग्रहण करते अ० दूसरे को स० अच्छा जानता है ए० ऐसे ख० निश्चय त० उसका त० प्रत्ययिक सा० सावद्य आ० कही जाती है स० सप्तम कि० क्रिया अ० अदत्तादान व० प्रत्यायिक त्ति० ऐसा आ० कही ॥ ९ ॥ अ० अब अ० अष्टम कि० क्रिया अ० अध्यात्मिक

छट्ठे किरियाट्ठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिए ॥ ८ ॥ अहावरे सत्तमे किरियाट्ठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउं वा, जाव परिवारहेउं वा, सयमेव अदिन्नं आदियइ, अन्नेणवि अदिन्नं आदियावेइ, अदिन्नं आदियंतं अन्नं समणुजाणइ, एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ; सत्तमे किरियाट्ठाणे अदिन्नादाण वत्तिएत्ति आहिए ॥ ९ ॥ अहावरे अट्ठमे किरियाट्ठाणे अजत्थवत्तिए

स्थानक कहना ॥ ८ ॥ अब सातवां अदत्तादान प्रत्यायिक कहते हैं कोई पुरुष अपने लिये, ज्ञाति के लिये, गृह के लिये, व परिवार के लिये अदत्तादान ग्रहण करे, अन्य की पास ग्रहण करावे और ग्रहण करनेवाले को अच्छा जाने. उससे अदत्तादान प्रत्यायिक कर्म बंधाते है. यह सातवां अदत्तादान प्रत्यायिक क्रिया स्थानक कहा ॥ ९ ॥ आठवां अध्यात्मिक प्रत्यायिक नामक क्रिया स्थानक कहते हैं. जिस

॥ ७ ॥ अ० अब छ० छठी कि० क्रिया मो० मृपा प्रत्यायिक आ० कही जाती है से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुप आ० आत्मा के लिये णा० ज्ञाति के लिये अ० गृह के लिये प० परिवार के लिये स० स्वयं मु० मृपा व० बोलता है अ० दूसरे से मु० मृपा व० बोलाता है मु० मृपा व० बोलते अ० दूसरे को स० अच्छा जानता है ए० ऐसे ख० निश्चय त० उसका त० प्रत्यायिक सा० सावद्य आ० कहा

हिज्जइ, पंचमे दंडसमादाणे दिट्ठिविपरियासिया दंडवत्तिएत्ति आहिए ॥ ७ ॥ अहावरे छट्ठे+किरियाट्ठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिज्जइ—से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउं वा, णाइहेउं वा, अगारहेउं वा, परिवारहेउं वा, सयमेव मुसं वयंति अण्णेणवि मुसंवया-वेंति, मुसं वयंतं पि अण्णं समणुजाणइ, एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ

भावार्थ

और अचोर (साधु) को ही हणे, यह दृष्टि विपर्यास नामक दंड समादान कहाजाता है ॥ ७ ॥ अब छठा क्रिया स्थानक कहते हैं. कोई पुरुप अपने लिये, ज्ञाति के लिये, गृह के लिये, परिवार के लिये स्वयं मृपा बोले, अन्य की पास मृपा बोलावे, और मृपा बोलते को अच्छा जाने उसे मृपावाद प्रत्यायिक छठा क्रिया

+ पूर्वोक्त पांच में "दंड समादाणे" पाठ आया. क्यों कि उस में प्रायः पर की घात होती है. अब "किरियाट्ठाणं" पाठ चलता है क्यों कि इस में दूसरे जीव का विनाश नहीं है.

मानता हुवा मि० मित्र ह० हणाया भ० होता है दि० दृष्टि विपर्यास दं० दंड से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष गा० ग्राम की घात में ण० नगर की घात में खे० खेड क० कब्बड मं० मंडप की घा० घात में दो० द्रोण मुख की घात मे प० पाटण की घात में आ० आश्रम की घात में स० सन्निवेश की घात में नि० निगम की रा० राज्यधानि की घात में अ० साधु को ते० चोर म० मानता हुवा अ० साधु ह० हणाया भ० होता है दि० दृष्टि विपर्यास दंड ए० ऐसे त० उसका त० प्रत्यायिक सा० सावद्य आ० कहा जाता है पं० पांचवा दं० दंड स० उपादान कर्म दि० दृष्टि विपर्यास दं० दंड प्रत्यायिक त्ति० ऐसा आ० कहा

सुण्हाहिं वा; सद्धिं संवसमाणे मित्तं अमित्तमेव मन्नमाणे मित्तेहयपुव्वे भवइ, दिट्ठि-विपरियासियादंडे ॥ से जहा णामए केइ पुरिसे गामघायंसि वा, णगरघायंसि वा, खेड-कव्वड-मंडबघायंसि वा, दोणमुहघायंसि वा, पट्टणघायंसि वा; आसमघायंसि वा; सन्निवेसघायंसि वा, निग्गमघायंसि वा, रायहाणिघायंसि वा, अतेणं तेणमिति मन्नमाणे अतेणं हयपुव्वे भवइ, दिट्ठिविपरियासिया दंडे, एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आ-

मित्रको ही शत्रु मानकर उसकी घात करताहै अर्थात् शत्रुकी घात करनेको इच्छता हुवा अपना मित्रकी ही घात करे. उसे दृष्टि विपर्यास दंड कहते हैं. और भी कोई पुरुष ग्राम, नगर, खेड, कबड, मंडप, द्रोण मुख, पाटण, आश्रम, सन्निवेश, निगम व राजधानि की घात चिंतवता हुवा अच्छा पुरुष को चोर करके माने

निश्चय से० वह अ० अन्य के लिये अ० अन्य को फु० स्पर्शता है अ० अकस्मात् दंड ए० ऐसे त० उनका त० प्रत्यायिक सा० सावद्य आ० कहा जाता है च० चौथा दं० दंड स० कर्म उपादान व० प्रत्यायिक आ० कहा ॥६॥अ०अब पं०पांचवा दं०दंड स०कर्म उपादान दि० दृष्टिविपर्यास दं०दंड प्रत्ययिक आ०कहा जाता है से० वह ज० जैसे को० कोई पु० पुरुष मा० माता से पि० पिता से भा० भाइ से भ० भगिनी से भ० भार्या से पु० पुत्र से धू० पुत्री से सु० पुत्रवधू से सं० सहित सं० रहता हुवा मि० मित्र को अ० अमित्र म०

सूत्र

सालिं वा, वीहिं वा, कोद्दवं वा, कंगु वा, परगं वा, रालयं वा, छिंदित्ता भवइ, इति खलु से अन्नस्स अट्ठाए अन्नं फुसंति अकम्मादंडे । एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जं आहिज्जइ, चउत्थे दंडसमादाणे अकस्मादंडवत्तिए आहिए ॥ ६ ॥ अहावरे पंचमे दंडसमादाणे दिट्ठिविपरियासिया दंडवत्तिएत्ति आहिज्जइ, से जहा णामए केइ पुरिसे माइहिं वा, पिइहिं वा, भाइहिं वा, भगिणीहिं वा, भज्जाहिं वा, पुत्तेहिं वा, धूताहिं वा,

भावार्थ

है उसे दूर करूं, परन्तु खुरपी आदि शस्त्र से तृणादिक का छेदन करते अकस्मात् बीचमें धान्य कटजावे. इस तरह अन्यको हणनेकी चिन्तवना करते अन्य हणाजावे उसे अकस्मात् दंड क्रिया कहते हैं. यह चौथा अकस्मात् दंड प्रत्यायिक हुवा ॥ ६ ॥ अब दृष्टि विपर्यास नामक पंचम क्रिया स्थानक कहते हैं. कोई पुरुष माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री पुत्रवधू प्रमुख परिवारमें रहता हुवा दृष्टि विपर्यास से अपना

तित्तर व० बटेर च० चंडूल ल० लवा क० कपोत क० कपि क० कपिंजल वि० हणने वाला भ० होता है इ० यहाँ ख० निश्चय से० वह अ० अन्य के लिये अ० अन्य को फु० स्पर्शता है अ० अकस्मात् दंड से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष सा० शाल वी० व्रीहि को० कोदरे कं० कांगूणी प० बंटी रा० राल णि० नींदणी करते अ० दूसरा त० तृणका व० वधके लिये स० शस्त्र णि० नीकाले से० वह सा० श्याम त० तृण कु० कुमुद वी० व्रीहि ऊ० ऊंचाकार क० धान्य त० तृण छिं० छेदूंगा त्ति० ऐसा क० करके सा० शाल वी० व्रीहि को० कोदरे कं० कांगूणी प० बंटी रा० राल छिं० छेदाये हुवे भ० हैं इ० ऐसा ख०

विं वा, कविंजलं वा, विधिंत्ता भवइ, इह खलु से अन्नस्स अट्ठाए अण्णं फुसंति अकम्मादंडे । से जहा णामए केइ पुरिसे सालीणि वा, वीहीणि वा, कोद्दवाणि वा, कंगूणि वा, परगाणि वा, रालाणि वा, णिलिज्जमाणे, अन्नयरस्स तणस्स वहाए सत्थं णिसिरेज्जा से सामगं, तणगं, कुमुदुगं, वीहीऊसियं, कलेसुयं तणं च्छिंदिस्सामि त्तिकट्टु

तीतर, लवा, कपोत, चंडुल, होला वगैरह भेदावें यहां निश्चय से उन्होंने अन्य को मारने की चिन्तवना की और अन्य का घात हुवा इस लिये अकस्मात् दंड कहा जाता है. अब वनस्पति के विषय में अकस्मात् दंड कहते हैं. कोई करसणी पुरुष साल, व्रीहि, कोदरे, कांगुणी, वरटी इत्यादि चौविस प्रकार के धान्यवाले क्षेत्रमें निंदाणी करनेको गया और उसने वहां संकल्प किया कि इस धान्यके मध्य भागमें श्याम तृणादिक

आ० कहा ॥ ५ ॥ अ० अथ च० चौथा दं० दंड स० कर्म उपादान अ० अकस्मात् दंड व० प्रत्ययिक आ० कहा जाता है से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष क० कच्छ में जा० यावत् व० वनका वि० विषम स्थान में मि० मृगवृत्तिक मि० मृग में संकल्प वाला मि० मृग में प० चित्तवृत्ति मि० मृग व० वध के लिये ग० गया हुवा ए० यहाँ मि० मृग को अ० छोड कर के अ० दूसरा मि० मृगका व० वध के लिये उं० बाण को आ० खेंचकर के णि० छोडे स० वह मि० मृग को व० हणूंगा त्ति० ऐसा क० करके ति०

सूत्र

जंति आहिज्जइ, तच्चे दंडसमादाणे हिंसादंडवत्तिएत्ति आहिए ॥ ५ ॥ अहावरे चउत्थे दंडसमादाणे अकम्मादंडवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे—कच्छंसि वा,, जाव वणविदुग्गंसि वा, मियवत्तिए, मियसंकप्पे, मियपणिहाणे, मियवहाए गंता एए मियत्तिकाउं, अन्नयरस्स मियस्सवहाए, उंसु आयामेत्ताणं, णिसिरेज्जा, स मियं वहिस्सामि त्तिकट्टु, तित्तिरं वा, वट्टगं वा, चडगं वा, लावगं वा, कवोयगं वा, क-

भावार्थ

जाने, इस तरह से वह सावद्य कर्म करता है. यह तीसरा हिंसा दंड प्रत्ययिक कहा ॥ ५ ॥ अब चौथा अकस्मात् दंड कहते हैं. जैसे कोई शिकार खेलनेवाला पाराधि बहुत वृक्षों से भरपूर जंगल सरोवर यावत् पर्वत में शिकार खेलने को गया वहां अमुक मृग अपनी नजीक देखकर उस ने विचार किया कि मैं इसे हणूंगा ऐसा विचार कर उस ने मृग को मारने के लिये बाण छोडा परंतु बीच में दूसरे जीव बटेर,

जाता है दो० दूसरा दं० दंड स० कर्म उपादान अ० अनर्थ दंड प्रत्ययिक त्ति० ऐसा आ० कहा ॥ ४ ॥ अ० अथ त० तीसरा दं० दंड स० कर्म उपादान हिं० हिंसा दंड व० प्रत्ययिक आ० कहा जाता है से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष म० मुझको म० मेरे कुटुम्बी को अ० दूसरे को अ० दूसरे का परीवार को हिं० हणे हिं० हणते हैं हिं० हणेंगे तं० उस दं० दंड को त० त्रस थ० स्थावर पा० प्राणी में स० स्वयं णि० घात करता है अ० दूसरे से णि० घात करवाता है अ० दूसरे णि० घात करते को स० अच्छा जानता है हिं० हिंसा दंड में ए० ऐसे ख० निश्चय त० उस का त० प्रत्ययिक सा० सावद्य आ० कहा जाता है त० तीसरा दं० दंड स० कर्म उपादान में हिं० हिंसा दंड व० प्रत्ययिक

दंडसमादाणे अणट्ठादंडवत्तिएत्ति आहिए ॥ ४ ॥ अहावरे तच्चे दंडसमादाणे हिंसा दंडवत्तिए आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे ममं वा, ममिं वा, अन्नं वा, अन्निं वा हिंसंसु वा हिंसंति वा, हिंसिस्संति वा, तं दंडं तस थावरेहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति अण्णेणवि णिसिरावेंति, अन्नंपि णिसिरिंतं समणुजाणंति हिंसादंडे एवं खलु तस्स तप्पातियं साव-

तीसरा हिंसा दंड नामक क्रिया स्थानक कहते हैं. कोई पुरुष ऐसा विचार करे कि इसने मुझे या मेरे पिता पुत्रादिक को अथवा अन्य कोई गोत्रिय प्रमुख को मारा था, मारेगा या तो मारता है. ऐसा विचार करके त्रस स्थावर जीवों की स्वयं घात करे, अन्य की पास घात करावे और घात करनेवाले को अच्छा

उपजाने वाला उ० छोडकर था० अज्ञानी वे० वैरका आ० भागी अ० अनर्थ दंड में से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष क० कच्छ में द० द्रह में उ० पानी में द० समुद्र में व० नदी के स्थान में णू० गर्तादि में ग० अटवि में ग० अटविके वि० विषम स्थान में व० वन में व० वन के वि० विषम स्थान में प० पर्वत में प० पर्वत के वि० विषम स्थान में त० तृण ऊ० ढगकरके स० स्वयं अ० अग्नि काय णि० सलगाता है अ० दूसरे से अ० अग्नि काय णि० सलगाता है अ० दूसरे को अ० अग्नि काय णि० सलगाते को स० अच्छा जानता है अ० अनर्थ दंड में ए० ऐसा त० उसका त० प्रत्ययिक सा० सावद्य आ० कहा

सूत्र

उदगंसि वा, दवियंसि वा, वलयंसि वा, णूमंसि वा, गहणंसि वा, गहणविदुग्गंसि वा, वणंसि वा, वणविदुग्गंसि वा, पव्वयंसि वा, पव्वयविदुग्गंसि वा, तणाइं ऊसविय सयमेव अगणिकायं णिसिरिंति, अण्णेणवि अगणिकायं णिसिरावेंति, अण्णंपि अगणिकायं णिसिरिंतं समणुजाणइ, अणट्ठादंडे, एवं खलु तस्स तप्पातियं सावज्जंति आहिज्जइ, दोच्चे

भावार्थ

श्रित अनर्थ दंड कहा, अब अग्नि काय आश्रित अनर्थ दंड कहते हैं. बहुत वनस्पति का समुह होवे, वैसा कच्छ में, द्रह, तलाव, समुद्र, नदी आदि पानी के स्थान में तथा गहन जंगल, पर्वत, पर्वत के विषम स्थान में, तृण दर्भादिक एकत्रित करके स्वयं दव लगावे, अन्य की पास दव लगवावे और दव लगानेवालों को अच्छा जाने तो उस को उस से कर्म बंधे यह दूसरा क्रिया स्थानक अनर्थ दंड कहा. ॥ ४ ॥ अब

था० स्थावर पा० प्राणी भ० हैं तं० वह ज० जैसे इ० घास क० कडब जं० वंश तृण प० पलाल मो० मुंज त० तृण कु० डाभ कु० वनस्पति प० प्राप प० पराल ते० वह णो० नहीं पु० पुत्र पोषणार्थ णो० नहीं प० पशु पोषणार्थ णो० नहीं आ० गृहकी आबादी के लियें णो० नहीं स० श्रमण मा० ब्राह्मण पो० पोषणार्थ णो० नहीं त० उसका स० शरीर के लिये किं० किन्तु वि० निरर्थक भ० होता है से० वह हं० मारने वाला छे० छेदने वाला भे० भेदने वाला लुं० काटने वाला वि० टुकडा करने वाला उ० उद्वेग

इक्कडाइ वा, कढिणाइ वा, जंतुगाइ वा, परगाइ वा, मोक्खाइ वा, तणाइ वा; कुसाइ वा; कुच्छगाइ वा, पप्पगाइ वा, पलालाइ वा; ते णो पुत्तपोसणाए, णो पसुपोसणाए णो आगारपडिबूहणयाए; णो समणमाहणपोसणयाए, णो तस्स सरीरगस्स किंचि विपरियाइ भवंति से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता; उद्दविइत्ता; उज्झिउं बाले वेरस्स आभागी अणत्थादंडे। से जहा णामए केइ पुरिसे कच्छंसि वा,, दहंसि वा,

यह त्रस जीव आश्रित अनर्थ दंड कहा. अब स्थावर जीव आश्रित अनर्थ दंड कहते हैं. कितनेक पुरुष कडब, घास, पराल मुंज, दर्भ, तृण वगैरह वनस्पति अपने पुत्रादिक का पोषण के लिये, या गवादिक को खिलाने के लिये, गृहादिक कार्य के लिये, शाक्यादि साधु ब्राह्मण के लिये अथवा अपने शरीर के लिये हणे नहीं किन्तु मात्र कुतूहल निमित्त जीवों को हणनेवाले होवे, तथा दंडादिक प्रहार से छेदे, भेदे, अथवा काटे, यावत् घात करे. इस तरह वाल अविवेकी मात्र वैर का विभागी होवे. यह वनस्पति काय आ-

अ० हड्डी के लिये अ० हड्डी की मींजी के लिये णो० नहीं हिं० हणे णो० नहीं हिं० हणते हैं णो० नहीं हिं० हणेंगे णो० नहीं पु० पुत्र पोषण के लिये णो० नहीं प० पशु पोषण के लिये णो० नहीं आ० गृहकी आबादी के लिये णो० नहीं स० श्रमण मा० ब्राह्मण व० पोषणार्थ णो० नहीं त० उसका स० शरीर के लिये किं० किन्तु वि० निरर्थक भ० होते हैं से० वह हं० मारने वाला छे० छेदने वाला भे० भेदने वाला लुं० काटने वाला वि० टुकडा करने वाला उ० उद्वेग उपजाने वाला उ० छोडकर बा० मूर्ख वे० वैरका आ० भागी भ० होता है अ० अनर्थ दंड में से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष जे० जो इ० ये

सूत्र

सुमेत्ति;णो हिंसंतिमेत्ति;णो हिंसिस्संतिमेत्ति; णो पुत्तपोसणयाए णो पसुपोसणयाए णो आगार परिवूहणताए णो समणमाहणवत्तणाहेउं,णो तस्स सरीरगस्स किंचि विप्परियादित्ता भवंति से हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपइत्ता, विलुंपइत्ता, उद्दवइत्ता, उज्झिउं बाले वेरस्स आभागी भवंति, अणट्ठादंडे । से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे थावरा पाणा भवंति तंजहा

भावार्थ

लिये, अतीत काल में हणे नहीं, आगामिक काल में हणेंगे नहीं, और वर्तमान काल में नहीं हणते हैं. वैसे ही गृह शान्ति के लिये, श्रमण ब्राह्मण का पोषण करने को अथवा तो अपना शरीर का रक्षण के लिये हणे नहीं किन्तु मात्र क्रीडा निमित्त निरर्थक जीवों को छेदे, भेदे, अंग के अवयव काटे, चमडी उखेडे, तथा अन्य भी नाना प्रकार के दुःखों से पीडित करे. इस तरह विवेक हीन बाल वैर का विभागी होवे.

प० प्रथम दं० दंड स० कर्म उपादानमें अ० अर्थ दंड प्रत्ययिक त्ति० ऐसा आ० कहा ॥ ३ ॥ अ० अथ दो० दूसरा दं०दंड स० कर्म उपादान अ० अनर्थ दंड प्रत्ययिक आ०कहा जाता है से०वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष ने० जो इ० ये त० त्रस पा० प्राणी भ० हैं ते०वे णो० नहीं अ० शरीर के लिये णो०नहीं अ०चर्म के लिये णो० नहीं मं० मांस के लिये णो० नहीं सो० लोही के लिये ए० ऐसे हि० हृदय के लिये पि०पित्त के लिये व०चरबी के लिये पि०पिछों के लिये पु०पूंछ के लिये वा०वाल के लिये सिं० श्रृंग के लिये वि० विषाण के लिये दं० दांत के लिये दा० दाढ के लिये ण० नख के लिये ण्हा० नस के लिये

एत्ति आहिए ॥ ३ ॥ अहावरे दोच्चे दंडसमादाणे अणट्ठादंडवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे तसा पाणा भवंति; ते णो अच्चाए; णो अजिणाए; णो मंसाए; णो सोणियाए; एवं हिययाए—पित्ताए—वसाए—पिच्छाए—पुच्छाए—वालाए सिंगाए—विसाणाए—दंताए—दाढाए—णहाए—ण्हारुणिए—अट्ठीए——अट्ठिमंजाए णो हिंसं

से सावद्य कर्म बांधता है. उस बंधन को ही अर्थ दंड प्रत्ययिक कहते हैं. ॥ ३ ॥ अब दूसरा अनर्थ दंड प्रत्ययिक कहते हैं. जो पुरुष कारण बिना हिंसा करते हैं सो बताते हैं. इस संसार में जो त्रस प्राणी रहे हुवे हैं उन को उन के शरीर, चर्म, मांस, रक्त, हृदय, पित्त, चरबी, पांख, पूंछ, बाल, शींग, विषाण, दांत, दाढ, नख, नस, हड्डी तथा हड्डी की मींजी के लिये वैसे ही पुत्र, पशु आदि के पोषण के

लोभ इ० ईर्यापथिक ॥ २ ॥ प० प्रथम दं० दंड स० कर्म उपादान अ० अर्थदंड व० प्रत्ययिक आ० कहा जाता है से० वह ज० जैसे णा० संभावना के० कोई पु० पुरुष आ० आत्मा के लिये से णा० ज्ञातिके लिये से आ० गृह के लिये प० परिवार के लिये मि० मित्र के लिये णा० नागकुमार के लिये भू० भूत देवता के लिये ज० यक्ष के लिये तं० उस दं० दंड को त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी की स० स्वयं णि० घात करता है अ० दूसरे से णि० घात कराता है अ० दूसरे णि० घात करते को स० अच्छा जानता है ए० ऐसे ख० निश्चय त० उन को० त० प्रत्ययिक सा० सावद्य कर्म आ० कहते हैं

सूत्र

त्तदोसवत्तिए, मायावत्तिए, लोभवत्तिए, इरियावहिए॥ २॥ पढमे दंडसमादाणे अट्ठादंडवत्तिए त्ति आहिज्जइ—से जहा णामए केइ पुरिसे आयाहेउं वा, णाइहेउं वा; आगारहेउं वा; परिवारहेउं वा, मित्तहेउं वा; णागहेउं वा; भूतहेउं वा; जक्खहेउं वा; तं दंडं तसथावरेहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति, अण्णेणवि णिसिरावेंति, अण्णंपि णिसिरिंतं समणुजाणंति एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ; पढमे दंडसमादाणे अट्ठादंडवत्ति-

भावार्थ

(१२) लोभ प्रत्ययिक (१३) ईर्या पथिक ॥ २ ॥ उक्त तेरह प्रकार के दंड में से प्रथम अर्थ दंड प्रत्ययिक कहते हैं. जो कोई पुरुष स्वतः के लिये, ज्ञाति के लिये, गृह के लिये, परिवार के लिये, मित्र के लिये, नाग देवता के लिये, भूत के लिये, यक्ष के लिये, त्रस, स्थावर जीवों की स्वयं घात करता है अन्य की पास घात कराता है और घात करनेवाले को अच्छा जानता है तो वह करण, करावण व अनुमोदन

ए० इस तरह दं० दंड स० आरंभ सं० विचारे तं० वह ज० जैसे णे० नरक में ति० तिर्यंच जो० योनि में म० मनुष्य में दे० देव में ज० जैसा व० वर्ण त० तथा प्रकारके पा०प्राणी वि० जानना वे० वेदना वे० वेदते हैं ते० उस में इ० यह ते० तेरह कि० क्रिया ठा० स्थान भ० हैं इ० ऐसा अ० कहा तं० वह ज० जैसे अ० अर्थ दंड अ० अनर्थ दंड हिं० हिंसा दंड अ० अकस्मात् दंड दि० द्राष्टि विपर्यास दंड मो० मृषा प्रत्ययिक अ० अदत्तादान अ० अध्यात्मिक मा० मान मि० मित्र दोष मा० माया लो०

समादाणं संपेहाए तंजहा—णेरइएसु वा,, तिरिक्खजोणिएसु वा, मणुस्सेसु वा, देवेसु वा, जयावन्ने तहप्पगारा पाणाविन्नू वेयणं वेयंति ॥ तेसिं पिणं इमाइं तेरसकिरिया ठाणाइं भवंतिति मवखायं तंजहा—अट्ठादंडे, अणट्ठादंडे, हिंसादंडे, अकम्मादंडे, दिट्ठी विपरियासिया दंडे, मोसवत्तिए, आदिन्नादाणवत्तिए, अज्झत्थवत्तिए, माणवत्तिए, मि-

कारण को विचारना चाहिये. उस में भी श्री तीर्थंकर देवने तेरह प्रकार की क्रिया वतलाइ है. (१) प्रयोजन से पापारंभ करना सो अर्थदंड (२) निष्प्रयोजन से सावद्य क्रिया करना सो अनर्थ दंड (३) प्राणी की घात करे सो हिंसा दंड (४) अकस्मात् दंड-अन्य की क्रिया से अन्य का घात होवे (५) द्राष्टि विपर्यास दंड-विपरीत द्राष्टि से अन्य का घात होवे (६) मृषा वाद (७) अदत्तादान (८) अध्यात्मिक मन का दुर्ध्यान (९) मान प्रत्ययिक दंड (१०) मित्र दोष-मित्र को ठगने का (११) माया प्रत्ययिक

पक्षका वि० विभाग त० उसका अ० यह अ० अर्थ प० प्ररूपा इ० यहां ख० निश्चय पा० पूर्वादि दिशा में सं० हैं ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं तं वह ज० जैसे आ० कितनेक आर्य अ० कितनेक अनार्य उ० कितनेक ऊंचगोत्री णी० कितनेक नीचगोत्री का० कितनेक लंबी काया वाले ह० कितनेक छोटी काया वाले सु० अच्छेवर्ण वाले दु० खराब वर्ण वाले सु० सुरूप दु० कुरूप ते० उसमें इ० इस

स्स विभंगे तस्सणं अयमट्ठे पण्णत्ते—इह खलु पाईणं वा संतेगातिया मणुस्सा भवंति तंजहा—आरियावेगे, अणारियावेगे, उच्चागोयावेगे, णीयागोयावेगे, कायमंतावेगे, हस्समंतावेगे, सुवन्नावेगे, दुवन्नावेगे, सुरूवावेगे, दुरूवावेगे, तेसिं च णं इमं एतारूवं दंड

भावार्थ

पूर्वादिक चारों दिशा में कितनेक मनुष्य रहते हैं:—आर्य, अनार्य, ऊंच गोत्रिय, नीच गोत्रिय, लम्बी कायावाले, ठिंगने, खराब वर्ण वाले, अच्छे वर्ण वाले, सुरूप व कुरूप. नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देवता में पूर्वोक्त तथा अन्य कोई भी प्राणी साता असाता रूप जो वेदना × अनुभवते हैं; ऐसी वेदना रूप पाप का

× (१) संज्ञी जीव वेदना वेदते हैं, और जानते भी हैं, (२) सिद्ध वेदना जानते हैं परंतु अनुभवते नहीं हैं. (३) असंज्ञी वेदना अनुभवते हैं, परंतु जानते नहीं है, और (४) अजीव वेदना वेदते भी नहीं और जानते भी नहीं. यहां पर उस में से, प्रथम तथा चतुर्थ भांग का वर्णन किया है.

॥ क्रियास्थानाख्यं अष्टादश मध्ययनम्. ॥

सु० सुना मे० मैंने आ० आयुष्यवन्त भ० भगवानने ए० ऐसा अ० कहा इ० यहां ख० निश्चय कि० क्रिया स्थान णा० नाम का अ० अध्ययन प० प्ररूपा त० उस का अ० यह अ० अर्थ इ० यहां ख० निश्चय सं० संक्षेप से दु० दो ठा० स्थान ए० ऐसे आ० कहे जाते हैं तं० वह ज० जैसे ध० धर्म अ० अधर्म उ० उपशांत अ० अनुपशान्त ॥ १ ॥ त० उस में जे० जो प० प्रथम ठा० स्थान अ० अधर्म प०

सुयं मे आउसंतेणं भगवया एव मक्खायं इह खलु किरियाट्ठाणे णामज्झयणे पण्णत्ते, तस्सणं अयमट्ठे इह खलु संजूहेणं दुवे ठाणे एव माहिज्जंति तंजहा—धम्मेच्चेव अधम्मे चेव, उवसंतचेव, अणुवसंतेचेव ॥ १ ॥ तत्थणं जे से पढमस्स ठाणस्स अहम्मपक्ख-

भावार्थ

श्री सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं, की अहो अयुष्मन् जम्बू ! क्रिया का स्वरूप बतानेवाला क्रिया स्थानक नामक अध्ययन श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी की पास से मैंने सुना है वैसा ही मैं तुझे कहता हूं. इस संसार में मुख्य दो स्थानक है (१) धर्म (२) अधर्म, अथवा (१) उपशान्त और (२) अनुपशान्त ॥ १ ॥ उक्त दो प्रकार के स्थानक में से अधर्म पक्ष का कथन करते हैं. इस संसार की

स० सदा ज० यत्नावंत से० ऐसे व० कहना तं० वह ज० जैसे स० श्रमण मा० ब्राह्मण खं० क्षमावंत दं० दमनेन्द्रिय गु० गुप्तिवंत मु० मुक्तिवंत इ० ऋषि मु० मुनि क० कीर्तिवन्त वि० विद्वान् भि० भिक्षु लू० रुक्ष ती० संसार पारगामी च० चारित्र क० क्रिया पा० पारगामी त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥३६॥

तेति वा, गुत्तेति वा, मुत्तेतिवा, इसीति वा, मुणीति वा, कतीति वा, विऊति वा, भिक्खूति वा, लूहेति वा, तीरट्ठीति वा, चरणकरणपारविउ त्तिबेमि ॥ ३६ ॥ इति पोंडरीयं णामं सतरहज्झयणं सम्मत्तं ॥२॥१७॥ * *

ार्थ

तीर पहुंच गये हैं. और अपना उद्धार की साथ अन्य का भी उद्धार करने को समर्थ बने हैं. ऐसा मैं श्री महावीर स्वामी के कथनानुसार कहता हूं. यह सूयगडांग सूत्र का सतरहवा अध्ययन समाप्त हुवा. इस अध्ययन में पुंडरीक कमल के दृष्टांत से अन्य तीर्थिकों को कर्म बंध करनेवाले कहे, और साधु को कर्म से मुक्त होनेवाले कहे. वे कर्म बारह प्रकार के क्रिया स्थान में बंधाते हैं, और तेरहवा स्थानक में छूटते हैं. इस लिये आगे क्रिया स्थानक नामक अध्ययन कहते हैं. ॥२॥१७॥ *
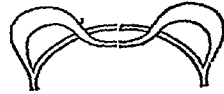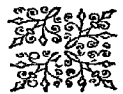
ए० ऐसे स० सर्वथा प० निवृत्त त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ३८ ॥ ए० ऐसे से० वह भि० साधु ध० धर्मार्थी ध० धर्मज्ञ णि० मोक्ष को प० प्राप्त से० वह ज० यथा वु० कहा अ० अथवा प० प्राप्त प० पद्मवर पुंडरीक को अ० अथवा अ० अप्राप्त प० पद्मवर पुंडरीक को ए० ऐसे से० वह भि० साधु प० जानकर क० कर्म प० जानकर सं० संग पं० जानकर गे० गृहस्थावास उ० उपशांत स० समिति स० सहित

ताए, परिनिव्वुडे त्तिबेमि ॥ ३५ ॥ एवं से भिक्खू धम्मट्ठी, धम्मविऊ, णियागपडिवण्णे से जहेयं बुत्तियं अदुवा पत्ते पउमवरपोंडरीयं, अदुवा अपत्ते पउमवरपोंडरीयं, एवं से भिक्खू परिण्णाय कम्मे, परिण्णाय संगे, परिण्णाय गेहवासे, उवसंते समिए सहिए सया जए सेवं वयणिज्जं तंजहा—समणेति वा, माहणेति वा, खंतेति वा, दं-

जम्बू स्वामी से कहते हैं ॥ ३८ ॥ उपसंहार-उक्त गुण विशिष्ट साधु बाह्याभ्यन्तर परिग्रह, तथा गृहवास व ज्ञाति जनों का संग की जिस से कर्मबंध होता है उन्हे ज्ञान परिज्ञा से जानकर व प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर साधु, महात्मा, ज्ञान दर्शन व चारित्र युक्त, समिति गुप्तिवन्त, पंचेन्द्रिय और नो इन्द्रिय को वश करनेवाला, क्षमावन्त, दमितेन्द्रिय, आत्मगुप्त, निर्लोभी, तत्त्व का ज्ञाता, निर्वद्य भिक्षा से रूक्ष शुष्क आहार करके शरीर का निर्वाह करनेवाला तथा मूलगुण व उत्तरगुण का पारगामी बने. ऐसे साधु पुंडरीक कमल समान राजा का उद्धार करो या मत करो परंतु वे महात्माओं तो उस पुष्करणी समान संसार को

सूत्र

माइक्खेज्जा, नन्नत्थ कम्मनिज्जरट्ठाए धम्म माइक्खेज्जा ॥ ३४ ॥ इह खलु तस्स भि-
क्खुस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म उट्ठाणेणं उट्ठाय वीरा, अस्सिं धम्मे समुट्ठिया, जे
तस्स भिक्खू अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म सम्मं उट्ठाणेणं उट्ठाय वीरा अस्सिं धम्मे
समुट्ठिया, ते एवं सव्वोवगता, ते एवं सव्वोवरता, ते एवं सव्वोवसंता, ते एवं सव्व-

आ० कहे अ० ग्लानी रहित ध० धर्म आ० कहे न० नहीं अ० अन्यत्र क० कर्म निर्जरार्थ ध० धर्म आ०
कहे ॥ ३४ ॥ इ० यहां ख० निश्चय त० उन भि० साधु की अं० समीप ध० धर्म सो० सुनकर णि०
अवधार कर उ० सावधान पना से उ० सावधान होकर वी० वीर अ० इस ध० धर्म में स० सावधान हुवे
जे० जो त० उनको भि० साधु अं० समीप ध० धर्म सो० सुनकर णि० अवधार कर स० सम्यक् उ०
सावधान पना से उ० सावधान होकर वी० वीर अ० इस ध० धर्म में स० सावधान हुवे ते० वे ए० ऐसे
स० सर्व उ० उपगत ते० वे ए० ऐसे स० सर्व उ० विरत ते० वे ए० ऐसे स० सर्व उ० उपशांत ते० वे

भावार्थ

भोग के लिये धर्म कथा करे नहीं: परंतु अग्लानपने मात्र निर्जरा के लिये धर्म कथा करे ॥ ३४ ॥ इस
संसार में जो मनुष्य उक्त गुणों से सहित साधु की पास से धर्म श्रवण कर, सम्यक् प्रकार से अवधारकर,
व संयम में सावधान बन धर्म मार्ग में कर्म क्षय करने को शूरवीर बनते हैं वे अठारह पापस्थान से उप-
शान्त बनकर शीतली भूत होते हुवे मोक्ष में पहूंचते हैं. ऐसा साधु की पास से धर्म श्रवण करने का फल मैंने
श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी से जैसे सुना हैं वैसे ही तेरे से कहता हूं. ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी

शौच अ० सरलता म० मृदुता ला० लघुता अ० अहिंसा स० सर्व पा० प्राणी की स० सर्व भू० भूतों की जा० यावत् स० सत्व की अ० विचार कर कि० कहे ध० धर्म ॥ ३३ ॥ से० वह भि० साधु ध० धर्म कि० कहता हुवा णो० नहीं अ० अन्न का हे० हेतु से ध० धर्म आ० कहे णो० नहीं पा० पानी का हे० हेतु से ध० धर्म को आ० कहे, णो० नहीं वस्त्र का हे० हेतु से ध० धर्म आ० कहे णो० नहीं ले० उपाश्रय का हे० हेतु से ध० धर्म आ० कहे णो० नहीं स० शयन का हे० हेतु से ध० धर्म आ० कहे णो० नहीं अ० अन्य वि० विविध प्रकार के का० काम भोगों के हे० हेतु से ध० धर्म

सोयवियं, अज्जवियं, मद्दवियं लाघवियं, अणतिवातियं, सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूताणं, जाव सत्ताणं अणुवाइं किट्टिए धम्मं ॥ ३३ ॥ से भिक्खू धम्मं किट्टमाणे णो अन्नस्स हेउं धम्म माइक्खेज्जा, णो पाणस्स हेउं धम्म माइक्खेज्जा, णो वत्थस्स हेउं धम्म माइक्खेज्जा, णो लेणस्स हेउं धम्म माइक्खेज्जा, णो सयणस्स हेउं धम्म माइक्खेज्जा, णो अन्नेसिं विरूवरूवाणं कामभोगाणं हेउं धम्म माइक्खेज्जा, अगिलाए धम्म

विरति, उपशम, निर्वाण, शौच, ऋजुता, मृदुता, लघुता, व अहिंसा. सर्व प्राण, भूत, जीव व सत्व को विचार करके उन की किसी प्रकार से हिंसा न होवे वैसा धर्म प्ररूपे ॥ ३३ ॥ इस तरह धर्म कथा करनेवाला साधु अन्न के लिये, वस्त्र के लिये, उपाश्रय के लिये, शयन के लिये, और विविध प्रकार का काम

अर्थ

मा० मात्रा व० अर्थ वि० बील प० सर्प भू० भूत अ० आत्मा से आ० आहार आ० लावे अ० अन्न अ० अन्न कालमें पा० पानी पा० पानी का काल में व० वस्त्र व० वस्त्र का काल में ले० उपाश्रय ले० उपाश्रय के वक्त में स० शैय्या स० शयन कालमें ॥ ३२ ॥ से० वह भि० साधु मा० विवेक का जान अ० कोई दि० दिशा अ० विदिशा प० आश्रित ध० धर्म आ० कहे वि० भिन्न २ कि० कीर्ति करे उ० सावधान हुवा को अ० अ० असावधान को सु० उत्सुक को प० प्ररूपे सं० शांन्ति वि० विरति उ० उपशम नि० निर्वाण सो०

सूत्र

जायामायावत्तियं बिलमिव पन्नगभूतेणं अप्पाणेणं आहारं आहारेज्जा; अन्नं अन्नकाले, पाणं पाणकाले, वत्थं वत्थकाले, लेणं लेणकाले, सयणं सयणकाले ॥३२॥ से भिक्खू मायन्ने अन्नयरं दिसं अणुदिसं वा पडिवन्ने धम्मं आइक्खे, विभए, किट्टे, उवट्ठिएसु वा, अणुवट्ठिएसु वा, सुस्सूसमाणेसु पवेदिए; संतिविरतिं, उवसमं निव्वाणं,-

भावार्थ

नहीं करताहुवा आहार करे. इस तरह आहार के अवसर में आहार करे, पानी का अवसर में पानी पीवे, वस्त्र पहिनने के अवसर वस्त्र पहिने, उपाश्रय के अवसर में उपाश्रय लेवे, शयन के अवसरमें शयन करे, इस तरह लौकिक क्रिया करते संयमपाले ॥ ३२ ॥ दिशा अनुदिशा में विचरनेवाला व आहारादि मात्रा का जाननेवाला साधु उद्यमी, व अनुद्यमी शिष्य तथा सुनने को उत्सुक व अनुत्सुक श्रोता को इस प्रकारसे धर्म कहे, धर्म का फल भिन्न २ करके वतलावे तथा धर्म की कीर्ति करे. जो धर्म कहे सो वतलाते हैं. शांति

पु०फिर प०दूसरे की भेजने के लिये सा०संध्या भोजन के लिये पा०सिरामण के लिये स०संनिधि सं० संग्रह क०करे इ० यहां ए० कितनेक मा० मनुष्यों को भो० भोजन के लिये त०तहां भि०साधु प०दूसरा का कृ० कीया हुवा प० दूसरे के लिये णि० बना हुवा मु० उद्गम मु० उत्पात ए० एषणा सु० शुद्ध स० अचित्त हुवा स० शस्त्र प्रणित अ० निर्जीव ए० गवेषता वे० साधु वेष सा० बहुत घरोंसे प० त्रिवेक युक्त का० कारण के किले प० प्रमाण युक्त अ० खंजन सम व० गुंबडा को ले० लेप जैसे सं० संयम जा० यात्रा

साए सन्निहीसंचए कज्जंति, इह मेगेसिं माणवाणं भोयणाए तत्थ भिक्खू परकडं प-रणिट्ठितं मुग्गमुप्पायणेसणासुद्धं सत्थाइयं सत्थपारिणामियं अविहिंसियं एसियं वेसि-यं सामुदाणियं पन्नमसणं कारणट्ठा पमाणजुत्तं अक्खोवंजण वणलेवणभूयं संजम

वृत्ति से सप्रमाण ग्रहण करे. यथा द्रष्टांत (१) जैसे गाडे को चलानेके लिये उस के चक्र में तेल डालते हैं वैसे ही शरीर रूप गाडा चलाने के लिये आहार ग्रहण करे (२) जैसे शरीर में जितना व्रण होता है उतनाही लेप किया जाता है. वैसे ही साधु आहार ग्रहण करे और जितना आहार से संयम अच्छी तरह पालाजावे उतना ही सप्रमाण आहार लेवे. जैसे सर्प अपना बिल में पेठता है वैसे ही साधु आहार करे. अर्थात् जब सर्प बिल में प्रवेश करता है तब त्वरा से बिल में जाता है वैसे ही साधु आहार का स्वाद

पदार्थ

जानता है इ० ऐसा से० वह म० महा आ० कर्म बन्ध से० उ० उपशांत उ० सावधान प० निवृत ॥३१॥ से० वह भि० साधु अ० अथ पु० फिर ज० जाने तं० उसे वि० विद्यमान है ते० उस को प० पराक्रम में ज० जीव के लिये ते० वह वे० निपजाया सि० होवे तं० वह ज० जैसे अ० अपने लिये से० वह पु० से० पुत्र के लिये धू० पुत्री के लिये सु० पुत्र वधू के लिये धा० धाइ के लिये णा०ज्ञाती केलिये रा० राजा के लिये दा०दास के लिये दा०दासी के लिये क०नोकर के लिये क०नोकरणी के लिये आ०प्राहूणा के लिये

सूत्र

वट्टिए पडिविरते ॥ ३१ ॥ से भिक्खू अहपुणेवं जाणेज्जा तं विज्जति तेसिं परक्कमे ज-स्सट्ठा तेवेइयं सिया तंजहा—अप्पणो से पुत्ताणं, धूयाणं, सुण्हाणं, धातीणं, णातीणं, रा-ईणं, दासाणं, दासीणं, कम्मकराणं, कम्मकरीणं, आदेसाणं, पुढोपहेणाए, सामासाए, पातरा-

भावार्थ

भोगवनेवाले को अच्छा भी जाने नहीं. ऐसे आहार के दोषों से निवर्तनेवाले साधु कहे जाते हैं ॥ ३१ ॥ जो आहार गृहस्थ अपने पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, धायमाता, ज्ञातिजन, राजा, दास, दासी, नोकर, नोकरनी व प्राहूणे के लिये, अन्य किसी को भेजने के लिये, प्रातःकाल व संध्या समय में खाने के लिये, विनाशिक अविनाशिक द्रव्य का संचय करने के लिये बनाया होवे. ऐसा दूसरेने लिया हुवा व दूसरे के लिये किया हुवा उद्गमनादि दोषों से रहित अचित्त व निर्जीव आहार शरीर निभाने के कारण से साधु माधुकरी

प०निवृत्त॥३०॥से०वह भि०साधु जा०जाने अ०अन्न पा०पानी खा०खादिम सा० स्वादिम अ० इस के लिये ए० एक सा० स्वधर्मी को स० उद्देश कर पा० प्राणी भू० भूत जी० जीव स० सत्त्व को स० आरंभ कर स० उद्देश कर की० मोल लीया पा० उधार लीया अ० छीनलीया अ० विना रजा लीया अ० सामे लाया हुवा आ० ऐसा करके तं० उसे चे० दीया हुवा सि० होवे तं० उसे णो०नहीं स० स्वयं भुं० भोगता है णो० नहीं अ० अन्य से भुं० भोगवाता है अ० दूसरे भुं० भोगते को ण० नहीं स० अच्छा

ण समणुजाणइ इति से महतो आयाणाओ उवसंते उवट्ठिए पडिविरते ॥ ३० ॥ से भिक्खू जाणेजा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अस्सिं पडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स कीतं, पामिच्चं, अच्छिज्जं, अणिसट्ठं, अभिहडं, आहट्टु देसियं तंचेतियं सिया तं णो सयं भुंजइ, णो अण्णेणं भुंजावेइ अन्नंपि भुंजंतं ण समणुजाणइ इति से महतो अयाणाओ उवसंते उ-

क्रिया करनेवाले को अच्छा भी जाने नहीं. इस तरह आनाश्रवी बने ॥ ३० ॥ साधु को मालुम पडे कि अमुक गृहस्थ के वहां अशन, पान, खादिम, स्वादिम अमुक साधु के लिये प्राण, भूत, जीव व सत्व की घात कर बनाया है, मोल लिया है, उधार लिया है, बलात्कार से लिया है, मालिक की आज्ञा विना लिया है, साधु को सन्मुख लाकर दिया, ऐसा आधाकर्मादि दोषों से दुषित आहार है तो साधु उसे लेवे नहीं. कदाचित् अजानपने से ऐसा दुषित आहार आजावे तो साधु उसे भोगवे नहीं, और ऐसा आहार

पदार्थ

का० काम भोग स० सचित्त स० अचित्त ते० उनको णो० नहीं स० स्वयं प० ग्रहण करते हैं णो० नहीं अ० दूसरे से प० ग्रहण कराते हैं अ० दूसरे प० ग्रहण करते को ण० नहीं स० अच्छा जानते हैं उ० उपशांत उ० सावधान प० निवृत से० वह भि० साधु हैं इ० ऐसा से० वह म० महान् आ० कर्म वन्ध से ॥ २९ ॥ जं० जो इ० यह सं० सांपरायिक क० कर्म क० करता है णो० नहीं तं० उसको स० स्वयं क० करता है णो० नहीं अ० दूसरे से का० कराता है अ० अन्य को भी क० करते को ण० नहीं स० अच्छा जानता है इ० ऐसा से० वह म० महान् आ० कर्म वन्ध से उ० उपशांत उ० सावधान

मूल सूत्र

सयं परिगिण्हंति; णो अन्नेणं परिगिण्हावेंति, अन्नंपरिगिण्हंतंपि ण समणुजाणइ, इति से महतो आयाणाओ उवसंते उवट्ठिए पडिविरतो से भिक्खू ॥ २९ ॥ जंपियं इमं संपराइयं कम्मं कज्जइ, णो तं सयं करेंति णो अण्णेणं कारवेंति अन्नंपि करंतं

भावार्थ

जो कोई सचित्त अचित्त कामभोगों को अंगीकार नहीं करते हैं, अन्य की पास अंगीकार नहीं कराते हैं, और काम भोगो अंगीकार करनेवाले को अच्छा नहीं जानते हैं वे आश्रव से निवर्तनेवाले साधु हैं, ऐसा कहाजाता है ॥ २९ ॥ साधु ज्ञानावरणीयादि अष्ट प्रकार के कर्मों को संसार परिभ्रमण का कारण जानकर उन का बंध होवे वैसी सांपरायिक क्रिया स्वयं करे नहीं, अन्य की पास करावे नहीं और ऐसी

रतिसे मा० माया मृषा से मि० मिथ्या दर्शन शल्य से इ० ऐसा से० वह म० महान् आ० कर्म बन्ध से उ० उपशान्त उ० सावधान प० निवृत से० वह भि० साधु ॥ २७ ॥ जे० जो इ० ये त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी भ० हैं ते० उनको णो० नहीं स० स्वयं स० आरंभ करते हैं णो० नहीं अ० दूसरे से स० आरंभ कराते हैं अ० दूसरे स० आरंभ करते को न० नहीं स० अच्छा जानते हैं इ० ऐसा से० वह म० महान् आ० कर्म बन्धसे उ०उपशान्त उ० सावधान प०निवृत से० वह भि०साधु ॥२८॥ जे०जो इ० ये

कलहाओ, अब्भक्खाणाओ, पेसुन्नाओ, परपरिवायाओ, अरइरईओ, मायामोसाओ, मिच्छादंसणसल्लाओ, इति से महतो आयाणाओ उवसंते, उवट्ठिए, पडिविरते से भिक्खू ॥२७॥ जे इमे तस थावरा पाणा भवंति ते णो सयं समारंभंति, णो अण्णेहिं समारंभावेंति अन्नं समारंभंतं न समणुजाणंति इति से महतो आयाणाओ उवसंते उवट्ठिए पडिविरते से भिक्खू ॥ २८ ॥ जे इमे कामभोगा सचित्ता वा अचित्ता वा ते णो

लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति, अराति, मायामृषा और मिथ्यादर्शन शल्य इन महान् आश्रव के कारणों से निवर्तनेवाला, सावधान व व्रती पुरुष साधु कहाजाता है ॥ २७ ॥ जो त्रस स्थावर जीवों की हिंसा नहीं करते हैं, अन्य की पास नहीं कराते हैं और अन्य हिंसा करनेवाले को अच्छा भी नहीं जानते हैं वे ही महान् आश्रव के कारणों से निवर्तनेवाले साधु कहे जाते हैं ॥ २८ ॥

दार्थ सु० अच्छा आचराहुवा त० तप नि० नियम ब० ब्रह्मचर्य इ० इनसे जा० यात्रा मा० मात्रा वु० वृत्ति से ध० धर्म से इ० यहां पे०परलोकमें दे० देव सि० होवे का० काम भोग में व० वशवर्ती सि० सिद्धि अ० सुख अ० अशुभ ए० यहां सि० होवे ए० यहां णो० नहीं सि० होवे ॥ २६ ॥ से० वह भि० साधु स० शब्द में अ० अमूर्च्छित रू० रूप में अ० अमूर्च्छित गं० गंध में अ० अमूर्च्छित र० रस में अ० अमूर्च्छित फा० स्पर्श में अ० अमूर्च्छित वि० विरत को० क्रोध से मा० मान से मा० माया से लो० लोभ से पे० राग से दो० द्वेप से क० कलह से अ० अभ्याख्यान से पे० पैशून्य से प० परपरिवाद से अ० अरति

सूत्र चेरवासेण, इमेण वा जायामायावुत्तिएणं धम्मेणं, इउवए पेच्चा देवे सिया कामभोगावसवत्ति, सिद्धे वा अदुक्खमसुभे, एत्थवि सिया एत्थवि णो सिया ॥ २६ ॥ से भिक्खू सद्देहिं अमुच्छिए, रूवेहिं अमुच्छिए, गंधेहिं अमुच्छिए, रसेहिं अमुच्छिए, फासेहिं अमुच्छिए; विरए कोहाओ—माणाओ—मायाओ—लोभाओ—पेज्जाओ—दोसाओ

भावार्थ चर्य के पालने से अथवा संयम, यात्रा, मात्रा वृत्तिरूप आहार लेने से मैं परभव मे देवत्व प्राप्त करूंगा ऐसी इच्छा करे नहीं अथवा विविध प्रकार के काम भोगों वश में होवेंगे, अणिमा महिमादिक अष्ट प्रकार की सिद्धि प्राप्त होवेंगे ऐसी इच्छा भी करे नहीं. मैं शुभाशुभ कर्म रहित होऊं यह भी वांच्छे नहीं. तपश्चरण करते कदाचित् इच्छित अर्थ की प्राप्ति होवे या न होवे इस लिये ऐसी वांच्छना करना नहीं ॥२६॥ शब्द, रूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श इन पांचों इन्द्रिय के विषय में अमूर्च्छित तथा क्रोध, मान, माया,

ए० ऐसे से० वह भि०साधु वि० विरत पा० प्राणातिपात से जा० यावत् वि० विरत प० परिग्रह से णो० नहीं दं० दातण से दं० मुख धोवे णो० नहीं अं० अंजन करे णो० नहीं व० वमन णो० नहीं धो० धूप णो० नहीं तं० उसको प० धूम्रपानकरे ॥ २५ ॥ से० वह भि० साधु अ० अक्रिय अ० अहिंसक अ० अक्रोधी अ० अमानी अ० अमायी अ० अलोभी उ० उपशांत प० निवृत्ति णो० नहीं आ० वांच्छा पु० पहिले कु० करे इ०इस दि० द्रष्टिसे सु० श्रुत से मु० मननसे णा० ज्ञानसे वि० विज्ञान से इ० इनसे

यातो जाव विरते परिग्गहातो, णो दंतपक्खालणेणं दंतपक्खालेज्जा, णो अंजणं, णो वमनं, णो धूवणं, णो तं परिआविएज्जा ॥ २५ ॥ से भिक्खू आकिरिए, अलूसए, अकोहे, अमाणे, अमाए, अलोहे, उवसंते, परिनिव्वुडे, णो आसंसं पुरतो कुज्जा, इमेणमे दिट्ठेण वा; सुएण वा, मुएण वा, णाएण वा, विन्नाएण वा, इमेण वा, सुचरिय तवनियमबंभ-

ऐसा धर्म को जानकर साधु को प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन व परिग्रह से निवर्तना, दातन से दंत प्रक्षालन करना नहीं, आंख में अंजन लगाना नहीं, वमन रेचनादिक क्रिया करना नहीं, शरीर वस्त्रादिक को धूप करना नहीं, तथा खासी आदि मिटाने को धुम्र पान भी करना नहीं ॥ २५ ॥ सावद्य क्रिया रहित, अहिंसक, क्रोध, मान, माया व लोभ रहित तथा समाधिवंत साधु जन्मान्तर में काम भोगों की वांच्छना करे नहीं. और भी इस जन्म में आमोसही लब्धि की प्राप्ति होने से तपस्या का फल प्रत्यक्ष दीसता है उस से, अथवा सिद्धांत के पठन से, उस के मनन से, ज्ञान से, विज्ञान से, तप, नियम, ब्रह्म-

दार्थ उपजाना से० वे वे० कहता हूं जे० जो अ० अतीत जे० जो प० वर्तमान जे० जो आ० आगामिक अ० अर्हन्त भ० भगवान् स० सर्व ते० वे ए० ऐसा अ० कहते हैं ए० ऐसा भा० बोलते हैं ए० ऐसा प० प्रगट करते हैं ए० ऐसा प० प्ररूपते हैं स० सर्व प्राणी जा० यावत् स० सत्व ण० नहीं हं० हणना ण० नहीं अ०ताडना ण०नहीं प०घात करना ण०नहीं प०परीताप उपजाना ण०नहीं उ०उद्वेग उपजाना ए०यह ध० धर्म धु० निश्चय णी० नित्य सा०शाश्वत स०समस्त लो०लोक को खे०खेदज्ञसे प०प्ररूपाया है ॥२४॥

सूत्र य अतिता जेय पडुप्पन्ना, जेय आगामिस्सामि अरिहंता भगवंता सव्वे ते एव माइ-क्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवेंति, एवं परूवेंति सव्वे पाणा जाव सत्ता, णहंतव्वा, णअज्जावेयव्वा, णपारिघेतव्वा, णपरितावेयव्वा, णउद्दवेयव्वा, एस धम्मे धुवे णीतिए सासए समिच्चं लोगं खेयन्नेहिं पवेदेंति ॥ २४ ॥ एवं से भिक्खू विरते पाणातिवा-

भावार्थ नहीं, ताडना नहीं, तर्जना नहीं, परिताप उपजाना नहीं यावत् उद्वेग करना नहीं. श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—अतीत काल में जो तीर्थंकर होगये है, वर्तमान में जो हैं, और आगामिक काल में जो होवेंगे वे सब ऐसा प्ररूपते हैं, ऐसा उपदेश देते हैं, कि किसी प्राण, भूत, जीव व सत्व को हणना नहीं, परिताप देना नहीं, उद्वेग उपाजाना नहीं, जीव को काया से रहित करना नहीं. पट्काया के जीवों को दुःख रूप समुद्र में दुःखी होते हुवे देख कर खेदज्ञ श्री तीर्थंकर देवने ऐसा निश्चल, शाश्वत, व नित्य धर्म कहा है ॥२४॥

हिंसा करने वाले को दु० दुःख भ० भय प० वेदताहूं इ० ऐसा जा० जानकर स० सर्व जीं० जीव स० सर्व भूत स० सर्व प्राणी स० सर्व सत्व दं० दण्ड से जा० यावत् क० ठींकरेसे आ० आक्रोष कराये हुवे ह० हणाये हुवे उ० उद्वेग पाये हुवे जा० यावत् लो० रोम उ० उखाडना भी हिं० हिंसा कारक दु० दुःख भ० भय प० वेदते हैं ए० ऐसा न० जानकर स० सर्व प्राणी जा० यावत् स० सत्व ण० नहीं हं० हणना ण० नहीं अ० ताडना ण० नहीं प० घात करना ण० नहीं प० परीताप उपजाना ण० नहीं उ० उद्वेग

उद्दविज्जमाणस्स वा, जाव लोमुक्खणणमायमवि, हिंसाकारगं, दुक्खं भयं पडिसंवे-देमि इच्चेवं जाण सव्वे जीवा, सव्वे भूता, सव्वे पाणा, सव्वे सत्ता दंडेण वा जाव कवालेण वा आउट्टिज्जमाणा वा, हम्ममाणा वा, उद्दविज्जमाणा वा, जाव लोमुक्खणण मायमवि हिंसाकारगं दुक्खं भयं पडिसंवेदेंति, एवं नच्चा सव्वे पाणा जाव सत्ता, णहंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, णपरिघेतव्वा; णपरितावियव्वा. णउद्दवेयव्वा ॥ सेबेमि जे-

भय वेदता हूं वैसे ही पंचेन्द्रियादि सर्व जीव, वनस्पत्यादि सर्व भूत, द्विइन्द्रियादिक सर्व प्राणी, व पृथिव्या-दिक सर्व सत्व को दण्ड यावत् ठींकरी से आक्रोश करते, हणते, ताडना करते, तर्जना करते यावत् शरीर में एक रोम नीकालने जितना हिंसा का कारण से वे जीवों दुःख अनुभवते हैं—अर्थात् जो दुःख मुझे होता है वही दुःख अन्य जीवों को होता है ऐसा जानकर कोई भी प्राणी, भूत, जीव, व सत्व को हणना

अर्थ

भ० है ति० ऐसा अ० कहा ॥ २३ ॥ त० तहां ख० निश्चय भ० भगवानने छ० छजीव निकायका है० हेतु को प० प्ररूपा तं वह ज० जैसे पु० पृथ्वी काय जा० यावत् त० त्रस काय से० वे ज० जैसे म० मेरे अ० दुःख दं० दंडसे अ० आस्थि से मु० मुष्टि से ले० पत्थर से क० ठींकरेसे, आ० आक्रोश करते को ह० हणने वाले को त० तर्जना करने वाले को ता० ताडन करने वाले को प० परिताप देने वाले को कि० किलामना देने वाले को उ० उद्वेग उपजाने वाले को जा० यावत् लो० रोम उ० उखेडना भी हिं०

सूत्र

कारए भवति ति मक्खायं ॥ २३ ॥ तत्थ खलु भगवंता छज्जीवानिकायहेउं पण्णता तंजहा—पुढवी काय जाव तसकाए से जहा नामए मम अस्सायं दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलूण वा, कवालेण वा, आउट्टिज्जमाणस्स वा, हम्ममाणस्स वा, तज्जिज्जमाणस्स वा, ताडिज्जमाणस्स वा, परियाविज्जमाणस्स वा, किलाविज्जमाणस्स वा,

भावार्थ

अंत कर्त्ता होवे ऐसा श्री तीर्थंकर देवने फरमाया है. ॥ २३ ॥ प्राणातिपात से कर्मबंध होते हैं इस लिये पट्काया का स्वरूप श्री श्रमण भगवानने हेतु से कहा है. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और त्रस काय ये छकायहैं उनको दुःख देनेमें जो वेदना होतीहै वह दृष्टांत से बतलातेहैं. जैसे कोई पुरुष मुझे दंड से, आस्थि से, मुष्टि से, कंकर से व ठींकर से आक्रोश करे, हणे, तर्जना करे, ताडना करे, परिताप उपजावे, किलामना उत्पन्न करे, उद्वेग करे, यावत् शरीर में से एक रोम मात्र नीकाले और उस समय मैं जैसा दुःखव

जहा अवरं तहा पुव्वं, अंजू एते अणुवरया अणुवट्ठिया पुणरवि तारिसगा चेव ॥ जे खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा दुहतो पावाइं कुव्वंति इति संखाए दोहिंवि अंतेहिं अदिस्समाणो इति भिक्खू रीएज्जा से बेमि पाईणं वा जाव एवं से परिण्णाय कम्मे एवं से ववेयकम्मं, एवं से वि अंत-

पहिला अं० सरल ए० ये अ० अव्रति अ० असावधान पु० फिर भी ता० तैसे चे० निश्चय जे० जो ख० निश्चय गा० गृहस्थी सा० आरंभी स० परिग्रही सं० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही दु० दोप्रकार का पा०पाप कु०करते हैं इ०ऐसा सं०जानकर दो० दोनो ही अं० अन्त में अ० अदृश भाव इ० ऐसा भि०साधु री० प्रवर्ते से०वह बे०कहता हूं पा०पूर्वादि दिशा में जा०यावत् ए० ऐसे से० वह प० जानकर क० कर्म ए० ऐसे से० वे व० विविक्त कर्म ए० ऐसे से० वे अं० अंतकर्ता

गृहस्थ तो प्रत्यक्षपना से आरंभी परिग्रही रहे हुवे हैं. और जो कोई चारित्र अंगीकार किये बाद आधा कर्मी आदि आहार लेवें या तो सावद्य कर्म करें तो वे भी गृहस्थ सदृश हैं. सारंभी और सपरिग्रही गृहस्थ व श्रमण ब्राह्मणादिक पाप के करनेवाले होते हैं ऐसा जानकर आरंभ व परिग्रह से दूर रहता हुवा साधु संयम में विचरे. इस तरह पूर्वादि दिशाओं से आया हुवा भिक्षु रागद्वेष रहित संयम में प्रवर्तता हुवा परिज्ञातकर्मी होवे, ऐसे ही वह कर्म का अंत करनेवाला होवे और योग का विरोध करके विशेष

सूत्र

अ० अचित्त ते०वे स० स्वयं प० ग्रहण करते हैं अ० दूसरे से० प० ग्रहण कराते हैं अ० दूसरे प० ग्रहण करते को स० अच्छा जानते हैं इ० यहां ख० निश्चय गा० गृहस्थी सा० आरंभी स० परिग्रही सं० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही अ० मैं ख० निश्चय अ० अनारंभी. अ० अपरिग्रही जे० जो ख० निश्चय गा० गृहस्थ सा० आरंभी स० परिग्रही सं० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही ए० ये चे० निश्चय नि० नेश्राय से बं० ब्रह्मचर्य में सं० रहेंगे क० किस तं० उस हे० हेतु को ज० जैसे पु० पहिले त० तैसे अ० पीछे अ० पीछे त० तैसे पु०

ण्हावेंति, अन्नंपि परिगिण्हंतं समणुजाणंति ॥ इह खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा, अहं खलु अणारंभे, अपरिग्गहे, जे खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा, संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा एते चेव निस्साए बंभचेरं वा संवसिस्सामो, कस्सणं तं हेउं जहा पुव्वं तहा अवरं

भावार्थ

आरंभी व परिग्रही गृहस्थ व श्रमण ब्राह्मण की नेश्राय में रहकर ब्रह्मचर्य पालूंगा अर्थात् निरारंभी निष्परिग्रही बनकर के धर्मका आधारभूत देहको रखनेको आहारादिक केलिये गृहस्थकी नेश्राय लेऊंगा. यहां शिष्य प्रश्न करता है कि अहो पूज्य उन की नेश्राय में रहने का क्या कारण है ? तब आचार्य उत्तर देते हैं कि, गृहस्थ को सदाकाल सावद्यादि दोष रहे हुवे हैं, और श्रमण ब्राह्मण भी दीक्षा लीये बाद व गृहस्थपना में दोष युक्त रहते हैं. इस लिये निरारंभी साधु को ऐसे पुरुषों का आश्रय ग्रहण करना. अब

यहां ख० निश्चय गा० गृहस्थ सा० आरंभी स० परिग्रही सं० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही जे० जो इ० ये त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी का ते० वे स० स्वयं स० आरंभ करते हैं अ० दूसरे से स० आरंभ कराते हैं अ० अन्य को पि० अपि स० आरंभ करते को स० अच्छा जानते हैं इ० यहां ख० निश्चय गा० गृहस्थी सा० आरंभी स० परिग्रही सं० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही जे० जो इ० यह का० कामभोग स० सचित्त

हिया संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहावि, जे इमे तसा थावरा पाणा ते सयं समारभंति, अन्नेणावि समारभावेंति, अण्णंपि समारभंतं समणुजाणंति ॥ इह खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा, संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा जे इमे कामभोगा सचित्ता वा अचित्ता वा—ते सयं परिगिण्हंति, अन्नेणावि परिगि-

जो गृहस्थ होते हैं वे आरंभी व सपरिग्रही होते हैं. वैसे ही कितनेक श्रमण ब्राह्मणादिक भी सारंभी व सपरिग्रही होते हैं. वे इस लोक में रहे हुवे त्रस स्थावर जीवों की घात करते हैं, अन्य की पास घात कराते हैं, और घात करनेवाले को अच्छा जानते हैं. वैसे ही सचित्त अचित्त परिग्रह आप स्वयं रखते हैं, अन्य की पास परिग्रह रखवाते हैं और परिग्रह रखनेवाले को अच्छा जानते हैं. गृहस्थ आरंभी और परिग्रह के धारक हैं वैसे ही कितने श्रमण ब्राह्मण भी है. मैं अनारंभी निष्परिग्रही साधु हूं. इस लिये

कानसे जा० यावत् फा० स्पर्श से सु० अच्छावन्धसे सं० संधी वि० विसंधी भ० होती है व० बालित रं०रंग के गा० गात्र भ० होते हैं कि० कृष्ण के० केश प० पीले भ० होते हैं तं० वह अ० जैसे जं० जो पि० पिय इ० यह स० शरीर उ० उदारिक आ० आहारसे उ० वृद्धी पाया हुवा ए० ऐसे अ० अनुक्रमसे वि० तजने योग्य भ०होगा ए०ऐसा सं०जानकर से० वह भि० साधु भि० भिक्षाचर्यामें स० सावधान हुवा दु० दोनों लो० लोकको जा० जाने तं० वह ज०जैसे जी० जीव अ०अजीव त० त्रस था० स्थावर ॥ २२ ॥ इ०

धिना, संधीविसंधी भवइ, बलितरंगेगाए भवइ, किण्हाकेसा पालिया भवंति तंजहा—जं पियं इमं सरीरगं, उरालं, आहारोवइयं, एयंपिय अणुपुव्वेणं विप्पजहियव्वं भविस्सति एयं संखाए से भिक्खू भिक्खायरियाए समुट्ठिए दुहओ लोगं जाणेज्जा, तंजहा जीवा-चेव अजीवाचेव, तसाचेव थावराचेव ॥ २२ ॥ इह खलु गारत्था सारंभा सपरिग्ग-

भावार्थ

वर्ण गंध रस स्पर्श में क्षीणता आति है वैसे ही वह माणी आयुष्य, बल, वर्ण त्वचा यावत् पांचोंन्द्रियों से क्षीण होवे. सर्व अंगोपांग हीन हो जाने से, व कृष्ण वर्ण के केश पलित (श्वेत) वर्ण के हो जाने से उस का शरीर से स्वतः को दुर्गच्छा उत्पन्न होवे तो अन्य का कहना ही क्या. ऐसा शरीर को अच्छे २ भोजनादिक से बढाया परंतु आखिर उसे छोडना पडेगा, इस तरह जानकर रागद्वेषादिक अंतरंग व धन धान्यादिक बाह्य परिग्रह को त्यजकर भिक्षाचर्या-साधुपना में सावध होवे. ऐसा साधु जीव अजीव या त्रस स्थावर रूप दो प्रकार का लोक के जानता हैं ॥ २२ ॥ अब जीवों के उपमर्दक बतलाते हैं. इस संसार में

संयोग को त्रि० छोडेंगे से० वह मे० पंडित जा० जाने वा० वाह्य ए० यह इ० उस उ० नजीक रा० रागको तं० वह ज० जैसे ह०मेरे हस्त पा० मेरे पॉव बा० मेरेबाहु उ० मेरी छाती उ० मेरा पेट सी० मेरा शीर्ष सी० मेरा सील आ० मेरा आयुष्य व० मेरा बल व० मेरारंग त० मेरी त्वचा छा० मेरी कान्ती सो० मेरेकान च० मेरे चक्षु ध० मेरा नाक जि० मेरी जीव्हा फा० मेरा स्पर्श मे० ममत्व व० वयसे प० हीन होते हैं त० वह ज० जैसे आ० आयुष्य से व० बलसे व० वर्णसे त० त्वचासे छा० कान्ती से सो०

से मेहावि जाणेज्जा बाहिरंगमेयं इणमेव उवणियतरागं तंजहा—हत्था मे, पायामे, बाहामे, उरूमे, उदरंमे, सीसंमे, सीलम्मे, आउमे, बलंमे, वण्णोमे, तयामे, छायामे, सोथंमे, चक्खूमे, घाणंमे, जिब्भामे, फासामे, ममाइजांसि वयाउ पडिजूरइ तं जहा-आउओ, बलाओ, वण्णाओ, तयाओ, छायाओ, सोयाओ, जाव फासाओ, सुसं-

रूप विशेष वैराग्य का कारण बतलाते हैं. हस्त, पॉव, बाहु, छाति, उदर, जंघा, व मस्तक मेरे सुंदर हैं, मेरा शील (कुलाचार) अत्युत्तम है, आयुष्य दीर्घ है, मेरा शरीर का बल बहुत है, वर्ण सुशोभित है, त्वचा कोमल व सतेज है, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, जिव्हा व स्पर्श ये पांचों इन्द्रियों आति ही सुंदर व अपना विषय ग्रहण करनेवाली हैं. ये सब अंगोपांग मेरे सुंदर व स्वच्छ हैं, मेरे जैसा अन्य कोई नहीं है ऐसी ममता करे, परंतु वे सब सुंदर अवयव वय की क्षीणता से जीर्ण होते हैं. जैसे कर्पूरादि की संधि होने से उन का

पदार्थ

कलह प० प्रत्येक स० संज्ञा प० प्रत्येक म० विचार ए० ऐसे वि० जानो वे० वेदना इ० ऐसे ख० निश्चय णा० ज्ञाति सं० संयोग णो० नहीं ता० त्राणके लिये णो० नहीं स० शरणके लिये पु० पुरुष ए० एकदा पु० पहिले णा० ज्ञाति संयोग वि० छोडते हैं णा० ज्ञाति संयोग ए० एकदा पु० पहिले पु० पुरुष को वि० छोडते हैं अ० दूसरे णा० ज्ञाति संयोग अ० अन्य अ० मैं अ० हूं से० वे कि० क्या पु० फिर व० हम अ० अन्योन्य णा० ज्ञातिसंयोगसे मु० मूर्च्छित होते हैं इ० ऐसे सं० जानकर व० हम णा० ज्ञाति

मूल

झंझा, पत्तेयं सन्ना, पत्तेयं मन्ना, एवं विन्नू वेदणा इति, खलु णातिसंजोगा णो ताणाए वा, णो सरणाए वा. पुरिसेवा एगता पुव्विं णातिसंजोए विप्पजहंति, णातिसंजोगावा एगतापुव्विं पुरिसं विप्पजहंति, अन्ने खलु णातिसंजोगा, अन्नो अहमंसि, से किमंगपुण वयं अन्नमन्नेहिं णातिसंजोगेहिं मुच्छामो इति संखाए णं वयं णातिसंजोगं विप्पजहिस्सामो

भावार्थ

केला धन धान्यादि त्यजता है, अकेला ही उपार्जन करता है, सब को भिन्न २ ज्ञानोत्पत्ति होती है, सब का चित्त का व्यापार भी भिन्न है, तथा प्रत्येक २को सुख दुःख रूप वेदना का अनुभव होता है; इस लिये ज्ञाति का संयोग जीव को सरण नहीं हो सकता है. कदाचित् ज्ञाति का संयोग पुरुष को त्यजता है, या कभी पुरुष को ज्ञाति का संयोग छोडना पडता है. ये ज्ञाति का संयोग मेरे से भिन्न है मैं वृथा इस में मूर्च्छित होता हूं ऐसा जानकर पंडित पुरुष ज्ञाति का संयोग का परिहार करे अब शरीर त्याग

दुःख रो०रोग प०विभाग करताहूं अ०अनिष्ट जा०यावत् णो०नहीं सु०सुख मा०मुझे दु०दुःख होवे जा०यावत् म० मुझे प० परिताप होवे इ०यह अ०दूसरे दु०दुःखसे रो० रोगसे प० विभाग करूं मे० मुझे अ०अनिष्ट से जा० यावत् णो० नहीं सु० सुख से ए० ऐसे णो० नहीं ल० प्राप्त पु० पहिले भ० है अ० दूसरेका दु० दुःख अ०अन्योन्य प० विभाग करता है अ०दुसरे से क०किया हुवा अ दूसरा नो० नहीं प० वेदता है प० प्रत्येक जा० जन्मते हैं प०प्रत्येक म०मरते हैं प०प्रत्येक च० चवते हैं प०प्रत्येक उ०उपजते हैं प०प्रत्येक सं०

दुक्खं रोयातंकं परियाइयामि अणिट्ठं जाव णो सुहं, मामे दुक्खं तु वा जाव मामे परितप्पंतु वा इमाउणं अण्णयराओ दुक्खाओ रोयातंकाओ परिमोएमि अणिट्ठाओ जाव णो सुहाओ, एवमेव णो लद्धपुव्वं भवइ अन्नस्स दुक्खं अन्नो न परियाइयंति, अन्नेन कडं अन्नो नो पडिसंवेदेंति. पत्तेयं जायति य, पत्तेयं मरइ, पत्तेयं चयइ, पत्तेयं उववज्जइ, पत्तेयं

से मुक्त करने को समर्थ हो सके नहीं. अथवा मेरे स्वजन, ज्ञाति, गोत्रिय को ऐसा रोग उत्पन्न हो जावे तो मैं उन के दुःख का विभाग करके उन को मुक्त करूं ऐसा विचार करे परंतु उन के दुःखों का विभाग कर सके नहीं. अन्य का दुःख अन्य नहीं ले सकता है, वैसे ही अन्य का किया हुवा अन्य नहीं भोगव सकता है, जो करता है वही भोगता है, क्यों कि जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अ-

पदार्थ

दु० दुःख णो०नहीं सु०सुख से०वे हं०अहो भ०भयके रक्षण णा०ज्ञातियें इ० यह म० मेरे अ० अन्यतर दु० दुःख रो०रोग प०विभाग करो अ०अनिष्ठ जा०यावत् णो० नहीं सु०सुख त०तहां दु०दुःख भोगता हूं सो०शोक करता हूं जा०यावत् प०परिताप पाता हूं इ०इन में०मुझ अ० अन्य प्रकार के दु० दुःख से रो० रोग से प० दूरकरो अ०अनिष्ट जा०यावत् णो०नहीं सु०सुख ए०ऐसे णो० नहीं ल०प्राप्त पु०पहिले भ०है ते० उन भ० भय रक्षक म०मेरी णा०ज्ञातिके अ०अन्यतर दु०दुःख रो०रोग स० उत्पन्न हुवे अ० अनिष्ट जा०यावत् णो० नहीं सु०सुख से० वे हं० अहो अ० मैं ए० उन भ० भय रक्षक णा० ज्ञातियों का इ० यह अ० दूसरा दु०

सूत्र

अणिट्ठे जाव दुक्खे णो सुहे. से हंता भयंतारो णायओ इम मम अन्नयरं दुक्खं रोयातंकं परिथाइयह, अणिट्ठं जाव णो सुहं. तहिं दुक्खामिवा, सोयामिवा जाव परितप्पामिवा, इमाओ मे अन्नयराओ दुक्खाओ रोयातंको परिमोएह अणिट्ठाओ जाव णो सुहाओ. एवमेव णो लद्धपुव्वं भवइ. तेसिंवावि भयंतराणं मम णाययाणं अन्नयरे दुक्खे रोयातंके समुपज्जेजा, अणिट्ठे जाव णो सुहं, से हंता अहमेतेसिं भयंतराणं णाययाणं इमं अन्नयरं

भावार्थ

नाश करनेवाला व्याधि उत्पन्न होजावे, और इन स्वजन ज्ञातियों से प्रार्थना करूं कि मैं इस दुःख से अति ही पीडित हो रहा हूं, अत्यंत घबरा रहा हूं, मुझे मृत्यु का भय हो रहा है, इस लिये मेरे दुःखों का विभाग करो और इस से मुझे मुक्त करो. ऐसी अनेक प्रार्थना करे परंतु वे ज्ञाति गोत्री इन को दुःख

शब्दार्थ बा० बाह्य अं० संयोग ए० में इ० यह उ० भास रा० रागको तं० वह ज० जैसे मा० मेरी माता पि० मेरे पिता भा० मेरा भाई भ० मेरी भगिनी भ० मेरी भार्या पु० मेरा पुत्र धु० मेरी पुत्री पे० मेरा नो-कर न० मेरा मित्र सु० मेरी पुत्र-वधू सु० मेरा मित्र पि० प्रिय सु० मेरा सखा स० स्वजन सं० संग सं० मेरा सब ए० इतने म० मेरे णा० ज्ञाति से अ० में ए० उनका ए० ऐसा से० वह मे० पंडित पु० पहिले अ० आत्मा से स० जाने म० मेरे अ० अन्य प्रकारके दु० दुःख रो० रोग स० उत्पन्न होवे अ० अनिष्ठ जा० यावत्

मूल णेज्जा बाहिरंगमेत्तं । इणमेव उवणीयतरागं तं जहा—माया मे, पिया मे, भा-या मे, भगिणी मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धूया मे, पेसा मे, नत्ता मे, सुण्हा मे, सुहा मे, पिया मे, सहा मे, सयणसंगसंथुया मे, एते खलु मम णायओ, अहमवि एतेसिं. एवं से मेहावि पुव्वमेव अप्पणाएवं समभिजाणेज्जा, इहखलु मम अन्नयरे दुक्खे रोयातंके समुपज्जेज्जा

भावार्थ भी बुद्धिमान पुरुष क्षेत्रादिक नवविध परिग्रह बाह्य है ऐसा जाने ॥ २० ॥ अब नजीक के स्वजन संबंधि का वर्णन करते हैं. पहिले अज्ञानावस्था में मनुष्य ऐसा जानता था कि ये माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, मित्र, दास, दासी, सुहृद, प्रियकर, सहायक वगैरह सब मेरे हैं और मैं इन का हूं. परंतु ज्ञान उत्पन्न हुवे बाद विचार करे कि यदि मेरे शरीर में अनिष्टकारी, अप्रियकारी, व प्राण का

सूत्र

ट्ठाओ, अकंताओ, अप्पियाओ, असुभाओ, अमणुन्नाओ, अमणामाओ, दुक्खाओ, णो सुहाओ; एवमेव णो लद्धपुव्वं भवइ ॥ इहखलु कामभोगा णो ताणाए वा णो सरणाएवा. पुरिसे वा एगता पुव्विं कामभोगे विप्पजहंति, कामभोगा वा एगता पुव्विं पुरिसं विप्पजहंति, अन्ने खलु कामभोगा अन्नो अहमंसि. से किमगपुण वयं अन्नमन्नेहिं कामभोगेहिं मुच्छामो इति संखाए णं वयं च कामभोगेहिं विप्पजहिस्सामो. से मेहावि जा-

अर्थ

अनिष्ट कर्ता अ० आक्रांत कर्ता अ० अप्रिय अ० अशुभ अ० अमनोज्ञ अ० पीडाकारी दु० दुःख णो० नहीं सु० सुख ए० ऐसे णो० नहीं ल० प्राप्त पु० पहिले भ० होता है इ० यहां का० कामभोग णो० नहीं ता० त्राण णो० नहीं स० सरण पु० पुरुष ए० कदापि पु० पहिले का० काम भोग को वि० छोडते हैं का० कामभोग ए० कदापि पु० पहिले पु० पुरुषको वि० छोडते हैं अ० अन्य का० कामभोग अ० अन्य अ० मैं अ० हूं किं० क्यां पु० फिर व० हम अ० अन्य का० कामभोगों में मु० मूच्छित होते हैं इ० ऐसा सं० जानकर व० हम का० काम भोगको पि० दूर करेंगे से० वह मे० पंडित जा० जाने

भावार्थ

किया होवे ऐसा सुनने में नहीं आया. तब वे मेरा दुःख क्या दूर करेंगे. वे कामभोगों मेरा रक्षण करने को व मुझे शरण देने को समर्थ नहीं हैं, व्याधि, वृद्धावस्था या राजादिक उपद्रव में कितनेक पुरुषों को कामभोग छोडने पडते हैं. अथवा द्रव्यादिक का अभाव में वे कामभोगों पुरुष को छोडदेते हैं. इस लिये कामभोग भिन्न हैं, और मैं भी भिन्न हूं, मैं इस में वृथा मूर्च्छित हुवा हूं, ऐसा जानकर कामभोगों को छोड देवे. और

जैसे म० मेरा अ० अन्य कोई दु० दुःख रो० रोग स० उत्पन्न होवे अ० अनिष्ट कर्ता अ० आक्रांत कर्ता अ० अप्रिय अ० अशुभ अ० अमनोज्ञ अ० पीडाकारी दु० दुःखरूप णो० नहीं सु० सुख से० वह हं० अहो भ० भय रक्षक का० काम भोग म० मेरे अ० अन्य तर दु० दुःखका रो०रोग प० विभाग करो अ० अ० अनिष्ट अ० आक्रांतकारी अ० अप्रिय अ० अशुभ अ० अमनोज्ञ अ० पीडाकारी दु० दुःख णो० नहीं सु० सुख त० तहां दु० दुःख भोगता हूं सो० शोक करता हूं जू० झूरता हूं त० रोता हूं पी० पीडा पाता हूं प० परिताप पाता हूं० इ० यह म० मुझे अ० दूसरे दु० दुःख से रो० रोग से प० दूर करो अ०

ज्जा तंजहा—इह खलु मम अन्नमरे दुक्खे, रोगांतके समुप्पज्जेज्जा अणिट्ठे, अकंते, अप्पिए, असुभे, अमणुन्ने, अमणामे, दुक्खे, णोसुहे, से हंता भयंत्तारो कामभोगाइं मम अन्नयरं दुक्खं, रेयातंकं परियाइयह अणिट्ठं, अकंतं, अप्पियं, असुभं, अमणुन्नं, अमणामं, दुक्खं, णो सुहं, तहिं दुक्खामि वा, सोयामि वा, जूरामि वा, तप्पामि वा, पीडामि वा, परितप्पामि वा, इमाओ मम अण्णयराओ दुक्खाओ रोगांतकाओ पडिमोयओ अणि-

कि:—इस दुःख से मैं बहुत दुःखित होता हूं यावत् मुझे बहुत परिताप होता है इस लिये अहो कामभोगो ! मेरा दुःख का तुम विभाग कर लेवो, और मुझे ऐसे अनिष्टकारी, अप्रियकारी दुःखों से मुक्त करो. इस तरह काम भोगादिक को प्रार्थना करता है. परंतु कामभोगों ने आज़दिन पर्यंत किसी को मुक्त

पदार्थ
गृहादि मे० मेरे हि० चांदी मे० मेरी सु० सुवर्ण मे० मेरा ध० धन मे० मेरा ध० धान्य मे० मेरा कं० कांसी के भाजन मे० मेरे दू० वस्त्र मे० मेरे वि० बहुत ध० धन क० कनक र० रत्न म० मणि मो० मौक्तिक सं० शंख सि० शील प० प्रवाल र० रक्त र० रत्न सं० सत सा० सर्व मे० मेरे स० शब्द मे० मेरे रू० रूप मे० मेरा गं० गंध मे० मेरी र० रस मे० मेरा फा० स्पर्श मे० मेरा ए० ये म० मेरे का० काम भोग अ० मैं ए० उस का ॥ ॥ से० वह मे० पंडित पु० पहिले अ० स्वतः की ए० ऐसे स० जाने ज०

सूत्र
मज्झं ममट्ठाए एवं विप्पडिवेदेंति, तं जहा—खेत्तंमे, वत्थूमे, हिरण्णंमे, सुवन्नंमे, धणंमे, धण्णंमे, कंसंमे, दूसंमे, विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्त-रयणसंतसारसारसावतेयंमे, सद्दामे, रूवामे, गंधामे, रसामे, फासामे, एते खलु मम-कामभोगा, अहमवि एतोसिं ॥ २१ ॥ सेमेहावि पुव्वमेव अप्पणो एवं समभिजाणे-

भावार्थ
गृह, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, कांसिका भाजन, वस्त्र, बहुत धन, कनक, रत्न, मणि, मोति, शंख, शीला, प्रवाल, व पद्म रागादि धन मेरे उपभोग के लिये होवेंगे तथा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्शादि काम भोग मेरे हैं मैं इन का हूं ॥ २१ ॥ अब पण्डित पुरुष ऐसा विचार करे कि ये कामभोग मेरे हैं, या नहीं. वह विचारता है कि मेरे शरीर में किसी प्रकार का अत्यंत अनिष्ठ, आक्रांतकारी, अप्रिय, कंटक समान, अशुभ, अमनोज्ञ व दुःख रूप व्याधि उत्पन्न होने पर मैं धन, धान्य, स्वजनादि से प्रार्थना करूं

में आ० आकर अ० सन्मुख होकर ए० कितनेक भि० भिक्षाचर्या में स० सावधान हुवे स० सत्ववंत ए० कितनेक णा० ज्ञाति उ० उपकरण को वि० छोडकर भि० भिक्षाचर्यार्थ स० सावधान हुवे अ० असत्ववंत ए० कितनेक णा० ज्ञाति उ० उपकरण को वि० छोडकर भि० भिक्षाचर्यार्थ स० सावधान हुवे जे० जो ते० वे स० सत् अ० असत् णा० ज्ञाति अ० ज्ञाति रहित उ० उपकरण को वि० छोडकर भि० भिक्षाचर्यार्थ स० सावधान हुवे ॥ २० ॥ पु० पहिले ते० उस से णा० जान भ० है तं० वह ज० जैसे इ० यहां पु० पुरुष अ० अन्योन्य म० स्वतः केलिये वि० जानते हैं तं० वह ज० जैसे खे० क्षेत्र मे० मेरा व०

अप्पयरो वा, भुज्जयरो वा, तहप्पगारेहिं कुलेहिं, आगम्म अभिभूय एगे भिक्खायरि-याए समुट्ठिता सतोवावि एगे णायउय उवगरणं च विप्पजहाय भिक्खायरियाए स-मुट्ठिता, असतो वावि एगे णायंउय उवगरणं च विप्पजहाय भिक्खायरियाए समुट्ठि-ता; जेतेसतो वा; असतोवा; णायउय, अणायउय, उवगरणं च विप्पजहाय भिक्खा-रियाए समुट्ठिता ॥ २० ॥ पुव्वमेव तेहिं णायं भवइ तं जहा—इह खलु पुरिसे अन्न-

गृहादि परिग्रह अल्प या बहुत होवे, वैसे ही मनुष्य और देश अल्प या बहुत होवे, या मातादिक स्व-जनादि होवे या न होवे, परंतु वैराग्य आने पर ज्ञाति, स्वजन, धन, धान्यादिक, सब को छोड कर दीक्षा अङ्गीकार कर ते हैं ॥ २० ॥ उस पुरुष को चारित्र ग्रहण करते समय ऐसा ज्ञान होवे कि यह अन्य क्षेत्र

सं० संयोग आ० आर्य म० मार्ग को अ० असमाप्त ते० वे णो० नहीं ह० किनारेपे णो० नहीं पा० पार अं० बीच में का० काम भोग में वि० खूते हुवे ॥ १९ ॥ से० वह बे० कहता हूं पा० पूर्वादि जा० यावत् सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं तं० वह ज० जैसे आ० कितनेक आर्य अ० कितनेक अनार्य उ० कितनेक ऊंचगोत्री णी० कितनेक नीच गोत्री का० दीर्घ काया वाले ह० छोटी काया वाले सु० अच्छा वर्ण वाले दु० खराब वर्ण वाले सु० सुरूप दु० कुरूप ते० उसमें खे० क्षेत्र व० गृहादि प० परीग्रह भ० हैं तं० उसको अ० अल्प भु० बहुत जन जा० देश प० परीग्रह भ० हैं तं० उस को अ० अल्प भु० बहुत त० तथा प्रकार कु० कुल

जोगा आरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णो हव्वाए णो पाराए अंतरा कामभोगेसु वि: सण्णा ॥ १९ ॥ से बेमि पाईणं वा संतेगतिया मणुस्सा भवंति—तंजहा—आरियावेगे, अणारियावेगे, उच्चागोयावेगे, णीयागोयावेगे, कायमंतावेगे हस्समंतावेगे, सुवन्नावेगे, दुवन्नावेगे, सुरूवावेगे, दुरूवावेगे; तेसिं च णं खेत्तवत्थूणि परिग्गहियाणि भवंति, तं अप्पयरो वा, भुज्जयरो वा.; तेसिं च णं जण जाणवयाइं परिग्गहियाइं भवंति, तं

भावार्थ

कामभोगों में खूंते रहें. ये परतीर्थिक चार पुरुष कहे ॥ १९ ॥ अब पांचवा स्वतीर्थिक कहते हैं. इस मनुष्य लोक की चारों दिशाओं में कितनेक मनुष्य रहते हैं जैसे कि:—आर्य, अनार्य, ऊंच, नीच गोत्र में उत्पन्न होनेवाले, लम्बीकायावाले, ठिंगने, अच्छे वर्णवाले, सुरूप व कुरूप. उन आर्यादिक पुरुष को क्षेत्र

केलिये ए० ऐसे ते० वे अ० अनार्य वि० विपरीत तं० उस को स० श्रद्धते हुवे जा० यावत् ते० वे णो० नहीं इ० किनारेपे णो० नहीं पा० पार अं० बीच में का० काम भोग में वि० खूते हुवे च० चौथा पु० पुरुष जात णि० नियत वादी त्ति० ऐसा आ० कहा ॥ १८ ॥ इ० इतने च० चार पु० पुरुष जात णा० विविध प० बुद्धि णा० विविध छं० छन्द णा० विविध सी० शील णा० विविध दि० द्रष्टि णा० विविध रु० रुचि णा० विविध आ० आरंभ णा० विविध अ० प्रणाम सं० सहित प० छोडकर पु० पूर्व

समारभंति भोयणाए, एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्नाइं तं सद्दहमाणा जाव इति ते णो हव्वाए णो पाराए अंतरा कामभोगेसु विसण्णा; चउत्थे पुरिसजाए णियइवाइ एत्ति आहिए ॥ १८ ॥ इच्चेते चत्तारि पुरिसजाया णाणापन्ना, णाणाछंदा, णाणा-सीला, णाणादिट्ठी, णाणारूई, णाणारंभा, णाणाअज्झवसाणा, संजुत्ता पहीणपुव्वसं-

वे पुष्करणी में रहाहुवा चतुर्थ पुरुष समान न तो किनारे के रहे, और न पार होसके, बीचमें ही कामभोगमें खूंत गये. अर्थात् इस लोक से भ्रष्ट हुवे और मुक्ति मैं जा सकें नहीं. यह चतुर्थ नियतवादी कहा. ॥१८॥ विविध प्रकार की प्रज्ञावाले, अभिप्रायवाले, शील-आचारवाले, दृष्टिवाले, रुचिवाले, आरंभ के करनेवाले और अध्यवसाय करके युक्त ऐसे पूर्वोक्त चार पुरुषों कहे. वे अपने २ धर्म में सावध बने हुवे पूर्व संयोग-पुत्र कलत्रादिक का संबंध को छोड कर व आर्यमार्ग को अप्राप्त बनकर न तीर पे रहें, न पार पहूंच सके, परंतु

आ० जाते हैं ते० वे वि० विपर्याय आ० जाते हैं ते० वे ए० ऐसे वि० विवेक को आ० जाते हैं ते० वे वि० अवस्था आ० जाते हैं ते० वे सं० संगत को यं० जाते हैं उ० उपेक्षासे णो० नहीं वि० जानते हैं तं० वह ज० यथा किं० क्रिया जा० यावत् णि० नरक अ० अनरक ते० वे वि० विविध प्रकार क० कर्म स० समारंभ से वि० विविध प्रकार का० काम भोग का स० समारंभ करते हैं भो० भोजन

एवं विपरियासमावज्जंति ते एवं विवेगमागच्छंति; ते एवं विहाणमागच्छंति; ते एवं संगतियंति उवेहाए णो एवं विप्पडिवेदेंति तंजहा किरियाति वा जाव णिरएति वा अणिरएति वा, एवं ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं

भावार्थ

यौवन व वृद्धावस्थादि नाना प्रकार की पर्याय को प्राप्त होते हैं, शरीर में पृथक् भाव होता है, कुब्ज खंज, वामनादि अवस्था विशेष होती है, ये सब भवितव्यता से होते हैं. भवितव्यता से ही इन सब भावों को अनुभवते हैं. अब श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि नियतवादी पुरुष मात्र नियत का अनुसरण करके पर लोक का भय नहीं रखते हुवे सावद्यानुष्ठान करते हैं. वे क्रिया, अक्रिया, सिद्धि, असिद्धि यावत् नरक, अनरक को कुच्छ भी नहीं जानते हैं. इस तरह सर्व दोष भवितव्यता पर रख करके भोग उपभोग के लिये नाना प्रकार के कर्म समारंभ करते हैं. इस रीति से अनार्य पुरुष कामभोग में गृद्ध बन करके अपना धर्म को अच्छा करके मानते, प्ररूपते और राजादिक को भी ऐसा धर्म की श्रद्धा कराते

अ० हूं दु० दुःख भोगता हूं सो० शोक करता हूं जू० झूरता हूं तिं० रोताहूं पी० पीडित होता हूं प० परितापि होता हूं णो० नहीं अ० मैं ए० ऐसे अ० कीया प० दूसरा जं० जो दु० दुःख भोगता है जा० यावत् प० परितापि होता है णो० नहीं प० दूसरा अ० कीया ए० ऐसे मे० मेधावि स० कारण सहित प० अन्य का० कारण ए० ऐसे विं० जानते हैं का० कारण को आ० प्राप्त से० वह बे०कहता हूं पा० पूर्वादि दिशामें जे० जो त०त्रस था०स्थावर पा०प्राणी ते० वे सं० समूह को

मावन्ने, अहमंसि दुक्खामि वा; सोयामि वा, जूरामि वा, तिप्पामि वा, पीडामि वा परितप्पामि वा, णो अहं एव मकासि, परो वा जं दुक्खइ वा जाव परितप्पइ वा; णो परो एव मकासि एवं से मेहावि सकारणं वा परकारणं वा एवं विप्पडिवेदेंति कारण मावन्ने से बेमि पाईणं वा जे तसथावरा पाणा ते एवं संघायमागच्छंति, ते

शोकादि अनुभवता हूं यह सब मैंने नहीं किया या दूसरा दुःख देता या परिताप उपजाता है, वह भी दूसरेने नहीं किया है. इस तरह अपना या पर का दुःख का कारण भवितव्यता है ऐसा पण्डित पुरुष जाने. भवितव्यता विना अन्य कोई सुख दुःख देनेवाला नहीं है. ऐसा भी देखने में आता है कि पाप करनेवाले सुखी, और सुकृत करनेवाले दुःखी होते हैं इस लिये भवितव्यता ही प्रधान है. वे कहते हैं कि पूर्वादिक चारों दिशा में जो त्रस स्थावर प्राणी रहे हुवे हैं और वे जो शरीरादि धारण करते हैं, बाल,

है का० कारण को आ० प्राप्त अ० मैं अ० हूं दु० दुःख भोगता हूं सो० शोक करता हूं जू० झूरता हूं ति० रोता हूं पी० पीडाता हूं प० परितापित होता हूं अ० मैं ए० ऐसा अ० कीया प० दूसरा जं० जो दु० दुःख भोगता है सो० शोक करता है जू० झूरता है ति० रोता है पी० पीडाता है प० परितापित होता है प० दूसरा अ० कीया ए० ऐसे से० वह बा० मूर्ख स० कारण सहित ए० ऐसा वि० कहता है का० कारण को आ० प्राप्त मे० मेधावि पु० फीर ए० ऐसा वि० कहता है का० कारण को आ० प्राप्त अ० मैं

विप्पडिवेदेंति, कारण मावन्ने अहमंसि दुक्खामि वा, सोयामि वा, जूरामि वा, तिप्पामि वा, पीडामि वा, परितप्पामि वा; अहमेय मकासि परो वा जं दुक्खइ वा, सोयइ वा, जूरइ वा, तिप्पइ वा; पीडइ वा, परितप्पइ वा; परोएव मकासि; एवं से बाले सकारणं वा एवं विप्पडिवेदेंति कारण मावन्ने । मेहावि पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारण

संयोग से शोक अनुभवते हैं, झूरते हैं, तपते हैं, बाह्याभ्यंतर पीडा अनुभवते हैं, परितापना वेदते हैं, और ये जो सुख दुःख अनुभवते हैं वे सब अपना किया हुवा है, अथवा अन्य कोई झूरे, दुःख अनुभवे, आदि जो दुःख होवे वे सब उस का ही किया हुवा है, या अन्य कोई अपने को दुःख देता है वह भी अपना किया हुवा है, इस तरह स्वकारण व परकारण माननेवाले बाल-अज्ञानी हैं. इस तरह से सुख दुःखादि में पूर्वोक्त कारण माननेवाले का तिरस्कार कर नियतवादी अपना मत की स्थापना करते हैं. जीवों को जो सुख दुःख उत्पन्न होते हैं, उस में भवितव्यता सिवाय अन्य कुच्छ भी कारण नहीं है. मैं दुःख

म०मेरे से ए०यह ध०धर्म सु०अच्छा कहाया हुवा सु०अच्छा मरूपा हुवा भ०है इ०यहां दु०दो पु०पुरुष भ० हैं ए०एक पु०पुरुष कि०क्रिया आ०कहता है ए०एक पु०पुरुष णो०नहीं कि०क्रिया आ०कहता है जे०जो पु०पुरुष कि०क्रिया आ०कहते हैं जे०जो पु०पुरुष णो०नहीं कि०क्रिया को आ०कहता है दो०दोनों ते० वे पु०पुरुष तु०बरोबर ए० एक अ० अर्थी का०कारण को आ० प्राप्त बा० मूर्ख पु० फिर ए०ऐसे वि० कहते

पहारिंसु गमणाए जाव मए एस धम्मे सुअक्खाए सुपन्नते भवइ। इह खलु दुवे पुरिसा भवंति-एगे पुरिसे किरियामाइक्खइ एगे पुरिसे णो किरिया माइक्खइ जेय पुरिसे किरिया माइक्खइ; जे पुरिसे णो किरिया माइक्खइ; दोवि ते पुरिसा तुल्ला एँगट्ठा कारण मावन्ना. बाले पुण

पना धर्म की मरूपणा करे. वे नियतवादियों अपना धर्म की जो स्थापना करते हैं सो वतलाते हैं. इस संसार में दो तरह के पुरुष होते हैं. एक (१) क्रिया की स्थापना करते हैं तो दूसरा (२) अक्रिया की स्थापना करते हैं. परंतु क्रिया करनेवाले और क्रिया नहीं करनेवाले दोनों तुल्य हैं, क्योंकि वे दोनों भवितव्यता के वश में रहे हुवे हैं. वे नियतवादी अन्य मत की उत्थापना करते हैं. जो कोई सुख दुःख की उत्पत्ति को ईश्वरादि का कारण मानते हैं और कहते हैं कि जो हम शारीरिक, मानसिक दुःख अनुभवते हैं, इष्टवियोग अनिष्ट

(१) देशादेशांतरप्राप्तिः क्रिया—एक देश से अन्य देश में जाना सो क्रिया. (२) परिश्रम विना कार्य की प्राप्ति होवे उसे अक्रिया कहते हैं.

णो० नहीं पा० पार अं० बीच में का० कामभोग में वि० खूते हुवे त्ति० ऐसे त० तीसरा पु० पुरुष जात ई० ईश्वर कर्ता आ० कहा ॥ १७ ॥ अ० अन च० चौथा पु० पुरुष जात णि० नियतवादी आ० कहते हैं इ०यहां पा०पूर्वादि दिशा से जा०यावत् से०सेनापतिको पुत्र ते०उस में ए०कोई स०श्रद्धावान् भ० होते हैं का० धर्मार्थी तं० उस को स० श्रमण मा० ब्राह्मण सं० विचारे ग० जाने को जा० यावत्

अंतरा कामभोगेसु विसण्णेत्ति तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणिएत्ति आहिए ॥ १७ ॥ अहावरे चउत्थे पुरिसजाए णियतिवाइएत्ति आहिज्जइ. इह खलु पाईणं वा तहेव जाव सेणावइपुत्ता वा तेसिं च णं एगताए सड्ढा भवइ कामं, तं समणाय माहणाय सं-

नरक को नहीं जान सकते हैं. वे षट्काया के जीवों का आरंभ करते हैं, पंचेन्द्रियों के भोगों में लुब्ध बनते हैं, और संसार समान पुष्करणी में फस रहे हैं. वैसे अपना व अन्य का उद्धार नहीं कर सकते हैं. यह तीसरा ईश्वरवादी का कथन हुवा ॥ १७ ॥ अब चतुर्थ पुरुष जात नियतवादी कहते हैं, कार्य की उत्पत्ति में भवितव्यता सिवाय अन्य कारण नहीं माननेवाले नियतवादी कहाये जाते हैं. इस मनुष्य लोक में चारों दिशा में कोई पुरुष होवे यावत् राजा की सभा में सेनापति के पुत्र तक सब अधिकार पूर्ववत् जानना उस में किसी पुरुष को धर्मार्थी जानकर कितनेक श्रमण, ब्राह्मणादिक राजा को उपदेश देने को जावे और अ-

यथातथ्य इ० यह स० सत्य इ० यह त० तथ्य इ० यह अ० यथातथ्य ए० ऐसे स० संज्ञा कु० करते हैं स०संज्ञा सं०स्थापते हैं स०संज्ञा सो० अच्छी तरह से स्थापते हैं त०इसलिये ते०वे त०तथा जात दु० दुःख को ण० नहीं अ० तोडते हैं स०पक्षिणी पं० पींजर में ज०जैसे ते०वे णो०नहीं ए०ऐसे वि० जानते हैं तं० वह ज० जैसे कि० क्रिया जा० यावत् अ० अनरक ए० ऐसे ते० वे वि० विविध प्रकार के क० कर्म स० समारंभ में वि० विविध प्रकार के का० काम भोग को स० समारंभ करते हैं भो० भोजन के लिये ए० ऐसे ते० वे अ० अनार्य वि० अविरत स० श्रद्धते हुवे जा० यावत् इ० ऐसे ते० वे णो० नहीं ह० किनारेपे

यं आहातहियं, इमं सच्चं, इमं तहियं, इमं आहातहियं, एवं सन्नं कुव्वंति, ते एवं सन्नं संठवेंति, ते एवं सन्नं सोवट्ठवयंति, तमेवं ते तज्जाइयं दुक्खं णातिउट्टंति सउणी पंजरं जहा। ते णो एवं विप्पाडिवेदेंति तंजहा—किरियाइ वा जाव अणिरएइ वा, एवमेव ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारभंति भोयणाए, एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना एवं सद्दहमाणा जाव इति ते णो हव्वाए णो पाराए

ईश्वर को जगत् के कर्त्ता माननेवाले उत्सूत्र की प्ररूपणा करने से संसार का बंधन नहीं तोड सकते हैं, जैसे पिंजरे में रही हुइ पक्षिणी पींजरा का बंधन नहीं छोड सके, वैसे ही पूर्वोक्त दर्शनी पिंजरे में रहे, स्वतः मोक्ष जा सके नहीं और अन्य को भी मोक्ष में लेजा सके नहीं. वे विचारे क्रिया, अक्रिया यावत् स्वर्ग

हैं ए० ऐसे ध० धर्म पु० ईश्वरादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्याप कर चि० रहते हैं से० अथ ज० जैसे उ० पानी का बु० बुद् बुद् सि० होवे उ० पानी में जा० उत्पन्न जो० यावत् उ० पानी को अ० व्याप कर चि० रहते हैं० ए० ऐसे ध० धर्म पु० ईश्वरादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्याप कर चि० रहते हैं जं० जो इ० इस स० श्रमण णि० निर्ग्रन्थ का उ० उपदेशा प० प्ररूपा वि० प्रगट किया दु० द्वादशांग ग० आचार्य का पि० भंडार तं० वह ज० जैसे आ० आचारांग सू० सूयगडांग जा० यावत् दि० द्रष्टिवाद स० सर्व ए० ऐसे मि० मिथ्या ण० नहीं ए० यह त० सत्य ण० नहीं ए० यह आ०

सूत्र

जाव पुरिससेव अभिभूय चिट्ठंति. से जहा णामए उदगबुब्बुए सिया, उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिट्ठंति, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठंति. जंपिय इमं समणाणं णिग्गंथाणं उद्दिट्ठं पणियं वियंजियं, दुवालसंगं गणिपिडयं तंजहा—आयारो सूयगडो जाव दिट्ठिवातो सव्वमेवं मिच्छा, ण एयं तहियं ण ए-

भावार्थ

है, और उस में ही व्याप्त रहता है, वैसे ही सर्व पदार्थ ईश्वर मे उत्पन्न हुवें, ईश्वर को व्याप्त हुवे, और ईश्वर से ही वृद्धि पायें. ईश्वर से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है. अब जो ईश्वर ने किया वह सत्य है अन्य असत्य है सो बतलाते हैं. निर्ग्रन्थ साधु के लिये प्ररूपाये हुवे आचारांग यावत् द्रष्टिवाद रूप द्वादशाङ्गी वाणी ईश्वर प्रणीत नहीं है, इस लियें वह सब असत्य है ईश्वरकारणिकमात्र सत्य, व यथातथ्य है. इस तरह

अ० अनुगामी होवे पु० पृथ्वी को अ० व्याप कर चि० रहता है ए० ऐसे ही ध० धर्म पु० ईश्वरादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्याप कर चि० रहते हैं से० अंब ज० जैसे रु०वृक्ष सि०होवे पु०पृथ्वी में जा० उत्पन्न पु० पृथ्वी में सं० वढे पु० पृथ्वी में अ० अनुगामी पु० पृथ्वी को ही अ० व्याप कर चि० रहते हैं ए० ऐसे ही ध० धर्म पु० ईश्वरादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्याप कर चि०रहते हैं से० अब ज० जैसे पु० वावडी सि० होवे पु० पृथ्वी जा० उत्पन्न जा० यावत् पु० पृथ्वी को अ० व्याप कर चि० रहती है ए० ऐसे ध०धर्म पु०ईश्वरादि जा०यावत् पु०पुरुष अ०व्याप कर चि० रहते हैं से० अब ज० जैसे उ० पानी का पु० कमल सि० होवे उ० पानी में जा० उत्पन्न उ० पानी को अ० व्याप कर चि० रहते

भूय चिट्ठइ, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव आभिभूय चिट्ठंति. से जहा णामए रुक्खे सिया पुढविजाए पुढविसंवुड्ढे पुढविअभिसमण्णागए पुढविमेव अभिभूय चिट्ठंति, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठंति. से जहा णामए पुक्खरिणी सिया पुढविजाया जाव पुढविमेव आभिभूय चिट्ठंति, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठंति. से जहा णामए उदगपुक्खले सिया उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिट्ठंति, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया

वृद्धि पाते हैं और उस में ही व्याप्त रहते हैं (७) जैसे पानी का परपोटा पानी से होता है, वहां बढता

अ० अनुगामी स० शरीर को अ० व्याप कर चि० रहते हैं ए० ऐसे ही ध० धर्म (स्वभाव) पुं० ईश्वरादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्यापकर चि० रहते हैं से० अथ ज० जैसे अ० अरति सि० होवे स० शरीर में जा० उत्पन्न स० शरीर में स० वढे, स० शरीर के अ० अनुगामी स० शरीरको व्यापकर चि० रहती है ऐ० ऐसे ही ध० धर्म भी पु० ईश्वरादि जा०यावत् पु०पुरुष को अ०व्याप कर चि० रहते हैं से० अथ ज० जैसे व० वल्मिक सि० होवे पु० पृथ्वी मे उ० उत्पन्न पु० पृथ्वी में सं० वढे पु० पृथ्वी

सूत्र

ट्ठंति, एवमेव धम्मा पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठंति से जहाणामए अरइ सिया, सरीरे जाया, सरीरे संवुड्ढा, सरीरे अभिसमण्णागया, सरीरमेव अभिभूय चिट्ठंतिं, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठंति. से जहा णामए वम्मिए सिया पुढवि जाए पुढवि संवुड्ढे, पुढवि अभिसमण्णागए, पुढविमेव आभि-

भावार्थ

होता है, शरीर में वृद्धि पाता है, शरीर की साथ रहता है, और शरीर में ही व्याप्त रहता है [२] जैसे अराति शरीर में उत्पन्न होती है, शरीर में ही वढती है और शरीर में ही व्याप्त रहती है [३] जैसे वल्मिक पृथ्वी में होता है, उस में वढता है और उस को ही व्याप्त होकर रहता है (४) जैसे वृक्ष पृथ्वी पर ही होता है, वहां ही वढता है और वहां ही व्याप्त रहता है, (५) जैसे वापि पृथ्वी पर उत्पन्न होती है, वहां ही वृद्धि पाती है, और वहां ही व्याप्त रहती है. (६) जैसे कमल पानी में उत्पन्न होते हैं,

स० श्रद्धावान् भ० होवे का० धर्मार्थी स० श्रमण मा० ब्राह्मण सं० विचारे ग० जाने को जा०यावत् ज० जैसे म० मैंने ए० यह ध० धर्म सु० अच्छा कहा सु० अच्छा प्ररूपा भ० है इ० यहां ख० निश्चय ध० धर्म पु० पुरुषादिक (ईश्वर) पु० पुरुष प्रधान पु०पुरुष प्रणीत पु०पुरुष से सं० उत्पन्न पु० पुरुष प० प्रद्योतित पु० पुरुषानुगामी पु० पुरुष को ही अ० व्याप्त करके चि० रहते हैं से० अथ ज० जैसे गं० गुम्बड सि० होवे स० शरीर में जा० उत्पन्न होवे स० शरीर में सं० वृद्धि होवे स० शरीर को

समणाय माहणाय संपहारिंसु गमणाए जाव जहा मए एस धम्मे सुअक्खाए, सुपन्नते भवइ । इह खलु धम्मा पुरिसादिया पुरिसोत्तराया, पुरिसप्पणीया, पुरिससंभूया, पुरिस पजोतिता, पुरिसअभिसमण्णागया, पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठंति, 'से जहा णामए गंडे सिया, सरीरे जाए,सरीरे संवुड्ढे, सरीरे अभिसमण्णागए, सरीरमेव अभिभूय चि-

को आवे यह सब वर्णन पूर्वोक्त कथनानुसार जानना. यहां पर ईश्वरवादीवाला अपना धर्म को श्रेष्ठ बताने के लिये राजा की पास आकर कहता है:—इस संसार में धर्म (सचेतना अचेतना रूप वस्तु स्वभाव) का कर्त्ता, बनानेवाला, उत्पादक, प्रकाशक ईश्वर ही है, जीवों के जन्म, मरण, रोग, शोक, वर्ण, गंध रस स्पर्शादि सब धर्म स्वभाव ईश्वर प्रणित है. किंबहुना सर्व जगत् एक ईश्वरमय ही है; अर्थात् ईश्वर व्याप्त सर्व स्थान रहे हुवे हैं. इस कथन को दृष्टांत से सिद्ध करते हैं. जैसे [१] गुम्बड शरीर में उत्पन्न

पा० पार अं० बीच में का० कामभोग में वि० खूते हुवे दो० दूसरा पु० पुरुष जात पं० पंच महा भूत त्ति० ऐसा आ० कहा ॥ १६ ॥ अ० अथ अ० अपर त० तृतीय पु० पुरुष जात ई० ईश्वरकाराणिक इ० ऐसा आ० कहा जाता है इ० यहां ख० निश्चय पा० पूर्व में सं० हैं ए० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं अ० अनुक्रम से लो० लोक में उ० उत्पन्न तं० वह ज० यथा आ० आर्य ए० एक जा० यावत् ते० उन में म०बडा ए० एक रा०राजा भ० है जा०यावत् से०सेनापति का पु०पुत्र ते०उन में ए०कोई एक

कामभोगेसु विसण्णा. दोच्चे पुरिसजाए पंचमहब्भूतिएत्ति आहिए ॥ १६ ॥ अहावरे तच्चे पुरिसजाए ईसरकाराणिए इति आहिज्जइ—इह खलु पाईणं वा संतेगतिया मणुस्सा भवंति अणुपुव्वेणं लोयं उववन्ना—तंजहा—आरियावेगे जाव तेसिं च णं महंते एगे राया भवइ जाव सेणावइपुत्ता तेसिं च णं एगतीए सड्ढा भवइ कामंतं

भावार्थ

भ्रष्ट होकर और कामभोग में खूंते रहतेहैं ऐसे पुरुष पुंडरीक समान राजा का उद्धार कर सके नहीं, परंतु संसार रूप वावडी में ही फसे रहें ॥ १६ ॥ अब तृतीय पुरुष की जात कहते हैं. लोक का कर्त्ता ईश्वर है, ऐसा जो मानते हैं, वे ईश्वरवादी हैं. इस मनुष्य लोक में पूर्वोक्त चारों दिशाओं में आर्य अनार्य आदि अनेक प्रकार के मनुष्यों यावत् उस में किसी को राज्याभिषेक कराके अनेक पुरुषों की परिषदा तक कहना, और भी उसमें किसी को श्रद्धावान जानकर श्रमण ब्राह्मणादिक राजादिक को प्रतिबोध करने

जा०जानो ण०नहीं है दो०दोष ते०वे णो०नहीं वि०जानते हैं तं०वह ज०यथा कि०क्रिया जा०यावत् णि० नरक ए० ऐसे वि० विविध प्रकार के क० कर्म के स० समारंभ में वि० विविध प्रकार के का० काम भोग का स० समारंभ करते हैं भो० भोजन के लिये ए० ऐसे ते० वे अ०अनार्य वि०प्रवर्तते हुवे तं०उस को स० श्रद्धते हुवे तं० उसको प० प्रतित करते हुवे जा० यावत् ते० वे णो० नहीं इ० किनारेपे णो० नहीं

विप्पडिवेदेंति. तंजहा—किरियाइ वा जाव णिरएइ वा. एवं ते विरूवरूवेहिं कम्म-समारंभेहिं विरूवरूवाइं काम भोगाइं समारभंति भोयणाए एवमेव ते अणारिया वि-प्पडिवन्ना, तं सद्दहमाणा, तं पतियमाणा, जाव इति ते णो हव्वाए, णो पाराए, अंतरा

को वस्तु स्वतः खरीदता है अन्य की पास खरीदाता है, जीवों की घात करता है, अन्य की पास घात कराता है, व पंचेन्द्रिय जीवों को मोल लेकर मारता है ऐसे सब कार्यों करता हैं, परंतु उस को हिंसा आदि का दोष नहीं लगता है. ऐसा जानकर वे सांख्य दर्शनवाले स्वच्छन्दाचारी बनकर सावद्यारंभ में प्रवृति कर रहे हैं. अहो जम्बू! उन बिचारे के अज्ञानरूप आच्छादन से हृदय रूप नेत्रों आच्छादित हो रहें हैं. जिस से वे सुकृत, दुष्कृत, यावत् नरक, स्वर्ग कुच्छ भी नहीं जानते हैं. इस तरह वे विविध प्रकारके कर्म समारंभ अपना उपभोग के लिये करते हैं. ऐसे अपना धर्म की प्ररूपणा करनेवाले अनार्य कामभोग में मूर्च्छित बनकर अपना धर्म की श्रद्धा करते, प्रतीत करते व रुचि करते इस लोक व पर लोक दोनों से

एक आ० कहा स० विद्यमान का ण० नहीं है वि० विनाश अ० अविद्यमान का ण० नहीं है सं० संभव ए० इस जी० जीव काय ए० इस अ० अस्तिकाय ए० इस स० सर्व लो० लोक ए० इस मु० मुख्य लो० लोक का क० कारण अ० अपि त० तृण मात्र से० वे कि० खरीदे कि० खरीदावे ह० हणे घा० हिंसा करावे प० पकावे प० पकवावे अ० अपि पु० पुरुष अ० मोललेके घा० घातकरके ए० यहां

य छट्ठा पुण एगे एवमाहु, सतो णत्थि विणासो, असतो णत्थि संभवो, एतावताव जीवकाए, एतावताव अत्थिकाए, एतावताव सव्वलोए, एतं मुहं लोगस्स करणयाए अवियंतसो तणमायमवि। से किणं किणावेमाणे, हणं घायमाणे, पयं पयावेमाणे। अवि अंतसो पुरिस मावीक्किणित्ता, घायइत्ता एत्थंपि जाणाहि णत्थित्थ दोसो, ते णो एवं

छट्ठा आत्मा रहाहुवा है और भी कितनेक कहते हैं कि विद्यमान वस्तु का नाश नहीं है, और अविद्यमान वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती है. इस सबब से सांख्य दर्शनवाले आत्मा को कर्ता नहीं मानते हैं. क्यों कि यदि आत्मा कर्त्ता होवे तो अविद्यमान वस्तु की उत्पत्ति करे. ये पांचभूत ही जीव हैं, कार्य के करनेवाले वेही हैं, वेही अस्तिकाय है, लोक भी उस का बनाहुवा है, और इस लोक में प्रधान वे ही रहे हुवे है. इन सिवाय अन्य कुच्छ भी नहीं है. कोई कहते हैं कि आत्मा नहीं है, किसी का यह कथन है कि आत्मा है परंतु अक्रिय है. ऐसा आत्मा को शुभाशुभ कर्म का बंध नहीं होता है. इसलिये पुरुष कार्य साधने

तृण मात्र पि० उद्देश पु० पृथक् भू० भूत का स० समवाय जा० जानो तं० वह ज० जैसे पु० पृथ्वी ए० एक म० महाभूत, आ० अप् दु० दुसरा म० महाभूत ते० अग्नि त० तीसरा म० महाभूत वा० वायु च० चौथा म० महाभूत आ० आकाश पं० पांचवां म० महा भूत ए० ये पं० पांच महा भूत अ० अनिर्मित अ० नहीं बनाया णो० नहीं कि० कृत्रिम णो० नहीं क० अपेक्षा अ० अनादि अ० अन्त रहित अ० अवंध्य अ० अपुरोहित स० स्वतंत्र सा० शाश्वत आ० आत्मा छ० छठा पु० फीर ए०

इति अंतसो तणमायमवि तं च पिहुद्देसे णं पुढो भूतसमवातं जाणेजा—तंजहा पुढवी एगे महब्भूते, आऊ दुच्चे महब्भूते, तेऊ तच्चे महब्भूते, वाऊ चउत्थे महब्भूते; आगासे पंचमे महब्भूते, इच्चेते पंचमहब्भूया अणिम्मिया अणिम्मावित्ता, अकडा, णो कित्तिमा, णो कडगा, अणाइया, अणिहणा, अवंझा, अपुरोहिता, सतंता, सासता आ-

सांख्य मत में तृण सम तुच्छ वस्तु को भी नमाने की क्रिया आत्मा नहीं करता है. यह सब क्रिया पंचभूत ही करते हैं. इन पंच महाभूत का समवाय पृथक् २ हैं. पृथ्वी, पर्वतादि प्रथम महाभूत पानी, नदी सरोवर आदि द्वितीय महाभूत, अग्नि तृतीय महाभूत, वायु चतुर्थ और आकाश पांचवा. इन पांच भूतों को किसी ने बनाये नहीं है, और बनावेंगे भी नहीं, किसी ने किये नहीं है, कृत्रिम नहीं है, उन को किसी की अपेक्षा भी नहीं है, आदि नहीं है, अंत नहीं है, अवंध्य, अपुरोहित, स्वतंत्र, व शाश्वत हैं. उन की साथ

मा० माहण प० चिन्तवे ग० जाने को० त० तहां अ० अन्यतर धं० धर्म से प० प्ररूपक प० हम इ० इस ध० धर्म से प० प्ररूपेंगे से० वे ए० ऐसा आ० जानो भ० भय रक्षक ज० जैसे ए० यह ध० धर्म सु० कहा सु० अच्छा प्ररूपा भ० हैं इ० यहां पं० पंचमहाभूत जे० जिसमें नो० नहीं क० करता हैं कि० क्रिया अ० अक्रिया सु० सुकृत दु० दुष्कृत क० कल्याणारी पा० पापकारी सा० अच्छा० अ० बुरा सि० मोक्ष अ० संसार णि० नरक अ० अनरक इ० ऐसा अं० अंत त०

माहणा पन्नत्तारो वयं इमेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो से एव मायाणह भयंतारो जहाए एस धम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते भवंति। इह खलु पंच महब्भूता जेहिं नो कज्जइ किरियाति वा, अकिरियाति वा, सुकडेति वा, दुक्कडेति वा, कल्लाणेति वा, पावएति वा, साहुति वा, असाहुति वा, सिद्धिति वा, असिद्धिति वा, णिरएति वा, अणिरएति वा,

बैठते हैं. उन में कोई राजा को धर्मार्थी जानकर उन को अपना अनुयायी बनाने की इच्छा से पंचभूतवादी के श्रमण ब्राह्मण आते हैं. और कहते हैं, कि हम ही भय से मुक्त करनेवाले हैं और हमारा धर्म ही अच्छा है. इस जगत् में पृथ्वी, अप्, तेजो, वायु और आकाश ये पंच महाभूत हैं. पांच भूत ही सर्व क्रिया करते हैं परंतु आत्मा क्रिया, अक्रिया, सुकृत, दुष्कृत, कल्याणकारी, पापकारी, अच्छा, बुरा, मोक्ष गमन योग्य, नरक गमन योग्य, अन्य गति में जाने योग्य यह सब क्रिया नहीं करता है.

आ० कहा ॥ १९ ॥ अ० अब दो० दुसरा पु० पुरुष जात पं० पंचमहाभूतवादी त्ति० ऐसा आ० कहा जाता है पा० पूर्व सं० है ए० कितनेक म० मनुष्यों भ० होते हैं अ० अनुक्रम से लो० लोक में उ० उत्पन्न हुवे तं० वह ज० यथा आ० कितनेक आर्य अ० कितनेक अनार्य ए० ऐसे जा० यावत् दु० कुरूप ए० कितनेक ते० उस में म० बडा ए० एक रा० राजा भ० होता है म० बडा णि० निरविशेष जा० यावत् से० सेनापतिका पु० पुत्र ते० उन में ए० कितनेक स० श्रद्धावन्त भ० होते हैं का० धर्मार्थी स० श्रमण

पंच महब्भूतिएति आहिज्जइ इह खलु पाईणं वा संते गतिया मणुस्सा भवंति अणुपुव्वेणं लोयं उववन्ना तंजहा आरियावेगे, अणारियावेगे, एवं जाव दुरूवावेगे तेसिं च णं महं एगे राया भवति महाएवं चेव णिरविसेसं जाव सेणावइपुत्ता तेसिं च णं एगतिए सड्ढा भवंति कामंतं समणाय माहणाय पहारिंसु गमणाए तत्थ अन्नयरेणं ध-

॥ १९ ॥ अब उस पुष्करणी गत दक्षिण दिशावाला पुरुष का भावार्थ बताते हैं. इस जगत् समान पुष्करणी में खूंता हुवा दूसरा मनुष्य पंचभूतवादी जानना. इसको सांख्य मत भी कहते हैं. सब अधिकार पूर्वोक्त पुरुष सम कहना. जैसे इस जगत् की पूर्वादि चारों दिशाओं में आर्य, अनार्य, सुरूप, कुरूप, ऐसे अनेक प्रकार के मनुष्य रहते हैं. उन में विशुद्ध कुलोत्पन्न, सुलक्षण युक्त, पुण्यात्मा, राज्याभिषेक कराया हुवा राजा अनेक ऋद्धि, सिद्धि युक्त रहता है. उन की सभा में उग्र कुल में उत्पन्न यावत् सेनापति के पुत्र

भूत लु० लुब्ध रा० राग द्वेषसे व० घेराये हुए ते० वे णो० नहीं अ० स्वतः को स० मुक्तकरे ते० वे णो० नहीं प० अन्य को स० मुक्त करावे णो० नहीं अ० अन्य पा० प्राणी भू० भूत जी० जीव स० सत्व स० मुक्त करे प० रहित पु० पूर्व सं० संयोग अ० आर्य म० मार्ग अ० अप्राप्त इ० ऐसे ते० वे णो० नहीं इ० इसपार णो० नहीं पा० पार अं० बीच में का० कामभोगों में वि० खूते हुवे इ० यह प० प्रथम पु० पुरुष जात त० तज्जीवतच्छरीरवादी

लुद्धा, रागदोसवसट्टा, ते णो अप्पाणं समुच्छेदेंति, ते णो परं समुच्छेदेंति णो अण्णाइं पाणाइं, भूयाइं, जीवाइं, सत्ताइं, समुच्छेदेंति. पहीणा पुव्व संजोगं, आरियं मग्गं असंपत्ता, इति ते णो हव्वाए, णो पाराए, अंतरा कामभोगेसु विसन्ना इति पढमे पुरिसजाए तज्जीवतच्छरीरएत्ति आहिए ॥ १५ ॥ अहावरे दोच्चे पुरिसजाए

आचरण कराते हैं, और ऐसा आचरण करनेवाले को अच्छा जानते हैं, वैसे ही काम भोगों में स्वयं गृद्ध व एक चित्ती भूत बनते हैं. वे स्वयं कर्मबंध से मुक्त नहीं हो सकते हैं, वैसे ही अन्य प्राणी, भूत, जीव व सत्व को भी मुक्त नहीं कर सकते हैं. ऐसे नास्तिक लोकों पुत्र कलत्रादिक से भी भ्रष्ट हुवे, और आर्य धर्म की प्राप्ति भी नहीं करसके, इस तरह उभय भ्रष्ट होने से पुष्करणी में खूंता हुवा मनुष्य की तरह वे न तो उत्तीर्ण होसके, और न किनारे पर रह सके, परंतु अंतराल में ही काम भोग रूप कीचड में खूंते रहे. ऐसे पुरुष राजादिक का उद्धार कर सके नहीं. यह तज्जीवतच्छरीरवादी नामक प्रथम पुरुष कहा.

ए० कितनेक पू० पूजामें नि०निवृत्ति करनेसे पु० पहिले ते० उनको णा० ज्ञान भ० होवे स० श्रमण, भ० होवेंगे अ० अनगार अ० अकिंचन अ० अपुत्र अ० पशु रहित प० दूसरेका दिया भोगने वाले भि० साधु पा० पाप क० कर्म णो० नहीं क० करेंगे स० सावधान ते० वे अ० स्वतः अ० अविरत भ० होते हैं स० स्वयं आ० आदरे अ० अन्यकी पास आ० आदरावे अ० अन्य आ० आदरने वाले तं० उसे स० अच्छा जाने ए० ऐसे ही ते० वे इ० स्त्री के कामभोगमें मु० मूर्च्छित गि० गृद्ध ग० अतिगृद्ध अ० एकचित्ती

यणाए निकाइंसु। पुव्वमेव तेसिं णायं भवति, समणा भविस्सामो अणगारा, अकिंचणा, अपुत्ता, अपसू, परदत्तंभोइणो, भिक्खुणो पावं कम्मं णो करिस्सामि, समुट्ठिए ते अप्पणो, अप्पडिविरया भवंति. सयमाइयंति, अन्नेवि आदियावेंति, अन्नंपि आयतं तं समणुजाणंति एवमेव ते इत्थिकामभोगेहिं मुच्छिया, गिद्धा, गढिया, अज्झोववन्ना

स्थानकसे हमको तुमारी पूजा करनी चाहिये. इसतरहका उपदेशसे राजाआदि को भ्रमित करके अपना कार्य सिद्ध करते हैं. ऐसे नास्तिक मतवादियों को दीक्षा ग्रहण करते समय ऐसा ज्ञान होता है कि हम श्रमण, अणगार, अकिंचन, पुत्र कलत्र धन धान्यादि रहित, गो महिषादि पशु रहित, व अन्य का दियाहुवा अशनादि लेनेवाले, साधु होवेंगे पापकर्म नहीं करेंगे. इस तरह सावधान बनकर पीछे से नास्तिकता को प्राप्त हो कर स्वयं अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होते हैं. स्वयं सावद्यानुष्ठान का आचरण करते हैं, अन्य की पास

भोग स० करते हैं भो० भोजन के लिये ए० ऐसे ए० कितनेक पा० धृष्ट णि० नीकलकर मा० हमारा ध० धर्म प० परूपते हैं त० उसे स० श्रद्धने वाले, तं० उसे प० प्रतीत करने वाले से तं० उसकी रो० रुचि करने वाले सा० अच्छा सु० अच्छा कहा स० श्रमण मा० ब्राह्मण का० इष्ट आ० आयुष्मन् तु० तुमको पू० पूजता हूं तं० वह ज० यथा अ० अशनसे पा० पानसे खा० खादिम से सा० स्वादिमसे व० वस्त्र से प० पात्रसे कं० कंबलसे पा० रजोहरणसे त० तहां ए० कितनेक पू० पूजामें स० गृद्ध त० तहां

एगे पागब्भिया णिक्खम्म मामगं धम्मं व पन्नवेंति तं सद्दहमाणा, तं पतियमाणा, तं रोयमाणा, साहु सुयक्खाए समणेति वा, माहणेति वा, कामं खलु आउसो तुमं पूयघामि—तंजहा—असणेण वा, पाणेण वा, खाइमेण वा, साइमेण वा, वत्थेण वा, पडिग्गहेण वा, कंबलेण वा, पायपुच्छेणेण वा, तत्थेगे पूयणाए समाउट्टिंसु, तत्थेगे पू-

भावार्थ

विविध प्रकार के कर्म समारंभ से नाना प्रकार के काम भोगों भोगवते हैं. कितनेक नास्तिकवादी धृष्ट बनकर ऐसा कहते हैं, कि जो शरीर है वही आत्मा है और इस तरह श्रद्धाकरते हुवे, सत्य करके मानते हुवे व उस में रुचि करते हुवे कितनेक अपना ही उपदेश करते हैं. अहो ब्राह्मणो! हमारा ही धर्म सत्य व श्रेष्ठ हैं. परभव के दुःखों से दुःखी करनेवाले ठग पुरुषों से हम को बचाकर सुखी किये हैं, इस लिये तुम हमारे उपकारी बने हुवे हैं. अन्न, पानी, पक्वान्न, मुखवास, वस्त्र, पात्र, कम्बल, व

मिथ्या से० वह हं० हणने वाला तं० उसे ह० हणो ख० खोदो छ० छेदो, ड० जलावो, प० पचावो आ० लूंटो वि० विशेष लूंटो स० सहसात्कारकरो वि० विपरीत कहो ए० एसा जी० जीव ण० नहीं है प० परलोक ते० वे णो० नहीं ए० ऐसा वि० अंगीकार करतेहैं तं० उस कि० क्रिया अ० आक्रिया सु० सुकृत दु० दुष्कृत क० कल्याण (पुन्य) पा० पाप सा० साधु अ० असाधु सि० सिद्ध अ० असिद्ध नि० नरक अ० अनरक ए० ऐसे ते० वे वि० विविध प्रकारके क० समारंभसे वि० विविधप्रकार के का० काम-

ते मिच्छा । सेहंता तं हणह, खणह, छणह, डहह, पयह, आलुंपह, विलुंपह, सहसाकारेह, विपरामुसह, एतावताव जीवे णत्थि परलोए वा. ते णो एवं विप्पडिवेदेंति तं किरियाइ वा, अकिरियाइ वा, सुक्कडेइ वा, दुक्कडेइ वा, कल्लाणेइ वा; पावएइ वा साहुइ वा, असाहुइ वा, सिद्धाइ वा, असिद्धाइ वा, निरएइ वा अनिरएइ वा, एवं ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारंभंति भोयणाए । एवं

उस को सुख दुःख भोगवना पडे ऐसा परलोक भी नहीं है. परलोक के अभाव से पुण्य पाप कुच्छ भी नहीं है. इस लिये खावो, पीवो स्वेच्छाचारी बनो. यहांपर श्री सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं, कि परलोक के अभाव से पुण्य पाप नहीं माननेवाले नास्तिक क्रिया, अक्रिया, सुकृत, दुष्कृत, पुण्य, पाप, साधु, असाधु, सिद्ध, असिद्ध, नरक, व अनरक, (मनुष्य, तिर्यंच देवता) को नहीं जानते हैं. इस तरह वे

खल ए० ऐसे ही जा० यावत् स० शरीर से० वह ज० जैसे ए० कोई पुरुष इ० इक्षु से खो० रस को अ० निकाल कर उ० बतलावे अ० यह आ० आयुष्मन् खो० इक्षु रस अ० यह छो० छोतरे ए० ऐसे ही जा० यावत् स० शरीर भे० अब ज० जैसे ए० कोई एक पुरुष अ० अरणि से अ० अग्नि अ० नीकाल कर उ० बतलावे अ० यह आ० आयुष्मन् अ० अरणि अ० यह अ० अग्नि ए० ऐसे ही जा० यावत् अ० अविद्य मान जे० जिसको सु० अच्छा कहा भ० होवे तं० वह अ० अन्य स० शरीर त० इसलिये ते० वह मि०

यं पिन्नाए, एवमेव जाव सरीरं । से जहा णाम एकेइ पुरिसे इक्खूतो खोत-रसं अभिनिव्वाटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो खोतरसे अयं छोए. एवमेव जा-व सरीरं । से जहा नाम एकेइ पुरिसे अरणीतो अग्गिं अभिनिव्वाटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो अरणी अयं अग्गी, एवमेव जाव सरीरं । एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिं तं सुयक्खायं भवति तं अन्नो जीवो अन्नं सरीरं तम्हा

आत्मा है और यह शरीर है. इस लिये जीव और शरीर को एकही माननेवाले सत्यवादी हैं, और दोनो को भिन्न मानने वाले मिथ्यावादी हैं. इसतरह वे तज्जीवतच्छरीरवादी जीवका अस्तित्व नहीं मानतेहैं और जीव घात करने में किंचिन्मात्र पाप नहीं समझते हैं, इस लिये वे स्वयं घातक बनकर अन्य को उपदेश करते हैं इन्हे मारो, खोदो, छेदो, मज्वलित करो, पचावो, लूंटो, सहसात्कार करो, क्यों कि जो शरीर है वही जीव है, और शरीर का विनाश होने से जीव का भी विनाश होता है, जीव का अभाव होने से

ए० ऐसे ही न० नहीं है के० कोई पुरुष उ० बताने वाला अ० यह आ० आत्मा इ० यह स० शरीर से० अन्न ज० जैसे ए० कोई एक पु० पुरुष क० करतल से आ० आमला को अ० नीकाल कर उ० वतलावे अ० यह आ० आयुष्मन् क० कर तल अ० यह आ० आमला ए० ऐसे ही ण० नहीं है के० कोई पुरुष उ० वताने वाला अ० यह आ० आयुष्मन् आ० आत्मा इ० यह स० शरीर से० अन्न ज० जैसे ए० कोईएक पु० पुरुष द० दधिसे न० मक्खन अ० नीकाल कर उ० बताता है अ० यह आ० आयुष्मन् अ० यह द० दधि ए० ऐसे ही ण० नहीं हैं के० कोई पुरुष जा० यावत् स० शरीर से० वह ज० जैसे ए० कोई पुरुष तिं० तिलसे ति० तेल अ० निकाल कर उ० वतलावे अ० यह आ० आयुष्मन् ते० तेल अ० यह पि०

एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं। से जहा णाम एकेइ पुरिसे करयलाओ आमलकं अभिनिव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो करतले अयं आमलए. एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इमं सरीरं। से जहा णाम एकेइ पुरिसे दहीओ नवनीयं अभिनिव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा अयं माउसो नवनीयं अयं तु दही, एवमेव णत्थि केइ पुरिसे जाव सरीरं। से जहा णाम एकेइ पुरिसे तिलेहिंतो तिल्लं अभिनिव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो. तिल्लं अ-

तेल को भिन्न कियाजाता है, (७) इक्षु से रस को अलग करके वतलायाजाता है (८) जैसे अरणि नामक काष्ट से अग्नि अलग कीजाती है; वैसे कोई शरीर से आत्मा को भिन्न वता नहीं सकता है कि यह

वतावे अ० यह आ० आयुष्मन्तो अ० खड्ग अ० यह को० म्यान ए० ऐसे ही ण० नहीं है के० कोई पुरुष अ० नाकालकर उ० वताने वाला अ० यह आ० आयुष्मन् आ० आत्मा इ० यह स० शरीर से० अब ज० जैसे णा० संभावनाथ ए० कोई एक पु० पुरुष मुं० तृणसे इ० सली उ० नीकाल कर उ० वतावे अ० यह आ० आयुष्मन मुं० तृण इ० यह इ० सली ए० ऐसे ही ण० नहीं है के० कोई पुरुष उ० वताने वाला अ० यह आ० आयुष्मन् आ० आत्मा इ० यह स० शरीर से० अब ज० जैसे ए० कोई एक पु० पुरुष मं० मांस से अ० हड्डी अ० निकाल कर उ० वतावे अ० यह आ० आयुष्मन् मं० मांस अ० यह अ० अस्थि

निव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो असी अयं कोसी. एवमेव णत्थि केइ पुरिसे अभिनिव्वटित्ताणं उवदंसेत्तारो, अयमाउसो आया इयं सरीरं। से जहा णाम एकेइ पुरिसे मुंजाओ इसियं अभिनिव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो मुंजे इयं इसियं. एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसत्तारो अयमाउसो आया इमं सरीरं। से जहा णाम एकेइ पुरिसे मंसाओ अट्ठिं अभिनिव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा—अयमाउसो मंसे अयं अट्ठी.

जो शरीर से आत्मा भिन्न मानते हैं वे नास्तिक हैं. यदि शरीर से आत्मा भिन्न होता तो जैसे (१) म्यान से खड्ग निकाल कर पृथक् वतलाया जाता है कि यह म्यान और यह खड्ग (२) जैसे तृण से सली पृथक् वतलाइ जाती है (३) जैसे मांस से हड्डी को निकालकर वतलाइ जाती है (४) हथेली में आमले को पृथक् वतायाजाता है (५) दधि से मक्खन को अलग निकालाजाता है (६) तिल से

गोल छ० छकोन अ०अष्टकाने कि० कृष्ण, णी०नीला (हारित)लो०रक्त हा० पीत सु०शुक्ल सु० सुरभिगंध, दु० दुरभिगंध ति०तिक्त क०कटुक क०कसाया हूवा अ०अम्बट म० मधुरक० कर्कश म० मृदु गु० गुरु ल० लघु सी० शीत उ० ऊष्ण नि० स्निग्ध लु० रूक्ष ए ऐसे अ० असत् अ० अविद्यमान जे० जिसको तं० वह सु० कहा भ० होवे अ० अन्य जीव अ० अन्य शरीर त० इसलिये ते० वे णो० नहीं ए० ऐसा उ० जानते हैं से० अब ज० जैसे ए० कोई एक पु० पुरुष को० म्यानमें से अ० खड्ग अ० नीकालकर उ०

ण्हेति वा, णीलेति वा, लोहियहालिद्दसुक्किलेति वा, सुब्भिगंधेति वा, दुब्भिगंधेति वा, तित्तेति वा, कडुएति वा, कसाएति वा, अंबिलेति वा, महुरेति वा, कक्खडेति वा, मउएति वा, गुरुएति वा, लहुएति वा, सीएति वा, उसिणेति वा, निद्धेति वा, लुक्खेति वा, एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिं तं सुयक्खायं भवति अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, तम्हा ते णो एवं उवलब्भंति ॥ से जहा णाम एकेइ पुरिसे कोसीओ आसिं अभि

नील, पीत, रक्त व श्वेत पाँचों वर्णोंमें से कोनसा वर्ण का है ? सुगंध दुर्गंध में से किस गंधवाला है ? तिक्त, कटुक, कषाय, अम्बट, व मधुर रस में से कोनसा रसमय है ? कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, ऊष्ण, स्निग्ध व रूक्ष इन अष्ट स्पर्शों में से कोनसा स्पर्शवाला है ? इन प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं दे सकते हैं इस लिये जानाजाता है कि जो आत्मा को अछता व अविद्यमान कहते हैं, उन का पक्ष अच्छा है. और

पं० पांचवा पु० पुरुष गा० ग्राममें प० पीछे से ग० जाते हैं ए० ऐसे अ० असत् अ० अविद्यमान जे० जि-
सका तं० वह अ० असत् अ० अविद्यमान ते० उनको तं० यह सु० अच्छा कहा भ० होता है अ० अन्य भ० है
जी० जीव अ० अन्य स० शरीर त० इसलिये ते० वे ए० ऐसे णो० नहीं वि० जानते हैं अ० यह आ० आयुष्मन्त
आ० आत्मा दी० दीर्घ ति० ऐसा ह० ह्रस्व प० परिमंडल व० वर्तुलाकार तं० त्रिकोन च० चतुष्कोन आ० लम्ब

दी पंचमा पुरिसा गामं पच्चा गच्छंति, एवं असंते असंविज्जमाणे, जेसिं तं असंते अ-
संविज्जमाणे तेसिं तं सुयक्खायं भवति, अन्नो भवति जीवो अन्नं सरीरं, तम्हा ते ए-
वं नो विप्पडिवेदेंति, अयमाउसो—आया दीहेति वा, हस्सेति वा, परिमंडलेति वा,
वट्टेति वा, तंसेति वा, चउरंसेति वा, आयतेति वा, छलंसिएति वा, अट्ठंसेति वा, कि-

धारण करता है. जब अन्य पांच मनुष्य मिल शरीर को श्मशान में लेजा कर जलादेते हैं तब वहांमात्र
कपोत वर्ण की हड्डियां दीसती हैं, अन्य कुच्छ भी नहीं दीसता है. और जलानेवाले पीछा अपने स्थानपर
आजाते हैं; परंतु जलाया हुवा का जीव नहीं दीसता है. शरीर की साथ विनष्ट हो जाता है. इस
लिये जो शरीर है वही जीव है. जो जीव और शरीर को भिन्न मानते हैं वे उस का प्रमाण को भी नहीं
जानते हैं. यदि शरीर से जीव को भिन्न माने तो अहो आयुष्मन्तो! इस का क्या प्रमाण है. जीव
क्या लम्बा है? या तंदुल प्रमाण छोटा है? चुडी जैसा मंडलाकार है? या लड्डु जैसा गोल है? सिंघोडे
जैसा तिखुना है, या चौकी जैसा चौखुना है? लकडी जैसा लम्बा है या छपेल है, या कैसा है? कृष्ण

ऊंचा पा० पॉव का तलिया से अ० नीचे के० केशाग्र म० मस्तक ति० तिर्यक् त० चर्म पर्यंत जी० जीव ए० यह आ० आत्मा की प० पर्याय क० संपूर्ण ए० इस के जी० जीनेपर जी० जीता है ए० यह म० मरने पर णो० नहीं जी० जीता है स० शरीर ध० रहने से ध० रहता है वि० विनष्ट होने से णो० नहीं ध० रहता है ए० यह तं० वह जी० जीव भ० होता है अ० जलाने को प० दूसरे को नि० लेजाता है अ० अग्नि से ज्झा० प्रज्वलित स० शरीर क० कपोत व० वर्णके अ० अस्थि भ० होती हैं आ० मांचा सहित

सग्गमत्थया, तिरियं तेयपरियंते जीवे एस आयापज्जवे कसिणे एस जीवे जीवति, एस मय णो जीवइ सरीरे धरमाणे धरइ, विणट्ठमिय णो धरइ, एयं तं जीवियं भवति अदहणाए परेहिं निज्जइ, अगणिज्जामिए सरीरे, कवोतवन्नाणि, अट्ठीणि भवंति आसं-

तच्छरीरवादी—जीव और शरीर को एकही माननेवाले—का अधिकार कहते हैं. वह पुरुष उस पुष्करणीरूप जगत से पुंडरीक कमल समान राजा का उद्धार के लिये उपदेश करता है कि जितना बडा शरीर है, उतनाही बडा जीव है—पांव का तलासे ऊपर व शरीर के वालों से नीचे और तीर्च्छा त्वचा पर्यंत. शरीर से जीव पृथक् नीकलता दीसता नहीं है, इस से जो शरीर है वही जीव है और जो जीव है वही शरीर है. परंतु शरीर से जीव भिन्न नहीं है. जहां तक शरीर है वहांतक ही जीव है. शरीर का नाश की साथ जीव का नाश होजाता है. जब लग शरीर पंच महाभूत कायाको धारण करता है, वहांलग ही जीव को

मा० ब्राह्मण मा० ब्राह्मण पुत्र ले० लक्ष्मी ले० लक्ष्मी पुत्र प० बहुत धन प० बहुत धन वाले के पुत्र से० सेनापति से० सेनापति के पुत्र ॥ १३ ॥ तं० उस में से ए० कोई एक स० श्रद्धावान् भ० होवे का० धर्मार्थी को स० श्रमण, मा० ब्राह्मण, सं० चिन्तवे ग० जाने को त० तहां अ० अन्यतर ध० धर्म से प० प्ररूपक व० हम इ० इस ध० धर्म से प० प्ररूपेंगे से० वे ए० ऐसे आ० जानो भ० भयके रक्षक ज० जैसे म० मैंने ए० यह ध० धर्म सु० कहा सु० अच्छा प्ररूपा भ० है ॥ १४ ॥ तं० वह ज० इस प्रकार उ०

इक्खागाइ, इक्खागाइ नायना २ कोरव्वा २, भट्टा, भट्टपुत्ता, माहणा; माहणपुत्ता, लेच्छइ, लेच्छइपुत्ता, पसत्थारो, पुसत्थारोपुत्ता, सेणावइ सेणावइपुत्ता ॥ १३ ॥ तोसिं च णं एगतीए सड्ढा भवइ-कामंतं समणावा, माहणावा, संपहारिंसु गमणाए, तत्थ अन्नतरेणं धम्मेणं पन्नत्तारोवयं इरमेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो, से एव मायाणह, भयंतारो जहा मए एस धम्मे सुयक्खाए सुपए भवइ ॥ १४ ॥ तंजहा—उड्ढं पादतला, अहे के-

पालते हुवे विराजते हैं. इस का विशेष वर्णन उववाईजी सूत्र में जानना ॥ १३ ॥ उक्त प्रकारकी समृद्धिके धारक राजाओं इस लोक में रहते हैं उस में से किसी को धर्म श्रद्धावान जानकर कोई श्रमण ब्राह्मणादिक ऐसा विचार करें कि हम उन की पास जाकर हमारा धर्म कहेंगे. ऐसा विचार कर वे राजादिक की पास जाकर बोलते हैं कि हम जिस धर्म की प्ररूपणा करते हैं वही धर्म अच्छा है. उस का स्वरूप आगे बताते हैं ॥ १४ ॥ अब पुष्करणीगत उन चारो पुरुषों में प्रथम पुरुष की घटना करते हैं. पहिले तज्जीव

शत्रु नि० नीकाले शत्रु म० मर्दन किये शत्रु उ० उदेरे शत्रु नि० जीते शत्रु प० पराजिते शत्रु व० निवर्ता हुवा दु० दुर्भिक्ष मा० मरकी भ० भय वि० रहित रा० राजाके वर्णन ज० जैसे उ० उववाईजी में खे० क्षेम सि० कल्याण सु० सुभिक्ष जा० यावत् प० उपशान्त डिं० स्वचक्री ड० परचक्री का र० राज्य पा० पालता हुवा वि० विचरता है त० उस र० राजा की प० सभा भ० है उ० उग्र उ० उग्र पुत्र भो० भोग भो० भोग पुत्र इ० इक्षाग इ० इक्षाग पुत्र ना० नायक मा० नायक पुत्र को० कौरव कौरव पुत्र भ० सुभट सुभट पुत्र

मलियकंटयं, उदियकंटयं, निहयकंटयं, अकंटयं, उहयसत्तू, निहयसत्तू, मलियसत्तू, उद्धियसत्तू, निज्जियसत्तू, पराइयसत्तू, ववगयदुभिक्खमारिभयविप्पमुक्कं, रायवन्नओ जहा उववाइए, खेमं सिवं सुभिक्खं जाव पसंतडिंबडमररज्जं, पासाहेमाणे विहरंति, तस्स णं रन्नो परिसा भवइ—उग्गा, उग्गपुत्ता, भोगा, भोगपुत्ता,

भरा है, शस्त्रों से आयुधशाला भरी है, वैसा आप स्वतः बलिष्ठ, सब दुश्मनों को निर्बल करनेवाला, गोत्री को जीतनेवाला, तथा शत्रु को हत, प्रहत, पराजय कर देशपार करनेवाला, कोई एक राजा दुर्भिक्ष दुष्काल, मरकी, स्वचक्री, परचक्री का भय रहित राज्य का रक्षण करताहुवा रहता है. उन की परिषदामें अनेक उग्र कुलोत्पन्न, भोग कुलोत्पन्न, इक्षागकुलोत्पन्न, नायक कुलोत्पन्न, कौरवकुलोत्पन्न, सुभटकुलोत्पन्न, ब्राह्मण कुलोत्पन्न, श्रेष्ठि कुलोत्पन्न, प्रशस्त उत्तम कुलोत्पन्न इत्यादि छोटे महा पुरुषों उन की आज्ञा

दि॰ दीप्त वि॰ धनिक वि॰ विस्तीर्ण वि॰ बहुत भ॰ घरों स॰ शैया आ॰ आसन जा॰ यान वा॰ वाहन आ॰ सहित व॰ बहुत धन व॰ बहुत सुवर्ण र॰ चांदी आ॰ व्यापारादि सं॰ संपन्न वि॰ दिलते प॰ बहुत भ॰ आहार पानी व॰ बहुत दा॰ दासी दा॰ दास गो॰ गाय म॰ महिष ग॰ बच्चे प्प॰ बहुत प॰ पूर्ण जं॰ यंत्र को॰ भंडार को॰ कोठार आ॰ आयुधशाला व॰ बलवन्त दु॰ दुर्बल प॰ शत्रु उ॰ नाश किया कं॰ कंटक म॰ मर्दन किया कं॰ कंटक उ॰ उद्देश कं॰ कंटक नि॰ नीकले कंटक अ॰ निष्कंटक हुवे उ॰ नाश किये

सीहे; पुरिस-आसीविसे; पुरिसवरपोंडरीए, पुरिसवर-गंधहत्थी; अड्ढे, दित्ते, वित्ते, विछिन्न—विडल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे, बहु-धण—बहु-जातरूव-रअए आउगपउग-संपउत्ते, विच्छडिय-पउर-भत्तपाणे, बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलग-प्प-भूते, पडिपुण्ण-जंत-कोस-कोट्ठागारा-उद्धागारे, बलवं-दुबल्ल-पव्वामिए, उहय-कंटयं,

पुरुष में आशीविष सर्प सदृश, (रुष्ट हुवा अनर्थ करे) पुरुष में पुंडरीक जैसा, गंध हस्ती जैसा, न्याय से परीपूर्ण, असंत दीप्त, महेल, शैय्या आसन व स्वारि के लिये बहुत वाहन, नाव जहाज युक्त, बहुत धन धान्य, सुवर्ण चांदि आदि सहित, उदार मनवाला, जिस के वहां बहुत खानपान तैयार होता है, बहुत से लोग जिमते हैं, और जिस के वहां बहुत दास, दासी, गाय भैंस प्रमुख रहे हुवे हैं, जिसके वहां शतध्नि (तोप) आदि अस्त्रशस्त्र बहुत हैं, जिस का भंडार द्रव्य से भरा है, धान्य से कोठार

व० सहित अं० प्रत्येक अंगमें ब० बहुत जनों से ब० बहुमान पू० पूजित स० सर्वगुण स० समृद्धिवान ख० क्षत्रिय मु० आनंदी मु० मुग्ध से अ० अभिषेक कराया मा०माता पि० पिता सु०सुजाति दे०देव प्रिय सी० मर्यादा के कर्ता सी०मर्यादा के धारक खे०क्षेम कर्त्ता खे० क्षेमका धारक म० नरेन्द्र ज० देशका पि०पिता ज० देशका पु०पुरोहित से०श्रेय कर्ता के०कौतुक कर्ता न०नर में श्रेष्ठ पु०मनुष्यों में प०प्रधान पु०मनुष्यों में सी०सिंह पु० मनुष्यों में आ० दृष्टी विष पु०मनुष्यों में श्रेष्ठ पों० पुंडरीक पु०मनुष्यों में व०श्रेष्ठ गं०गंधहस्ति अ०संपूर्ण

वंत-मलय-मंदर-महिंदसारे, अच्चंत-विसुद्ध-राय-कुल-वंस-प्पसूते, निरंतर-राय-ल-क्खण-विराइयंगमंगे, बहु-जण-बहुमाण-पूइए, सव्वगुण-समिद्धे, खत्तिए मुदिए, मु-द्धाभिसित्ते; माउ-पिउ-सुजाए; देयाप्पिए; सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, मणु-स्सिंदे, जणवयपिया, जणवय-पुरोहिए, सेउकरे, केउकरे, नरपवरे, पुरिसपवरे पुरिस-

बडा व समृद्धिवान, अत्यंत विशुद्ध राजकुल में उत्पन्न, प्रत्येक अंगोपांग में राज्यलक्षण युक्त, बहुत मनुष्यों का माननीय, पूजनीय, सर्व गुण संपन्न, क्षत्रियवंशी, आनंदी, मातापितादिक से अभिषेक कराया हुवा, अच्छे कुल का, करुणावान, मर्यादा का करनेवाला, मर्यादा का धरनेवाला, कल्याण का करनेवाला कल्याण का धरनेवाला, नरेंद्र, जनपद के मनुष्यों को पिता समान; जनपद के मनुष्यों को शान्ति करनेवाला; श्रेयकारी, अद्भुत कार्य करनेवाला, मनुष्यों में श्रेष्ठ, पुरुष में श्रेष्ठ, पुरुष में सिंह समान,

ए० यह म० मैंने अ० स्वयं आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन्, से० वह ए० ऐसे ए० यह वु० कहा ॥ १२ ॥ इ० यहां पा० पूर्व दिशा प० पश्चिम दिशा उ० उत्तर दिशा दा० दक्षिण दिशा सं० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं अ० अनुक्रम से लो० लोक में उ० उत्पन्न हुवे तं० वह ज० यथा आ० आर्य ए० कितनेक अ० अनार्य ए० कितनेक उ० कितनेक ऊंचगोत्री णी० कितनेक नीच गोत्री का० कितनेक लंबी काया वाले र० कितनेक छोटी काया वाले सु० अच्छे वर्ण वाले दु० खराब वर्ण वाले सु० अच्छे रूपवाले दु० खराब रूपवाले ते० उन म० मनुष्य में ए० एक रा० राजा भ० होते हैं म० बडा हि० हेमवन्त म० मलयाचल मं० मेरु म० महेन्द्र जैसे अ० अक्षत वि० विशुद्ध रा० राजकुल वं० वंश में प्प० जन्म नि० निरंतर रा० राज लक्षण

खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से एवमेयं वुइयं ॥ १२॥ इह खलु पाईणं वा, पडीणं वा, उदीणं वा, दाहिणं वा, संतेगतिया मणुस्सा भवंति अणुपुव्वेणं लोगं उववन्ना; तंजहा—आरियावेगे;अणारियावेगे;उच्चागोत्तावेगे;णीयागोयावेगे;कायमंतावेगे;रहस्समंतावेगे,सुवन्नावेगे, दुवन्नावेगे, सुरूवावेगे, दुरूवावेगे; तेसिं च णं मणुयाणं एगे राया भवइ; महया हिम-

शब्द समान धर्म कथा है, तथा कमल के बाहिर आने समान मोक्ष प्राप्ति है. इस तरह संक्षिप्त में उस का अर्थ कहा अब विस्तार पूर्वक अर्थ कहते हैं. ॥ १२ ॥ इस मनुष्य लोक की पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण दिशा में कितनेक मनुष्य रहते हैं जैसे कि:—आर्य, अनार्य, ऊंच, नीच गोत्र में उत्पन्न होनेवाले, लम्बी कायावाले, ठिंगने, अच्छे वर्णवाले, सुरूप, व कुरूप. इन मनुष्यों में हिमवन्त मेरु पर्वत समान

आयुष्मन् से० वह से० कीचड बु० कहा ज० मनुष्य जा० आर्य देशके लोक म० मैंने अ० स्वयं आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन्० ते० वे ब० बहुत प० पद्मवर पुंडरीक बु० कहा रा० राजा म० मैंने आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन् से० वह ए० एक म० बडा प० पद्मवर पुंडरीक बु० कहा अ० अन्य तीर्थिक म० मैंने अ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन् ते० वे च० चार पु० पुरुष जात बु० कही ध० धर्म म० मैंने अ० स्वयं आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन् से० वह भि० साधु बु० कहा ध० धर्मतीर्थ म० मैंने अ० स्वयं आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन् से० वह ती० किनारा बु० कहा ध० धर्म कथा म० मैंने अ० स्वयं आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन् से० वह स० शब्द बु० कहा नि० निर्वाण म० मैंने अ० स्वयं आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन् उ० उपर आव बु० कहा ए० ऐसे

मए अप्पाहट्टु समणाउसो ते बहवे पउमवरपोंडरीए बुइए, रायाणं च से खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से एगे महं पउमवर पौंडरीए बुइए अन्नउत्थियाय खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ते चत्तारि पुरिसजाया बुइया, धम्मं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से भिक्खू बुइए, धम्मतित्थं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो—से तीरे बुइए, धम्मकहं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से सद्दे बुइए; निव्वाणं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से उप्पाए बुइए; एवमेयं च

छोटे कमल रूप जनपद के मनुष्य हैं, राजा समान एक बडा पूंडरीक कमल है, अन्य मतके स्थापक वे चारों दिशा से आये हुवे चार पुरुषों हैं, साधु समान धर्म है; पुष्करणी के किनारे जैसे चारों तीर्थ हैं; किनारे पर से बोलाया हुवा

त्र

वार्थ

स० श्रमण भ० भगवान् म० महावीर ते० उन वं० वहुत नि० निर्ग्रंथ नि० निर्ग्रन्थिनी को आ० आमंत्रण कर ए० ऐसे व०वोले हं० मैं भो० अहो स० श्रमण आ० आयुष्मन् ते० तुमको आ ०कहता हूं वि० प्रगट करता हूं ति० कीर्ति करता हूं प० निवेदन करता हूं स० अर्थ सहित स० हेतु सहित स० निमित्त (कारण) सहित भु० वारंवार उ० उपदेश करता हूं से० अत्र वे० मैं कहता हूं ॥ ११ ॥ लो० लोक म० मेरे से अ० आत्मा से (स्वयं) आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन् पु० पुष्करणी बु० कही क० कर्म को म० मैने अ० स्वयं आ० जानकर. स० श्रमण आ० आयुष्मन् उ० पानी बु० कहा का भो० काम भोगों को म० मैंने अ० स्वयं आ० जानकर स० श्रमण आ०

त्ता एवं वयासी हं भो समणाउसो? ते आइक्खामि; विभावेमि; किट्टिमि पवेदेमि; स-अट्ठं सहेउं सनिमित्तं भुज्जो २ उवदंसेमि सेवेमि ॥ ११ ॥ लोयं च खलु मए अ-प्पाहट्टु समणाउसो पुक्खरिणी वुइया; कम्मं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से उ-दए वुइए; काम भोगेयं खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से सेए वुइए; जण जाणात्रयं च खलु

कि अहो आयुष्मन् भगवन्त हम इस का अर्थ कुच्छ भी नहीं समझे हैं तब श्री भगवन्त महावीर स्वामी वहुत साधु साध्वी को संवोधन करके कहने लगे कि "अहो साधुओ ? अव मैं इस द्रष्टांत का न्यांय विवेचन पूर्वक हेतु, प्रयोजन, कारण, व कार्य आदि से सिद्ध करके बताता हूं, उपदेशता हूं ॥११॥ अहो साधुओ यह लोक पुष्करणी समान है; कर्म उस के पानी समान है, कामभोग कीचड समान है,

श्रमण आ० आयुष्मन् अ० अर्थ पु० पुनः से० उसका जा० जानना भ० होवे भं० हे पूज्य स० श्र-
मण भ० भगवान् म० महावीर को व० बहुत नि० साधु नि० साध्वी वं० वांदते हैं न० नमस्कार करते
हैं वं० वांदकर न० नमस्कार कर ए० ऐसे व० बोले कि० कहा ना० न्याय स० श्रमण आ०
आयुष्मन् अ० अर्थ पु० और से० उसका ण० नहीं जा० जानते हैं स० श्रमण आ० आयुष्मान्

उन्निक्खिस्सामि तिकट्टु; इति वच्चा से भिक्खू णो अभिक्कमे तं पुक्खरिणिं तीसे पु-
क्खरिणीए तीरे ठिच्चा सद्दं कुज्जा उप्पयाहि खलु भो पउमवरपोंडरीया उप्पयाहि अ-
ह से उप्पति ते पउमवरपोंडरीए ॥ १० ॥ किट्टिए नाए समणाउसो ? अट्ठे पुणसे
जाणितव्वे भवति भंते ति समणं भगवं महावीरं बहवे निग्गंथाय निग्गंथीओय वंदंति
नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी किट्टिए नाए समणाउसो अट्ठं पुण से ण जा-
णामो, समणाउसोति समणे भगवं महावीरे तेयं बहवे निग्गंथेय निग्गंथीओय आमंते

गया नहीं परंतु बावडी के तीर पे खडा रहकर बोला अहो पद्मवरपुंडरीक ! बाहिर निकलो. ऐसा
सुनते ही वह पुंडरीक कमल बाहिर निकला. ॥ १० ॥ पुष्करणी में रहाहुवा श्रेष्ठ पुंडरीक कमल का
द्रष्टांत की समाप्ति करके श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने कहा कि अहो साधुओं इस द्रष्टांत
का न्याय क्या है सो तुम समझो. तब सब साधु साध्वी भगवन्त को वंदणा नमस्कार कर पूछने लगे

चालक पूर्ववत् स० शब्द कु० करके उ० ऊंचे आय भो० अहो प० पद्म वरपुंडरीक उ० ऊंचे आव अ० अब से० वह उ० ऊंचे आया ते० यह पौं० पुंडरीक ॥ १० ॥ कि० कहाया ना० उदाहरण में स०

आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा, पासंति तं एगं महंतं पउमवर-पोंडरीयं, जाव पडिरूवं, ते तत्थ चत्तारि पुरिस जाए पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव पउमवरपोंडरीयं णो हव्वाए णो पाराए अंतरा पुक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से भिक्खू तं पुरिसा य एवं वयासी--अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जाव णो मग्गस्स ग-तिपरक्कमण्णू; जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंडरीयं उन्निक्खिस्सामो णो खलु एयं पउमवरपोंडरीयं एवं उन्निखेतव्वं जहा णं एते पुरिसा मन्ने; अहमंसि भिक्खू लूहे, तीरट्ठी, खेयन्ने, जाव मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू, अहमेयं पउमवरपोंडरीयं

भावार्थ

खडा रहा. उसने वावडी में रहाहुवा पद्म कमल व खूंते हुवे चारों पुरुषों को देखे. तब वह साधु उन को कहने लगा. कि अहो ये पुरुषों अखेदज्ञ अकुशल यावत् तीरने में अशक्त होने पर वावडी में से पुंडरीक कमल निकालेंगे ऐसा मानते हैं परंतु इस तरह पुंडरीक कमल नहीं निकाला जाता है कि जिस रीति से वे निकालना चाहते हैं. मैं संसार से उदासी, खेदज्ञ, रूक्ष, तीरपे रहनेवाला यावत् उत्तीर्ण होने में समर्थ हूं इस लिये मैं ही इस पद्मों में श्रेष्ठ पुंडरीक कमल को निकालूंगा ऐसा कह के वह पुरुष वावडी में

थ पु० पुरुषजात ॥ ८ ॥ पूर्ववत् ॥ ९ ॥ अ० अब भि० साधु लू० रूक्ष ती० तीरका अर्थी खे० खेदज्ञ जा० यावत् प० पराक्रम का जान अ० अन्य दिशा से अ० अनुदिशा से आ० आकर यावत् व०

तएणं से पुरिसे एवं वयासी अहोणं इमे पुरिसा अखेयन्ना जाव णो मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू, जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंडरीयं उन्निक्खिस्सामो णो खलु एयं पउमवरपोंडरीयं एवं उन्निक्खेयव्वं जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमंसि पुरिसे खेयन्ने जाव मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू, अहमेयं पउमवरपोंडरीयं उन्निक्खिस्सामि त्तिकट्टु इति वच्चा; से पुरिसे अभिक्कमे; तं पुक्खरिणिं जावजावं च णं अभिक्कमे ताव तावं च णं महंते उदए महंते सेए जाव णिसन्ने चउत्थे पुरिसजाए ॥ ९ ॥ अह भिक्खू लूहे तीरट्ठी खेयन्ने जाव परक्कमण्णू अन्नतराओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा

मूर्ख यावत् मार्ग में चलने में असमर्थ होने पर भी वे चाहते हैं कि हम इस कमल को वावडी में से निकालेंगे परंतु इस तरह यह पुंडरीक नहीं निकाला जाता है, जैसे कि वे मान रहे हैं. मैं खेदज्ञ, कुशल यावत् उत्तीर्ण होने को शक्तिमान हूं, इस लिये मैं इस को निकालूंगा ऐसा कहकर वह वावडी में चला. और वह भी उन तीनों की तरह उस में फसकर दुःखी हुवा. यह चौथा पुरुष की जात कही ॥ ९ ॥ फिर संसार से अलिप्त, मोक्षार्थी साधु किसी दिशा से या विदिशा से आकर पुष्करणी वावडी के किनारा पे

स्थ, म० मार्ग का जाण, म० मार्ग का ग० जाने में प० पराक्रमज्ञ अ० मैं ए० इस प० पद्म वर पुंडरीक उ० निकालूंगा त्ति० ऐसा क० करके इ० ऐसा व० बोलके से० वह पु० पुरुष अ० गया तं० उस पु० पुष्करणी में जा० ज्यों २ अ० जाता है ता० त्यों २ म० बहुत उ० पानी में म० बहुत से० कीचड में जा० यावत् अं० बीच में पो० पुष्करणी के से० कीचड में णि० खूता गया त० तृती-

सूत्र

सि पुरिसे खेयन्ने, कुसले, पंडिए, वियत्ते, मेहावी, अबाले, मग्गत्थे, मग्गविऊ, मग्गस्सग-तिपरक्कमण्णू, अहमेयं पउमवरपोंडरियं उन्निक्खिस्सामि तिकट्टु इति वच्चा से पुरिसे अभिक्कमे तं पुक्खरिणिं जावजावं च णं अभिक्कमे तावतावं च णं महंते उदए महंते सेए जाव अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने—तच्चे पुरिस जाए ॥ ८ ॥ अहावरे चउत्थे पुरिसजाए अह पुरिसे उत्तराओ दिसाओ आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवर पोडरीयं अणुपुव्वुट्ठियं जाव पडिरूवं, ते तत्थ तिण्णि पुरिस जाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव सेयंसि णिसन्ने

भावार्थ

नीकालूंगा ऐसा बोल के वह पुष्करणी वावडी में गया. वह ज्यों ज्यों आगे वावडी में गया त्यों त्यों बहुत कीचड मेंव पानी में जाकर फसगया. और वह न तो किनारे का रहा और न पुंडरीकको पहूंच सका ॥ ८ ॥ अब चौथा पुरुष उत्तर दिशा में से आकर वावडी के किनारे पे खडा रहा और एक वडा पद्म कमल व कीचड में खूंते हुवे तीन पुरुष को देखें. तब वह उन को ऐसा बोला कि अरे ये पुरुषों अखेदज्ञ,

पुरुष ए० ऐसा व० बोला, अ० अहो इ० ये पु० पुरुषों अ० अखेदज्ञ, अ० अकुशल, अ० अपण्डित, अ० अविवेकी, अ० मूर्ख, बा० अज्ञानी, णो० नहीं म० मार्गस्थ णो० नहीं मा० मार्ग के जानने वाले, णो० नहीं म० मार्ग का ग० गमन में प० पराक्रम के जान ज० जो ए० ये पु० पुरुष ए० ऐसे म० मानते हैं अ० हम तं० उस प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक उ० निकालेंगे णो० नहीं ए० यह प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक ए० ऐसे उ० निकाला जावे ज० जैसे ए० ये पु० पुरुष म० मानते हैं अ० मैं खे० खेदज्ञ, कु० कुशल, पं० पंडित विं० विवेकी मे० पंडित अ० ज्ञानी, म० मार्ग

जाव सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे एवं वयासी अहोणं इमे पुरिसा अखेयन्ना, अकुसला, अपंडिया, अवियत्ता, अमेहावी, बाला, णो मग्गत्था, णो मग्गविऊ, णो मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू, जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंडरयिं उण्णिक्खिस्सामो णो य खलु एयं पउमवरपोंडरीयं एवं उन्निक्खेतव्वं, जहाणं एए पुरिसा मन्ने अहमं-

अखेदज्ञ, अकुशल, मूर्ख यावत् उत्तीर्ण होने को अशक्त हैं और वे ऐसा मानते हैं कि हम इस पुंडरीक को बावडी में से निकालेंगे. परंतु इस तरह यह पुंडरीक कमल नहीं निकालाजाता है, कि जैसे वे मान रहे हैं. मैं ही खेदज्ञ, कुशल, विद्वान यावत् उत्तीर्ण होने में समर्थ पुरुष हूं, इस लिये मैं इस पुंडरीक कमल को

दो० दूसरा पु०पुरुष ॥ ७ ॥ अ० अथ अ० अंपर त० तृतीय पु०पुरुष जात. अ० अथ पु०पुरुष प० पश्चिम दि० दिशासे आ० आकर के तं० उस पु० पुष्करणी को ती० उस पु० पुष्करणी के ती० किनारेपे ठि० रहकर पा० देखता है तं उस ए० एक म० बडा प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक अ० अनुक्रमसे उ० उपर आया जा० यावत् प० पतिरूप ते० उन त० तहां दो० दो पु० पुरुष जात पा०देखता है प०दूर ती०तीर से अ०अप्राप्त प०पद्म व०श्रेष्ठ पों० वर पुंडरीक णो०नहीं ह० किनारेपे णो० नहीं पा० पार जा० यावत् से० कीचड में णि० खूंते हुवे त० तव से० वह पु०

सूत्र

ए, अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने—दोच्चे पुरिसजाते ॥ ७ ॥ अहावरे तच्चे पुरिसजाते—अह पुरिसे पच्छिमाओ दिसाओ आगम्म—तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं एगं महं पउमवरपोंडरीयं अणुपुव्वुट्ठियं जाव पडिरूवं। ते तत्थ दोन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंडरीयं णो हव्वाए णो पाराए

भावार्थ

काढूंगा. ऐसा बोलकर वह पुष्करणी बावडीमें गया. ज्यों ज्यों वह बावडीमें गया त्यों त्यों बहुत पानी व कीचड में जाकर फस गया. वह न तो तीरपे रहा न कमल को प्राप्त कर सका. अंतराल में ही रहकर दुःखी हुवा. ॥७॥ अब तीसरा पुरुप पश्चिम दिशासे आकर पुष्करणी के तीरपे खडारहा. उसने पुष्करणीमें रहाहुवा पुंडरीक कमल व कीचड में खूते हुवे दो पुरुप को देखे, तव वह पुरुप उन दोनों को ऐसा बोला, अरे ये दोनों पुरुष

अ० मैं अ० हूं पु० पुरुष खे० खेदज्ञ कु० कुशल पं० पंडित वि० विवेकी मे० बुद्धीमान् अ० ज्ञानी म० मार्गस्थ म० मार्ग का जान म० मार्ग की ग० गति का प० पराक्रम का जान अ० मैं ए० इस प० पद्म व० व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक उ० नीकालूंगा त्ति० ऐसा क० करके व० बोलकर से० वह पु० पुरुष अ० जाता है तं० उस पु० पुष्करणी में जा० जैसा जैसा अ० जाता है ता० वैसा वैसा म० बहुत उ० पानी में म० बहुत से० कर्दम में प० दूर ती० किनारे से अ० अप्राप्त प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक णो० नहीं ह० किनारेपे णो० नहीं पा० पार अं० बीच में पो० पुष्करणी का से० कर्दम में णि० खूता हुवा

पुरिसे मन्ने ॥ अहमंसि पुरिसे खेयन्ने, कुसले, पंडिए, वियत्ते, मेहावी, अबाले, मग्गत्थे, मग्गाविऊ, मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू; अहमेयं पउमवरपोंडरीयं उन्निक्खिस्सामि त्तिकट्टु, इति वच्चा से पुरिसे अभिक्कमे तं पुक्खरिणिं जावजावं च णं अभिक्कमेइ ताव तावं च णं महंते उदए, महंते सेए, पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंडरीयं, णो हव्वाए, णो पारा-

अज्ञानी, बाल, न मार्गस्थ, न मार्ग का जान, व मार्ग उलंघने को अशक्त है, और मानता है कि मैं कुशल, पण्डित यावत् शक्तिमान हूं कि जिस से इन में से पुंडरीक कमल निकालूंगा. परंतु इस तरह कमल नहीं निकालाजाता है. मैं खेदज्ञ, कुशल, पंडित यावत् शक्तिमान हूं. इस लिये मैं ही बावडी में से इस को नि-

नहीं ह० किनारेपे णो० नहीं पा० पार अं० बीच में पो० पुष्करणी का से० कर्दम में णिं० खूता हुवा त० तत्र से० वह पु० पुरुष तं० उस पु० पुरुष को ए० ऐसा व० कहा अ० अहो इ० यह पु० पुरुष अ० अखेदज्ञ अ० अकुशल अ० अपंडित अ० अविवेकी अ० मूर्ख बा० अज्ञानी णो० नहीं म० मार्गस्थ णो० नहीं म०मार्ग का जान णो०नहीं म०मार्ग की ग०गति का प०पराक्रम का जान ज०जो ए०यह पु०पुरुष अ० मैं खे० खेदज्ञ अ० मैं कु० कुशल जा० यावत् प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक उ० नीकालूंगा णो० नहीं ए० यह प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक ए० ऐसे उ० नीकाला जाय ज० जैसे ए० यह पुरुषने म० माना

सूत्र

पासंति तं पहीणे तीरं, अपत्ते पउमवरपोंडरीयं णो हव्वाए णो पाराए अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे तं पुरिसं एवं वयासी—अहो णं इमे पुरिसे अखेयन्ने, अकुसले, अपंडिए, अवियत्ते, अमेहावी, बाले, णो मग्गत्थे, णो मग्गविऊ, णो मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू जन्नं एस पुरिसे; अहं खेयन्ने, अहं कुसले, जाव पउमवरपोंडरीयं उन्निक्खिस्सामि णो खलु एयं पउमवरपोंडरीयं एवं उन्निक्खेयव्वं, जह णं एस

भावार्थ

खडा रहा. वहां उसने बावडी में उक्त गुणवाला व पद्मों में श्रेष्ठ पुंडरीक कमल तथा कीचड में खूंताहुवा एक पुरुष देखा कि जो पुरुष न तो तीर की नजीक है, और न पुंडरीक कमल को पहुँचा हुवा है. तब वह आनेवाला पुरुष उस खूताहुवे को ऐसा बोला कि अरे तू अखेदज्ञ, अकुशल, मूर्ख, अविवेकी,

नारे से अ० अप्राप्त प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक णो०नहीं ह०किनारेपे णो०नहीं पा० पार अं० बीच में पो० पुष्करणी का से० कर्दम में नि० खुता हुवा प० प्रथम पु० पुरुष ॥ ६ ॥ अ० अथ दो० दूसरा पु० पुरुष द० दक्षिण दिशा से आ० आकर तं० उस पु० पुष्करणी ती० उस पु० पुष्करणी के ती० कि-नारे पे ठि० रहकर पा० देखता है तं० उस म० बडा ए० एक प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक अं० अ-नुक्रम से उ० रहा हुवा पा० निर्मल जा० यावत् प० प्रतिरूप तं० उसको ए० यहां ए० एक पु० पुरुष को पा० देखता है तं० उसको प० दूर ती० किनारे से अ० अप्राप्त प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक को णो०

तीरं अपत्ते, पउमवरपोंडरीयं णो हव्वाए, णो पाराए, अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि नि-सण्णे. पढमे पुरिसजाए ॥ ६ ॥ अहावरे दोच्चे पुरिसजाए—अह पुरिसे दक्खिणाओ दिसाओ आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति—तं महं एगं प-उमवरपोंडरीयं अणुपुव्वुट्ठियं पासादीयं जाव पडिरूवं तं च एत्थ एगं पुरिसजातं

ज्यों वह पुरुष आगे चलता गया त्यों त्यों बहुत पानी व कीचड में जाकर पुष्करणी के मध्य में फसगया वह न तो किनारे की पास रहा और न पुंडरीक को पहूंच सका. यह प्रथम पुरुष की जात कही ॥ ६ ॥ अब दूसरा पुरुष की जात कहते हैं. अब दूसरा पुरुष दक्षिण दिशासे आकर पुष्करणी बावडी के तीर पे

दि० दिशा से आ० आकर तं० उस पु० पुष्करणीको ती० उस पु० पुष्करणी के ती० किनारे पर ठि० रह कर पा० देखता है तं० उस म० बडा ए० एक प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक अ० अनुक्रमसे उ० रहा हुवा ऊ० उपर आयाजा० यावत् प० प्रतिरूप त० उस वक्त से० वह पु० पुरुष ए० ऐसा व० बोला अ० मैं अं० हूं पु० पुरुष खे० खेदज्ञ कु० कुशल पं० पंडित वि० विवेकी मे० मेधावी अ० ज्ञानी म० मार्गस्थ म० मार्ग का ज्ञान म० मार्गकी ग० गति का प० पराक्रम का जान अ० मैं ए० इस प० पद्म व० श्रेष्ठ पो० पुंडरीक उ० नीकालूंगा त्ति० ऐसा क० करके व० बोल करके से० वह पु० पुरुष अ० जाता है तं० उस पु० पुष्करिणी में जा० जैसे जैसे अ० जाता है ता० तैसे तैसे म० बहुत उ० पानी में म० बहुत से० कर्दम में प० दूर ती० कि-

तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंडरीयं अणुपुव्वुट्ठियं, ऊसियं, जाव पडिरूवं. तएणं से पुरिसे एवं वयासी अहमंसि पुरिसे खेयन्ने, कूसले, पंडिते, वियत्ते, मेहावी, अबाले, मग्गत्थे, मग्गविऊ, मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू. अहमेयं पउमवरपोंडरियं उन्निक्खिस्सामि त्तिकट्टु, इतिवच्चा, से पुरिसे अभिक्कमेति तं पुक्खरिणिं जावंजावं च णं अभिक्कमेइ तावंतावं च णं महंते उदए महंते सए, पहीणे

और उस में उक्त गुण विशिष्ट पुंडरीक कमल देखके बोला कि मैं खेदज्ञ-अवसर का जाण, कुशल, पण्डित, विवेकी, बुद्धिमान, अबाल, मार्गस्थ, मार्ग का ज्ञानी व मार्ग में जानेका पराक्रमी पुरुष हूं. इस लिये इस कमल को बावडी में से मैं निकालूंगा. ऐसा कहकर वह पुरुष पुष्करणी बावडी में चला. ज्यों

व० बहुत म० मध्य दे० विभाग में ए० एक म० बडा प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० श्वेत कमल बु० कहा अ० अनुक्रम से उ० रहा हुवा उ० उपर आया हुवा रु० देदीप्यमान व० वर्ण वाला गं० गंध वाला र० रस वाला फा० स्पर्श वाला पा० निर्मल जा० यावत् प० प्रतिरूप ॥ ४ ॥ स० समस्त ती० उस पु० पुष्करणी में त० तहां तहां दे० विभाग में त० तहां २ व० बहुत प० पद्म व० श्रेष्ठ पु० पुंडरीक बु० कहे अ० अनुक्रम से उ० रहे हुवे ऊ० उपर आये रु० देदीप्यमान जा० यावत् प० प्रतिरूप स० समस्त ती० उस पु० पुष्करणी में व० बहुत म० मध्य दे० विभाग में ए० एक म० बडा प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक बु० कहा अ० अनुक्रम से उ० रहा हुवा जा० यावत् प० प्रतिरूप ॥ ५ ॥ अ० अथ पु० पुरुष पु० पूर्व

पउमवरपोंडरीए बुइए अणुपुव्वुट्ठिए, उस्सिते, रुइले, वन्नमंते, गंधमंते, रसमंते, फासमंते, पासादीए जाव पडिरूवे॥ ४॥ सव्वावंति च णं तीसेणं पुक्खरिणीए तत्थ तत्थ देसे देसे तहिंतहिं बहवे पउमवरपोंडरीया बुइया अणुपुव्वुट्ठिया, ऊसिया, रुइला, जाव पडिरूवा सव्वावंति च णं। तीसेणं पुक्खरिणीए बहुमज्झदेसभाए एगं महं पउमवरपोंडरीए बुइए अणुपुव्वुट्ठिए जाव पडिरूवे ॥ ५ ॥ अह पुरिसे पुरित्थिमाओ दिसाओ आगम्म

कहा हुवा है. वह अनुक्रम से वृद्धि पाया हुवा, ऊपर आयाहुवा, मनोहर प्रसन्नकारी यावत् स्वच्छ है. ॥ ४ ॥ उस पुष्करणी वावडी में सर्वत्र उपर्युक्त गुणविशिष्ठ बहुत पुण्डरीक कमलों हैं उस के मध्य में एक श्रेष्ठ कमल रहा हुवा है ॥ ५ ॥ पूर्व दिशा में एक पुरुष आकर उस पुष्करणी के तीर पर खडारहा

है ब० बहुत पानी वाली व० बहुत कर्दम वाली व० परिपूर्ण ल० योग्य नाम वाली पु० श्वेत कमल वाली पा० निर्मल द० देखने योग्य अ० मनोहर प० प्रतिरूप ॥ २ ॥ ती० उस पु० पुष्करणी में त० तहांतहां दे० विभाग में त० तहां २ ब० बहुत पु० पद्म व० श्रेष्ठ पो० श्वेत कमल बु० कहा अ० अनुक्रम से उ० रहे हुवे ऊ० उपर आये रू० देदीप्यमान वं० वर्ण वाले गं० गंध वाले र० रस वाले फा० स्पर्श वाले पा० निर्मल दे० देखने योग्य अ० मनोहर प० प्रतिरूप ॥ ३ ॥ ती० उस पु० पुष्करणी में

हुपुक्खला; लद्धट्ठा; पुंडरिकिणी; पासादिया; दरिसणिया; अभिरूवा, पडिरूवा ॥ २ ॥ तीसेणं पुक्खरिणीए तत्थ तत्थ देसे देसे तहिंतहिं बहवे पउमवरपोंडरिया बुइया अणुपुव्वुट्ठिया; ऊसिया, रूइला, वन्नमंता, गंधमंता, रसमंता, फासमंता, पासादिया, दरिसणिया, अभिरूवा. पडिरूवा ॥ ३ ॥ तीसेणं पुक्खरिणीए बहुमज्झदेसभाए एग महं

हूं ॥ १ ॥ जैसे कोई एक बहुत पानीवाली, कीचडवाली, सब गुणों से परिपूर्ण, जैसा नाम वैसा गुणवाली श्वेतकमल से परिपूर्ण, निर्मल, दर्शनीय, मनोहर, व प्रतिरूप पुष्करणी नामक एक वापि है. ॥ २ ॥ उस पुष्करणी के विभागों में श्वेत वर्ण के बहुत कमल कहे हुवे हैं. वे अनुक्रम से बढकर पानी के उपर रहे हुवे हैं, और देदीप्यवान, उत्तम वर्ण से शोभित, सुगंधित, मधुरादि रसयुक्त, कोमलादि स्पर्श युक्त, प्रसन्नकारी, देखने योग्य व स्वच्छ हैं ॥ ३ ॥ उस पुष्करणी के मध्यभाग में एक बडा श्वेत पुंडरीक कमल

॥ द्वितीय "सूयगडांग सूत्र" ॥

॥ द्वितीय श्रुतस्कन्ध ॥

॥ पौंडरीकाख्यं सप्तदश मध्ययनम् ॥

सु० सुना मे० मैंने आ० आयुष्यवंत भ० भगवान् ने ए० ऐसा अ० कहा पों० पुण्डरीक णा० नाम का अ० अध्ययन त० उसका अ० यह अ० अर्थ प० परूपा ॥ १ ॥ से० वह ज० जैसे पु० पुष्करणी सि०

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एव मक्खायं इह खलु पौंडरीए णामज्झयणे तस्सणं अयमट्ठे पण्णते ॥ १ ॥ से जहा णामए पुक्खरिणी सिया बहुउदगा; बहु सेया; व-

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू ! आयुष्यवंत भगवन्त श्री महावीर स्वामी ने पुंडरीक नामक अध्ययन का ऐसा अर्थ कहा है उसे मैंने सुना है और वही मैं तुझे कहता

वोसट्टइ हुइ काया वाला नि० निर्ग्रन्थ त्ति० ऐसा व० कहना ॥ ५ ॥ से० वह ए० ऐसा जा० जानो अ० जिसको अ० मैं भ० रक्षक त्ति० ऐसा वे० कहता हूं ॥ ६ ॥ * *

॥ ५ ॥ से एव मेव जाणह जंमहं भयंतारो त्तिबेमि ॥ इति गाहाणामं सोलसह ज्झ-यणं सम्मत्तं ॥ १६ ॥ * * *

सब जीवों के भय का निवारण करनेवाले हैं उन के ही वचन मैं तुम को कहता हूं. यह गाथा नामक सोलहवां अध्ययन समाप्त हुवा. श्री सुयगडांग सूत्र का प्रथम श्रुतस्कंध भी समाप्त हुवा. *

'सूयगडांग सूत्र'

* प्रथम श्रुत स्कन्ध समाप्त *

कहना ॥ ४ ॥ ए० अत्र णि० निर्ग्रन्थ ए० रागद्वेष रहित ए० अकेला का जान बु० तत्त्वज्ञी सं० आश्रव को छेदनेवाला सु० सुसंयति सु० अच्छी समिति वाला सु० सुसामायिकवंत आ० आत्मवाद को प्राप्त वि० पंडित दु० दोनो ही सो० आश्रवरूप स्रोत को छेदा हुवा णो० नहीं पू० पूजा स० सत्कार ला० लाभार्थी ध० धर्मार्थी ध० धर्म का जान णि० मोक्ष को प्राप्त स० समतावंत दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो०

एत्थवि णिग्गंथे—एगे, एगविऊ, बुद्धे, संछिन्नसोए, सुसंजते, सुसमिते, सु-सामाइए, आयपवायपत्ते, विऊ, दुहउवि सोयपलिच्छिन्न, णो पूयणसक्कारलाभट्ठी. ध-म्मट्ठी, धम्मविऊ, णियागपडिवन्ने, समियंचरे, दंते, दविए, वोसट्ठकाए; निग्गंथेत्ति वच्चे

जाता है ॥ ४ ॥ पूर्वोक्त सब गुणों यहां पर जानना. विशेष निर्ग्रंथ के गुण बताते हैं:—रागद्वेष रहित, स्वतः को अकेला माननेवाला, तत्त्वज्ञ, आश्रव का निरोधक, गुप्तेन्द्रिय, समितिवन्त, चित्त की स्थिरतावाला, आत्म तत्त्व का जाण, ज्ञानी, द्रव्यभावरूप आश्रव का छेदन करनेवाला, पूजा सत्कार को नहीं वांच्छनेवाला, धर्मार्थी, धर्मज्ञ, मोक्ष मार्ग को पहुंचनेवाला, तथा अच्छा आचार पालनेवाला, दमनेन्द्रिय, निर्ममत्वी, व मोक्षार्थी साधु निर्ग्रंथ कहाजाता है. ॥ ५ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी प्रमुख शिष्यों को कहते हैं कि जो मैं यह सर्वज्ञ के कथनानुसार कहता हूं उसे तुम सत्य जानो. वे परोपकारी भगवन्त

प० विरत पा० प्राणातिपातादि में दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसराइ हुइ काया वाला स० श्रमण त्ति० ऐसा व० कहना ॥ ३ ॥ ए० अत्र भि० साधु अ० अभिमान रहित वि० विनयवंत ना० नमाने वाला दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसराइ हुइ काया वाला सं० सहन करने वाला वि० अनुकूल प्रतिकूल प० परीषह का उ० उपसर्ग अ० आध्यात्म जो० योग सु० शुद्ध अ० चारित्र वाला उ० सावधान हुवा ठि० स्थिरात्मा सं० जानकर प० दूसरे का दीया हुवा भो० भोगवने वाला भि० साधु त्ति० ऐसा व०

सूत्र

दोसं च; इच्चेव जओ जओ आदाणं अप्पणो पद्देसे हेऊ तओतओ आदाणतो पुव्वं पडिविरते; पाणाइवायाए दंते दविए वोसट्ठकाए समणे त्ति वच्चे ॥ ३ ॥ एत्थवि भिक्खू—अणुन्नए, विणीए, नामए, दंते, दविए, वोसट्ठकाए, संविधुणीय विरूवरूवे, परीसहोवसग्गे, अज्झप्पजोगसुद्धादाणे, उवट्ठिए, ठिअप्पा, संखाए, परदत्तभोई भिक्खू त्तिवच्चे॥ ४॥

भावार्थ

को नुकशान करनेवाले हैं ऐसा जानकर जो परिहरता है वह दमनेन्द्रिय, मोक्षार्थी साधु श्रमण कहाजाता है ॥ ३ ॥ उपर जो माहण व श्रमण के गुण कहे उन सब को यहां जानना, भिक्षुक के विशेष गुणों बताते हैं. अभिमान रहित, विनयवन्त, दमनेन्द्रिय, निर्ममत्वी, मोक्षार्थी, विविध प्रकारके परीषह उपसर्ग सहनेवाला, आध्यात्म योगी, शुद्ध प्रणामी, चारित्रवन्त, पाप से बचने में सदैव कुशल, संयम धर्म में सदैव रुचि रखनेवाला, संसार की असारता जाननेवाला तथा दूसरे का दिया हुवा भोजन करनेवाला भिक्षु कहा-

अराति र० रति मा० माया मृषा मि० मिथ्यादर्शनशल्य वि० विरत स० समिति स० सहित स० सदा ज० यत्नावंत णो० नहीं कु० कोप करे णो० नहीं मा० मानी मा० माहण त्ति० ऐसा व० कहना ॥ २ ॥ ए० अत्र स० श्रमण अ० अप्रतिबंध विहारी अ० नियाणा रहित आ० कषाय रहित अ० अति पात (हिंसा मु० मृषावाद व० मैथुन परिग्रह को० क्रोध मा० मान मा० माया लो० लोभ पि० राग दो० द्वेष इ० ऐसे ज० जो जो आ० कर्म बन्ध अ० आत्मा का प० प्रदोषके हे० हेतु त० वे आ० कर्मबंध से पु० पूर्व

अरति,रति,मायामोस,मिच्छादंसणसल्ल विरए;समिए सहिए, सयाजए,णो कुज्जे,णो माणी, माहणेत्ति वच्चे ॥ २ ॥ एत्थवि समणे—अणिस्सिए, अणियाणे, आदाणं च, अतिवायं च; मुसावायं च, बहिद्धं च, कोहं च, माणं च, मायं च, लोहं च, पिज्जं च,

[अन्यका दोष प्रकाशना] अराति, रति, माया, मृषा और मिथ्यादर्शनशल्य आदि दोषों से निवर्तने वाला समितिवान, ज्ञानादि युक्त सदा यत्नावन्त, अक्रोधी तथा निरभिमानी साधु माहण कहाजाता है. ॥ २ ॥ ऊपर जो माहण के गुण कहे हैं वे सब यहां जानना. अब श्रमण के विशेष गुणों बताते हैं. जो अप्रतिबंध विहारी, तथा नियाणा व कषाय रहित है, और जो प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह को ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यजता है, जो क्रोध मान, माया लोभ, राग व द्वेष, को संसार का कारण जानकर परिहरता है तथा जो जो कर्म बंध के कारण है वे आत्मा

॥ गाथा नामकं षोडश मध्ययनम् ॥

अ० अथ आ० कहा भ० भगवान् ए० ऐसा से० वह दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसरावी हुइ काया वाला व० कहना मा० माहण स० श्रमण भि० साधु णि० निर्ग्रन्थ त्ति० ऐसा प० कहो भं० भगवान् क० कैसे दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसरावी हुइ काया वाला व० कहना मा० माहण स० श्रमण भि० साधु णि० निर्ग्रन्थ तं० उसे नो० हमको बू० कहो म० महामुनि ॥ १ ॥ इ० ऐसा वि० विरत स० सर्व पा० पाप क० कर्म से पि० राग दो० द्वेष क० कलह अ० अभ्याख्यान पे० पैशुन्य प० परपरिवाद अ०

अहाह भगवं एवं—से दंते दविए वोसट्ठकाए त्ति वच्चे—माहणेत्ति व, समणेत्ति वा, भिक्खूत्ति वा, णिग्गंथेत्ति वा, पडिआह भंते—कहंतु दंते; दविए; वोसट्ठकाए त्ति वच्चे—माहणेत्ति वा, समणेत्ति वा, भिक्खूत्ति वा, णिग्गंथेत्ति वा; तं नो बूहि महामुणी॥ १ ॥ इति विरए—सव्व पाव कम्मेहिं—पिज्ज, दोस, कलह, अब्भक्खाण पेसुन्न; परपरिवाय;

श्री श्रमण भगवन्त महावीर देवने सभा में ऐसा फरमाया कि जो पुरुष इन्द्रियों को दमनेवाला, मोक्षार्थी, तथा ममत्व त्यागी होवे उन को माहण, श्रमण, भिक्षु, व निर्ग्रंथ कहना. तब शिष्य प्रश्न करते हैं कि अहो पूज्य ! इन चारों नामवाले के गुण मुझे भिन्न २ करके बतलावो ॥ १ ॥ इस तरह शिष्य ने जब प्रश्न किया तब भगवान् उत्तर देते हैं राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, (चाडी) परपरिवाद

वे ॥ २४ ॥ अ० हुवे पु० पहिले धी० धीर आ० आगामिक काल में सु० सुव्रता दु० दुर्लभ मा० मार्ग का अं० अन्त पा० दूर करके ति० तीरे त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २५ ॥ *

सल्लगत्तणं ॥ साहइत्ताण तं तिन्ना । देवावा अभविंसु ते ॥ २४ ॥ अभविंसु पुरा धीरा। आगामिस्सावि सुव्वता ॥ दुन्निबोहस्स मग्गस्स । अंतं पाउकरा तिन्ने त्तिबेमि ॥ २५ ॥

इति आयाणीयणामं पन्नरसमज्झयणं सम्मत्तं ॥ १५ ॥ * *

वतारी हुवे हैं ॥ २४ ॥ ऐसे संयम के आराधक अतीत काल में अनंत हुवे, आगामी काल में होवेंगे, और वर्तमान काल में होरहे हैं. वे ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप दुर्लभ मार्ग को प्राप्त करके संसार समुद्र को तीरे हैं, तीरते हैं, और तीरेंगे, ऐसा मैं श्री तीर्थंकर देव के कथनानुसार कहता हूं ॥ २५ ॥ यह आदानीय नामक पंदरहवां अध्ययन समाप्त हुवा. इस में सम्यक् क्रिया की विधि तथा मिथ्यात्व क्रिया का निषेध कहा. ऐसी क्रिया को आचरनेवाला साधु कहाजाता है इस लिये गाहा नामक सौलवां अध्ययन कहते हैं. ॥ १५ ॥ * * *
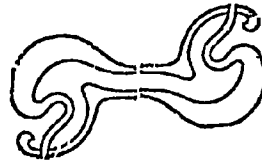
काश्यपने प० कहा हुवा जं० जिसको कि० पाल करके णि० निवृत्त ए० कितनेक नि० भव पर्यंत पा०प्राप्त होते हैं पं० पंडित ॥ २१ ॥ पं० पंडित वी० वीर्य ल० प्राप्त कर नि० घात करनेको प० प्रवर्तक धु० क्षय करे पु० पूर्वे कीये हुवे क० कर्म ण० नविन ण० नहीं कु० करता है ॥ २२ ॥ ण० नहीं कु०करता है म० महावीर अ० अनुक्रम से क० किये हुवे र० रज (पाप) र० पापसे सं० एकठे किये हुवे क० कर्म को हे० क्षय करके जं० जो म० संयमको ॥ २३ ॥ जं० जो म० संयम स० सर्व सा० साधुका तं० उस म० संयमको स० शल्य छेदने वालाको सा० आराध करके तं० उसको ति० तीरे दे० देवता अ० हुवे ते०

गे । निट्ठं पावंति पंडिया ॥ २१ ॥ पंडिए वीरियं लद्धुं । निग्घायाय पवत्तगं ॥ धुणे पुव्व कडं कम्मं । णवं वावि ण कुव्वति ॥ २२ ॥ ण कुव्वति महावीरे । अणुपुव्व कडं रयं ॥ रयसा संमुहीभूता । कम्मं हेच्चाण जं मयं ॥ २३ ॥ जं मयं सव्व साहूणं । तं मयं

कहा है. इस को पालनेवाले पंडित भव के अंत करनेवाले होते हैं ॥२१॥ निर्जरा करनेवाला साधु पंडित वीर्य प्राप्त करके पूर्वकृत कर्म दूर करे, और नविन कर्म बांधे नहीं ॥ २२ ॥ वीर पुरुष मिथ्यात्व अविरत प्रमादादि पाप कर्म करे नहीं और पापरूप रज से जो अष्ट प्रकारके कर्म बंधे हुवे हैं उन्हे छोड कर संयम पालकर मोक्ष सन्मुख होवे ॥ २३ ॥ साधु पुरुषों का संयमानुष्टान कर्म छेदनेवाला है. उस को सम्यक् प्रकार से साधकर के बहुत जीव मोक्ष में गये हैं अथवा तो वैमानिक देवलोक में उत्पन्न हो करके एका-

सम्यक्त्व दु० दुर्लभ दु० दुर्लभ त० तथा अ० प्रणाम जे० जो ध० धर्मका अर्थ वि० कहे ॥ १८ ॥ जे० जो ध० धर्म सु० शुद्ध अ० कहते हैं प० प्रतिपूर्ण अ० अनुपम अ० संयम का जं० जो ठा० स्थान त० उसको ज० जन्म कथा क० कहां से ॥ १९ ॥ क० कहां से क० कदाचित् मे० मेधावी उ० उपजते हैं त० तथा गत अ० अप्रतिज्ञ च० चक्षुभूत लो० लोक का अ० अनुत्तर ॥ २० ॥ अ० अनुत्तर ठा० स्थान से० वह का०

स्स । पुणो संबोही दुल्लभा ॥ दुल्लहाओ तहच्चाओ । जे धम्मट्ठं वियागरे ॥ १८ ॥ जे धम्म सुद्ध मक्खंति । पडिपुन्न मणेलिसं ॥ अणेलिसस्स जंठाण । तस्स जम्मकहा कओ ॥ १९ ॥ कओ कयाइ मेधावी । उप्पज्जंति तहागया ॥ तहागया अप्पडिन्ना । चक्खू लोगस्स णुत्तरा ॥ २० ॥ अणुत्तरे य ठाणे से । कासवेणं पवेदिते ॥ जं किच्चा णिव्वुडा ए-

होना बहुत दुर्लभ है ॥ १८ ॥ जो वीतरागादिक महापुरुष प्रतिपूर्ण सर्वोत्तम शुद्ध धर्म प्ररूपते हैं, और वैसा ही धर्म स्वतः समाचरते हैं, और जिन को ज्ञानदर्शन और चारित्र ही स्थानक है उन को सर्व कर्म का क्षय होजाने से जन्म मरण कहां से होवे ? अर्थात् नहीं होवे ॥ १९ ॥ कदाचित् कोई पण्डित चाहे किसी स्थान से आकर उत्पन्न होवे; परंतु जो कर्म क्षय करके मुक्ति में गये हैं; वैसा ही नियाणा रहित धर्माचरण करने वाला होवे तो वह सर्व लोक के जीवों को चक्षुभूत हो जावे ॥ २० ॥ श्री महावीर देवने प्रधान संयम

इ० यहां मा० आर्य क्षेत्रमें ठा० रहे हुवे ध० धर्म की आ० आराधना करके ण० मनुष्यों ॥ १५ ॥ णि० सिद्ध दे० देवता उ० लोकोत्तर इ० यह सु० सुना सु० सुना मे० मैंने ए० कितनेक से अ० मनुष्य विना णे०नहीं त०तैसे ॥ १६ अं०अंत क०करते हैं दु०दुःखका ए०कितनेकने आ०कहा अ० कहा पु० फिर ए० कितनेक को दु० दुर्लभ यं०जो स० मनुष्य जन्म ॥ १७ ॥ इ० यहां से वि० भ्रष्ट हुवेको पु० फिर सं०

सए ठाणे । धम्ममाराहिउं णरा ॥ १५ ॥ णिट्ठियट्ठा व देवावा । उत्तराए इमं सुयं॥ सुयं च मेयमेगेसिं । अमणुस्सेसु णे तहा ॥ १६ ॥ अंतं करंति दुक्खाणं । इह मेगेसिं आहियं॥ अघायं पुण एगेसिं । दुल्लभे यं समुस्सए ॥ १७ ॥ इओ विद्धंसमाण-

भावार्थ

अंतप्रांत आहार का सेवन करते हैं, जिस से वे संसार के पारगामी होते हैं. इस लिये मनुष्य लोक में आकर धर्म को आराधकर मुक्तिगामी होना ॥ १५ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं; कि संयम का पालनेवाला सिद्धगति में या देवगति में जाता हैं. और मनुष्यगति छोड कर अन्य स्थान में ऐसी गति नहीं मिलती है. ऐसा मैंने श्री तीर्थंकर देव से सुना है. ॥ १६ ॥ तीर्थंकर गणधरादिक ऐसा प्ररूपते हैं कि मनुष्य ही सर्व दुःख का अंत कर सकता है, और मनुष्य जन्मकी प्राप्ति भी बहुत कठिन है ॥ १७ ॥ मनुष्य जन्म से भ्रष्ट हुवे जीवों को फिर सम्यक्त्व, शुद्ध लेश्या, मनुष्यजन्म व मनुष्य का कर्तव्य प्राप्त

ण० नहीं ली० आसक्त होवे छि० छेदा हुवा सो० श्रोतः अ० अकलुष अ० अनाकुल स० सदा दं० दमनेन्द्रिय सं० संधि प० प्राप्त अ० अनुपम ॥ १२ ॥ अ० संयमका खे० निपुण ण० नहीं वि० विरोध करे के० किसीसे भी म० मनसे व० वचन से चे० निश्चय का० कायासे च० चक्षुवन्त ॥ १३ ॥ से० वह च० चक्षु म० मनुष्योंकी जे० जो कं० कांक्षा अं० अंतकरे अं० अन्तसे खु० छुरी व० वहती है च० चक्र अं० अन्तसे लो० फिरता है ॥१४॥ अं० अंत प्रांत आहार धी० धीर से० सेवते हैं ते० इससे अं० अंत करने वाले

छिन्नसोए अणाविले ॥ अणाइले सयादंते । संधिं पत्ते अणेलिसं ॥ १२ ॥ अणेलिसस्स खेयन्ने । ण विरुज्झिज्ज केणइ ॥ मणसा वयसा चेव । कायसा चेव चक्खुमं ॥ १३ ॥ से हु चक्खू मणुस्साणं । जे कंखाए य अंतए ॥ अंतेण खुरो वहति । चक्कं अंतेण लोट्टति ॥ १४ ॥ अंताणि धीरा सेवंति । तेण अंतकरा इह ॥ इह माणु-

समान मैथुन को जानकर पण्डित पुरुषों को उस में लिप्त होना नहीं. वैसा अनाश्रवी, व अकषायी साधु क्षोभ रहित बन करके उत्तम सिद्धगति में जाता है ॥ १२ ॥ संयम का खेदज्ञ पुरुष मन, वचन और काया से किसी जीव की साथ विरोध करे नहीं. ऐसा करनेवाला पुरुष ही चक्षुवन्त कहा- गया है. जो पुरुष भोगेच्छा का नाश करता है वह सब मनुष्यों को चक्षु समान आधारभूत है, जैसे छुरी अंत [धार] से छेदनादिक क्रिया में समर्थ होती है अथवा जैसे चक्र अन्त [लोहे का पाटा] से चलने में समर्थ होता है वैसे ही संयमी पुरुष मोहादिक के अंत से सिद्ध होता है ॥ १५ ॥ धीर पुरुष

ते० वे ज० मनुष्य वं० बंध रहित न० नहीं अ० इच्छते हैं जी० जीवितव्य ॥९॥ जी० जीवितव्य पि० दूर करके अं० अंतको पा० प्राप्त होता है क० कर्मका क० कर्मसे सं० सन्मुख हुवे जे० जो म० मार्ग को अ० कहते हैं ॥ १० ॥ अ० हित शिक्षा पु० पृथक् पा० प्राणी व० संयमवंत पू० पूजा में ते० वे अ० अनाश्रवी ज० यत्नावंत दं० दमनेन्द्रिय द० दृढ आ० अरक्त मे० मैथुन में ॥ ११ ॥ णी० चावल

का । नाव कंखंति जीवियं ॥ ९ ॥ जीवियं पिट्ठओकिच्चा । अंतं पावंति कम्मुणं । क-म्मुणा संमुहीभूता । जे मग्ग मणुसासइ ॥ १० ॥ अणुसासणं पुढो पाणी । वसुमं पूयणासु ते ॥ अणासए जते दंते । दढे आरय मेहुणे ॥ १२ ॥ णीवारे व ण लीएज्जा ।

भावार्थ

जीव असंयम जीवितव्य की वांच्छा नहीं करते हैं. ॥ ९ ॥ वे पुरुष असंयम जीवितव्य का निषेध करके सर्व कर्म का अंत करते हैं. और सदनुष्ठान से मोक्ष सन्मुख हो वीतराग भणित धर्म प्रकाशते हैं॥१०॥ चारित्रवान्, देवतादिक से कराइहुइ अशोक वृक्षादिक पूजा को भोगनेवाले, अनाश्रवी, (पूजा सत्कार में इच्छा रहित) यत्नावन्त इन्द्रियों को दमनेवाले, दृढ संयमी, तथा मैथुन धर्म से निवर्तनेवाले-ऐसे गुणों से युक्त श्री तीर्थंकर देव का उपदेश भव्य अभव्य जीवों को सम्यक् मिथ्यात्वरूप से पृथक् २ परगमता है. जैसे भिन्न २ स्वादवाली पृथ्वी में भिन्न २ स्वादवाला जल हो जाता है, वैसे ही सर्वज्ञ का उपदेश परगमता है. ॥ ११ ॥ जैसे सूकर चावल की लालच से पाश में बंधाता है, वैसे ही चावल

क० कर्म ना० समभावनार्थ जा० जानता है वि० जानकार से० वह० म० महावीर जे० जो ण० नहीं जा० जन्मता है ण० नहीं मि० मरता है ॥७॥ ण० नहीं मि० मरता है म० महावीर ज० जिसको न० नहीं अ० है पु० पूर्व क० किये हुवे वा० वायु ज० अग्नि में अ० जाता है पि० प्रिय लो० लोक में इ० स्त्रियों ॥ ८ ॥ इ० स्त्रियोंको जे० जो ण० नहीं से० सेवते हैं आ० मोक्षगामी ते० वे ज० मनुष्यों

कुव्वओ णवं णत्थि । कम्मं नामवि जाणइ ॥ विन्नाय से महावीरे । जे ण जाइ ण मिज्जइ ॥७॥ ण मिज्जइ महावीरे । जस्स नत्थि पुरे कडं ॥ वाउव्व जलमच्चेति। पिया लोगंसि इत्थीओ ॥ ८॥ इत्थीओ जे ण सेवंति । आइमोक्खा हु ते जणा ॥ ते जणा बंधणुम्मु-

आते हैं ऐसा कितनेक मानते हैं इस लिये इन की शंका का निवारण करने के लिये कहते हैं. समस्त क्रिया रहित जीव कर्म बंधन व निर्जरा जानकर नविन कर्म नहीं बांधता है. ऐसा जानकर वीर पुरुष ऐसा कार्य करे कि जिस से फीर जन्म मरण करना पडे नहीं ॥ ७ ॥ पूर्व कृतकर्म रहित वीर पुरुष को जन्म मरण नहीं है. वे नविन कर्म बांधने की इच्छा भी नहीं करते हैं. कर्म बंध का मुख्य कारण स्त्री संसर्ग हैं परंतु स्त्रियों भी उस वीर पुरुष का पराभव नहीं कर सकती हैं. जैसे अग्निज्वालामें से वायु निकल जानेपर भी नहीं जलता है, वैसे ही इस संसार में प्रिय स्त्रियों भी वीर पुरुष को नहीं जीत सकती हैं. ॥ ८ ॥ स्त्रियों को नहीं सेवनेवाले पुरुष मोक्षगामी होते हैं. फिर वे बंधन मुक्त

नहीं वि० विरोध करे ए० यह ध धर्म बु० साधु का सा० साधु ज० जगत् को प० जानकर अ० इस में जी० शुद्ध भा० भावना ॥ ४ ॥ भा० भावना जो० योग सु० शुद्धात्मा ज० समुद्र में णा० नाव आ० कही ना० नाव जैसे ती० तीरको सं० प्राप्त हुइ स० सर्व दु० दुःखसे ति० मुक्त होते हैं ॥ ५ ॥ ति० मुक्त होते हैं मे० बुद्धिमान जा० जानकार लो० लोक में पा० पापकर्म तु० मुक्त होते हैं पा० पाप क० कर्म न० नविन क० कर्म अ० करे नहीं ॥६॥ अ० नहीं करते हुवेको ण० नविन ण० नहीं हैं

सूत्र

साहू जगं परिन्नाय । अस्सिं जीवितभावणा ॥ ४ ॥ भावणा जोगसुद्धप्पा । जले णावाव आहिया ॥ नावाव तीरसंपन्ना । सव्वदुक्खा तिउट्टइ ॥ ५ ॥ तिउट्टइ उ मेधावी । जाणं लोगंसि पावगं ॥ तुट्टंति पावकम्माणि । नवं कम्ममकुव्वए ॥ ६ ॥ अ-

भावार्थ

स्थावर जीवों की साथ विरोध करना नहीं यही संयमवन्त साधु का धर्म है. साधु त्रस स्थावर जीवों को जानकर शुद्ध भावना भावे ॥ ४ ॥ भावना का योग से जिस का आत्मा शुद्ध बनाहुवा है ऐसा साधु समुद्र में रही हुइ नौका समान कहागया है. जिस तरह नावा अनुकूल वायु से तीर को पहुंचती हैं वैसे ही संयती साधु सर्व दुःख से मुक्त होता है ॥ ५ ॥ मर्यादावान पंण्डित साधु लोक में रहेहुवे सावद्यानुष्ठाम को जानताहुवा बंधन से मुक्त होवे. वह पण्डित पुरुष नाविन कर्म को नहीं करताहुवा पूर्व संचित पापकर्म तोडे ॥ ६ ॥ कर्मक्षय हुवे बाद जीव अपना तीर्थ की अवनाति देख कर संसार में पुनः

॥ आदानीयाख्यं पञ्चदश मध्ययनम् ॥

ज० जो अ० भूतकाल को प० वर्तमान काल को आ०आगामिक काल को णा० नायक स० सर्व म० जानता है तं०उस ता०रक्षक दं०दर्शनावर्णीयको त०क्षय करे ॥ १ ॥ अं० अंत करे वि० वितिगिच्छा का जे० जो जा० जानते हैं निरूपम अ० निरूपम ज्ञान का अ० कहनेवाला ण० नहीं से० वह हो० होता है त० तहां तहां ॥ २ ॥ त० तहां तहां सु० अच्छा कहा हुवा से० वे स० सर्व सु० अच्छा कहा स० सदा स० सत्र से सं० संपन्न मि० मैत्री भू० जीवों से क० करे ॥ ३ ॥ भू० जीवों से न०

जमतीतं पडुप्पन्नं। आगमिस्सं च णायओ ॥ सव्वमन्नंति तं ताई। दंसणावरणं तए ॥ १ ॥ अंतए बितिगिच्छाए। जे जाणंति अणेलिसं ॥ अणेलिसस्स अक्खाया। ण से होइ तहिं तहिं ॥ २ ॥ तहिंतहिं सुयक्खायं। सेय सव्वे सुआहिए ॥ सया सच्चेण संपन्ने। मित्ति भूएसु कप्पए ॥ ३ ॥ भूएहिं न विरुज्झेजा। एस धम्मे वुसीमओ।

जिनोंने चार घनघातिक कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया है तथा अतीत, अनागत और वर्तमान कालके पदार्थ स्वरूपको यथातथ्य जाना है, ऐसे परमज्ञान के धारक केवलज्ञानी अन्य कोई बौद्धादिक मत में नहीं हैं ॥ १-२ ॥ श्री वीतराग प्रभुने जो जो भाव कहे हैं वे सत्य है, उस में किसी प्रकार का विरोध नहीं है. ऐसा सदाकाल सत्यभाषी सब जीवों को अपनी आत्मा तुल्य माने ॥ ३ ॥ त्रस

धर्म जे० जो विं० जानता है त० तहां आ० ग्रहण करे व०वचन कु०कुशल वि० विवेकी स०वह अ० योग्य है भा० कहने को तं० उसको स० समाधि त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २७ ॥ *

स आरिहइ भासिउं तं समाहिं तिबेमि ॥ २७ ॥ इति गंथनामं चउद्दहमज्झयणं सम्मत्तं ॥ १४ ॥ * *

पूर्वक आचरनेवाला पुरुष ही तीर्थंकर भाषित समाधि धर्म को कहने योग्य है. ऐसा मैं श्री महावीर प्रभु के कथनानुसार कहता हूं ॥ २७ ॥ यह ग्रंथ नामक चतुर्दश अध्ययन समाप्त हुवा, आगे सम्यक् रीति से चारित्र ग्रहण करना इस लिये आदान नामक पंद्रहवां अध्ययन कहते हैं. ॥ १४ ॥ * *
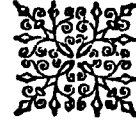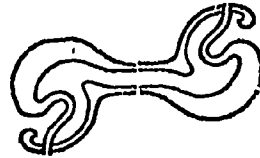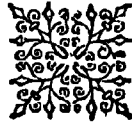
जा० जानता है भा० बोलने को तं० उस स० समाधिको ॥२५॥ अ० दोष लगावे नहीं णो० प० मच्छन्न भाषी णो० नहीं सु० सूत्र अ० अर्थ क० करे ता० रक्षक स० गुरु भक्ति अ० विचार कर वा० वचन सु० श्रुत स० सम्यक् प० कहे ॥ २६ ॥ से० वह सु० शुद्धसूत्री उ० उपधानवंत ध०

जाणइ भासिउं तं समाहिं ॥ २५ ॥ अलूसए णो पच्छन्नभासी । णो सुत्तमत्थं च करेज्ज ताई ॥ सत्थारभत्ती अणुवीइ वायं । सुयं च सम्मं पडिवाययंति ॥ २६ ॥ से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च । धम्मं च जे विंदति तत्थतत्थ ॥ आदेज्जवक्के कुसले वियत्ते।

को पालने का यत्न करे, मर्यादा का उलंघन करे नहीं, सम्यक् द्रष्टिवन्त पुरुष अपना दर्शन में दोषलगे नहीं वैसी मरूपणा करे. इस तरह बोलनेवाला पुरुष तीर्थंकर भाषित धर्म का कथन करना जानता है ॥ २५ ॥ षट्काया का रक्षक साधु आगम का अर्थ कहता हुवा अपशब्दों से सूत्रार्थ दूषित करे नहीं, वैसे ही सूत्रार्थ को गोपवे भी नहीं, सूत्र का अर्थ अन्यथा भी करे नहीं, गुरु की भक्ति होवे वैसा वचन बोले और जैसा गुरु की पास सूत्र का अर्थ सुना होवे वैसा ही अर्थ मकाशे, अन्यथा किंचिन्मात्र बोले नहीं ॥ २६ ॥ जो शुद्ध सूत्र का मकाशक व तपधान साधु यथातथ्य वचन को जानता है, वह साधु उपसर्ग अपवाद मार्ग में ग्रहण करने योग्य वस्तु को आदरनेवाला होता है. वैसा निपुण, स्पष्ट वक्ता, तथा विचार

ज्ञाने त० तैसे तैसे सा० साधु अ० मधुर वचन से ण०नहीं कु०करे भा० भाषा से वि० तिरस्कार करे नि० अल्प न० नहीं दी० बहुत वक्त लगावे ॥ २३ ॥ स० अच्छी तरह कहे प० प्रतिपूर्ण भा० बोलने वाला नि० सुनकर स० सम्यक् अ० अर्थदर्शी आ० आज्ञा सु० शुद्ध व० वचन भि० कहता हुवा अ० बोले पा० पाप वि० विवेक भि० साधु ॥ २४ ॥ अ० यथा बु० कहा हुवा सु० शीखे ज० बोले ण०नहीं अ० बहुत समय व०बोले से० वह दि० दृष्टिवान् दृ० दृष्टि ण०नहीं लू० दोष लगावे से०वह

जाणे । तहातहा साहु अकक्कसेणं ॥ ण कुव्वइ भास विहिंसइज्जा । निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा ॥ २३ ॥ समालवेज्जा पडिपुन्नभासी । निसामिया समिया अट्ठदंसी । आणाइ सुद्धं वयणं भिउंजे । अभिसंधए पावविवेगभिक्खू ॥ २४ ॥ अहा बुइयाइं सुसिक्खएज्जा । जइज्ज या णातिवेलं वदेज्जा ॥ से दिट्ठिमं दिट्ठि ण लूसएज्जा । से

तरह समजे, परंतु यदि मूर्ख उसे विपरीत जाने-समजे नहीं तो साधु उसे मधुर भाषा से तत्त्व मार्ग बतलावे. परंतु उस का तिरस्कार करे नहीं. और अल्प सूत्रार्थ में बहुत काल व्यतीत करे नहीं ॥ २३ ॥ जो कोई संक्षिप्त में न समज सके तो उसे विस्तार पूर्वक समजावे. सत्पदार्थ को जाननेवाला तीर्थंकरकी आज्ञा से आचार्यादिक की पास से निर्वद्य वचन श्रवणकर बोले. इस तरह कथन करनेवाला साधु पाप का विपाक जो लाभ सत्कारादि उसे छोडे ॥ २४ ॥ सर्वज्ञ प्रभुने जैसा कथन किया है. वैसा शीखे, और उस

ण० नहीं सं० बोले ॥ २० ॥ हा० हास्य णो० नहीं सं० करे पा० पाप धर्म ओ० यथातथ्य फ० कठोर वि० सजे णो० नहीं तु० उन्माद करे णो० नहीं वि० श्लाघा करे अ० अनाकुल अ० अकषायी भि० साधु ॥ २१ ॥ सं० शंका करे अ० अशंकित भाव से भि० साधु वि० स्याद्वाद को वि० कहे भा० दोभापा ध० धर्म स० सावधान हुवा वि० बोले स० समय का जान ॥ २२ ॥ अ० अनुसरते हुवे त० तैसा जा०

सु । असाहु धम्माणि ण संवएज्जा ॥ २० ॥ हासंपि णो संधति पावधम्मे । ओए तहीयं फरूसं वियाणे ॥ णो तुच्छए णोय विकंथइज्जा । अणाउलेया अकसाई भिक्खू ॥ २१ ॥ संकेज्ज या संकितभाव भिक्खू । विभज्जवायं व वियागरेज्जा ॥ भासादुयं धम्मसमुट्ठितेहिं । वियागरेज्जा समयासुपन्ने ॥ २२ ॥ अणुगच्छमाणे वि तहंवि

करे नहीं, वैसे ही हिंसा रूप धर्म की प्ररूपणा करे नहीं ॥ २० ॥ और भी स्वतः को तथा अन्य को हास्य उत्पन्न होवे वैसी कथा करे नहीं, पाप धर्म [सावद्य धर्म] बोले नहीं, रागद्वेष रहित होता हुवा सत्य वचन भी कठोर होवे तो उसे ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागे, उन्माद करे नहीं, आत्म प्रशंसा करे नहीं, धर्म कथा करने में आकुल व्याकुल होवे नहीं, और कषाय रहित होवे ॥ २१ ॥ धर्म प्ररूपक साधु सूत्रार्थ में निःशंकित होने पर शंका रखे अर्थात् गर्व करे नहीं, स्याद्वाद धर्म की प्ररूपणा करे, सभा में सत्य और व्यवहार भाषा बोले, तथा राजा या रंक पूछने पर सब को समभाव से उत्तर देवे ॥ २२ ॥ इस तरह दो प्रकार की भाषा से धर्मोपदेश करतेहुवेको जो कोई पण्डित पुरुष होवे वह तो अच्छी

बुद्ध ते० वे अं० अंत मो० मोक्ष को ॥ १७ ॥ सं० जान कर ध० धर्म को वि० कहते हैं बु० बुद्ध ते० वे अं० अंत करने वाले भ० होते हैं ते० वे पा० पारगामी दो० दोनो से मो० मुक्त होने से सं० अच्छी रीत से जानकर प० प्रश्न उ० कहते है ॥ १८ ॥ णो० नहीं च्छा० ढांके णो० नहीं लू० छूपावे मा० मान ण० नहीं से० सेवे प० प्रकाश ण० नहीं प० बुद्धि से प० हास्य कु० करे ण० नहीं आ० आशिर्वाद वि० बोले ॥ १९ ॥ भू० जीवों की सं० शंका दु० दुर्गच्छा करता हुवा ण० नहीं णि० बोले मं० मंत्र पदसे गो० गोत्रको ण० नहीं किं० किंचित् इ० इच्छे म० मनुष्य प० प्रजा में अ० असाधु ध० धर्म को

संखाइ धम्मं च वियागरंति । बुद्धा हु ते अंतकरा भवंति ॥ ते पारगा दोण्हवि मोयणाए । संसोधितं पण्ह मुदाहरंति ॥ १८ ॥ णो च्छायए णो विय लूसएज्जा । माणं णसेवज्ज पगासणं च ॥ णयावि पन्ने परिहास कुज्जा । ण यासियावाय वियागरेज्जा ॥ १९ ॥ भूताभिसंकाइ दुगुंछमाणे । ण णिव्वहे मंतपदेण गोयं ॥ ण किंचि मिच्छे मणुए पया-

वाले होते हैं अंतकर्त्ता होते हैं. जो पूर्वापर अविरुद्ध प्रश्न कहते हैं वे स्वतः को तथा अन्यको मुक्त करने ॥१८॥ धर्म प्ररूपक पुरुष सूत्र अर्थको छुपावे नहीं अर्थात् अन्यथा प्ररूपे नहीं, अन्यका गुणको छुपावे नहीं, मान करे नहीं, अपनी मोटाइ प्रकाशे नहीं, स्वतःको प्रज्ञावन्त जानकर अन्यका उपहास्य करे नहीं, और आर्शीवादभी देवे नहीं ॥ १९ ॥ जीवोंकी घात होगा ऐसी शंका करके वह धर्म प्ररूपक आर्शीवाद बोले नहीं, विद्या मंत्रसे संयमकी साधना करे नहीं, व्याख्यान करता हुवा श्रोता जनों की पाससे किंचिद् वस्तुकी इच्छा

समाधि को ॥ १५ ॥ अ० इस में सु० सावधान होके ति० तीन करण से ता० रक्षक ए० इस में सं० शांति नि० निरोध आ० कहा ते० वे ए० ऐसा अ० कहते हैं ति० त्रिलोकदर्शी ण० नहीं सु० फीर कु० आते हैं प० प्रमाद संगको॥ १६ ॥ नि० जानकर से०वह भि०साधु स०सम्यक् अ०अर्थ प०प्रतिभावंत हो० होता है वि० विद्वान आ० आत्मार्थी वो० तप मो० संयम उ० प्राप्त कर सु० शुद्ध से उ० प्राप्त होता है

विचं ॥ तं सोयंकारी पुढो पवेसे । संखा इमं केवलियं समाहिं ॥१५॥ अस्सिं सु ठिच्चा तिविहेण तायी । एएसु या संति निरोहमाहु ॥ ते एव मक्खंति तिलोगदंसी । ण भुज्जमेयंति पमायसंगं ॥ १६ ॥ निसम्म से भिक्खू समीहियट्ठं । पाडिभावणं होइ विसारए य ॥ आयाणअट्ठी वोदाणमोणं । उवेच्च सुद्धेण उवेति मोक्खं ॥ १७ ॥

म्यक् ज्ञानादि लक्षण युक्त समाधिको हृदयमें स्थापन करे ॥ १५ ॥ गुरुकुल वासमें रहने वाला साधु मन वचन और कायासे षट् कायाका रक्षक बने. इस तरह समिति गुप्तिमें रहने वाला साधुको शान्ति तथा कर्म क्षय होवे ऐसा कहा जाता है. श्री त्रिलोकदर्शी सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि क्षणमात्र भी प्रमादका संग करना नहीं ॥ १६ ॥ वह गुरुकुल निवासी साधुका आचार अवधारकर और समाधि अर्थात् मोक्षको जान कर प्रतिभावान् व विशारद (पण्डित) होवे, और ज्ञानार्थी बन कर तथा तप व संयम प्राप्त कर शुद्ध निर्दोष आहार से मोक्षमें जावे ॥ १७ ॥ जो धर्म को सयम्क् रीतिसे जानकर उसकी प्ररूपणा करते हैं वे संसारके

हीं जा० जानता है अ० अज्ञानी से० वह को० पंडित जि० जिन वचन से प० पश्चात् सू० सूर्योदय से पा० देखता है च० चक्षु से ॥ १३ ॥ उ० ऊंची अ० नीची ति० तिर्यक् दि० दिशा में त० त्रस जे० जो था० स्थावर जे० जो पा० प्राणी स० सदा ज० यत्नावंत ते० उसमें प० निवर्ते म० मन से पा० द्वेष अ० अनुकंपावान् ॥ १४ ॥ का० काल से पु० पूछे स० सम्यक् प० जीवों का आ० कहता हुवा द० मोक्ष का वि० अनुष्ठान तं० उसको सो० सुनता हुवा पु० पृथक् प० प्रवेशकरे सं० जानकर के० केवली की स०

कोविए जिणवयणेण पच्छा । सूरोदए पासति चक्खुणे वा ॥ १३ ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर जेय पाणा ॥ सया जए तेसु परिव्वएज्जा । मणप्पओसे अविकंपमाणे ॥ १४ ॥ कालेण पुच्छे समियं पयासु । आइक्खमाणो दवियस्स

भावार्थ

मार्ग जानता है वैसे ही शिष्य आगम रूप सूर्यका प्रकाश होनेसे निर्मल धर्म मार्गको जानताहै ॥ १२-१३ ॥ इस तरह प्रवृत्ति करने वाला शिष्य ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशाओंमें जो कोई त्रस और स्थावर प्राणी रहे हुवे हैं उनकी रक्षा करता हुवा विचरे, उसमें किंचिन्मात्र भी द्वेष करे नहीं, और एकाग्र भाव सहित रहे ॥ १४ ॥ जीवोंमें सम्यक् रीतिसे प्रवृत्ति करने वाला आचार्यकी पास जाकर, अवसर का जानकार शिष्य सूत्र अर्थकी पृच्छा करे, और आचार्य भी मुक्ति गमन योग्य पुरुषके आचार करते हुवे पूजनीक वंदनीक होवे; आचार्यादिकके पास से श्रवण करने वाला शिष्य भी पृथक् २ अर्थ विचार और केवली भाषित स-

करनी पू० पूजा स० विशेष युक्त ए० यह उपमा त० तहाँ उ० कही वी० वीरने अ० जानकर अ० परमार्थ उ० जाता है स० सम्यक् ॥ ११ ॥ णे० नेता ज० जैसे अं० अंधकारवाली रा० रात्रि में म० मार्ग ण० नहीं जा० जानता है अ० नहीं देखने से से० वह सू० सूर्य का अ० उदय से म० मार्ग वि० जानता है प० प्रकाश होने से ॥ १२ ॥ ए० ऐसे से० नव दीक्षित अ० नहीं स्पर्शाया हुवा ध० धर्ममें ध० धर्म को न० न-

अह तेण मूढेण अमूढगस्स । कायव्व पूया सविसेसजुत्ता ॥ एओवमं तत्थ उदाहु वीरे । अणुगम्म अत्थं उवणेति सम्मं ॥ ११ ॥ णेता जहा अंधकारंसि राओ । मग्गं ण जाणाति अपस्समाणे ॥ से सूरिअस्स अब्भुग्गमेणं । मग्गं वियाणाइ पगासियंसि ॥ १२ ॥ एवंतु सेहेवि अपुट्ठधम्मे । धम्मं न जाणाइ अबुज्झमाणे ॥ से

बताने वाले का उपकार जानकर उसकी पूजा सत्कार करता है, वैसे ही इसने मुझे मिथ्यात्व रूपी गहन वनमें से सम्यक् उपदेश देकर मुक्त किया है ऐसा जानकर उसकी पूजाकरे, ऐसा श्रीतीर्थंकर देवने कहा है॥११॥ जैसे मार्गका जानने वाला पुरुष चक्षु सहित होने पर भी अंधकारमय रात्रिमें नहीं देख सकता है, और वही पुरुष सूर्योदय हुवे बाद सर्व जगत् में प्रकाश होनेसे मार्गको जान सकता है, वैसे ही नवदीक्षित साधु अगीतार्थ और अपण्डित होने से शुद्ध सूत्रका अर्थ नहीं जान सकता है. पीछेसे गुरुकी समीप रहने वाला वही साधु समस्त सूत्र अर्थका स्वरूप जानकर पण्डित होता है. सूर्योदय होनेसे निर्मल नेत्र वाला पुरुष सब

चो० प्रेराया हुवा अ० अत्यंत काम करने वाली से घ० पानी लाने वाली से अ० साधु को स० शास्त्र अ० शिखा हुवा॥८॥ ण० नहीं ते० उसमें कु० कोप करे ण० नहीं प० प्रहार करे ण० नहीं कि० किंचित् फ० कठोर व० बोले त० तैसे क० करूंगा प० कहे से० श्रेयमे० मेरा ण० नहीं प० प्रमाद कु० करे॥९॥ व० वनमें मू० मूर्ख को ज० जैसे अ० ज्ञानी म० मार्ग अ० कहते हैं हि० हित प० जीवों का ते० उससे म० मेरा इ० यह से० श्रेय बु० ज्ञानी स० अच्छी सा० शिक्षा देते हैं ॥ १० ॥ अ० अथ ते० वह मू० मूर्ख से अ० ज्ञानी की का०

वुड्ढेण उ चोइए य ॥ अचुट्ठियाए घडदासिए वा ॥ अगारिणं व समयाणुसिट्ठे ॥ ८ ॥ णतेसु कुज्झे णय पव्वहेज्जा । णयावि किंची फरुसं वदेज्जा ॥ तहा करिस्संति पडिस्सुणेज्जा । सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ॥ ९ ॥ वणंसि मूढस्स जहा अमूढा मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ तेणं व मज्झं इण मेव सेयं । जमे बुहा समणुसासयंति ॥ १० ॥

भावार्थ

गृहस्थ कहे कि तुम जो यह आचरण करते हो वह हमारे शास्त्रसे विरुद्ध है या कोई वृद्ध तथा बालक शिक्षा देवे या अत्यंत काम करने वाली या जल लाने वाली दासी कहे की तुम्हारा जैसा आचरण तो गृहस्थ भी न करे ऐसी प्रेरणा करे तो साधु उसपर क्रोधित न होवे वैसे ही उसे लकड़ी से मारे भी नहीं, कठोर वचन बोले नहीं परंतु शिक्षा देने वालेको ऐसा कहे कि जैसा तुम कहते हो वैसे ही करूंगा इस तरह उसके वचन मान्यकरे और उसकी शिक्षाको श्रेय कारी मानकर प्रमाद करे नहीं ॥९॥ जैसे गहन वनमें परिभ्रमण करने वाला मार्गका अजान पुरुषको अन्य जानने वाला हितकारी मार्ग बताता है वैसे यह आचार्यादिक मुझे पुत्रकी तरह जो हित शिक्षा देते हैं वह श्रेयकारी है ॥ १० ॥ जैसे वह मूढ पुरुष मार्ग प्राप्त करके मार्ग

त्मभवी वि० उपदेशता हुवा पु० पृथक् व० बोले ॥ ५ ॥ स० शब्द सो० सुनकर अ० अथवा भे० भयंकर अ० अनाश्रवी ते० उसमें प० प्रवर्ते नि० निद्रा भि० साधु न० नहीं प० प्रमाद कु० करे क० कैसे वि० विचिगिच्छा से रहित ॥ ६ ॥ ड० बालक से वृ० वृद्ध से अ० शिक्षामण दीया हुवा रा० आचार्य से स० सरखी वयवाले स० सम्यक् थि० रहाहुवा ण० नहीं अ० प्रतिपालना करे णि० वहते हुवे अ० अपारगामी से० वह ॥ ७ ॥ वि० परतीर्थिक से स० शास्त्र अ० शिखा हुवा ड० बालक से वु० वृद्ध से

पन्ने । वियागरिंते य पुढो वएज्जा ॥ ५ ॥ सद्दाणि सोच्चा अदु भेरवाणि । अणासवे तेसु परिव्वएज्जा ॥ निद्दं च भिक्खू न पमाय कुज्जा । कहंकहं वा वितिगिच्छतिन्ने ॥ ६ ॥ डहरेण वुड्ढेण णुसासिए उ । रातीणिएणावि समव्वएणं ॥ सम्मं तयं थिरतो णाभिगच्छे । णिज्जंतए वावि अपारए से ॥ ७ ॥ विउट्ठितेणं समयाणुसिट्ठे । डहरेण

पराक्रम करे पंच समिति तीन गुप्तिका जानने वाला साधु स्वयं विवेकवान् वने और अन्यको भी समिति गुप्ति पालनेका तथा उसका फल पृथक् २ बतावे ॥ ५ ॥ मनोहर या भैरव शब्दोंमें रागद्वेष रहित साधु शुद्ध संयम पाले. निद्रारूप प्रमाद करे नहीं. इस तरह प्रवर्तता हुवा संदेह रहित होवे ॥ ६ ॥ सदैव गुरुकी पास रहने वाला साधुको कोई लघुवयका, वृद्ध, आचार्य या समवय वाला साधु शिक्षा देवे और जो स्वीकृत न करे तो वह साधु संसारका अन्तकर्ता नहीं होता है ॥ ७ ॥ किसी साधुको मिथ्या दृष्टि या

अ० नहीं स्पर्शाया हुवा ध० धर्म को नि० निकाला हुवा वु० वशीभूत म० मानता हुवा दि० पक्षी का छा० बच्चे को अ० पांख रहित ह० हरेंगे पा० पापकर्मी अ० कितनेक ॥ ३ ॥ ओ० समीप इ० इच्छे म० मनुष्य स० समाधि अ० नहीं रहता हुवा ण० नहीं अं० अंत करते हैं ण० जानकर ओ० प्रकाश करे द० मोक्षार्थी का वि० अनुष्ठान ण० नहीं णि० निकले ब० बाहिर आ० दीर्घ प्रज्ञी ॥४॥ जे० जो ठा० कायोत्समें स० शैय्यासन में प० पराक्रम करे सु० अच्छा साधु जु० युक्त स० समिति में गु० गुप्ति में आ० आ-

त्र

एवं तु सेहंपि अपुट्ठ धम्मं । निस्सारियं वुसिमं मन्नमाणा ॥ दियस्स छावं च अपत्त जायं । हरिसु णं पावधम्मा अणेगे ॥ ३ ॥ ओसाण मिच्छे मणुए समाहिं । अणोसिए णंतकरंति णच्चा ॥ ओभासमाणे दवियस्स वित्तं । ण णिक्कसे बहिया आसुपन्ने ॥४॥ जे ठाणओ य सयणासणे य । परक्कमे यावि सुसाहुजुत्ते ॥ समितीसु गुत्तीसु य आय-

भावार्थ

पाखण्डि लोकों संयम से भ्रष्ट करे ॥ २-३ ॥ इस लिये चारित्रवान साधु को गुरु पास रहना सो बताते हैं. यावज्जीव पर्यंत गुरु की पास रहने की तथा संमाधिकी वांन्छना करने वाला ही साधु कहा जाता है गुरु कुल वासमें नहीं रहने वाला पुरुष ,अनंत संसारकी वृद्धि करता है, ऐसा जानकर पण्डित पुरुष सदाकाल गुरु की सेवा करता हुवा धर्म दीपावे; परंतु गच्छसे बाहिर नीकलने की इच्छा करे नहीं. अर्थात् स्वच्छंदी बने नहीं ॥ ४ ॥ वैराग्य ग्रहण किये बाद अच्छा आचरवान् साधु कायोत्सर्ग, शयन, आसन तथा गमनादिक में

॥ ग्रंथाख्यं चतुर्दश मध्ययनम्. ॥

गं० ग्रंथ वि० छोडकर इ० यहां सि० शिखता हुवा उ० सावधान हो सु० ब्रह्मचर्य व० रहे उ०उपाय कारी वि० विनय सु० शिखे जे० जो छे० छेद वि० प्रमाद न० नहीं कु० करे ॥ १ ॥ ज० यथा दि० पक्षि का बच्चा अ० पांख रहित सा० घोंसला में से प० उडने को म० मानतहुवा तं० उसको अ० असमर्थ त० छोटा अ० पांख रहित को ढं० ढंकादि अ० उडने को असमर्थ से ह० लेजावे ॥२॥ ए० ऐसे से० नव दिक्षीत शिष्य

गंथं विहाय इह सिक्खमाणो । उट्ठाय सुबंभचेरं वसेज्जा ॥ उवायकारी विणयं सुसिक्खे । जे छेय विप्पमायं न कुज्जा ॥ १ ॥ जहा दियापोत मपत्तजातं । सावासगा पविउं मन्नमाणं ॥ तम चाइयं तरुण मपत्तजातं । ढंकाइ अव्वत्तगमं हरेज्जा ॥ २ ॥

जो पण्डित पुरुषों हैं वे इस जिन प्रवचन में धन धान्यादिक बाह्य और क्रोधादिक अभ्यंतर परिग्रह को छोड कर शुद्ध क्रिया रूप शील को शीखते हुवे संयम में उद्यम करके ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, गुरु का विनय करते है, और संयय में कुच्छ भी प्रमाद नहीं करते हैं ॥ १ ॥ अब गुरु के उपदेश विना अपने छांदे गच्छ से बाहिर निकलकर जो अकेला विचरता है, उस को बहुत दोषों की प्राप्ति होती है सो द्रष्टांत से बताते हैं. जैसे पक्षि का पांख विना का छोटा बच्चा अपना घोंसला में से उडने को चाहता हैं, परंतु शक्ति हीन होने से नहीं उड सकता है. इतने में कोई मांसाहारी ढंकादि पक्षियों उस छोटे बच्चे का विनाश करे. वैसे ही नव दीक्षित अगीतार्थ साधु को ढंकादि पक्षि समान अन्य अनेक

न० नहीं पू० पूजा चे० निश्चय सि० श्लाघा का कामी पि० प्रिया प्रिय क० किसी का णो० नहीं क० करे स० सर्व अ० अनर्थ प० वर्जे अ० व्याकुलता रहित अ० अकषायी भि० साधु॥२२॥ आ० यथा तथ्य स० देखता हुवा स० सर्व पा० प्राणी में णिं० त्याग करके दं० दंड णो० नहीं जी० जीवितव्य णो० नहीं म० मरण अ० इच्छे प० प्रवर्ते व० माया वि० रहित त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २३ ॥ १३ ॥

सूत्र

सव्वे अणट्ठे परिवज्जयंते । अणाउले या अकसाई भिक्खू ॥ २२ ॥ आहत्तहियं समुपेहमाणे । सव्वेहिं पाणेहिं णिहाय दंडे ॥ णो जीवियं णो मरणाहिकंखी । परिव्वएज्जा वलयाविप्पमुक्के त्तिबेमि ॥ २३ ॥ इति आहत्तहियं णामं तियदसमज्झयणं सम्मत्तं ॥ १३ ॥

* *

भावार्थ

की प्ररूपणा करे ॥ २२ ॥ यथातथ्य धर्म को विचारताहुवा त्रस स्थावर जीवों के विनाश का त्याग करे. जीवितव्य तथा मरण की कांक्षा रहित बन करके मिथ्यात्व को त्यजता हुवा विचरे. ऐसा मैं श्री तीर्थंकर की आज्ञानुसार कहता हूं. यह यथातथ्य नामक त्रयोदश अध्ययन समाप्त हुवा. इस में यथातथ्य का स्वरूप कहा वह सत्यपना बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग विना नहीं हो सकता है इस लिये आगे ग्रंथ का परित्याग बताते हैं. ॥ १३ ॥

* * *

का जे० जो ग० निन्दा स० नियाण सहित प०क्रिया ण० नहीं ता० उन्हें से० सेवते हैं सु० धैर्यवंत ॥१९॥ के० कितनेक का त० अभिप्राय अ० नहि जानकर खु० क्षुद्र ग० जावे अ० नहीं श्रद्धता हुवा आ० आयुष्यकी का० दीर्घस्थीति व० भोगवे ल० प्राप्त कर अ० अनुमान प० दूसरे का अ० परमार्थ ॥ २० ॥ क० कर्म छं० स्वच्छंदता वि० दूरकरे धी० धैर्यवन्त वि० दूरकरे स० सर्वथा आ० आत्म भाव को रू० रूपादि में लु०नाश पाता है भ०भयंकर वि० ज्ञान म० ग्रहण कर त० त्रस था० स्थावर में ॥२१॥

धम्मा ॥ १९ ॥ केसिंचि तक्काइ अबुज्झभावं । खुद्दंपि गच्छेज्ज असद्दहाणे ॥ आउस्स कालाइचरं वघाए । लद्धाणु माणे य परेसु अट्ठे ॥ २० ॥ कम्मं च छंदं विगिंच धीरे । विणइज्जओ सव्वह आयंभावं ॥ रूवेहिं लुप्पंति भयावहेहिं । विज्जं गहाय तस थावरेहिं ॥ २१ ॥ न पूयणं चेव सिलोयकामी । पियमाप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥

॥ २० ॥ बुद्धिमान् साधु श्रोता का अनुष्ठान व अभिप्राय जानकर धर्मोपदेश कहे. और उन का सर्वथा प्रकार से मिथ्यात्व भाव (विषयासक्ति) दूर करे. इस लोक में तथा पर लोक में भय उत्पन्न करनेवाले मनोहर रूपों में आसक्त धर्म से भ्रष्ट होते हैं; ऐसा जीवों को हितकारक धर्म कहे ॥ २१ ॥ धर्मोपदेशना करनेवाला साधु सत्कार, पूजा श्लाघा की इच्छा करे नहीं. किसी को रागद्वेष उत्पन्न होवे वैसी भाषा भी बोले नहीं, अनर्थकारी भाषा का त्याग करे, और क्षोभ तथा आलस्य रहित होता हुवा सत्यधर्म

ण० नगर अ० प्रवेश कर सं० वह ए० एषणा जा० जानकर अ० अनेषणा अ० अन्नका पा० पानी का अ० अगृद्ध ॥ १७ ॥ अ० अरति र० रति अ० दूर करके भि० साधु ब० बहुत ज० मनुष्यों त० तथा ए० एकल विहारी ए० एकान्त मो० संयम से वि० बोले ए० अकेला जं० जीव की ज० जाति आ० आगति ॥ १८ ॥ स० स्वयं स० जानकर अ० अथवा सो० सुनकर भा० बोले ध० धर्म हि० हितकर प० जीवों

णुप्पविस्सा ॥ से एसणं जाण मणेसणं च। अन्नस्स पाणस्स अणाणुगिद्धे ॥ १७ ॥ अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू। बहुजणे वा तह एगचारी ॥ एगंत मोणेण वियागरेज्जा। एगस्स जंतो गति रागतीय ॥ १८॥ सयं समेच्चा अदु वा वि सोच्चा। भासेज्ज धम्मं हियर्य पयाणं ॥ जे गरहिया सणियाणप्पओगा। ण ताणि सेवंति सुधीर-

को जानता हुवा और उस में अनासक्त होता हुवा विचरे ॥ १७ ॥ अन्तप्रान्त अन्नादि मिले और उस में यादि साधु को राति अराति उत्पन्न होजावे तो बहुत समुहवाला या एकल विहारी साधु उस सहन करके एकान्त निरवद्य धर्म कहे तथा जीव अकेला जाता है और अकेला आता है ऐसा जाने ॥ १८ ॥ धीर पुरुष धर्म का स्वरूप स्वयं सम्यक् प्रकार से जानकर या गुर्वादिक की पास से श्रवण कर जीवों को हितकारक धर्म कहे. तथा निंदनिक व नियाणावाले कार्यों का आचरण करे नहीं

ज० जनको खिं० निन्दता हैं बा० अज्ञानी ॥ १४ ॥ प० प्रज्ञामद त० तपमद णि० कुशकरे गो० गोत्रमद भि० साधु आ० आजीविका च० चौथा आ० कहा से० वह पं० पण्डित उ० उत्तम पो० पुद्गलमें से० वह ॥ १५ ॥ ए० इन म० मद को वि० दुर करके धी० धीर ण० नहीं ता० उसे से० सेवते हैं सु० धैर्यवन्त ते० वे स० सर्व गो० गोत्र अ० रहित म० महर्षि उ० ऊंच अ० अगोत्र ग० गति उ० जाते हैं ॥ १६ ॥ भि० साधु मु० संस्कार रहित क० किया हुवा (त० यथा तथ्य) दि० देखा हुवा ध० धर्म गा० ग्राम

न्ने ॥ १४ ॥ पन्नामयं चेव तवोमयं च । णिन्नामए गोयमयं च भिक्खू ॥ आजीव-गं चेव चउत्थ माहु । से पंडिए उत्तम पोग्गले से ॥ १५ ॥ एयाइं मयाइं विगिंच धीरा । ण ताणि सेवंति सुधीर धम्मा ॥ ते सव्वगोत्तावगया महेसी । उच्चं अगोत्तं च गतिं उवेंति ॥१६॥ भिक्खू मुयच्चे कय (तह) दिट्ठधम्मे । गामं च णगरं च अ-

वह साधु बाल-अज्ञानी है ऐसा जानना ॥ १४ ॥ जो साधु प्रज्ञा का मद, तप का मद, गोत्र का मद, और चौथा आजीविका (अर्थ) का मद नहीं करता है वह साधु उत्तम पुद्गल में निस्पृही व पण्डित है. ऐसा जानना ॥ १५ ॥ धीर पुरुष पूर्वोक्त गोत्रादिक मद का त्याग करे. ऐसा गोत्रादिक मद से रहित महर्षि ऊंच और अगोत्रवाली सिद्धगति में जाते हैं ॥ १६ ॥ शरीरादि संस्कार रहित तथा यथावस्थित पदार्थ देखनेवाला, (दृढधर्मी) साधु ग्राम या नगर में प्रवेश करके आहार की शुद्धि अशुद्धि

जो गा० गर्ववंत हो० होताहै सि० श्लाघा का कामी आ० जीवार्थी ए० इसको अ० अज्ञान पु० वारंवार वि० विपरी तता को उ० प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥ जे० जोभा० बोलने वाला भि० साधु सु० प्रियवादी प० बुद्धीमान हो० होता है वि० पंडित आ० अवसर का जान सु० धर्म वासना वाला अ० अन्य ज० मनुष्य को प० प्रज्ञा से प० तीरस्कार करे ॥ १३ ॥ ए० ऐसे न० नहीं से० वह हो० होता है स० समाधि प्राप्त जे० जो प० प्रज्ञावन्त भि० साधु वि० गर्वकरे अ० अथवा जे० जो ला० लाभसे म० मद से अ० व्याप्त अ० अन्य

गामी ॥ आजीव मेयं तु अबुज्झमाणो । पुणो पुणो विप्परियासुवेंति ॥१२॥ जे भासवं भिक्खू सुसाहुवादी । पडिहाणवं होइ विसारएय ॥ अगाढपण्णे सुविभावियप्पा । अन्नं जणं पन्नसा परिहवेज्जा ॥ १३ ॥ एवं ण से होइ समाहिपत्ते । जे पन्नवं भिक्खू विउक्कसेज्जा ॥ अहवा वि जे लाभमयावलित्ते । अन्नं जणं खिंसति बालप-

जीविका मात्र करनेवाला संसार में परिभ्रमण करता है ॥ १२ ॥ जो साधु भाषा के गुणदोष का जाननेवाला, प्रिय वचन बोलनेवाला, प्रतिभा [बुद्धि] का पारगामी, विशारद, द्रव्य क्षेत्र काल और भाव का जाननेवाला तथा धर्म वासना से सुवासित आत्मावाला होवे परंतु जो अपना जानपना से अन्य का तिरस्कार करता होवे तो वह पुरुष समाधि नहीं प्राप्त कर सकता है. और जो साधु प्रज्ञावन्त हो करके गर्व करता है अथवा जो साधु अन्य को उपकरणादि देने को समर्थ होने पर भी अन्य को निंदता होवे तो

जो मा० मानार्थ वि० मदकरे व० संयम को अ० अन्य प्रकार से अ० अज्ञानी ॥९॥ जे० जो मा० ब्राह्मण ख० क्षत्रिय जाति उ० उग्रपुत्र ले० राजपुत्र जे० जो प० प्रवर्जा लेनेवाला हैं प० दुसरे का दीया हुवा भो० भोगवने वाला गो० गोत्र ण० नहीं जे० जो थ० अभिमान करे मा० मानबद्ध ॥ १० ॥ न० नहीं त० उसका जा० जाती कु० कुल ता० रक्षणा ण० नहीं अ० अन्यत्र वि० ज्ञान च० चारित्र सु० अच्छा आ चरा हुवा णि० निकल कर से० वह से० सेवता है गा० आरंभ कर्म ण० नहीं से० वह पा० पारगामी हो० होता है वि० कर्म मुक्त करने केलीये ॥ ११ ॥ णि० निष्किचन भि० साधु सु० अंत प्रांतआहारी जे०

माणे ॥ ९ ॥ जे माहणो खत्तियजायए वा । तहुग्गपत्ते तह लेच्छई वा ॥ जे पव्व-
ईए परदत्तभोई । गोत्तेण्ण जे थब्भति माणबद्धे ॥ १० ॥ न तस्स जाई व कुलं व
ताणं । णण्णत्थ विज्जा चरणं सुचिन्नं ॥ णिक्खम्म से सेवइ गारिकम्मं । ण से पारए
होइ विमोयणाए ॥ ११॥ णिक्किंचणे भिक्खू सुलूहजीवी । जे गारवं होइ सिलोअ

आहार की गवेषणा करनेवाला होवे वह अपना ऊंच गोत्र में मद करे नहीं ॥ १० ॥ सम्यक् ज्ञान व चारित्र विना अन्य कोई जाति व कुल शरणभूत नहीं है. जो कोई चारित्र अंगीकार करके जाति गोत्रा-दिक का मद करता है वह संसार का पारगामी नहीं हो सकता है ॥ ११ ॥ अंतप्रांतादि आहार का करनेवाला जो कोई निष्परिग्रही साधु गर्व या श्लाघा का कामी होवे वह संयम को नहीं जानता हुवा आ-

से जे० जो त० तैसा ही स० सरिखा से० वह हो० होता है अ० कलह रहित ॥ ७ ॥ जे० जो कोई अ०
आत्मा को व० संयमवंत म० जानकर सं० मानकर वा०वाद अ० परीक्षा कियेविना कु०करे तं० तपसे अ०मैं
स० सहित म० जानकर अ० अन्य ज० मनुष्य को प० देखता है विं० गुण शून्य ॥ ८ ॥ ए० एकान्त
कू० पाशसे से० वह प० दुःख पाताहै ण० नहीं वि० विद्यमान है मो० साधुपना में गो० गोत्र में जे०

॥ ७ ॥ जेआवि अप्पं वसुमंति मत्ता । संखाय वायं अपरिक्ख कुज्जा ॥ तवेण वाहं
सहिउत्ति मत्ता । अण्णं जणं पस्सति बिंबभूयं ॥ ८ ॥ एगंत कूडेण उ से पलेइ ।
ण विज्जति मोणपयंसि गोत्ते ॥ जें माणणट्ठेण विउक्कसेज्जा । वसुमन्नतरेण अबुज्झ-

ऐसा जानना ॥ ७ ॥ जो कोई अपना आत्मा को संयमवन्त मान कर, तथा ज्ञानमय जानकर परमार्थ की
परीक्षा किये विना अभिमान करता है अथवा मैं ही तप करनेवाला हूं ऐसा अभिमान रखकरके
अन्य मनुष्यों को बिंबभूत (गुणशून्य) मानता हैं वह कुटपाशरूप संसार में परिभ्रमण करता हैं. संयम में
कदापि स्थित नहीं होता है, वैसे ही ऊंच गोत्र में भी नहीं प्रवर्तता है. जो कोई मान, पूजा के लिये वि-
विध प्रकार का अभिमान करता है, और संयम ग्रहण किये बाद मंद विपाक के उदय से अन्य किसी
मदस्थान में आसक्त होता है वह परमार्थ को नहीं जानता हुवा अज्ञानी संसार में परिभ्रमण करता है.
॥८-९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, उग्रपुत्रादि ऊंच कुलमें उत्पन्न जो होने वाले कोई दीक्षा अंगीकार करके शुद्ध निर्दोष

अ॰असतार्थभाषी वि॰उपशमा हुवाको जे॰जो उ॰उदीरे अं॰अंधा जैसे दं॰दंड प॰रस्तामें ग॰ग्रहणकर अ॰अ-ज्ञान घा॰दुःख पाताहै पा॰पापकर्मी॥५॥ जे॰जो वि॰कलहकारी अ॰अन्याय भाषी न॰नहीं से॰वह स॰सरिखा हो॰होता है अ॰कलह रहित उ॰उपपातकारी ह॰लज्जावंत ए॰एकान्त द्रष्टी अ॰माया रहित॥६॥स॰वह पे॰म-नोहर सु॰ सूक्ष्मदर्शी पु॰ पुरुषार्थी ज॰ जातीवंत चे॰निश्चय सु॰ सरलाचारी ब॰ बहुत भी अ॰शिक्षा करने

दुभासी। विओसियं जेउ उदीरएज्जा॥ अंधेव से दंड पहंगहाय । अविओसिए घासति पावकम्मी॥ ५ ॥ जे विग्गहीए अनायभासी। न से समे होइ अझंझपत्ते ॥ उववाय-कारी य हरीमणे य । एगंतादिट्ठीय अमाइरूवे ॥ ६ ॥ स पेसले सुहुमे पुरिसजाए। जच्चन्निए चेव सुउज्जुयारे ॥ बहुंपि अणुसासिए जे तहच्चा । समे हु से होइ अझंझपत्ते

रणा करनेवाला होवे वह पापकर्मी पुरुष जैसे अंध पुरुष लकडी ग्रहण करके मार्ग में जाता हुवा कंटकादि से पीडित होवे वैसे ही चतुर्गतिक संसार में दुःखित होवे ॥ ५ ॥ जो साधु कलहप्रिय तथा अन्यायभासी होता है वह समभावी नहीं होता है. इस लिये साधु को ऐसा नहीं होना चाहिये. साधु को आचार्य की आज्ञा का पालक बनना चाहिये तथा लज्जावन्त, जीवादिक पदार्थ का ज्ञाता और माया रहित होना चा-हिये ॥ ६ ॥ आचार्यादिक से अनुशासित होने पर भी जो साधु सदैव चित्त को प्रसन्न रखता है वह साधु गुणवन्त, सूक्ष्म भाव को देखनेवाला, पुरुषार्थ का साधक, अच्छे कुल में उत्पत्तिवाला, तथा सरल हैं

आत्मभाव से वि० बोले अ० खराव स्थान हो० होता है ब० बहुत गु० गुणों का (णि० अभिनिवेश) जे० जो णा० ज्ञान की सं० शंका से मु० मृषा व० बोले ॥ ३ ॥ जे० जो पु० पुछाया हुवा प० छल-करके च० कहते हैं आ० आत्मार्थ को ख० निश्चय वं० ठग कर के अ० असाधु ते० वे सा० साधु मानता हुवा मा० मायावी ए० प्राप्त होता है अ० अनंत घा० घात को ॥ ४ ॥ जे० जो को० क्रोधी हो० होता है

काहयंते । जे आत्तभावेण वियागरेज्जा ॥ अट्टाणिए होइ बहुगुणाणं (णिवेसे) जे णा-
ण संकाइ मुसं वदेज्जा ॥३॥ जे यावि पुट्ठा पलिउं चयंति । आयाणमट्ठं खलु वंचइत्ता ॥
असाहुणो ते इह साहुमाणी । मायण्णि एसंति अणंत घातं ॥ ४ ॥ जे कोहणे होइ जग-

वाले हैं. और जो जिनागम में शंका करके मृषा बोलते हैं वे ज्ञानादिक गुणों का आस्थान कुभाजन माने-जाते हैं ॥ ३ ॥ जब कोई पूछे कि तुम इसे किस की पास से शिखे, तब जो अपना आचार्य का नाम छूपाकर अन्य का नाम कहे तो वे मोक्ष का अर्थ को वंचते हैं अर्थात् मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते हैं और इस लोक में जो असाधु होता हुवा अपने को साधु करके मानता है वह भी अनंतकाल पर्यंत संसार में परिभ्रमण करता है ॥ ४ ॥ जो कोई क्रोधी व जगतार्थ भापी + होवे जो कोई उपशान्त क्रोध की उदी-

+ जिस में जैसा दोष होवे वैसा कहे. जैसे काणा को काणा, अंधे को अंधा, कुष्टि को कुष्टि इत्यादि बोलनेवाला.

॥ यथातथ्य नामकं त्रयोदश मध्ययनम् ॥

आ० यथातथ्य प० कहूंगा ना० नाना प्रकार पु० जीवों की जा० उत्पत्ति स० सत्पुरुषों का ध० धर्म अ० असत्पुरुषों का अ० कुशील सं० शांति अ० अशांति क० करूंगा पा० प्रगट ॥ अ० अहोरात्रि स० सावधान होके त० तथा प्रकार से प० प्राप्त कर ध० धर्म स० समाधि को आ० कहीहुइ अ० नहीं सेवते हुवे स० गुरू को फ० कठोर व० कहते हैं ॥ २ ॥ वि० विशुद्ध ते० वे अ० उत्थापते ते० वे जे० जो आ०

आहत्तहीयं तु पवेयइस्सं । नाणप्पकारं पुरिसस्स जातं ॥ सओ अधम्मं असओ असीलं संतिं असंतिं करिस्सामि पाउं ॥ १ ॥ अहोय राओय समुट्ठिएहिं । तहागएहिं पडिलब्भ धम्मं समाहिमाघात मजोसयंता । सत्थारमेवं फरुसं वयंति ॥ २ ॥ विसोहियंते अणु-

अब यथातथ्य-सम्यक् ज्ञान का स्वरूप कहेंगे. जीवों का नाना प्रकार का ज्ञानकी उत्पत्ति सत्पुरुषों का धर्म, असत् पुरुषों का आचार, शान्ति [निर्वाण] और अशान्ति इन सब को मैं प्रगट करूंगा ॥ १ ॥ रात्रि दिन सम्यक् प्रकार से सावधान बने हुवे निन्हवादिक जमाली प्रमुख; तीर्थंकरों से यथातथ्य धर्म की प्राप्ति करके तीर्थंकर भाषित धर्म को नहीं सेवते हुवे स्वतः को आचार शिखानेवाले उपकारी गुरु को कठोर वचन बोलते हैं ॥ २ ॥ जो पुरुष अपनी स्वच्छंदता से प्ररूपणा करते हैं वे शुद्ध मार्ग का उत्थापन करने-

अ० द्वेष नहीं करता हुवा णो० नहीं जी० जीवितव्य णो० नहीं म०मरण अ०इच्छनेवाला आ०संयम में गु० गुप्त व० माया वि० रहित त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २ २ ॥ १२ ॥

हिकंखी । आयाण गुत्ते वलया विमुक्के त्तिबेमि ॥ २ २ ॥ इति समवसरण णामं दुवालस मज्झयणं सम्मत्तं ॥ १२ ॥ * *

की आज्ञानुसार कहता हूं. ॥ २२ ॥ यह श्री समवसरण नामक द्वादश अध्ययन समाप्त हुवा. इस में भिन्न २ दर्शनियों का समवसरण कहा. अब यथातथ्य स्वरूप बताते हैं; इस लिये आगे यथातथ्य नामक त्रयोदश अध्ययन चलता है. ॥ १२ ॥ * * *

प्रगट कु० करे अ० विचार कर ध० धर्म ॥१९॥ अ० आत्मा को जो० जो जाजानताहै जो० जो लो० लोक ग० गति जो० जो जा० जानताहै आ० आनगति जो० जो सा० शाश्वत जा० जानताहै अ० अशाश्वत जा० जाति म० मरण ज० मनुष्य उ० उत्पत्ति ॥ २० ॥ अ० अधोगति स० जीवों का वि० दुःख जो० जो आ० आश्रव जा० जानता है० सं० संवर दु० दुःख जो० जो जा० जानता है नि० निर्जरा सो० वह भा० कहने को अ० योग्य है कि० क्रियावाद ॥ २१ ॥ स० शब्द में रू० रूप में अ० अनासक्त गं० गंध में र० रसमें

जो जाणाति जोय लोगं । गइं च जो जाणइ आगइं च ॥ जो सासयं आण असासयं च । जातिं मरणं च जणोववायं ॥ २० ॥ अहोवि सत्ताण विउट्टणं च । जो आसवं जाणति संवरं च ॥ दुक्खं च जो जाणति निज्जरं च । सो भासिउ मरिहइ किरियवादं ॥ २१ ॥ सद्देसु रूवेसु असज्जमाणो । गंधेसु रसेसु अदुस्समाणे ॥ णो जीवितं णो मरणा-

वाले महान पुरुषों की सेवा करनेवाले होते हैं ॥ १९ ॥ जो पुरुष आत्मा, लोक, गति, आगति, शाश्वत पदार्थ, अशाश्वत पदार्थ, जन्म, मरण और देव नरकादि में उत्पत्ति को जानता है तथा नरकादि में रहे हुवे प्राणियों की पीडा, आश्रव, संवर, दुःख और निर्जरा जानता है वह पुरुष ही क्रियावाद को बोलने योग्य है ॥ २०-२१ ॥ शब्द, रूप, रस और स्पर्श इन में अनासक्त साधु जीवित और मरण की वांच्छना नहीं करता हुवा, संयम का रक्षक बन करके माया कपट से रहित होता हुवा संयम पाले. ऐसा मैं श्री तीर्थंकर

निवर्तते हैं वी० वीर] ह० होते हैं ए० कितनेक॥१७॥ ड० छोटे पा० जीव वु० वृद्ध पा० जीव ते० उनको आ० आत्मवत् पा० देखता हैं स० सर्व लो० लोक में उ० उपेक्षा करता है लो० लोकमें इ० यह म० महान् बु० बुद्ध अ० अप्रमादी पं० प्रवर्ते ॥ १८ ॥ जे० जो आ० आत्मा को प० दूसरे को ण० जानकर अ० समर्थ अ० स्वयं हो० है अ० समर्थ प० दुसरे को तं० उसको जो० दीपवत् स० सदा व० सेवे जे० जो पा०

मूल

जता विप्पणवंति धीरा ॥(विण्णन्ति वीरा) विण्णत्तिधीरा य हवंति एगे ॥ १७ ॥ डहरेय पाणे वुड्डेय पाणे । ते आत्तओ पासइ सव्वलोए॥ उव्वेहाति लोगमिणं महंतं। बुद्धेऽपमत्तेसु परिव्वएज्जा ॥ १८ ॥ जे आयओ परओ वावि णच्चा । अलमप्पणो होंति अलं-परोसिं ॥ तं जोइभूतं च सया वसेज्जा । जे पाउ कुज्जा अणुवीति धम्मं ॥ १९ ॥ अत्ताण

भावार्थ

बने. परंतु अन्य कितनेक ज्ञान मात्र से ही वीर बनते हैं और क्रिया को छोड देते हैं ॥ १७ ॥ इस संसार में जो पृथिव्यादि तथा द्विइन्द्रियादि छोटे जीव हैं और हस्ती प्रमुख बडे जीव हैं उन सबको पण्डित पुरुष अपनी आत्मा तुल्य देखे. इस संसार में सर्व स्थानक अशाश्वता है, किसी जीव को सुख नहीं है, एसा लोक का विचार करके तत्त्वज्ञ पुरुष संयम में विचरे ॥ १८ ॥ जो कोई अपनी आत्मा को तथा अन्य की आत्मा को सम्यक् रीति से जानते हैं वे स्वतः का तथा अन्य का उद्धार करने में समर्थ बनते हैं. और जो वीतराग भाषित धर्म को सम्यक् प्रकार से ज्ञानकर प्रगट करते हैं, वे चंद्रसूर्य समान ज्योति-

है पा० पाप ॥ १५ ॥ ते० वे अ० अतीत उ० वर्तमान अ० आगामिक लो० लोक को जा० जानते हैं त० यथावस्थित णे० नेता अ० अन्य का अ० स्वयंबुद्ध बु० बुद्ध ते० वे अं० अंत के करने वाले भ० होते हैं ॥ १६ ॥ ते०वे णे० नहींज कु०करते हैं ण० नहीं का० कराते हैं भू० प्राणी की० सं० शंका से दु० दुर्गच्छा करते हुवे स० सदा ज० यत्नावंत वि० विनयवंत होते हैं धी० धीर वि० विनीत धी० धीर [वि०

लोभमया (भया) वतीता। संतोसिणो नो पकरेंति पावं ॥ १५ ॥ ते तयिउप्पन्नमणागयाइं। लोगस्स जाणंति तहागयाइं ॥ णेतारो अन्नोसि अणन्नणेया। बुद्धाहु ते अंतकडा भवंति ॥ १६ ॥ ते णेव कुव्वंति ण कारवंति। भूताहि संकाइ दुगुंछमाणा ॥ सया

तोषी होने से पापकर्म नहीं करते हैं ॥ १५ ॥ जो पुरुष ऐसे होते हैं उन को क्या फल होता है सो बताते हैं. वे पुरुष अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों काल आश्रित यथावस्थित वस्तु को जानते हैं, अन्य जीवों को संसार से उत्तीर्ण कराने के लिये नेता बनते हैं, और स्वतः तत्व को जानते हुवे कर्म के अन्त कर्त्ता बनते हैं ॥ १६ ॥ वे वीतराग सम्यक्ज्ञानी प्राणी की घात का भय से पाप का तिरस्कार करते हुवे स्वयं हिंसा करे नहीं, अन्य की पास करावे नहीं, और हिंसा करनेवाले को अच्छा जाने नहीं. वैसे ही सब महाव्रत जानना. वैसे धीर पुरुष सदाकाल यत्नावन्त होवे तथा संयम में विनयवन्त

आ० पक्षि आदि पु० पृथ्वी आश्रित जे० जो पु० वारंवार वि० विपरीत उ० जाते हैं ॥ १३ ॥ जं० जो आ० कहा ओ० ओघ स० पानी अ० अपार जा० जानो भ० संसार ग० गहन दु० दुष्कर जं० जिसमें वि० खुते हुवे वि० विषय ग० समुद्र दु० दोनों ही लो० लोक में अ० परिभ्रमण करते हैं ॥ १४ ॥ न० नहीं क० कर्म से क०कर्म को ख० क्षय करते हैं बा० अज्ञानी अ० अकर्म से क०कर्म को ख०खपाते हैं धी० धीर मे० पंडित लो० लोभ मा० माया (भ० भय) अ० व्यतीत सं० संतोषी नो० नहीं प० करता

जे । पुणो २ विप्परियासुवेंति ॥ १३ ॥ जमाहु ओहं सलिलं अपारगं । जाणाहि णं भवगहणं दुमोक्खं ॥ जंसि विसन्ना विसयं गणाहिं । दुहओवि लोयं अणुसंचरंति ॥ १४ ॥ न कम्मणा कम्म खवेंति बाला । अकम्मणा कम्म खवेंति धीरो ॥ मेधाविणो

भावार्थ

यादिक वे सब अपने २ कर्म से चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण करते हैं ॥ १३ ॥ श्री तीर्थंकर देवोंने संसार को स्वयंभूरमण समुद्र की तरह अपार और दुस्तर कहा है, उसे तुम जानो. इस में सावद्य धर्म के प्ररूपक जीव पंचेन्द्रिय संबंधि विषयों में आसक्त बनकर त्रस स्थावर रूपी लोक में परिभ्रमण करते हैं ॥ १४ ॥ अज्ञानी जीव सावद्यारंभ से पूर्वकृत कर्मों का क्षय नहीं करते हैं और धीर पुरुष आश्रव का निरोध से कर्म का क्षय करते हैं. परिग्रह से रहित [लोभ तथा भय से रहित] पण्डित पुरुष सं-

रित्र प० मोक्ष ॥ ११ ॥ ते०वे च० चक्षु लो० लोक में णा० नायक म० मार्ग अ० कहते हैं हि० हित प० जीवों का त० वैसे सब सा० शाश्वत आ० कहा लो० लोक में जं० जिसमें प० जीवों मा० मनुष्य सं० रहे हुवे ॥ १२ ॥ जे० जो र० राक्षस ज० यमलोक जे० जो सु० देवता गं० गंधर्व का० पृथ्वीकायादि

त्रिज्जाचरणं पमोक्खं ॥ ११ ॥ ते चक्खुलोगंसिह णायगा उ। मग्गाणुसासंति हि-तं पयाणं ॥ तहातहा सासय माहु लोए। जंसि पया माणव संपगाढा ॥ १२ ॥ जे रक्खसा वा जमलोइया वा। जे वासुरा गंधव्वा य काया ॥ आगासगामी य पुढोसिया

का स्थापन करते हैं. वे श्रमण ब्राह्मण इस तरह कहते हैं कि जैसी २ क्रिया हैं वैसा २ स्वर्ग नरकादिक का फल है और इस जगत् में जो कोई सुख दुःख रहे हुवे हैं वे सब अपने किये हुवे हैं परंतु अन्य भ-वितव्यादि के किये हुवे नहीं हैं. जब तीर्थंकरादि ज्ञान और क्रिया इन दोनों से मुक्ति मानते हैं ॥ ११ ॥ वे तीर्थंकर इस लोक में चक्षु समान हैं और इस के नायक हैं. वे प्राणियों को हितकारक मोक्ष मार्ग कहते हैं, कि अहो मनुष्यों ! पंचास्तिकायरूप इस लोक में नाना प्रकार के प्राणी रागद्वेष से व्याप्त रहे हुवे हैं. ॥ १२ ॥ राक्षस (व्यंतरादि) यम लौकिक (परमाधार्मिक) सुर [वैमानिक ज्योतिषादिक] गंधर्व [विद्याधरादिक] पृथ्वी कायादिक आकाशगामी (पक्षी वायुप्रमुख) पृथिव्याश्रित अप् तेउ वायु द्विइन्द्रि-

पढकर लो० लोक में जा० जानते हैं अ० अनागतादिक ॥ ९ ॥ के० कोई नि० निमित्त त० सत्य भ० होते हैं के० किसिको तं० वह वि० विपरीत णा० ज्ञान ते० वे वि० विद्या भावको अ० नहीं पढते हुवे आ० कहते हैं वि० विद्या प० मोक्ष (जा० जानते हैं लो० लोक में व० बोलते हैं मं० मूर्ख) ॥ १० ॥ ते० वे ए० ऐसा अ० कहते हैं स० जानकर लो० लोक को त० वैसे वैसे स० श्रमण मा० ब्राह्मण स० स्वतः का क० किया हुवा ण० नहीं अ० अन्यका क० किया हुवा दु० दुःख आ० कहते हैं वि० ज्ञान च० चा-

अट्ठंगमेयं बहवे अहित्ता । लोगंसि जाणंति अणागताइं ॥ ९ ॥ केई निमित्ता तहिया भवंति । केसिं च तं विप्पडिएति णाणं ॥ ते विज्जभावं अणहिज्जमाणा । आहंसु विज्जा परिमोक्ख मेव ॥ (जाणासु लोगंसि वयंति मंदा)॥ १० ॥ ते एव मक्खंति समिच्च लोगं । तहातहा समणा माहणा य ॥ सयं कडं णन्नकडं च दुक्खं । आहंसु

भावार्थ

का पठनकरके बहुतसे मनुष्य अनागतादिक वस्तु को जानते हैं; परंतु शून्यवादी तो इतना भी नहीं जानते हैं ॥ ९ ॥ इस में से कितनेक निमित्त सत्य हो जाते हैं और कितनेक वीपरीत भी हो जाते हैं. वे विद्या का अध्ययन नहीं करते हुवे विद्या मोक्ष ही है ऐसा कहते हैं [कितनेक ऐसा कहते हैं कि हमही इस लोक में समस्त भाव को जानते हैं] ॥ १० ॥ अब क्रियावादीका मत कहते हैं. कितनेक क्रियावादी अपने अभिप्राय से लोक का स्वरूप जानकर के हम ही यथावस्थित तत्त्व के जाननेवाले हैं ऐसा कहकर क्रिया

अ० अस्त होता है ण० नहीं चं० चंद्रमा व० वृद्धि पाता है ही० हीन होता है वा० अथवा स० नदी ण० नहीं सं० वहती है ण० नहीं व० वाता है वा० वायु वं० वंध्य णि० निश्चय क० संपूर्ण लो० लोक ॥ ७ ॥ ज० जैसे अं० अंध स० सहित जो० दीप रू० रूप णो० नहीं प० देखता ही० नेत्र हीन सं० होने परभी ते० वे ए० ऐसा अ० आक्रियावादी कि० क्रिया को ण० नहीं प० देखते हैं नि० बुद्धि हीन ॥ ८ ॥ सं० ज्योतिष सु० स्वप्न ल० लक्षण नि० निमित्त दे० देह उ० उत्पाद अ० अष्टांग निमित्त व० बहुत अ०

दंति ण वयंति वाया । वंझो णियतो कसिणे हु लोए ॥७॥ जहाहि अंधे सह जोतिणावि । रूवाइ णो पस्सति हीणणेत्ते॥ संतंपि ते एव मकिरियवाई । किरियं ण पस्संति निरुद्धपन्ना ॥ ८ ॥ संवच्छरं सुविणं लक्खणं च । निमित्तदेहं च उपाइयं च ॥

होता है. चंद्रमा न वढता है, न क्षीण होता है. नदी प्रमुख के जल झरते नहीं, पवनवाता नहीं. यह जो दिखरहा है वह सव जाल है, संपूर्ण लोक वंध्य है. अर्थात् सब शून्य है. ॥ ७ ॥ जैसे जात्यन्ध पुरुष दीपक होने पर भी चक्षु की हीनता से रूपादिक (घटपटादिक) पदार्थ विद्यमान होते हुवे भी नहीं देख सकता है, वैसे ही बुद्धि हीन आक्रियावादी क्रिया का अस्तित्व होने पर भी मिथ्यात्वादि दोषों करके नहीं देख सकते हैं ॥ ८ ॥ (१) ज्योतिष शास्त्र चन्द्रादिक के विषय का (२) स्वप्न शास्त्र-स्वप्न के शुभाशुभ फल(३) लक्षण शास्त्र-शरीर का लक्षण(४)निमित्त शास्त्र शकुनादि[५] शरीर शास्त्र-तीलमसादिक का शुभाशुभ कथन (६) उत्पात-आकाश में शुभाशुभ चिन्हका कथन[७]भूमिकम्प और[८] अंग स्फूरण इन अष्टांग शास्त्रों

॥४॥स०मिश्रभाव गि०वचनसे ग०ग्रहणकर से०वह मु०मूक हो०होताहै अ०अज्ञानवादी इ०यह दु०दो प०पक्ष इ० यह ए० एक प० पक्ष आ० कहते हैं छ० छल च० और क० कर्म ॥ ५ ॥ ते० वे ए० ऐसा अ० कहते हैं अ० बुद्धिहीन वि० विविध प्रकार अ० अक्रियावादी जे० जो मा० ग्रहण कर ब० बहुत म० मनुष्य भ० भमते हैं सं० संसार में अ० अनंत काल ॥ ६ ॥ ण० नहीं आ० सूर्य उ० उगता है ण० नहीं

इममेगपक्खं. । आहंसु छलायतणं च कम्मं ॥ ५ ॥ ते एव मक्खंति अबुज्झमाणा विरूवरूवाणि अकिरियवाई ॥ जे मायइत्ता बहवे मणूसा । भमंति संसार मणोवदग्गं ॥६॥ णाइच्चो उएइ ण अत्थमेति । ण चंदिमा वड्ढति हीयति वा ॥ सलिला ण सं-

निषेध करते हैं. जैसे सांख्य दर्शनी आत्मा को अक्रिय मान करके प्रकृतिक्षय से मोक्ष होने का पुनः स्थापन करते हैं; इस तरह वे मिश्रभाव को प्राप्त होते हैं. और प्रश्न करनेवाले को उत्तर देने में असमर्थ होने से मौन भाव को धारण करते हैं. 'इतना होने परभी अपने कदाग्रह को नहीं सजते हुवे हमारा दर्शन एक पक्षी है द्वी पक्षी [सर्व पक्षी] है. इस सिवाय अन्य कोई मत सत्य नहीं हैं. इस तरह छलकरके अपना मत स्थापन करते है ॥ ५ ॥ वे बौद्धादिक तत्त्व के अजान विविध प्रकार के कुशास्त्र की प्ररूपणा करते हैं, और मतग्राही बन करके मिथ्यात्व में मोहीत होते हुवे अनंत संसार परिभ्रमण करते हैं ॥ ६ ॥ अब शून्यवादी का मत कहते हैं. वे कहते हैं किं न तो सूर्य का उदय होता है और न उस का अस्त

अ० बुरे को सा० अच्छा उ० बोलते हुवें जे०जो इमे० ये ज० मनुष्य वे० विनयवादी अ० अनेक पु० पु छाये हुवे भा० भाव वि० विनयवाद ॥३॥ अ० मूर्ख ते० वे उ०कहा अ० अर्थ स० स्वतः भा०कहतेहैं अ० हमारा ल० कर्मकी अ०शंका करके अ०आगामिक काले णो०नहीं कि०क्रिया आ० कहतेहै अ० अक्रियावादी

इया अणेगे । पुट्ठावि भावं विणइंसु णाम ॥ ३ ॥ अणोवसंखा इति ते उदाहु। अट्ठे सउ भासइ अम्ह एवं ॥ लवावसंकीय अणागएहिं । णो किरिय माहंसु अकिरियवाई ॥ ४ ॥ सम्मिस्सभावं व गिरागहीए । से मुम्मुई होइ अणाणुवाई ॥ इमं दुपक्खं

वाले तथा अच्छा को बुरा कहनेवाले विनयवादी के बत्तीस भेद हैं. उन को कोई पूछते हैं तो विनय को ही प्रधान बताते हैं ॥ ३ ॥ इस तरह माननेवाले मूढ कहते हैं कि हमारा दर्शन में ही जो लोक आते हैं उन की मुक्ति होती है. अब आक्रियवादी का मत कहते हैं. शाक्याकादिक बौद्ध दर्शनवाले अतीत अनागतकाल को ही मानते हैं. वर्तमानकाल को नहीं मानते हैं. क्यों कि क्षणिकपना से सर्व पदार्थ क्षणिक है, ऐसे वचनों से जो कुच्छ कियाजाता है, वह सब अनागत है. अब जो कर्म करने का है वह तो वर्तमानकाल है, और वर्तमानकाल में जो क्रिया करे उस से ही कर्म लगे. इस लिये उन के मत में क्रिया नहीं है ऐसा सिद्ध हुवा. और क्रिया विना शुभाशुभ कर्म का बंध भी नहीं हो सकता है. इस तरह आक्रियावादी नास्तिक मतवाले नहीं शंकित होते हैं. वे क्रिया से कर्मबन्ध नहीं मानते हैं इस लिये वे आक्रियावादी कहाये गये हैं ॥ ४ ॥ पूर्वोक्त परवादियों जिस बाबत को ग्रहण करते हैं उस का ही

॥ समवसरण नामक द्वादश मध्ययनम् ॥

च० चार स० समवसरण इ० ये पा० परतीर्थिक जा० जो पु० पृथक् २ व० बोलते हैं कि० क्रियावादी अ० अक्रियावादी वि० विनयवादी त० तीसरा अ० अज्ञानवादी अ० कहते हैं च० चौथा ॥ १ ॥ अ० अज्ञानी कु० कुशल सं० हैं अ० मूर्ख णो० नहीं वि० भ्रान्ति ति० रहित अ० अज्ञान आ० कहा अ० अज्ञानि को अ० विना विचारे मु० मृषा व० बोलते हैं ॥ २ ॥ स० सत्य को अ० असत्य चिं० विचार करने वाले

चत्तारि समोसरणाणिमाणि । पावादुया जाइं पुढो वयंति॥ किरियं अकिरियं विणियं-
ति तइयं । अन्नाणमाहंसु चउत्थमेव ॥१॥ अण्णाणिया ता कुसला वि संता । असं-
थुयाणो वितिगिच्छतिन्ना ॥ अकोविया आहु अकोवियेहिं । अणाणुवीइत्तु मुसं वयंति
॥ २ ॥ सच्चं असच्चं इति चिंतयंता । असाहु साहुत्ति उदाहरंता ॥ जे मे जणा वेण-

इस जगत में क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी, और अज्ञानवादी ऐसे चार परतीर्थियों का पृथक् समुदाय रहा हुवा है ॥ १ ॥ अब अज्ञानवादी का मत कहते हैं. अज्ञानवादी अज्ञानी होने पर स्वतः को ज्ञानी मान कर बैठते हैं परन्तु वे असंबंध भाषी हैं, क्योंकि उनकी भ्रान्ति इस से दूर नहीं हुई है. वे सम्यक् धर्म का स्वरूप जानने में असमर्थ होने से अजानबने हुवे हैं. और अपने शिष्यों को भी ऐसा ही उपदेश करते हैं. इस तरह वे अज्ञानवादी विना विचारे असत्य भाषण करते हैं ॥ २ ॥ सत्य को असत्य मानने

नि० निवृति का० मृत्युको वांच्छता ए० ऐसा के० केवली का म० मत त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ३८ ॥

वं केवलिणो मयं त्तिबेमि ॥ ३८ ॥ इति मोक्खमग्गणाम मेकादसमज्झयणं सम्मत्तं ॥ ११ ॥ * * *

महावीर देव के कथनानुसार मैं कहता हूं. यह श्री मोक्षमार्ग नामक एकादश अध्ययन समाप्त हुवा. इस में मोक्ष मार्ग का स्वरूप कहा. जो कुमार्ग को परिहरता है वही मोक्ष मार्ग को अंगीकार कर सकता है इस लिये समवसरण नामक द्वादश अध्ययन चलता है. * * *

उ० उपधान में वी० वीर्यवन्त भि० साधु को० क्रोध मा० मान प० प्रार्थे ॥ ३५ ॥ जे० जो बु० बुद्ध अ० होगये जे० जो बु० बुद्ध अ० होवेंगे सं० हैं ते० उनका प० प्रतिष्ठान भू० जीवों को ज० पृथ्वी ज० जैसे ॥ ३६ ॥ अ० अथ व० व्रतको मास फा० स्पर्श उ० विविध फु० स्पर्शे ण० नहीं ते० उनसे वि० चूके वा० पवनसे जैसे म० मेरु पर्वत ॥ ३७ ॥ सं० संवृति से० वे महाप्रज्ञी धी० धीर द० दत्त ए० एषणा च० विचरे

म्मं णिराकरे ॥ उवहाणवीरिए भिक्खू । कोहं माणं च पत्थए ॥ ३५ ॥ जेय बुद्धा अतिक्कंता । जेय बुद्धा अणागया ॥ संति तेसिं पइट्ठाणं । भूयाणं जगती जहा॥३६॥ अहण्णं वयमावन्नं । फासा उच्चावया फुसे ॥ ण तेसु विणिहण्णेज्जा। वाएणव्व महागि-री ॥ ३७ ॥ संवुडे से महापन्ने । धीरे दत्तेसणं चरे ॥ निव्वुडे कालमाकंखी । ए-

शान्ति ही है. जैसे सब जीवों को आधारभूत पृथ्वीरूप स्थान है वैसे ही सर्व तीर्थंकर देवों को जीव-दयारूप शान्ति का स्थान आधारभूत है ॥ ३६ ॥ जैसे सुमेरु पर्वत भयंकर पवन से भी कम्पित नहीं होता है, वैसे ही व्रत प्रतिपन्न साधु सम विषमादिक अनुकूल प्रतिकूल परीषह आने पर भी संयम से पतित होवे नहीं ॥ ३७ ॥ संवरवन्त, महा प्रज्ञावन्त तथा धीर साधु दीया हुवा आहार की गवेषणा करता हुवा विचरे और कषायों से निवृत्त हो करके कालपर्यंत संयम में रहे, ऐसा केवली भगवन्त का दर्शन है ऐसा श्री

रक्षण कोलिये प० प्रवर्ते ॥ ३२ ॥ वि० विरत गा० इन्द्रियादि ध० धर्म से जे० जो के० कोइ ज० जगत में ज० जीव ते० उनको अ० आत्म तुल्य था० बलवीर्य कु० फोरता हुवा प० प्रवर्ते ॥ ३३ ॥ अ० बहुत मा० मान मा० माया तं० उसे प० जानकर पं० पंडित स० सर्व ए० यह णि० दूर करके णि० निर्वाण सं० साधे मु० साधु ॥ ३४ ॥ सं० साधे [स० श्रद्धे] सा० साधु ध० धर्म पा० पाप धर्म को णि० दूरकरे

विरए गामधम्मेहिं । जे केइ जगईजगा ॥ तेसिं अत्तुवमायाए । थामं कुव्वं परिव्वए ॥ ३३ ॥ अइमाणं च मायं च । तं परिन्नाय पंडिए ॥ सव्व मेयं णिराकिच्चा । णिव्वाणं संधए मुणी ॥ ३४ ॥ संधए (सद्दए) साहुधम्मं च । पावध-

धर्म को अंगीकार करनेवाला महाविकट संसार समुद्र को उत्तीर्ण होता है. इस लिये आत्मरक्षपाल साधु मोक्षमार्ग में प्रवर्ते ॥ ३२ ॥ इन्द्रियों के विषय से निवर्ता हुवा साधु इस जगतमें जो त्रस स्थावर जीव हैं उन को अपनी आत्मा समान माने, और उन की रक्षा के लिये पराक्रम करता हुवा विचरे ॥ ३३ ॥ पण्डित पुरुष क्रोध, मान, माया और लोभ इन सब को दूर करके मोक्ष की वांच्छा करे ॥ ३४ ॥ साधु धर्म को सम्यक् प्रकार से जानकर वृद्धि करे. (साधु धर्मको सम्यक् प्रकारसे श्रद्धे) पाप धर्म का तिरस्कार करे और तप में पराक्रम करता हुवा क्रोध, मान, माया लोभ की प्रार्थना करे नहीं ॥ ३५ ॥ जो तीर्थंकर अतीतकाल में हुवे हैं आगामिकाल में होवेंगे और वर्तमानकाल में विचररहे हैं उन का अवलम्बन स्थान

सूत्रार्थ

ए० कितनेक दु० दुर्मति उ० उन्मार्ग में ग० गये हुवे दु० दुःख घा० घात ए० प्राप्त होते हैं तं० उसको त० वैसे ॥ २९ ॥ ज० जैसे आ० छिद्रवाली ना० नाव में जा० जाति अंध दु० बैठकर इ० इच्छा है पा० पार जाने को अं० बीच में ही वि० नाश पाता है ॥ ३० ॥ ए० ऐसे स० श्रमण ए० कितनेक मि० मि-मिथ्यादृष्टी अ० अनार्य सो० श्रोत क० संपूर्ण आ० प्राप्त हुवे आ० आगामिक म० महाभय ॥ ३१ ॥ इ० इस ध० धर्मको आ० ग्रहण कर का० काश्यपने प० कहा हुवा त० तीरे सो० श्रोत म० महाघोर अ० आत्म

उम्मग्गगता दुक्खं । घायमेसंति तं तहा ॥ २९ ॥ जहा आसाविणिं नावं । जाइ अंधो दुरूहिया ॥ इच्छइ परमागंतुं । अंतराय विसीयंति ॥ ३० ॥ एवं तु समणा एगे । मिच्छदिट्ठी अणारिया ॥ सोयं कसिणमावन्ना । आगंतारो महब्भयं ॥ ३१ ॥ इमं च धम्म मादाय । कासवेण पवेदितं ॥ तरे सोयं महाघोरं । अत्तत्ताए परिव्वए ॥ ३२ ॥

भावार्थ

अनुराग से शुद्ध धर्म की विराधना करके तथा जिनभाषित तत्त्व से विपरीत मार्ग में जाकरके अष्ट प्रकार के कर्म से संसार में परिभ्रमण करते हैं ॥ २९ ॥ जैसे कोई जात्यन्ध पुरुष छिद्रवाली नाव में चढकर समुद्र पार होने को इच्छता है, परंतु बीच में ही डूबजाता है वैसे ही कितनेक मि-थ्यादृष्टि अनार्य साधु कर्मरूप आश्रव को संपूर्णतया प्राप्त हो करके आगामिकाल में अत्यंत भयं-कर नरकादिक दुःख को प्राप्त करेंगे ॥ ३०-३१ ॥ श्री काश्यप गोत्रिय महावीर देव का प्ररूपा हुवा

द० पानी चे० निश्चय त० उसको उ० उद्देशकर के जं० जो क० किया हुवा भो० भोगवकर आ० आर्त ध्यान झि० ध्याते हैं अ० बुद्धिहीन अ० असमाधिवंत ॥ २६ ॥ ज० जैसे ढं० ढंक कं० कंक कु० कुलल म० मंगु का० काक म० मच्छके लीये झि० ध्याते हैं झा० ध्यान ते० उनका क० कलुष अ० अधम ॥ २७ ॥ ए० ऐसे स० श्रमण एं० कितनेक मि० मिथ्याद्रष्टी अ० अनार्य वि० विषय ए० एषणा झि० ध्याते हैं कं० कंक जैसे क० कलुष अ० अधम ॥२८॥ सु० शुद्ध म० मार्ग की वि० विराधना कर इ० यहां

तमुद्दिस्साय जं कडं ॥ भोच्चा झाणं झियायंति । अखेयन्ना असमाहिया ॥ २६ ॥ जहा ढंकाय कंकाय । कुललामगुकासिहा ॥ मच्छेसणं झियायंति । झाणं ते कलुसाधमं ॥ २७ ॥ एवं तु समणा एगे । मिच्छदिट्ठी अणारिया ॥ विसएसणं झियायंति । कंका वा कलुसाहमा ॥ २८ ॥ सुद्धं मग्गं विराहित्ता । इह मेगेउ दुम्मती ॥

दर्शनी तथा स्वतीर्थिक पार्श्वस्थादिक सचित्त पानी, बीज तथा स्वतः को उद्देश कर कियाहुवा अशनादिक को भोगव कर आर्तध्यान ध्याते हैं वे धर्म के अखेदज्ञ तथा असमाधिवन्त हैं ऐसा जानना ॥ २५ ॥ जैसे ढंक, कंक, कुलल, मंगु इत्यादि सर्व पक्षी मत्स्य को गवेषने के लिये ध्यान करते हैं. परंतु उन का ध्यान कालुष्यता युक्त तथा अधम है. वैसे ही कितनेक मिथ्याद्रष्टि अनार्य साधु कंकादि पक्षि जैसे दुष्ट ध्यान ध्याते हैं ॥ २७–२८ ॥ इस संसार में कितनेक दुराचारी अपने २ दर्शन का

वंत दं० दमता हुवा नि० निर्वाण सं० साधे मु० मुनि ॥ २२ ॥ वु० वहते हुवे पा० प्राणी को किं० पीडते हुवे स० स्वकर्म से आ० कहते हैं सा० अच्छा तं० उसे दी० द्वीप प० प्रतिष्ठा प० कहते हैं ॥ २३ ॥ आ० आत्म गुप्त स० सदा दं० दमन करने वाला छि० छेदा सो० श्रोत अ० अनाश्रव जे० जो ध० धर्म सु० शुद्ध अ० कहते हैं प० प्रतिपूर्ण अ० निरूपम ॥ २४ ॥ तं० उसे अ० जानता अ० अज्ञान बु० पंडित मानता हुवा बु० पंडित मो० हम म० मानते हुवे अं० दूर ते० वे स० समाधि से ॥ २५ ॥ ते० वे बी० बीज

सुणी ॥ २२ ॥ वुज्झमाणाण पाणाणं । किच्चंताण सकम्मणा ॥ आघाति साहु तं दीवं । पतिट्ठे सा पवुच्चइ ॥ २३ ॥ आयगुत्ते सया दंते । छिन्न सोए अणासवे ॥ जे धम्मं सुद्ध मक्खाति । पडिपुन्न मणालिसं ॥ २४ ॥ तमेव अविजाणंता । अबुद्धा बुद्ध माणिणो ॥ बुद्धा मोत्तिय मन्नंता । अंतएते समाहिए ॥ २५ ॥ ते य बीओदगं चेव ।

लिये संयमवन्त साधु को सदा मोक्ष साधना अर्थात् मोक्ष के लिये सर्व क्रिया करना ॥ २२ ॥ संसार समुद्र में वहते हुवे या अपने २ कर्मों से छेदन भेदनादिक दुःख पाते हुवे अशरण जीवों को सम्यक् दर्शनादिक धर्म द्वीप समान है. वही संसार समुद्र के परिभ्रमण का मिटानेवाला है ॥ २३ ॥ आत्म गुप्त, संवरी, संसार का प्रवाह को तोडनेवाला, आश्रव रहित जो साधु होवे वही सर्व विरतिरूप निरूपम धर्म कहसकता है ॥ २४ ॥ शुद्ध प्रतिपूर्ण धर्म को नहीं जाननेवाले मूर्ख अपने को पण्डित मानते हुवे तथा हमही तत्वज्ञी हैं ऐसा जानते हुवे भाव समाधि से दूर रहते हैं ॥ २५ ॥ जो शाक्यादिक अन्य

विध ते० उनको ला० लाभान्तराय होती है त० इसलीये ण० नहीं है णो० नहीं व० बोले ॥ १९ ॥ जे० जो दा० दान को प० वखाणते हैं व० वधको इ० इच्छते है पा० प्राणीका जे० जो प० निषेध करते हैं वि० वृत्ति का छेद क० करते हैं ते० वे ॥ २० ॥ दु० दोप्रकार का भी ते० वे न० नहीं भो० बोलते हैं अ० है न० नहीं है पु० फीर आ० लाभ र० कर्म का हे० छोडकर नि० निर्वाण को पा० जाते हैं वे० ते ॥२१॥ नि०मोक्ष को प० प्रधान बु० जानकर ण०नक्षत्र में चं०चंद्रमा त०इसलीये स०सदा ज० यत्ना

लाभंतरायंति । तम्हा णात्थिात्ति णोवए ॥ १९ ॥ जेय दानं पसंसंति । वह मिच्छंति पाणिणं ॥ जेय णं पडिसेहंति । वितिच्छेयं करंति ते ॥२०॥ दुहओवि ते न भासंति अत्थि वा नत्थि वा पुणो ॥ आयं रयस्स हेच्चाणं । निव्वाण्णं पाउणंति ते ॥ २१ ॥ निव्वाणं परमं बुद्धा । णक्खत्ताणव चंदमा ॥ तम्हा सदा जए दंते । निव्वाणं संधए

होवे इस लिये ऐसा अनुष्ठान में पुण्य नहीं है, ऐसा भी कहे नहीं ॥ १९ ॥ इस तरह जो दान की प्रशंसा करता है, वह प्राणी का वध करता है. और जो साधु दान का निषेध करता है, वह अनेक जीवों की आजीविका का छेद करता है ॥ २० ॥ ऐसा दान में पुण्य है व नहीं है ऐसी दोनों प्रकार की भाषा साधु बोले नहीं. इस से कर्म रूपी रज आती है ऐसा जानकर जो साधु उस का त्याग करता है वह निर्वाण प्राप्त करता है ॥ २१ ॥ जैसे नक्षत्र में चंद्रमा प्रधान है वैसे ही सर्व गतियों में मुक्ति प्रधान है. इस

स० धर्मवंत का गा० ग्राम में न० नगर में ॥ १६ ॥ त० तथा गि० वचन स० समारंभ में अ० है पु० पुण्य ति० ऐसा णो० [नहीं] व० बोले ण० अथवा ण० नहीं हैं पु० पुण्य ए० ऐसा ए० यह म० महा भय ॥१७॥ दा० दानार्थ जे०जो पा० प्राणी ह०हणते हैं त० त्रस था० स्थावर ते०उनको सा०रक्षणार्थ त० इसलिये अ०है ति०ऐसा णो०नहीं व०बोले ॥ १८ ॥ जे०जो तं०उसे उ०इच्छतेहैं अ०आहार पानी त०तथा

णेज्जा । आयगुत्ते जिइंदिए ॥ ठाणाइं संति सट्ठीणं । गामेसु नगरेसु वा ॥ १६ ॥ तहागिरं समारब्भ । अत्थि पुन्नं ति णो वए ॥ अहवा णत्थि पुन्नंति । एवमेयं महब्भयं ॥ १७ ॥ दाणट्ठाय जे पाणा । हम्मंति तस थावरा ॥ तेसिं सारखणट्ठाए । तम्हा अत्थि त्ति णो वए ॥ १८॥ जेसिं तं उवकप्पंति । अन्नपाणं तहाविहं ॥ तेसिं

भावार्थ

॥ १६ ॥ और भी ऐसा प्रकार का समारंभ में पुण्य है, ऐसा भी बोले नहीं और पुण्य नहीं है, ऐसा भी बोले नहीं. क्यों कि ये दोनों प्रकारकी भाषा दोप के हेतु तथा महाभय के कारण भूत है ऐसा जानकर ऐसी भाषा बोले नहीं ॥१७॥ दान के लिये [लोको को अन्नादि देने को] जो त्रस स्थावर जीवों हणाते हैं वह दीन भिक्षुकके लिये हैं. इससे इसमें पुण्यहै ऐसा साधु बोले नहीं ॥१८॥ लोकों के निमित्त अन्न पानी अनेक प्रकार के दोषोंसे उत्पन्न होता है ऐसा जानकर जो साधु निषेधकरे तो उस को लाभान्तराय कर्मका आश्रव

महाप्रज्ञी धी० धीर द० दत्त ए० एषणा च० विचरे ए० एषणा स० समितिमें णि० नित्य व० वर्जे अ० अनेषणिक ॥१३॥ भू० प्राणी का स० समारंभ करके त० उनको उ० उद्देशकर जं० जो क० किया ता० तैसा ण० नहीं गि० ग्रहण करे अ० आहार पा० पानी सु० साधु ॥ १४ ॥ पू० आधा कर्मी न० नहीं से० सेवे ए० यह ध० धर्म वु० सत्य साधु जं० जो किं० किंचित् अ० वांच्छे स० सर्वथा तं० उसे न० नहीं भो० भोगवना ॥१५॥ ह० हणतेको ण० नहीं अ० अच्छा जाने आ० आत्मगुप्त जि० जितेन्द्रिय ठा० स्थान सं० हैं

वजयंते अणेसणं ॥ १३ ॥ भूयाइं च समारंभ । तमुदिस्साय जं कडं ॥ तारिसं तु ण गिण्हेज्जा । अन्नपाणं सुसंजए ॥१४॥ पुईकम्मं न सेविज्जा । एस धम्मे वुसीमओ ॥ जं किंचि अभिकंखेज्जा । सव्वसो तं न भोत्तए ॥ १५ ॥ हणंतं णाणुजा-

हुवा आहार ग्रहण करे, और समिति पूर्वक अनेषणिक आहार को वर्जता हुवा शुद्ध संयम पाले ॥ १३ ॥ जीवों का आरंभ करके जो आहार बनाया होवे वैसा आहार संयति साधु लेवे नहीं ॥ १४ ॥ पुतिकर्मवाला आहार सेवे नहीं. यही धर्म संयमवन्त पुरुषों का कहागया है. जो कोइ शुद्ध आहार अशुद्धादि दोषों सेसंकित बनाहुवा होवे तो उसे भी भोगवना कल्पे नहीं ॥ १५ ॥ ग्राम या नगर में रहते हुवे किसी साधु को वहांपर कोई कूपखननादि करानेवाला पुरुष धर्मश्रद्धावन्त पूछेकि इसमें धर्म है या नहीं ? ऐसा प्रश्न का आत्मगुप्त, जितेन्द्रिय साधु उत्तर देवे नहीं. वैसे ही ऐसा हिंसावाला कार्य को अनुमोदे भी नहीं

अर्थ

अ० हिंसा न करे ॥ ९ ॥ ए० यह ही खु० निश्चय ण० ज्ञानीका सा० सार जं० जो न० नहीं हिं० हिंसा करता है कं० किसीकी अ० अहिंसा स० समता ए० इतना वि० जानकर ॥१०॥ उ० ऊंची अ० नीची ति० तिर्यक् जे० जो के० कोई त० त्रस था० स्थावर स० सर्वथा वि० निवृति वि० जाने सं० शान्ति को नि० निर्वाण आ० कहा ॥११॥ प० समर्थ दो० दोषोंको नि० दुर करके ण० नहीं वि० विरोध करे के० किसीसे म० मनसे व० वचनसे चे० निश्चय का० कायासे चे० निश्चय अं० अंत तक ॥ १२ ॥ सं० संवृति से० वे म०

सूत्र

व्वे अकंतदुक्खाय । अतोसव्वे अहिंसया ॥ ९ ॥ एयं खु णाणिणो सारं । जं न हिंसति कंचण ॥ अहिंसा समयं चेव । एतावंन्तं विजाणिया ॥ १० उड्ढं अहेय तिरियं । जे केइ तस थावरा ॥ सव्वत्थ विरतिं विज्जा । संति निव्वाण माहियं ॥ ११ ॥ पभू दोसे निराकिच्चा । ण विरुज्झेज्ज केणइ ॥ मणसा वयसा चेव । कायसा चेव अंतसो ॥ १२ ॥ संवुडे से महापन्ने । धीरे दत्तेसणं चरे ॥ एसणासमिए णिच्चं ।

भावार्थ

है. ऐसा अहिंसा और समतामय धर्मको जानकर दयामें यत्न करना॥१०॥ ऊर्ध्व, अधो, और तिर्यक् दशामें जो कोई त्रस और स्थावर प्राणी रहे हुवे हैं उनकी हिंसासें निवृत्तिको ही निर्वाण कहा गया है ॥ ११ ॥ इन्द्रियों को जीतने में समर्थ साधु मिथ्यात्वादि दोषों को दूर करके मन वचन और काया से किसी जीव की साथ जावजीवतक विरोध करे नहीं ॥ १२ ॥ आश्रव का निरोध करनेवाला महा प्रज्ञावन्त धीर दिया

मे॰ मुझे॥६॥ पु॰पृथ्वी कायके जी॰ जीव पु॰पृथक स॰जीव आ॰अप्काय त॰तसे अ॰अग्नि वा॰वायु काय पु॰ पृथक् स॰ जीव त॰ तृण रु॰ वृक्ष स॰ बीज सहित ॥ ७ ॥ अ॰ अथ त॰ त्रस पा॰ प्राणी ए॰ ऐसे छ॰ छकाय आ॰ कही ए॰ इतनी जी॰ जीवकाय ण॰ नहीं अ॰ दूसरीकोइ वि॰ विद्यमान है ॥ ८ ॥ स॰ सर्व अ॰अनुयुक्ति से म॰ बुद्धिमान् प॰ देखकर स॰ सर्व अ॰ अप्रिय दु॰ दुःख अ॰ इसलिये स॰सर्व

गे । तरिस्संति अणागया ॥ तं सोच्चा पडिवक्खामि । अंतवो तं सुणेह मे ॥ ६ ॥ पुढवी जीवा पुढो सत्ता । आउ जीवा तहागणी ॥ वाउ जीवा पुढो सत्ता । तणरुक्खा सबीयगा ॥ ७ ॥ अहावरा तसा पाणा । एवं छकाय आहिया ॥ एतावए जीवकाए । णावरे कोइ विज्जइ ॥८॥ सव्वाहिं अणुजुत्तीहीं । मतिमं पडिलेहिया ॥ स-

तीर रहे हैं आगामिक कालमें अनंता तीरेंगे ऐसा मोक्ष मार्ग को सुनकर मैं तुमको कहता हूं सो हे जीवो ! तुम सुनो ॥ ६ ॥ पृथ्वी काय, अप् काय, तेउ काय, वायुकाय, तृण, वृक्ष तथा बीजवाली वनस्पति काय, और त्रस प्राणी, ऐसे श्री तीर्थंकर देवने षट्काय कही है. इन सिवाय अन्य कोई जीवनिकाय नहीं हैं ॥७-८॥ बुद्धिमान् पुरुष इन षट् कायके जीवोंको सम्यक् प्रकारसे जान कर और सब को दुःख अप्रिय है ऐसा विचार कर सब की रक्षा करे ॥ ९ ॥ किसी जीवकी हिंसा करना नहीं यही ज्ञानी जनोंका सार

ते० उनको क० कौनसा म० मार्ग आ० कहैं क कहो णों० हमको ॥३॥ ज० यदि के० कोइ पु० पूछे दे० देव अ० अथवा मा० मनुष्य ते० उनको प० उत्तरदो म० मार्गकासार सु० सुनो मे० मुझे ॥ ४ ॥ अ० अनुक्रमसे म० महाघोर का० काश्यपने प० कहा ज० जिसको आ० ग्रहण कर इ० यहां से पु० पूर्व स० समुद्र व० व्यापारी ॥ ५ ॥ अ० तीरे त० तीरते हैं ए० कितनेक त० तीरेंगे अ० आगमिक काल में तं० उसे सो० सुनकर प० कहता हूं जं० जीवो तं० उसे सु० सुनो

तु कयरं मग्गं । आइक्खेज्ज कहाहि णो ॥ ३ ॥ जइणो केइ पुच्छिज्जा । देवा अदुव माणुसा ॥ तेसिं मं पडिसाहिज्जा । मग्गसारं सुणेह मे ॥४ ॥ अणुपुव्वेण महाघोरं । कासवेण पवेइयं ॥ जमादाय इओ पुव्वं । समुद्दं ववहारिणो ॥ ५ ॥ अतरिंसु तरंते-

परंतु अन्य कोई देव या मनुष्य पूछे तो उनको कौनसा मार्ग कहूं, सो मुझे हे भगवन् ! कहो ॥ ३ ॥ ऐसा जम्बू स्वामीने पूछा तब सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं; कि अहो जम्बू यदि तुमको मनुष्य या देव ऐसा मार्ग की बात पूछे तो उनको यह मार्ग बतलाना कि जो मैं कहता हूं; इसको तुम सुनो ॥ ४ ॥ श्री महावीर देव भाषित जो दुष्कर मार्ग मैं कहता हूं उसे अनुक्रमसे सुनों. जैसे व्यवहारी पुरुष लोभके वशसे दुस्तर समुद्रको तीरते हैं वैसे ही जिन भाषित धर्मका आश्रय ग्रहण कर अतीत कालमें अनेक पुरुषों संसार समुद्र को तीरें ॥ ५ ॥ जिस मोक्ष मार्गको अवलम्बन करके अतीत कालमें अनंता जीव तीरे वर्तमान कालमें

॥ मोक्षमार्ग नामक मेकादश मध्ययनम् ॥

क० कौनसा म० मार्ग अ० कहा मा० महात्मा म० बुद्धिमान जं० जिस म० मार्ग को उ० सरल पा० प्राप्तकर ओ० ओघको त० तरते हैं दु० दुस्तर ॥ १ ॥ तं० उस म० मार्ग को अ० प्रधान सु० शुद्ध स० सर्व दु० दुःखको मुक्त करने वाला जा० जानते हो ज० यथा भि० साधु तं० उसे णो० हमको बू० कहो म० महामुनि ॥ २ ॥ अ० यादि णो० हमको के० कोइ पु० पूछे दे० देव अ० अथवा मा० मनुष्य

कयरे मग्गे अक्खाए । माहणेण मइमता ॥ जं मग्गं उज्जुं पाविन्ता । ओहं तरति दुत्तरं ॥ १ ॥ तं मग्गं णुत्तरं सुद्धं । सव्व दुक्खविमोक्खणं ॥ जाणासि णं जहा भिक्खू । तं णो बूहि महामुणी ॥ २ ॥ जइ णो केइ पुच्छिज्जा । देवा अदुव माणुसा ॥ तेसिं

श्री सुधर्मा स्वामीको जम्बू स्वामी पूछते हैं कि अहो पूज्य भगवंत ! केवलज्ञानी श्री महावीर प्रभुने मोक्षका कौनसा मार्ग बतलाया है कि जिसको प्राप्त करके प्राणी दुस्तर संसारको तीरसके ॥ १ ॥ जो मार्ग श्री जिनेश्वर देवने कहा है वह शुद्ध निर्दोष सर्व दुःखसे मुक्त करने वाला है. ऐसा मार्ग अहो महामुनि ! जैसे तुम जानते हो वैसे हमको कहो ॥ २ ॥ यद्यपि मुझे तो आपकी प्रतीत है कि यह मार्ग अच्छा है.

अमूर्च्छित ण० नहीं अ० वांच्छे धि० बुद्धिमंत वि० विमुक्त ण० नहीं पू० पूजार्थी न० नहीं सि० श्लाघाभिलापी प० प्रवर्ते ॥ २३ ॥ नि० निकलकर गे० गृह से नि० निरापेक्षी का० शरीर वि० वोसिरावे नि० नियाणा छि० छेदे णो० नहीं जी० जीवितव्य णो० नहीं म० मरण अ० कांक्षी च० विचरे भि० साधु व० संसार से वि० विमुक्त त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २४ ॥

न सिलोयगामीय परिव्वएज्जा ॥ २३ ॥ निक्खम गेहाउ निरावकंखी । कायं विउसेज्ज नियाणं छिन्ने ॥ णो जीवियं णो मरणावकंखी । चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के त्तिबेमि ॥ २४ ॥ इति समाहिनाम दशममज्झयणं सम्मत्तं ॥ १० ॥ *

उसपे राग द्वेष करे नहीं, और उस में मूर्च्छित नहीं होता हुवा अच्छी वस्तु की वांच्छना करे नहीं, वैसे ही अपनी श्लाघा की वांच्छा करे नहीं. बाह्याभ्यंतर सम्बन्ध से सदैव मुक्त होना यही समाधि का स्थान है ॥ २३ ॥ जीवितव्य का निरपेक्षी साधु गृहवास से निकलकर—चारित्र अङ्गीकार कर—के नियाणा रहित काया को वोसिरावे, और जीवन मरण की इच्छा नहीं करता हुवा संसार से मुक्त बन करके विचरे. ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं यह आत्मसमाधि नामक दशम अध्ययन समाप्त हुवा. इसमें ज्ञान दर्शन चारित्र रूप समाधि का वर्णन कहा जो इसका सेवन करेगा वह मुक्ति को जावेगा इसलिये आगे मोक्षमार्ग नामक एकादश अध्ययन कहते हैं. * * *

हुवा म० मनुष्य म० बुद्धिवंत पा०पापसे आ० आत्मा नि० दूर करे हिं० हिंसासे प० उत्पन्न हुवे दु० दोमकार के म० जानकर वे० वैरका कारण म० महाभय (स० वह नि० मोक्ष सन्मुख प० प्रवर्ते) ॥ २१ ॥ मु० मृषा न० नहीं बू० बोले मु० साधु अ० आत्मार्थी णि० निर्वाण ए० यह क० संपूर्ण स० समाधि स० स्वयं न० नहीं कु० करे न० नहीं का० करावे क० करते को न० नहीं अ० अच्छाजाने ॥ २२ ॥ सु० शुद्ध ए० एषणा जा० याचे न० नहीं दू० दूषित करे अ०

ण निवट्टएज्जा ॥ हिंसप्पसूयाइं दुहाइं मत्ता । वेराणुबंधीणि महब्भयाणि (सनिव्वाणभूएओ परिव्वएज्जा ॥ २१ ॥ मुसं न बूया मुणी अत्तगामी । णिव्वाणमेयं कसिणं समाहिं ॥ सयं न कुज्जा उ न कारवेज्जा । करंतमन्नंपिय णाणुजाणे॥ २२ ॥ सुद्धे सिया जाए न दूसएज्जा । अमुच्छिए णय अब्भुववन्ने ॥ धितिमं विमुक्के णय पूयणट्ठी ।

बुद्धिमान साधु सम्यक् धर्म को जानकर सावद्यानुष्ठान से निवर्ते, और हिंसा से उत्पन्न हुवा दुःख को कर्म बंध का कारण जानकर पापसे निवर्ते (जैसे निवृत्ति वाला जीव किसी व्यापार में प्रवृत्ति नहीं करता है वैसे ही साधु सावद्यानुष्ठान से रहित विचरे) ॥ २१ ॥ मोक्षगामी साधु मृषा बोले नहीं, क्यों कि मृषा से निवर्तना वही मोक्ष रूप समाधिका संपूर्ण कारण है. इसलिये साधु स्वयं मृषा बोले नहीं अन्य की पास मृषा बोलावे नहीं मृषा बोलने वाले को अच्छा भी जाने नहीं ॥ २२ ॥ शुद्ध निर्दोष आहार की प्राप्ति होने पर

मं० मूर्ख अ० अहो रात्रि प० तप्ताहुवा अ० आर्तवन्त मू० मूर्ख अ० अजरामरवत् ॥ १८ ॥ ज० छोड वि० धन प० पशु स० सर्व जे० जो० बं० बंधु जे० जो पि० पिता मि० मित्र ला० लालन पालन करता है से० वे ए० जाते हैं मो० मोह अ० दूसरे ज० मनुष्य तं० उसका ह० हरते हैं वि० धन ॥ १९ ॥ सी० सिंह ज० जैसे खु० क्षुद्र मि० मृग च० चरते हुवे दू० दूर च० फिरते हैं प० डरते हुवे ए० ऐसे मे० पंडित स० जानकर ध० धर्म दू० दूर पा० पाप प० वर्जे ॥ २० ॥ सं० जानता

अहोयराओ परितप्पमाणे ॥ अट्टेसु मूढे अजरामरेव्व ॥ ममाति से साहसकारिमंदे ॥ आउक्खयं चेव अबुज्झमाणे । ममाति से साहसकारिमंदे ॥ १८ ॥ जहाहि वित्तं पसवोय सव्वं । जे बंधवा जे-

णे ॥ अट्टेसु मूढे अजरामरेव्व ॥ १८ ॥ जहाहि वित्तं पसवोय सव्वं । जेबंधवा जे-
य पियाय मित्ता ॥ लालप्पाति से विय एइ मोहं । अन्नेजणा तंसि हरंति वित्तं ॥ १९ ॥
सीहं जहा खुड्ड मिगा चरंता । दूरे चरंति परिसंकमाणा ॥ एवं तु मेहावि सामिक्ख धम्मं । दूरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥ २० ॥ संबुज्झमाणे उ णरे मतीमं । पावाउ अप्पा-

अज्ञानी आयुष्य का क्षय नहीं जानते हुवे ममत्व करते हैं, और रात्रिदिन पश्चाताप करते हुवे तथा आर्तवन्त बन करके अपने को अजरामर मानते हुवे संसार में परिभ्रमण करते हैं ॥ १८ ॥ धन पशु आदि सर्व तुझे तेरा धन का हरण करेंगे. ॥ १९ ॥ जैसे वन में विचरने वाले मृगादि क्षुद्र जंतु सिंहसे डरते हुवे दूर दूर फीरते हैं वैसे ही पण्डित पुरुष धर्म को सम्यक् प्रकारे जान कर पाप से दूर रहे ॥ २० ॥ सजेंगे इसलिये उन में ममत्व मत कर. और जो भाइ, माता, पिता कि जिनके लिये तू मोह में पडता है वे

हैं आ० आरंभासक्त ग० गृद्ध लो० लोक ध० धर्म ण० नहीं जा० जानते हैं वि० मोक्ष के हे० हेतु॥१६॥ पु० पृथक् छं० विवाद इ० यहां मा० मनुष्य कि० क्रियाक्रिय पु० पृथक् वा० वाद जा० उत्पत्ति बा० अज्ञानी का प० वैक्रेय कर दे० देहको [जा० जन्मा हुवा वा० अज्ञानी प० धीठाइ] प० वृद्धि करता है वे० वैर अ० असंयति ॥ १७ ॥ आ० आयुष्य क्षय अ० अज्ञानता म० ममत्व से० वे सा० साहसिक

जाणंति विमुक्खहेउं।१६।पुढोय छंदा इह माणवाओ।किरियाकिरीणं च पुढोय वायं॥जायस्स बालस्स पकुव्व देहं।(जायाइ वालस्स पगब्भणाए)। पवट्टाति वेर मसंजतस्स ॥१७॥

बंधमोक्ष कैसे होता है. तब वे ऐसा ही कहते हैं; कि हमारा दर्शन में ही मोक्ष है, अर्थात् हमारा मत को धारन करने वाले का मोक्ष होजाता है, परंतु अन्य का दर्शन में ऐसा नहीं हैं. इस तरह मानते हुवे वे पचन पाचनादिक आरंभ में आसक्त तथा अत्यंत गृद्ध घन मोक्ष का कारण जो श्रुत चारित्र रूप धर्म है उसे नहीं जानते हैं ॥ १६ ॥ इस लोक में जितने मनुष्य हैं वे अपने २ भिन्न २ अभिप्राय वाले हैं. क्रियावादि सर्व काल क्रिया को ही सफल मानते हैं. अक्रियवादी विना क्रिया इच्छित वस्तु की प्राप्ति मानते हैं. इस तरह पृथक् २ वाद हैं. जन्मा हुवा बालक का टुकडा करके उस का भक्षण करने में कितनेक सुख मानते हैं; इस से ज्यादा मूर्खता क्या होवे. ऐसे ही असंयति मूर्ख उन जीवों की साथ वैरकी वृद्धि करते हैं [हिंसादि प्रवृत्ति करने से जो धीठाइ उत्पन्न होती है उस से वैरकी वृद्धि होती है] ॥ १७ ॥ पापसे नहीं डरनेवाले

भि० साधु त० तृण फा० स्पर्श त० तथा सी० शीत स्पर्श उ० उष्ण दं० डांश मच्छरादि हि० सहे सु० सुगंध दु० दुर्गंध ति० सहे ॥ १४ ॥ गु० गुप्त व० वचन स० समाधि प० प्राप्त ले० परिणाम स० शुद्ध प० प्रवर्ते गि० गृह न० नहीं छा० छावे ण० नहीं छा० छवावे स० मिश्रभाव प० त्यजे प० प्रजा में ॥ १५ ॥ जे० जो के० कोइ लो० लोक में अ० अक्रिय आ० आत्मा अ० अन्य से पु० पुछाया हुवा धु० मोक्ष आ० बताते

अभिभूय भिक्खू । तणाइफासं तह सीयफासं ॥ उण्हं च दंसं च हियासएज्जा । सुब्भिव दुब्भिव तितिक्खएज्जा ॥ १४ ॥ गुत्तोवई एय समाहिपत्तो । लेसं समाहट्टु परिव्वएज्जा ॥ गिहं न छाए णवि छायएज्जा । संमिस्सभावं पयहे पयासु ॥ १५ ॥ जे केइ लोगंमि उं अकिरिय आया । अन्नेण पुट्ठा धुयमादिसंति ॥ आरंभसत्ता गढिता य लोय धम्मंण

दंश, मशक, सुरभिगंध इत्यादि सब को सहन करे ॥ १४ ॥ वचन गुप्त (विचार पूर्वक बोलनेवाला) साधु समाधिवन्त कहा जाता है. वह शुद्ध लेश्या को ग्रहण करके संयमानुष्ठान पाले. संयम में रहाहुवा स्वतः गृह नहीं छावे, दूसरे की पास छवावे नहीं और गृह छवाता होवे उसे अच्छा भी जाने नहीं. और अन्य भी ऐसा गृह संस्कार करे नहीं. और स्त्रियों में एकत्व भाव का त्याग करे ॥ १५ ॥ इस लोक में कितनेक अक्रियावादी ऐसा कहते हैं कि आत्मा अक्रिय है, आत्मा को क्रिया करने की नहीं है. प्रकृति सर्व क्रिया करती है. उन को कोई अन्य दर्शनी पूछे कि यदि तुम्हारा दर्शन में आत्मा अक्रिय है तो उन का

सो० शोक अ०संयम पालता हुवा ॥११॥ ए०अकेला ए०यह अ०भार्थे ए०ऐसा प० मोक्ष न० नहीं मु० मर्षा पा० देखो ए० यह प० मोक्ष अ० सत्य व० श्रेष्ठ अ० अक्रोधी स० सत्य र० रक्त त० तपस्वी ॥ १२ ॥ इ० स्त्री में आ० अरक्त मे० मैथुन में प० परिग्रह अ० नहीं करता हुवा उ० विविध प्रकार के वि० विषय में ता० तीरे मि० संशय रहित भि० साधु स० समाधि प० प्राप्त ॥ १३ ॥ अ० अरति र० रति अ० जीतकर

धूणे उरालं अणुवेहमाणे । चिच्चाण सोयं अणवेक्खमाणो ॥ ११ ॥ एगंत मेयं अभिपत्थएज्जा । एवं पमोक्खो न मुसंति पास ॥ एसप्पमोक्खो अमुसे वरेवि । अकोहणे सच्चरत्ते तवस्सी ॥ १२ ॥ इत्थिसु या आरय मेहुणाउ । परिग्गहं चेव अकुव्वमाणे उच्चावएसु विसएसु ताई । निस्ससयं भिक्खू समाहिपत्ते ॥ १३ ॥ अरइं रइं च

रा का स्वरूप जानकर शरीर को तपस्यादिक से कृश करे, तथा शरीर का ममत्वकी इच्छा नहीं करता हुवा शोक का त्याग करके चारित्र पाले ॥ ११ ॥ साधु एकत्व भावना भावे, कि जीव अकेला आया, अकेला जायगा. उस का सहायक कोइ नहीं है. इस तरह एकान्त भावना भावनेसे मोक्ष होता है इस में कुच्छ भी मिथ्या नहीं हैं. यही एकत्वाभिप्रायवाला मोक्ष सत्य और प्रधान है. जो साधु क्षमावान् सत्याग्रही तथा तपस्वी है वह भाव समाधिवाला कहा जाता है ॥ १२ ॥ मैथुन सेवन से निवर्तनेवाला, परिग्रह का संचय नहीं करनेवाला, विविध प्रकार के विषयों में रागद्वेष रहित तथा षट्काया का रक्षपाल साधु निश्चय ही समाधि को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ साधु रति, अरति, तृणस्पर्श, शीतस्पर्श, ऊष्ण स्पर्श,

दु० विषमत० इसलिये मे० पंडित स० जानकर ध० धर्म च० विचरे मु० साधु स० सर्वथा वि० रहित ॥९॥ आ० लाभ (छं० स्वछंद) ण० नहीं कु० करे इ० इस जी० जीवितव्यार्थी अ० न राचता प० प्रवर्ते णि० विचारकर आ० बोले वि० निवर्ते गि० गृद्धता हिं० हिंसा कारी ण० नहीं क० कथा क० करे ॥१०॥ आ० आधाकर्मी ण० नहीं नि० निष्कामी होवे णि० निष्काम ते० वे ण० नहीं सं० परिचय करे धु० कृषकरे उ० शरीर अ० निर्जरार्थ चि० छोडकर

समिक्ख धम्मं । चरे मुणी सव्वओ विप्पमुक्के ॥ ९ ॥ आयं (छंदं) ण कुज्जा इह जीविअट्ठी । असज्जमाणोय परिवएज्जा ॥ णिसम्म भासीय विणयि गिद्धिं । हिंसन्नियं वा ण कहं करेज्जा ॥१०॥ आहाकडं वा ण णिकामएज्जा । णिकामयं ते य ण संथवेज्जा ॥

कोइ परीताप देकर वैर की वृद्धि करता है अथवा आरंभ में आसक्त बनता है वह यहां से चवकर महा विषम नरकादिक स्थान में जाता है. इस लिये वीतराग भाषित श्रुत चारित्ररूप धर्म को सम्यक् प्रकार से जानकर पण्डित पुरुष सर्व भंग से निवर्तता हुवा संयम में विचरे ॥ ९ ॥ इस संसार में आजीविका के लिये द्रव्योपार्जन करने का उपाय करे नहीं, (अपनी इच्छानुसार कार्य करे नहीं) पुत्र कलत्रादिक में अनासक्त होता हुवा विचरे, शब्दादिक में गृद्धता का त्याग करके विचार पूर्वक भाषा बोले, और प्राणि की हिंसा होवे वैसी कथा करे नहीं ॥ १० ॥ पण्डित साधु आधा कर्मी आहार की वांछना करे नहीं, जो आधा कर्मी आहार की वांच्छना करते होवे उन की संगति भी करे नहीं, निर्ज-

नहीं कु० करे उ० सावधान होकर दी० दीनता पु० फीर वि० खूताहुवा सं० पूजा सि० श्लाघा क० कामी ॥ ७ ॥ आ० आधा कर्मी चे० निश्चय नि० लेने को नि० परिभ्रमण करे वि० खुता हुवा इ० स्त्री में स० आसक्त पु० फीर बा० अज्ञानी प० परिग्रह चे० निश्चय प० करता हुवा ॥ ८ ॥ वे० वैरानुगृद्धि (आ० आरंभ में आसक्त) णि० संचय क० करता है इ० यहां से० चु० मरकर दु० दुःख अ० परमार्थ से

तं समयाणुपेही । पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥ उट्ठाय दीणे य पुणो विसन्नो । संपूयणं चेव सिलोयकामी ॥ ७ ॥ आहाकडं चेव निकाममीणे । नियामचारीय विसण्णमेसी ॥ इत्थीसु सत्तेय पुढोय बाले । परिग्गहं चेव पकुव्वमाणे ॥ ८ ॥ वेराणुगिद्धे (आरंभसत्तो) णिचयं करोति । इओ चुतेसु दुहमट्ठ दुग्गं ॥ तम्हाउ मेधावि

भाव तथा अप्रीति भाव भी न करे, वे ही समाधिधर्म पाल सकते हैं. परंतु कितनेक संयम अंगीकार किये बाद उसे पालने में असमर्थ होने से छोड कर कुंडरीक की तरह संसारमें खूंचजातेहैं. कितनेक वस्त्र पात्रादिक से पूजा वांच्छते हैं तथा लोक में अपनी श्लाघा कराने के लिये व्याकरण ज्योतिषादिक कुशास्त्र का अभ्यास करते हैं ॥ ७ ॥ वह असमाधिवाला पुरुष आधाकर्मी आदि दोप को अत्यंत वांच्छता हुवा तथा उस में परिभ्रमण करता हुवा संसार रूपी कीचड में फसा रहता है. और भी वह मूर्ख स्त्री का हावभाव में आसक्त बनकर के स्त्री के लिये धन धान्यादिक का संचय करता हुवा पाप का संचय करता है॥ ८ ॥ जो

पात की० करता है पा० पाप कर्म नि० उदीरणा करता हुवा क० करता है क० कर्म ॥ ५ ॥ आ० दीन वृति (आ० दीन भोजनी) क० करते हैं पा० पाप मं० मानकरके ए० एकांत स० समाधि आ० कहा बु० तत्वज्ञ स० समाधि र० रक्त वि० विवेकी पा० प्राणी अ० अतिपात वि० विरत ठि० स्थितात्मा (ठि० स्थिर भूत) ॥ ६ ॥ स० सर्व ज० जगत् स० समता से पे० देखने वाला प० प्रिया प्रिय कं० किसको णो०

म्मसु पावएसु ॥ अतिवायतो कीरति पावकम्मं । निउज्जमाणे उ करेइ कम्मं ॥ ५ ॥
आदीणवित्ती व (आदीणभोइवि) करेति पावं । मंताउ एगंत समाहि माहु ॥
बुद्धे समाहीयरते विवेगे । पाणातिवाता विरते ठियप्पा (ठियच्ची) ॥ ६ ॥ सव्वं जगं

दिक जीव को अनेक संघट्टन परितापादिक से दुःख देता हुवा उसी पाप में दुःखी होता है. अर्थात् वैसे ही दुःखों का भोक्ता बनता है. अब पाप का स्वरूप कहते हैं. जीवों की घात स्वयं करके, या अन्य की घात करा के, या घात करनेवाले की अनुमोदना करके जीव ज्ञानावरणीयादि अष्ट प्रकार के कर्म बांधता है. ॥ ५ ॥ आदीनवृत्तिवाला (दीनता से आहार का लेनेवाला) भी रस लोलुपता से पाप कर्म बांधता है ऐसा जानकर श्री तीर्थंकर देवने आहारादिक में भी अरति न करना ऐसा एकान्त समाधि मार्ग बतलाया है. इस तरह समाधि में रहनेवाला तत्त्वज्ञ प्राणातिपातादिक की घात नहीं करता हुवा संयम में व्यवस्थित रहें ॥ ६ ॥ और सर्व जीवों को अपनी आत्मा समान देखे, किसी जीव पर प्रीति

धर्म वि० वितिगिच्छा ति० रहित ला० प्राप्त हुवे च० विचरे आ० आत्म तुल्य प० प्रजा आ० लाभ न० नहीं कु० करे इ० इस जी० जीवितव्यार्थी च० उपचय न० नहीं कु० करे सु० सुतपस्वी भि० साधु ॥३॥ स० सर्वेन्द्रिय अ० निवृत्त प० प्रजा च० विचरे मु० साधु स० सर्वथा वि० रहित पा० देखो पा० प्राणी पु० पृथक् २ स० सत्व दु० दुःख से अ० पीडाया हुवा प० दुःखी ॥ ४ ॥ ए० इन में बा० अज्ञानी (ए० ऐसे अज्ञानी) प० करते हुवे आ० पर्यटन करते हैं (आ० दुःख पाते हैं) क० कर्म पा० पाप अ० अति-

सुयक्खाय धम्मे वितिगिच्छतिण्णे । लाढे चरे आयतुले पयासु ॥ आयं न कुज्जा इह जीवियट्ठी । चयं न कुज्जा सुतवस्सि भिक्खू ॥ ३ ॥ सव्विंदियाभिनिव्वुडे पयासु ॥ चरे मुणी सव्वतो विप्पमुक्के ॥ पासाहि पाणेय पुढोवि सत्ते । दुक्खेण अट्टे परितप्पमाणे ॥ ४ ॥ एतेसु बालेय (एवं बालेय) पकुव्वमाणे । आवट्टति (आउट्टति) क-

समाधिवन्त पुरुष वीतरागभाषित धर्म को अच्छा कहा है ऐसा माने, तथा उस में संदेह रहित होवे, और सर्व जीवों को आत्म तुल्य मानता हुवा निर्दोष आहार की गवेषणा करके विचरे. असंयम जीवितव्य के लिये पापाश्रव करे नहीं वैसे ही सुतपस्वी साधु धन धान्यादिकका संचय भी करे नहीं ॥ ३ ॥ समाधिवन्त पुरुष स्त्रियोंमें निरभिलाषी होता हुवा सर्वथा प्रकारसे बाह्याभ्यंतर संग रहित विचरे. दुःखसे दुःखी तथा संसार रूप कीचडमें पचते हुवे प्राणि को पृथक् २ देख कर के उन की रक्षा करे ॥ ४ ॥ इस तरह पृथिव्या

समाधि नामक दशम मध्ययनम्

आ० कहा म० मतीमान् अ० जान कर ध० धर्म अं० सरल स० समाधि त० उसे सु० सुन अ० अम-तिज्ञ भि० साधु स० समाधि प० प्राप्त अ० नियाणा रहित सु० अच्छी तरह प० प्रवर्ते ॥ १ ॥ उ० ऊंची अ० नीची ति० तिर्यक् दि० दिशा में त० त्रस था० स्थावर जे० जो पा० प्राणी ह० हस्त पा० पाँव से से० संयम में रहा हुवा अ० अदत्त अ० दूसरे से णो० नहीं ग० ग्रहण करे ॥ २ ॥ सु० सूत्रख्यात ध०

आघं मईम मणुवीय धम्मं । अंजू समाहिं तमिणं सुणेह ॥ अप्पडिन्ने भिक्खू समाहि पत्ते । अणियाणभूते सुपरिवएज्जा ॥ १ ॥ उड्ढं अहेय तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर जेय पाणा ॥ हत्थेहिं पाएहिं य संजमित्ता । अदिन्नमन्नेसु य णो गहेज्जा ॥२॥

भावार्थ — श्री केवली भगवन्तने केवलज्ञान से जानकर धर्म कहा है कि जहां सरलता है, वहां समाधि है. ऐसी समाधि मैंने श्री केवली भगवन्त से सुनी है. वैसे ही तुझे कहता हूं सो सुन. जो साधु संयम पालने में इहलोक की तथा परलोक की वांच्छा न करे तथा आश्रव रहित होता हुवा संयम पाले वही साधु समाधि-वाला कहाजाता है ॥ १ ॥ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में जो त्रस और स्थावर जीव रहे हुवे हैं उन की हस्तसे, पॉव से या समस्त शरीर से हिंसा न करे वैसे ही अदत्तादानादि सुव्रत अंगीकार करे ॥ २ ॥

से मुक्त न० नहीं अ० इच्छते हैं जी० जीवितव्य ॥ ३४ ॥ अ० अगृद्ध स० शब्द फा० स्पर्श में आ० आरं-भ में अ० अनासक्त स० सर्व तं० उनको स० धर्मसे अ० गया हुवा ज० जो ए० यह ल० कहा ब० बहुत ॥ ३५ ॥ अ० बहुत मा० मान मा० माया च० और तं० उसे प० जानकर पं० पंडित गा० गर्व स० सर्व णि० निर्वाण सं० साधे मु० साधु त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ३६ ॥ *

जीवियं ॥ ३४ ॥ अगिद्धे सद्दफासेसु । आरंभेसु अणिस्सिए ॥ सव्वं तं समयाती-तं । जमेतं लवियं बहु ॥ ३५ ॥ अइमाणं च मायं च । तं परिण्णाय पंडिए ॥ गारवाणि य सव्वाणि । णिव्वाणं संधए मुणी—त्तिबेमि ॥ ३६ ॥ इति धम्मनामं नवम मज्झयणं समत्तं * * *

असंयम जीवितव्य की वांच्छा नहीं करते हैं ॥ ३४ ॥ शब्द, रूप, गंध, रस, और स्पर्श इत्यादि में अमू-च्छित तथा आरंभ में अनासक्त प्रवर्तना. और अध्ययन का प्रारंभ से लगाकर जो जो कहा है. सो सो जनागम से विरुद्ध है, ऐसा जानकर उस का आचार करे नहीं ॥ ३५ ॥ असंत क्रोध, मान, माया तथा लोभ और रस गारव, ऋद्धि गारव तथा साता गारव का सर्वथा परिहार करे और मुक्ति की वांच्छना करे. यह धर्म नामा नवम अध्ययन समाप्त हुवा. इस में धर्म का अधिकार कहा. वह धर्म समाधि विना नहीं हो सकता है. इस लिये समाधि का स्वरूप बतानेवाला दशमा अध्ययन कहते हैं.

कोलाहल क० करे ॥ ३१ ॥ ल० प्राप्त हुवे का० काम भोगको ण० नहीं प० वांच्छे वि० विवेक ए० ऐसा आ० कहा आ० आचरणीय सि० सीखे बु० गुरू की अं०पास स० सदा ॥३२॥ सु० सुनने की इच्छावाला उ० रहे सु० गीतार्थ सु० सुतपस्वी वी० वीर जे० जो अ० आत्मप्रज्ञी धि० धैर्यवन्त जि० जितेन्द्रिय ॥३३॥ गि० गृह में दी० ज्ञान अ० नहीं देखता हुवा पु०पुरुष दा० आदानीय न०मनुष्य ते०वे वी०वीर बं० बंधन

सुमणे अहियासिज्जा । णय कोलाहलं करे ॥ ३१ ॥ लद्धे कामे ण पत्थेज्जा। विवेगे एव माहिए ॥ आयरियाइं सिक्खेज्जा । बुद्धाणं अंतिए सया ॥ ३२ ॥ सुस्सूमाणो उवासेज्जा । सुप्पन्नं सुतवस्सियं ॥ वीरा जे अत्तपन्नेसी । धितिमंता जिइन्दिया ॥ ३३ ॥ गिहेदीवम पासंता । पुरिसा दाणिया नरा ॥ ते वीरा बंधणुम्मुक्का । नावकंखंति

करे नहीं और अच्छा मन से सब सहन करे. वैसे ही परीषह का दुःख से कोलाहल भी नहीं करे ॥ ३१ ॥ प्राप्त काम भोगों को साधु भोगवे नहीं. यही विवेक श्री तीर्थंकर देवने कहा है. आचरणीय जो ज्ञानदर्शन चारित्र उन को आचार्यादिक की पास से शीखे ॥ ३२ ॥ जो साधु वीर, सत्यबुद्धि के गवेषनेवाले, धर्मवंत तथा जीतेन्द्रिय होवें वे शास्त्र सुनने के इच्छुक बनकर गीतार्थ तथा सम्यक् तप के करनेवाले गुरु की सेवा करें ॥ ३३ ॥ सत्यमार्ग की गवेषणा करनेवाले मनुष्य गृहवास में ज्ञान रूप दीपक को अथवा संसार में से उद्धार होनेका नहीं देखते हैं, इस से वे साधुपना धारन करते हैं. फिर रागद्वेष रूपी बंधन से मुक्त जीव

ण० नहीं सं० संसर्ग भ० सेवे सु० सुखरूप त० तहां उ० उपसर्ग प० जाने ते० वे वि० विद्वान् ॥ २८ ॥ न० नहीं अं० अंतराय प० गृहस्थ के घर में णि० वैठे गा० गाम के कु० कुमार कि० क्रीडा न० नहीं अ० समय प्रसारे ह० हसे मु० साधु ॥ २९ ॥ अ० अनुत्सुक उ० अच्छे भोग में ज० यत्नावंत प० प्रवर्ते च० विचरे अ० अप्रमादी पु० स्पर्शाया हुवा त० तहां हि० सहनकरे ॥ ३० ॥ ह० हणाया हुवा ण० नहीं कु० क्रोध करे वु० बोलाया हुवा न० नहीं सं० प्रज्वले सु० समभाव से अ० सहन करे ण० नहीं को०

ननत्थ अंतराएणं । परगेहेण णिसीयए ॥ गामकुमारियं किड्डं । नाति-वेलं हसे मुणी ॥ २९ ॥ अणुस्सओ उरालेसु । जयमाणो परिव्वए ॥ चरियाए अप्प मत्तो । पुट्ठो तत्थ हियासए ॥ ३० ॥ हम्ममाणो ण कुप्पेजा । वुच्चमाणो न संजले ॥

॥२८॥ साधु गृहस्थ के वहां वृद्धावस्था तथा रोगादिक कारण विना वैठे नहीं * वैसे ही ग्राममें बालक क्रीडा, हास्य, कंदर्प, हस्त स्पर्श आदि भी करे नहीं, तथा प्रतिलेखनादिक की मर्यादा को भी उलंघे नहीं ॥ २९ ॥ गृहस्थ के प्रधान कामभोगों में अनासक्त होता हुवा, तथा संयम में यत्ना करता हुवा अप्रमत्तपने विचरे. और विहार करने में जो जो उपसर्ग परीषह आवे उन्हे अदीनपने से सहन करे ॥ ३० ॥ कोई लकडी मुष्ट्यादिक से प्रहार करे या तो कोई दुर्वचन से आक्रोश उत्पन्न करे; परंतु उन के पर क्रोध

* लब्धिवन्त साधु धर्मोपदेश करने के लिये गृहस्थ के गृह में वैठे ऐसा टीकाकार कहते हैं.

ण० नहीं व० प्रकाशे म० मर्म मा० माया स्थान वि० वर्जे अ०विचार कर वि०बोले ॥२५॥ त०उसमें इ० यह त० तीसरी भा०भाषा जं०जो व०बोलनेसे अ०दुःखहोता है जं०जो छ०हिंसक तं०उसे न०नहीं व०बोले ए०यह आ० आज्ञा णि० निर्ग्रन्थ की ॥ २६ ॥ हो० मूर्ख स० मित्र गो० नीच गोत्रिय नो० नहीं व० बोले तु० तू तू अ० अमनोज्ञ स० सर्वथा तं० उसे ण० नहीं व० बोले ॥ २७ ॥ अ० अकुशील स० सदा भि० साधु

अणुचिंतिय वियागरे ॥ २५ ॥ तत्थिमा तइया भासा । जं वदित्ता णुतप्पति ॥ जं छन्नं तं न वत्तव्वं । एसा आणा णियंठिया ॥ २६ ॥ होलावायं सहीवायं । गोयावायं च नो वदे ॥ तुमं तुमंति अमणुन्नं । सव्वसो तं ण वत्तए ॥२७ ॥ अकुसलिेसया भिक्खू । णेव संसग्गियं भए ॥ सुहरूवा तत्थुवस्सग्गा ।पडिबुज्झेज्ज ते विऊ॥२८॥

॥ २५ ॥ सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार ये चार भाषा हैं इन में से तीसरी मिश्र भाषा की जिससे अपने को पश्चाताप करनापडे वैसी भाषा बोले नहीं तथा हिंसाकारी वचन बोले नहीं यही तीर्थंकर देव की आज्ञा है ॥ २६ ॥ रे मूर्ख, रे सखी, अरे नीच गोत्रिय, अरे तूरे ऐसे अमनोज्ञ शब्द बोलने का त्याग करे क्यों की साधु को ऐसा वचन बोलना योग्य नहीं है ॥ २७ ॥ पण्डित सदा ब्रह्मचारी रहे. और जिन शासन से विरुद्ध अनाचारी पार्श्वस्थ का संसर्ग करे नहीं. क्यों कि इस से सुखरूप संयम के घात करने वाले उपसर्ग उत्पन्न होते हैं. इसलिये संयम का घातक संसर्ग को जान कर उन का परिहार करे.

वंदन पू० पूजा स० सर्व लो० लोक में जे० जो का० काम तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ २२ ॥ जे० जिससे णि० निर्वाह भि० साधु अ० अन्न पा० पानी त० तथाविध अ० अयुक्त अ० दुसरे को तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ २३ ॥ ए० ऐसा उ० कहा नि० निर्ग्रन्थ म० महावीर म० महामुनि अ० अनंत ज्ञान दर्शी से० वह ध० धर्म दे० कहा सु० श्रुत ॥ २४ ॥ भा० बोलता हुवा न० नहीं भा० बोले

णा ॥ सव्वलोयंसि जे कामा । तं विज्जं परिजाणिया ॥ २२ ॥ जेणेह णिव्वहे भिक्खू । अन्नपाणं तहाविहं ॥ अणुप्पयाण मन्नेसिं । तं विज्जं परिजाणिया ॥ २३ ॥ एवं उदाहु निग्गंथे । महावीरे महामुणी ॥ अणंतनाणदंसी से । धम्मं देसितवं सुतं ॥ २४ ॥ भासमाणो न भासेज्जा । णेव वंफेज्ज मम्मयं ॥ मातिट्ठाणं विवज्जेज्जा ।

रहे हुवे कामभोगों को जानकर पण्डित पुरुष परिहरे ॥ २२ ॥ जिस आहार पानी से संयति साधु अपना निर्वाह करता है उसको तथाप्रकार से देखकर ग्रहण करे. और उसे अन्य असंयति को देना यह अनर्थकारी है ऐसा जानकर परिहार करे ॥ २३ ॥ इस तरह अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी महामुनि वीर भगवानने चारित्ररूप धर्म तथा सिद्धांत को प्रकाशित किया ॥ २४ ॥ गुर्वादिक बोलते होवे उन की बीचमें बोले नहीं, किस का मर्म प्रकाशे नहीं, और माया से वचन बोले नहीं परंतु कार्य प्रसंगे विचार पूर्वक बोले

करे मु० साधु वि० निर्जीव वा० या वि० दूरकरके ण० नहीं अ० मर्दन करे क० कदाचित् ॥ १९ ॥ प० दुसरे के पात्र में अ० आहार पानी ण० नहीं भुं० भोगवे क०कदाचित् प०दुसरे कावस्त्र अ०वस्त्र रहित तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ २० ॥ आ० माचा प० पलंग णि० बैठक गि० गृहान्तर सं० कुशलता पूछना स० स्मरण तं० उसे वि० विद्वान् प०जानकर ॥२१॥ ज०यशः कि०कीर्ति स०श्लाघा जा०प्रकार वं०

उच्चारं पासवणं । हरिएसु ण करे मुणी ॥ वियडेण वावि साहट्टु । णावमज्जेकयाइ-वि ॥ १९॥ परमत्ते अन्नपाणं । ण भुंजेज्ज कयाइवि ॥ परवत्थं अचेलोवि । तं विज्जं परिजाणिया ॥ २० ॥ आसंदीपलियंकेय । णिसिज्जं च गिहंतरे ॥ संपुच्छणं सरणं वा । तं विज्जं परिजाणिया ॥ २१ ॥ जसं किंत्तिसलोयं च । जाय वंदण पूय-

को पण्डित पुरुष जानकर परिहरे ॥ १८ ॥ साधु हरिकाय पर वडीनीत लघुनीत करे नहीं वैसे ही अचित्त पानी से कदापि इस को दूर करे नहीं ॥ १९ ॥ साधु को गृहस्थ के वहां जाकर उन के धातु पात्र में कदापि भोजन करना नहीं. स्वयं अचेल होने से गृहस्थ का जो आसन माचा, पलंग प्रमुख उस पर बैठना, गृहस्थ के घर में बैठना, गृहस्थ को कुशलादिक का पुछना तथा पूर्व क्रीडादिकको याद करना इन सब को पण्डित पुरुष जानकर परिहरे ॥ २१ ॥ यश, कीर्ति, श्लाघा, वंदन, पूजन, तथा सर्व लोक में

उ० प्रक्षालन क० पीठी तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥१५॥ सं० असंयाति क० कीहुई कि० क्रिया प० प्रश्न त० निर्णय सा० शैय्यांतर पिं० आहार तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १६ ॥ अ० अर्थोपार्जन न० नहीं सि० शीखे वे० अधर्मवाक्य णो० नहीं व० वोले ह० हस्तकर्म वि० विवाद तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १७ ॥ पा० परगखी छ० छत्र णा० द्यूत वा० पंखा प० अन्य से क्रिया अ० अन्योन्यसे तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १८ ॥ उ० वडीनीत पा० लघुनीत ह० हरिकाय में णा० नहीं क०

परिजाणिया ॥ १५ ॥ संपसारी कयकिरिए । पसिणाय तणाणिय ॥ सागारियं च पिंडं च । तं विज्जं परिजाणिया ॥ १६ ॥ अट्ठावयं न सिक्खिज्जा । वेहाईयं च णो वए ॥ हत्थकम्मं विवायं च । तं विज्जं परिजाणिया ॥ १७ ॥ पाणहा उयछत्तं च । णालीयं वालवीयणं ॥ परकिरियं अन्नमन्नं च । तं विज्जं परिजाणिया ॥ १८ ॥

कारण जानकर परिहार करना ॥ १५ ॥ गृहस्थका कार्य करना, गृहस्थ का कार्यकी प्रशंसा करना, ज्योतिपादिक का निर्णय करना, तथा शैय्यांतर पिण्ड का आहार लेना इन सब को कर्मबन्ध का कारण जानकर त्यागना ॥ १६ ॥ अर्थ कमानेका उपाय (यां तो द्यूत क्रीडा) शीखें नहीं, हिंसाकारी वचन बोलें नहीं हस्त कर्म, कलह तथा किसी प्रकार का विवाद पण्डित पुरुषों जानकर करें नहीं ॥ १७ ॥ पॉव में पगरखी, पावडी, मौजे विगेरह पहिनना, धुप का निवारन के लिये छत्र धारन करना, द्यूत खेलना, पंखा से हवा करना, अपना कार्य गृहस्थ पास कराना, या तो परस्पर कार्य करना इन सब

अंजन प० शरीर शृंगार तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥१२॥ गं० सुगंध म० माला सि० स्नान दं० दातन त० तथा प० परिग्रह इ० स्त्रीकर्म तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १३ ॥ उ० उद्देशिक की० मोल लीया हुवा पा० उधार लीया हुवा चे० निश्चय आ० लाया हुवा पू० आधाकर्मी अ० अशुद्ध तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १४ ॥ आ० बलीष्ट आहार अ० अंजनादि गि० गृद्धि उ० उपघातकर्म

वमणंजणपलीमंथं । तं विज्जं परिजाणिया ॥ १२ ॥ गंधमल्लसिणाणं च । दंतपक्खालणं तहा ॥ परिग्गहित्थिकम्मं च । तं विज्जं परिजाणिया ॥ १३ ॥ उद्देसियं कीयगडं । पामिच्चं चेव आहडं ॥ पूयं अणेसणिज्जं च । तं विज्जं परिजाणिया ॥१४॥ आसूणि मक्खिरागं च । गिद्धुवघायकम्मगं ॥ उच्छोलणं च कक्कं च । तं विज्जं

भावार्थ

परिहार करे ॥ १२ ॥ गंध, कुसुमादिक की माला, स्नान, दंतप्रक्षालन, परिग्रह, स्त्री कर्म इत्यादिक को ज्ञ परिज्ञा से जानकर उस का त्याग करे ॥ १३ ॥ साधु के निमित्त कियाहुवा, मोल लियाहुवा, उधार लिया हुवा, सामने लायाहुवा, तथा पूति कर्मवाला आहार अनेषणिक जानकर साधु को ग्रहण करना नहीं ॥१४॥ जिस वस्तु खाने से विकार उत्पन्न होवे वैसी वस्तु, आंख का अंजनादिक, रस लोलुपता, दूसरे की घात करना, हस्तपादादिक का धोना, तथा लोद्र पीठी आदि से शरीर का साफ करना,--इन को कर्मबन्ध का

कायासे तं०उसको वि०विद्वान् प०जानकर म०मनसे का०कायासे व०वचनसे ण०नहीं आ०आरंभी ण०नहीं प०परिग्रही ॥९॥ मु०मृषावाद व०मैथुन उ०परिग्रह अ०अदत्त स०शस्त्र आ०आदान लो०लोकमें तं०उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १० ॥ प० माया भ० लोभ थं० क्रोध उ० मान धू०त्यजे आ० आदान लो० लोक में तं०उसे वि०विद्वान् प०जानकर॥११॥ धो०धोना र०रंगना व०नखादिका सुधारना वि०जुलाव व०वमन अं०

हिं काएहिं । तं विज्जं परिजाणिया ॥ मणसा कायवक्केणं । णारंभी ण परिग्गही॥९॥ मुसावायं वहिद्धं च । उग्गहं च अजाइयं ॥ सत्था दाणाइं लोगंसि । तं विज्जं परि-जाणिया ॥ १० ॥ पलिउंचणं च भयणं च ।. थंडिल्लुस्सयणाणिय ॥ धूणादाणाइं लोगंसि । तं विज्जं परिजाणिया ॥ ११ ॥ धोयणं रयणं चेव । वत्थीकम्मं विरेयणं॥

ये पांच इस लोक में शस्त्ररूप तथा कर्म ग्रहण करने के कारण हैं. उसे पण्डित ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्या-ख्यान परिज्ञा से त्यागे ॥ १० ॥ क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों कषायें लोक में कर्म ग्रहण करने के कारण हैं. इस लिये पण्डित उसे ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागे ॥ ११ ॥ हस्त, पॉंव वस्त्रादि धोना, रंगना, नख रोमादिक का अच्छा करना, जुलाव लेना, वमन करना, अंजन करना, ये संस्कार तथा अन्य शरीरादि संस्कारों संयम के उपघात करनेवाले हैं ऐसा जानकर उसका

परमार्थ गामी नि० निर्ममत्वी नि० निरहंकारी च० विचरे भि० साधु जि० जिनाज्ञा में ॥ ६ ॥ चि० छोडकर वि० धन पु० पुत्र णा० ज्ञाति प० परिग्रह चि० छोडकर अं० अन्तक (णं० अनन्तक) सो० शोक नि० निरपेक्षी प० प्रवर्ते ॥ ७ ॥ पु० पृथ्वी आ० अप् अ० तेउ वा० वायु त० तृण रु० वृक्ष बी० बीज अं० अंडज पो० पोतज ज० जरायुज र० रसज सं० स्वेदज उ० उद्भिज ॥ ८ ॥ ए० इन छ०

चरे भिक्खू जिणाहियं ॥६॥ चिच्चा वित्तं च पुत्तेय । णाइओ य परिग्गहं ॥ चिच्चा-
ण अंतगं (णंतगं) सोयं । निरवेक्खो परिव्वए ॥ ७ ॥ पुढवी आउगाणि वाऊ ।
तण रुक्खस बीयगा ॥ अंडया पोय जराऊ । रस संसेय उब्भिया ॥ ८ ॥ एतेहिं छ-

ऐसा सम्यक् प्रकार से विचार करके मोक्षानुगामी साधु निर्ममत्व और निरहंकारी होता हुवा जिन भाषित संयम मार्ग को आचरे ॥ ६ ॥ धन, पुत्र, ज्ञाति, स्वजन परिग्रह तथा अनंत शोक का त्याग करके पुत्रादिक की अपेक्षा रहित विचरे ॥ ७ ॥ पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, तृण, वृक्ष, बीज आदि वनस्पति काय, तथा अण्डज, पोतज, जरायुज, संस्वेदज और उद्भिज ये त्रस काय. इन छही काया के सूक्ष्म बादर पर्याप्ता, अपर्याप्ता, इत्यादि भेदों को ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञासे मन, वचन और काया करके आरंभ परिग्रह करे नहीं. क्यों कि आरंभ परिग्रह करने से पूर्वोक्त जीवों की विराधना होती है. यह प्राणातिपात नामक प्रथम व्रत का अधिकार कहा ॥ ८-९ ॥ मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह

सं० आसक्त का० कामी न० नहीं ते० वे दु० दुःख के वि० विमोचक ॥ ३ ॥ आ० मरण का कि० कृत्य आ०करके ना० ज्ञाति वि०विषयासक्त अ०अन्य ह०हरते हैं तं० उसका वि० धन क० कर्मी क०कर्म से कि० दुःखपाता है ॥४॥ मा० माता पि० पिता ण्हु० पुत्रवधू भा० भाई भ० भार्या पु० पुत्र ओ० अंगजात न० नहीं ते०वे त०तुझे ता० रक्षणार्थ लु० दुःख पाते है स० कर्मसे ॥ ५ ॥ ए० यह अ० अर्थ स० देखकर प०

पवड्डइ ॥ आरंभसंभिया कामा । न ते दुक्खविमोयगा ॥ ३ ॥ आघाय किच्च माहेउं । नाइओ विसएसिणो ॥ अन्ने हरंति तं वित्तं । कम्मी कम्मेहिं किच्चति ॥ ४ ॥ माया पिया ण्हुसा भाया । भज्जा पुत्ताय ओरसा ॥ नालं ते तव ताणाय । लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ५ ॥ एय मट्ठं सपेहाए । परमट्ठाणुगामियं ॥ निमम्मो निरहंकारो ।

लुब्ध धनकर के जो जीवों की घात करते हैं वे इस संसार में उन जीवों की साथ वैर की वृद्धि करते हैं. अथवा पाप की वृद्धि करतेहैं. जो कामभोग हैं वे आरंभ से भरे हुवे हैं; इस लिये कामभोग में आसक्त पुरुष संसार का दुःख से मुक्त नहीं होतेहैं॥३॥ विषयासक्त ज्ञाति स्वजनादि उस मृतक पुरुष को अग्नि संस्कारादि करके उस का उपार्जित किया हुवा द्रव्य ले जाते हैं. और धन का कमानेवाला अपना कर्मों से संसार में पीडित होता है ॥ ४ ॥ माता, पिता, पुत्रवधू, भ्राता, भार्या, पुत्र और अंगजात ये सर्व कर्म भोगवनेवाले जीव को शरणभूत नहीं होते हैं ॥ ५ ॥ धर्म रहित जीव को रखने में कोई समर्थ नहीं है,

॥ धर्म नामकं नवम मध्ययनम् ॥

क० कौनसा ध० धर्म अ० कहा मा० महात्मा म० बुद्धिमान् अं० सरल ध० धर्म ज० यथा तथ्य जि० जिनेश्वर का (जा० लोको) त० उसे सु० सुनो मे० मुझे ॥ १ ॥ मा० ब्राह्मण ख० क्षत्रिय वे० वैश्य चं० चांडाल अ० अथवा वो० बुक्कस ए० तापस वे० वाणिक सु० शूद्र जे० जो आ० आरंभ णि० निश्रित ॥ २ ॥ प० परिग्रण नि० गृद्ध वे० वैर [पा० पाप] ते० उन में प० वृद्धिहोती है आ० आरंभ

कयरे धम्मे अक्खाए । माहणेण मतीमता ॥ अंजुधम्मं जहातच्चं । जिणाणं (जण-गा) तं सुणेहमे ॥ १ ॥ माहणा खत्तिया वेस्सा । चंडाला अदु वोक्कसा ॥ एसिया वेसिया सुद्दा । जेय आरंभ णिस्सिया ॥ २ ॥ परिग्गह निविट्ठाणं । वेरं (पावं) तेसिं

श्री जम्बू स्वामी सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं कि अहो पूज्य ! केवली भगवन्त श्री महावीर देवने कैसा धर्म कहा ? श्री जम्बू स्वामीने जब ऐसा प्रश्न किया तब सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं कि:—वीत-राग भाषित धर्म सरल शुद्ध तथा यथातथ्य है. ऐसा श्री तीर्थंकर का धर्म मैं कहता हूं, उसे सुनो. अथवा अहो लोकों मैं कहता हूं उसे सुनो ॥ १ ॥ इस जगत् में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चाण्डाल, बुक्कस, [वर्ण शंकर] तापस, वैश्य और शूद्र इत्यादि आरंभ के करनेवाले हैं ॥ २ ॥ आरंभ और परिग्रह में

अ० अल्पाहारी पा० अल्पपानी पीनेवाला अ० अल्प भा० बोले सु० सुव्रति खं० क्षमावन्त अ० अनाश्रवी दं० दमनेन्द्रिय वी० अगृद्धि स० सदा ज० यत्नावंत ॥ २५ ॥ झा० ध्यान जो० जोग स० निग्रही का० काय वि० त्यागे ति० परीषह प० परम ण० जान कर आ० मोक्ष तक प० प्रवर्ते त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २६ ॥

* * *

भासेज्ज सुव्वए ॥ खंते भिनिव्वुडे दंते । वीलगिद्धी सदाजए ॥ २५ ॥ झाणजोगं समाहट्टु । कायं विउसेज्ज सव्वसो ॥ तितिक्खं परमं णच्चा। आमोक्खाए परिव्वएज्जासि त्तिबेमि ॥ २६ ॥ इति वीरिइ नाम मट्ठमज्झयणं सम्मत्तं

*

वाला, अल्प पानी का भोगनेवाला, पर को हितकारक वचन बोलनेवाला, सुव्रति, क्षमावान शीतल परिणामी, इन्द्रियों का दमनेवाला, तथा रस लोलुप्त रहित साधु शुभ ध्यान कों आदरकर, काया का अकुशल योग की प्रवृत्ति का त्याग कर परिषह सहन करना यह प्रधान धर्म है; ऐसा जानकर जहां लग मोक्ष न होवे वहां लग दीक्षा पाले. ऐसा श्री तीर्थंकर देव की आज्ञानुसार मैं कहता हूं यह वीर्याख्य अष्टम अध्ययन समाप्त हुवा. इस अध्ययन में बाल वीर्य और पण्डित वीर्य का वर्णन कहा. जो धर्म में उद्यम कियाजाता है उसे पण्डित वीर्य कहते हैं. इस लिये धर्म नामक नवमा अध्ययन कहते हैं. ॥ ९ ॥

असम्यक्त्वी अ० अशुद्ध ते० उनका प० वीर्य स० सफल हो० होता है स० सर्वतः ॥ २२ ॥ जे०
जो बु० बुद्धिवन्त म० भाग्यवन्त वी० वीर स० सम्यक्त्वी सु० शुद्ध ते० उनका प० वीर्य अ० नि-
ष्फल हो० होता है स० सर्वतः ॥ २३ ॥ ते० उनका त० तप अ० अशुद्ध नि० निकल कर जे० जो
म० महत् कु० कुल ज० जो व० निरर्थक वि० जानते हैं न० नहीं सि० प्रशंसनीय प० वर्जे ॥२४॥

अबुद्धा महाभागा। वीरा असमत्तदंसिणो ॥ असुद्धं तेसिं परक्कंतं। सफलं होइ सव्वसो ॥ २२ ॥ जेय बुद्धा महाभागा। वीरा सम्मत्तदंसिणो ॥ सुद्धं तेसिं परक्कंतं। अफलं होइ सव्वसो ॥ २३ ॥ तेसिंपि तवो असुद्धो। निक्खंता जे महाकुला ॥ जन्ने वन्ने वियाणंति। नसिलोगं पवेज्जए ॥ २४ ॥ अप्पपिंडासि पाणासि। अप्पं

कितनेक इस जगत्में व्याकरणादि शास्त्र पढकर विद्वान होते हैं, परंतु तत्त्व के अजान होनेसे वे मिथ्या मार्ग में
पराक्रम फोडते हैं इस लिये उन का ऐसा कर्तव्य कर्म जनक होता है ॥ २२ ॥ और पुण्यात्मा भाग्य-
शाली तत्त्वज्ञ जो पराक्रम करते हैं सो कर्मबंध रहित होते हैं ॥ २३ ॥ जो महत् कुलका त्याग करके साधु
होते हैं, और महिमा पुजा के लिये तपस्यादिक करते हैं, उन का तप अशुद्ध जानना. और जो आत्म-
श्लाघा की इच्छा न करते हुवे तप करते हैं, उन का तप शुद्ध जानना ॥ २४ ॥ अल्प आहार का करने-

ता गा० गर्व णि० आशक्त उ० उपशान्त णि० आचरे ॥ १८ ॥ पा० प्राणी का ण० नहीं अ० वधकरे अ० अदत्त अ० नहीं आ० ग्रहण करे सा० माया युक्त ण० नहीं मु० मृषा बू० बोले ए० यह ध० धर्म वु० संयमी का ॥ १९ ॥ अ० उलंघते हैं वा० वचन से म० मन से न० नहीं प० वांच्छे स० सर्व सं० संवृाति दं० दमनेन्द्रिय आ० संयम को सु० अच्छी तरह आचरे ॥ २० ॥ क० किया क० कराता हुवा आ० आगे पा० पाप स० सर्व तं० उसे णा० अच्छा जा० जानते हैं आ० आत्मगुप्त जि० जितेन्द्रिय ॥ २१ ॥ जे० जो अ० मूर्ख म० महा भाग्यवन्त वी० वीर अ०

ए । उवसंते णिहेचरे ॥ १८ ॥ पाणेय णाइवाएज्जा । अदिन्नं पियणादए ॥ सादियं ण मुसं बूया। एस धम्मे वुसीमओ ॥१९॥ अतिक्कम्मंति वायाए। मणसा वि न पत्थ- ए ॥ सव्वओ संवुडे दंते । आयाणं सुसमाहरे ॥ २० ॥ कडं च कज्जमाणं च । आगामिस्सं च पावगं ॥ सव्वं तं णाणुजाणंति । आयगुत्ता जिइंदिया ॥ २१ ॥ जे

तथा माया रहित पुरुष संयमानुष्ठान आचरे ॥ १८ ॥ प्राणियों का प्राण नहणे, दंतशोधन भी विना दिया न लेवे, और माया सहित मृषा न बोले. यही संयमवन्त साधु का धर्म कहा है ॥ १९ ॥ संयमी मुनि मन, बचन, और काया से महाव्रत को उलंघना वांच्छे नहीं और गुप्तेन्द्रिय बनकर सम्यक् ज्ञानादिक को तथा शुद्ध आहार को ग्रहण करे ॥२०॥ आत्मगुप्त, महानुभाव, साधु अपने को उद्देश कर जो पाप किया होवे, कराता होवे या भविष्यमें करायगा उसे मन वचन और कायासे अच्छा जाने नहीं ॥२१॥

कूर्म स० अपना अं० अंग स० अपना दे० शरीर स० संवरे ए० ऐसें पा० पाप मे० पंडित अ० आ-
त्मा से स० संवरे ॥ १६ ॥ सा० संवरे ह० हस्त पा० पग म० मन पं० पांच इन्द्रि पा० पाप प०
परिणाम भा० भाषा दो० दोष ता० तैसा ॥ १७ ॥ अ० थोडा (अ० बहुत) मा० मान मा०
माया तं० उसे प० जानकर पं० पंडित [सु० सुना मे० मैंने इ० यहां ए० कितनेक ए० ऐसा वी
वीरका वी० वीर्य] (आ० आत्मार्थ स० समाचरे ए० ऐसा वी० वीरका वी० वीर्य) सा० सा-

सए देहे समाहरे ॥ एवं पावाइं मेधावी । अज्झप्पेण समाहरे ॥ १६ ॥ साहरे हत्थ
पाए य । मणं पंचेंदियाणिय ॥ पावकं च परीणामं । भासा दोसंच तारिसं ॥ १७ ॥
अणु (अइ) माणं च मायं च । तं पडिन्नाय पंडिए ॥ (सुयंमे इह मेगेसिं । एयं
वीरस्स वीरियं) (आय तट्ठं समादाय) (एयं वीरस्स वीरियं) साता गारव णिहु-

है. वैसे ही पण्डित पुरुष सम्यक् दर्शनादिक भावना से पापकर्म को मरण कालपर्यंत दूर करे ॥ १६ ॥
मुनि काचवा की तरह हस्त, पाद अंगोपांग, मन, पंचेन्द्रिय, पापाकारी परिणाम, तथा भाषा दोष को
संवरे ॥ १७ ॥ अल्प मान, माया, क्रोध, लोभ या अति मान, माया क्रोध, लोभ को जानकर त्याग
करना. यही वीर पुरुष का वीर्य कहा गया है. अथवा मोक्षार्थी पुरुष चारित्र को अच्छी तरह अंगीकार
करके क्रोधादिक जीतने का उद्यम करे. यही वीर पुरुष का वीर्य है. और साता गर्व रहित, क्षमावान

ए० ऐसे आ० ग्रहण करके मे० मेधावी अ० आत्मा को गि० गृद्धता से उ० दूरकरे आ० आ-
र्य को उ० आदरे स० सर्व ध० धर्म को अ० अगोपित ॥ १३ ॥ स० स्वमतिसे ण० जानकर
ध० धर्मसार सु० सुने वा० या स० सावधान हुवा अ० साधु प० प्रत्याख्यानकर पा० पाप ॥१४॥
जं० जो० किं० किंचित् क० कर्म जा० जानकर आ० आयुष्य क्खे० कुशल अ० अपना त०
उसका अं० बीच में खि० शीघ्र सि० शिक्षा सि० ग्रहण करे पं० पंडित ॥ १५ ॥ ज० जैसे कु०

धम्म मकोवियं ॥ १३ ॥ सह सम्मइए णच्चा । धम्मसारं सुणेतु वा ॥ समुवट्ठिएउ अ-
णगारे । पच्चक्खाय पावए ॥ १४ ॥ जं किंचुवक्कमं जाणे । आउक्खेमस्स अप्प-
णो ॥ तस्सेव अंतराखिप्पं । सिक्खं सिक्खेज्ज पंडिए ॥ १५ ॥ जहा कुम्मे सअंगाइं।

जानकर पण्डित पुरुषों को स्वजनादिक से ममत्व त्यागना, और सर्व धर्म में प्रधान अगोपित ऐसा जो आर्य धर्म उस को अंगीकार करना ॥ १३ ॥ जाति स्मरणादिक ज्ञान से, अथवा गुरु आदिकी पास से धर्म का सार जो चारित्र उसे सुनकर अंगीकार करना. और पण्डित वीर्य संपन्न साधु को संयम में उद्यमवन्त वन करके सावद्यानुष्ठान का त्याग करना ॥ १४ ॥ जो कोई क्षेम कुशलता से अपना आयुष्य का क्षय जाने तो शीघ्र ही वीच में संलेखना रूप शिक्षा को धारण करना और उसे मरणावधि पर्यंत अंगीकार करना ॥ १५ ॥ जैसे कांचवा अपना शरीर में अपने अंगो को गोपाता

(अ० आत्मा का) ॥ १० ॥ ने० न्यायमार्ग सु० अच्छा उ० आदरे स० समिति युक्त भु० वारंवार दु० दुःखावास अ० यथा श्रुत ज० यथा तथ्य ॥ ११ ॥ ठा० स्थान वि० विविध स्थान च० छोडते हैं ण० नहीं सं० संशय अ० अनित्य अ० यह वा० वास णा० नहीं ए० यह सु० सुख ॥ १२ ॥

पणोल्ल पावकं कम्मं । सल्लं कंतंति अंतसो (अप्पणो) ॥ १० ॥ नेयाउयं सुयक्खायं । उवादाय समीहए ॥ भुज्जो २ दुहावासं । असुहत्तं तहातहा ॥ ११ ॥ ठाणी विविहठाणाणि । चइस्संति णसंसओ ॥ अणियंते अयंवासे । णायएहि सुहीहिय ॥ १२ ॥ एव मादाय मेहावी । अप्पणो गिद्धि मुद्धरे ॥ आयरियं उवसंपज्जे । सव्व

ार्थ

रागद्वेष रूपी बंधन से मुक्त होते हैं और सर्व कर्म का क्षय करके समस्त शल्य को काटते हैं [आत्माका शल्यको काटते हैं ॥ १० ॥ श्री तीर्थंकर देव भाषित ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग को ग्रहण कर और बालवीर्य से वारम्वार नरकादिक दुःखों में जाना होता है वैसे ही अशुभध्यानकी वृद्धि होवे ऐसा संसार का स्वरूप जानकर पण्डित पुरुषों को धर्मध्यान में प्रवर्तना ॥ ११ ॥ देवलोक में शक्रेन्द्र, सामानिक देव के स्थान, तथा मनुष्य में चक्रवर्ती वासुदेव, बलदेवादिक स्थान को जीव त्यजते हैं. इस में कुच्छ भी संदेह नहीं है. ज्ञाति गोत्री सुहृद ये सब अनित्य है ॥ १२ ॥ ऐसा

र० आनंद पाते हैं पा० पापानुगामी आ० आरंभ दु० दुःखका फा० स्पर्श के लिये अं० अन्ततक ॥ ७ ॥ सं० सांपराइक णि० इच्छते हैं अ० आत्म दुष्कृत का० कर्ता रा० रागद्वेष में अ० आसक्त बा० अज्ञानी पा० पाप कु० करते हैं ते०वे ब०बहुत ॥ ८ ॥ ए० यह स० कर्म सहित वी० वीर्य बा० अज्ञानी का प० कहा इ० अब अ० अकर्म वि० वीर्य पं० पंडितका सु० सुनो मे०मेरा॥९॥द० मुक्तिका इच्छक ब०बन्ध से मु० मुक्त स० सर्वथा च्छि०छेद बं० बन्धन प० नासकरे पा० पाप क० कर्म स० शल्य कं० काटते हैं अं० सर्व

तसो ॥ ७ ॥ संपराइय णियच्छंति । अत्तदुक्कडकारिणो ॥ रागदोसस्सिया बाला। पावं कुव्वंति ते बहु ॥ ८ ॥ एयं सकम्म वीरियं । बालाणं तु पवेदितं ॥ इत्तो अकम्म वीरियं । पंडियाणं सुणेह मे ॥ ९ ॥ दव्विए बंधणुम्मुक्के । सव्वउ च्छिन्नबंधणे ॥

अनेक जीवों की साथ वैर करता है. और उस वैर से परलोक में नया वैर उत्पन्न होताहै. सावद्यानुष्ठानरूप क्रिया का करनेवाला असाता वेदनीय कर्म का उदय के अवसर में दुःख का स्पर्श करनेवाला होता है. अर्थात् महा दुःखी होता है ॥ ७ ॥ क्रिया दो प्रकार की है सांपरायिक और ईर्यापथिक. इन दोनों प्रकार की क्रिया से कर्मबन्ध होते हैं. जो अपनी आत्मा के लिये दुष्टकृत करता है. वह साम्परायिक बन्ध करता है. सदसद् का विवेक शून्य अज्ञानीयों बहुत पाप करनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥ यह पूर्वोक्त अज्ञानियोंका सकर्मक वीर्य कहा. अनंतर पण्डित पुरुषों का अकर्मक वीर्य कहताहूं सो सुनो ॥९॥ मोक्षार्थी जीव

मंत्र अ० पढते हैं पा० प्राणी भू० भूतका वि० घातक ॥ ४ ॥ मा० कपटी क० करके मा० कपट का० कामभोग में स० आरंभ करे हं० हणने वाले छे० छेदने वाले प० धीठ आ० आत्म सा० साताऽनुगामी ॥ ५ ॥ म० मन से व० वचन से का० काया से चे० निश्चय अं० अन्ततक आ० यह लोक प० परलोक वा० अथवा दु० दोप्रकार के अ० असंयति ॥ ६ ॥ वे० वैर कु० करता है वे० वैरी त० तब वे० वैरसे

एगे मंते अहिज्जंति । पाणभूय विहेडिणो ॥ ४ ॥ माइणो कट्टु मायाय । कामभोगे समारंभे ॥ हंता छेत्ता पगब्भित्ता । आयसायाणुगामिणो ॥ ५ ॥ मणसा वयसा चेव । कायसा चेव अंतसो ॥ आरओ परओ वावि । दुहावि य असंजया ॥ ६ ॥ वेराइं कुव्वइ वेरी । तओ वेरेहिं रज्जति ॥ पावोवगाय आरंभा । दुक्ख फासाय अं-

और भव्य को अनादि सान्त या सादि सान्त होता है ॥ ३ ॥ अब बाल वीर्य का अधिकार कहते हैं. कोई पुरुष प्राणियों की घात करने के लिये शस्त्र खड्गादिक का प्रयोग करना या ज्योतिषादि शास्त्र सीखता है. कोई द्वीइन्द्रियादि प्राणी को विविध प्रकार से मारने के लिये मंत्र का अभ्यास करता है. ॥ ४ ॥ मायावी पुरुष माया कपट करके काम भोग को सेवते हैं. वे आत्मसुख के अर्थी, प्राणियों की घात करनेवाले, उन के अंगोपांग छेदनेवाले, तथा उदरादि फाडनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥ मन, वचन और काया से अशक्त होने पर तंदुल मत्स्य की मुवाफिक जो मन से ही कर्म बांधता है, वह इस लोक में तथा परलोक में पाप करने, कराने से असंयति कहाजाता है ॥ ६ ॥ जीव की घात करनेवाला पुरुष अन्य

॥ वीर्याख्य मष्टमध्ययनम् ॥

दु० दोप्रकार का सु० अच्छा अ० कहा वी० वीर्य प० फरमाते हैं किं० किंतु वी० वीर का वी० वीर्य क० कैसे प० फरमाते है ॥ १ ॥ क० कर्म ए० कितनेक प० फरमाते हैं अ० अकर्म सु० सुव्रति ए० यह दो० दो ठा० स्थान में जे० जो दी० दिखते हैं म० मनुष्य ॥ २ ॥ प० प्रमादको क० कर्म आ० कहा है अ० अप्रमाद त० तथा अ० दुसरा त० तद्भाव दे० देशमें वा० अज्ञानीको पं० पण्डितको ए० कहा ॥ ३ ॥ स० शस्त्र ए० कितनेक सि० सिखेहुवे अ० घात के लिये पा० प्राणी का ए० कितनेक मं०

दुहावेयं सुयक्खायं । वीरियंति पवुच्चइ ॥ किंतु वीरस्स वीरत्तं । कहं चेयं पवुच्चइ ॥ १ ॥ कम्म मेगे पवेदेंति । अकम्मं वावि सुव्वया ॥ एतेहिं दोहि ठाणेहिं । जेहिं दीसंति मच्चिया ॥ २ ॥ पमायं कम्म माहंसु । अप्पमायं तहावरं ॥ तब्भावा देसओ वावि । बालं पंडिय मेववा ॥ ३ ॥ सत्थ मेगे तु सिक्खंता । अतिवायाय पाणिणं ॥

अहो जम्बू ! श्री जिनेश्वर देवने दो प्रकार का वीर्य कहा है. वीर (सुभट) का वीर्य कौनसा है? और यह किस तरह कहाजाता है? ॥ १ ॥ हे सुव्रति ! सकर्मक और अकर्मक ऐसे वीर्य के दो स्थानक हैं और इसी में सर्व मनुष्य व्यवस्थित रहे हुवे हैं ॥ २ ॥ श्री तीर्थंकर देवने प्रमाद को कर्म कहा है और अप्रमाद को अकर्म कहा है. अर्थात् जो प्रमादयुक्त कर्म करता है उस का बालवीर्य कहाजाता है और प्रमाद रहित क्रिया करनेवाले का पण्डित वीर्य मानाजाता है. ये दोनों वीर्य अभव्य को अनादि अनंत

मृत्यु को णि० दूरकर के क० कर्म ण० नहीं प० पावे अ० धूरी का क्षय जैसे स० गाडा त्ति० ऐसा बे० कहता हूं. ॥ ३० ॥ * * * *

तकस्स ॥ णिधूय कम्मं ण पवंचुवेइ । अक्खक्खए वा सगडं तिबेमि ॥ ३० ॥ इ-
ति कुसीलपरिभासियं सत्तम मज्झयणं सम्मत्तं *

ज्ञानुसार कहता हूं. यह कुशील पुरुष का आचार कहा, वह आचार वीर्यांतरकर्म का उदय से होता है. इस लिये आगे सुशील पुरुषका वीर्य बतलाते हैं. कुशील परिभाषा नामक सप्तम अध्ययन समाप्त हुवा.
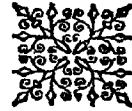
दु० दुःख ति० सहन करता अ० संपूर्ण अ० अगृद्ध अ० अप्रतिबद्ध अ० अभय क० करे भि० साधु अ० निर्लेपी ॥ २८ ॥ भा० भार जा०निर्वाह मु० साधु भुं० भोगवे कं० वांच्छे पा० पाप का वि० विवेक भि० साधु दु० दुःख से पु० स्पर्शाया धु० ध्रुव (मोक्ष) आ० आदरे सं० संग्राम में सी० अग्र प० दूसरे को द० दमे ॥ २९ ॥ अ० हणाया हुवा फ० पटियें जैसे त० रहे स० समागम कं० इच्छते हैं अं०

अगिद्धे अणिएयचारी । अभयंकरे भिक्खु अणाविलप्पा ॥ २८ ॥ भारस्स जाता मुणी भुंजएज्जा । कंखेज्ज पावस्स विवेग भिक्खू ॥ दुक्खेण पुट्ठे धुय माइएज्जा । संगामसीसेव परं दमेज्जा ॥ २९ ॥ अविहम्ममाणे फलगाव तट्ठी । समागमं कंखति अं-

राहित, विवेकवन्त, सर्व दुःख को सहन करनेवाला, ज्ञानादि से संपूर्ण, काम भोग की अभिलाषा राहित, अप्रतिबद्ध विहारी, सर्व जीव का अभय का करनेवाला विषय कषाय रहित होवे ॥ २८ ॥ साधु संयम का निर्वाह के लिये शुद्ध निर्दोष आहार भोगवे और पूर्व में आचरे हुवे पापकर्म को पृथक् करना वांच्छे. परीषह आने पर संयम ग्रहण करे और जैसे संग्राम का अग्रभाग में रहाहुवा सुभट शत्रुका पराभव करता है, वैसे ही साधु कर्म का पराभव करे ॥२९॥ परीषहोपसर्गसे हणाताहुवा साधु फलगवत् उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करे और पण्डित मरण की वांच्छना करे. जैसे अक्ष (धूरी) का क्षय से गाडा नही चलता है वैसे ही ज्ञानावरणीयादि अष्ट प्रकारका कर्मक्षय करके जीव मुक्तिमें गयेबाद पीछा नहीं आताहै ऐसामैं श्री तीर्थंकर देवकी आ

पा० पानीका लो० वस्त्रादिक का० अतिप्रिय भा० कहता है से० सेवक जैसे पा० पार्श्वस्थ चे० निश्चय कु० कुशीलियें नि० निस्सारी हो० होता है ज० जैसे पु० पुलाक ॥ २६ ॥ अ० अज्ञात कुलका पिं० आहार से हि० सहन करे णो० नहीं पू० पूजा त० तप से आ० इच्छे स० शब्द से रू० रूप से अ० असह्यमान स० सर्व का० काम में वि० त्यजकर गे० गृद्धपना ॥ २७ ॥ स० सर्व सं० संग अ० छोडकर धी० धीर स० सर्व

अन्नस्स पाणस्सिहलोइयस्स । अणुप्पियं भासति सेवमाणे ॥ पासत्थयं चेव कुसीलयं च । निस्सारए होइ जहा पुलाए ॥ २६ ॥ अण्णत पिंडेणहियासएज्जा । णो पूयणं तवसा आवहेज्जा ॥ सद्देहिं रूवेहिं असज्जमाणं । सव्वेहि कामेहि विणीय गेहिं ॥ २७ ॥ सव्वाइं संगाइं अइच्च धीरे । सव्वाइं दुक्खाइं तितिक्खमाणे ॥ अखिले

भावार्थ

वे कुशीलियें अन्न के लिये, पानी के लिये तथा वस्त्रादि के लिये जिस को जैसा रुचे वैसा बोलते हैं. जैसे धान्य रहित तुप निस्सार होता है वैसेही वे कुशीलिये सदाचारसे भ्रष्ट पार्श्वस्थ भावको प्राप्त होते हैं ॥२६॥ अब सुशील साधु का आचरण बताते हैं. अज्ञात कुल में आहार पानी लेवे और अन्तप्रान्त आहार से संयम पाले परंतु दीनपना धारन करे नहीं, राजादिक मुझे पूजेंगे ऐसी वांच्छना कर तपस्या करे नहीं और शब्द रूप में अनासक्त बन कर सर्व काम भोग में अगृद्ध होता हुवा विचरे ॥ २७ ॥ वह साधु सर्व संग से

ह सा० स्वादुक अ० अथ आ० कहा से० वह सा० साधुपना से दू० दूर ॥ २३ ॥ कु० अच्छे घ-
रों में जे० जो धा० दोडता है सा० स्वादुक आ० सुनाता है ध० धर्म उ० उदर के गि० गृद्ध
अ० अथ आ० कहा से० वह आ० अच्छा संयम के सं० शतांश जो० जो ला० लावे अ० अशनके हे० हेतु
॥ २४ ॥ णि० निकलकर दी० दीन प० दूसरे के भो० भोजनमें मु० मुख मंगलिक उ० उदर के गि० गृ-
द्ध नी० साल गि० गृद्ध म० वडा व० सूकर अ० शीघ्र ए० जाता है घा० घात ॥ २५ ॥ अ० अन्न का

पसुं धणं च ॥ कुलाइ जे धावइ साउगाइं । अहाहु से सामणियस्स दूरे ॥ २३ ॥
कुलाइं जे धावइ साउगाइं । आघाति धम्मं उदराणुगिद्धे ॥ अहाहु से आयरियाण
सयंसे । जो लावएज्जा असणस्स हेउ ॥ २४ ॥ णिक्खम्म दीणे पर भोयणंमि । मुह-
मंगलीए उदराणुगिद्धे ॥ नीवारगिद्धेव महावराहे । अदूरए एहइ घातमेव ॥२५॥

रसगृद्धि में आसक्त होकर अच्छा आहार लेने के लिये वडे कुल में परिभ्रमण करते है. वे साधुपना से दूर हैं ॥ २३ ॥ जो साधु स्वादुक कुल में रस लम्पटी बन गोचरी करने को जाते हैं वे पेटार्थी जिस को जैसा धर्म रुचे वैसा धर्म कहते हैं, और जो साधु आहार के लिये दूसरे की पास प्रशंसा कराते हैं. वे साधुपना से सो में भाग दूर हैं ॥ २४ ॥ जो अपना गृह कुटुम्ब का त्याग करके अन्य के गृह के भोजन में गृद्ध वनते हैं वे उदर पोषणार्थ गृहस्थ की प्रशंसा करते हैं. और जैसे सूकर चावल का कण में गृद्ध होता हुवा तुरत घात को प्राप्त होता है वैसे ही वे कुशीलियें संसार में अनंत जन्म मरण करते हैं ॥ २५ ॥

भु० भोगवे त्रि० अचित्त सा० संकोचकर सि० स्नान करता है जे० जो धो० धोता है लू० काटता है व०
वस्त्र अ० अथ आ० कहा से० वह णा० निर्ग्रंथ गात्र से दू० दूर ॥ २१ ॥ क० कर्म प० जानकर द० पानी
में धी० धीर वि० अचित्त जा० जाव जीव आ० आदि मो० मोक्ष स० बीज सहित कं० कंद अ० नहीं
भोगते वि० विरते सि० स्नान से इ० स्त्रीयों से ॥ २२ ॥ जे० जो मा० माता को पि० पिताको हि० छो-
डकर गा० घर को त० तथा पु० पुत्र प० पशु ध० धन च० और कु० कुल में जे० जो धा० दोडते

जे धोवति लूसयतीव वत्थं । अहाहु सेणागणियस्स दूरे ॥ २१ ॥ कम्मं परिन्ना-
य दगंसि धीरे । वियडेण जीविजय आदिमोक्खं ॥ सबीय कंदाइ अभुंजमाणे ।
विरते सिणाणाइसु इत्थियासु ॥ २२ ॥ जे मायरं च पियरं च हिच्चा। गारं तहा पुत्त-

ार्थ

हैं कि जो साधु मात्र व्यवहार शुद्धि के लिये निर्दोष आहार लाते हैं, और उसे संजोयणादि दोषों ल-
गाकर भोगवते हैं, ऐसे ही अचित्त पानी से फासुक स्थान में बैठकर अंगोपांग संकोचकर थोडा या बहुत
स्नान करते हैं, वस्त्रों को धोकर या फाडसान्ध कर सुशोभित करते हैं वे साधु संयम से दूर समझे जाते
हैं ॥ २१ ॥ सचित्त पानी में कर्मबन्ध होता है ऐसा जानकर धीर पुरुष जाव जीव तक फासुक पानी
भोगवे और बीज कन्द को नहीं भोगवताहुवा स्नान स्त्रियादिक से निवृत्तिवाला होवे ॥ २२ ॥ श्री तीर्थंकर
भगवान् कहते हैं कि जो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, पशु, घर, धन आदि को छोड कर साधु बनते हैं परंतु

ऐसे सि० सिद्धि ए० जाते हैं ते० वे घा० घात अ० अज्ञानी भू० जीवोंसे जा० जानकर प० देखो सा० साता वि० विद्वान ग० ग्रहणकर त० त्रस था० स्थावर ॥१९॥ थ० आक्रंद करते हैं लु० छेदाते हैं त० त्रास पाते है क० कर्मी पु० पृथक् ज० जीवो प० जाणकर भि० साधु त० इसलिये वि० विद्वान वि० विरत आ० आत्म गुप्त द० देखकर त० उसको प० दूरकरे ॥२०॥ जे० जो ध० धर्म से ल० प्राप्त करके वि० दोष लगाकर

जाणं पडिलेह सातं। विज्जं गहाय तस थावरेहिं ॥ १९ ॥ थणंति लुप्पंति तसंति कम्मी। पुढो जगा परिसंखाय भिक्खू ॥ तम्हा विऊ विरतो आयगुत्ते। दट्ठुं तसे य पडिसंहरेज्जा ॥ २० ॥ जे धम्म लद्धं विणिहाय भुंजे। वियडेण साहट्ठुय जे सिणाइ ॥

कारादिक की भी सिद्धि होना चाहिये ॥ १८ ॥ जो लोक ऐसा कहते कि पानी और अग्नि का स्पर्श से मुक्ति मिलती है वे विना विचारे बोलते हैं. ऐसे कारणों से कदापि सिद्धि नहीं होती है. आरे ऐसा बोलनेवाला अनंत संसार में परिभ्रमण्य करता है. इस लिये त्रस और स्थावर जीवों को साताप्रिय है, और असाता अप्रिय है, ऐसा जानकर और विवेक को आदरकर पण्डित पुरुषों को जीवघात करना नहीं ॥ १९ ॥ अब जो कुशीलियें हैं वे प्राणी को उपमर्दन करने से ही सुख मानते हैं उन को क्या फल होता है सो बताते हैं. नरकादिगति को प्राप्त होकरके वे कर्मवाले जीव आक्रंद करते हैं, छेदाते हैं. पीडित होते हैं व नासभाग करते हैं. इस लिये पृथक् २ जीवों को जानकर जो साधु पण्डित, आत्म गुप्त, विरत, दमनात्मक होवे वह त्रस-स्थावर जीवों को देख कर उन की हिंसा से निवर्ते ॥ २० ॥ श्री तीर्थंकर भगवान् कहते

हरे सि० सिद्ध होवेंगे ए० कितनेक द० पानी स० घातक मु० मृषा व० बोले ज० जलसे सिद्धि आ० कहीं ॥ १७ ॥ हु० अग्नि से जे० जो सि० मुक्ति उ० कहते हैं सा० शाम पा० प्रभात च० मध्यान्ह अ० अग्नि को फु० स्पर्शता हुवा ए० ऐसे सि० कदाचित् सि० सिद्धि० ह० होवे त० तो अ० अग्नि को फु० स्पर्शता हुवा कु० कुकर्मियों को अ० अपि ॥ १८ ॥ अ० अपरिक्षक दि० दृष्ट ण० नहीं हु० निश्चय ए०

वाइं कम्माइं पकुव्वतेहिं । सीओदगं तु जइ तं हरिजा ॥ सिज्झंसु एगे दगसत्तघाती । मुसं वयंते जलसिद्धि माहु ॥ १७ ॥ हुतेण जे सिद्धि मुदाहरंति । सायं च पायं च अगणिं फुसंता ॥ एवं सिया सिद्धि हवेज्ज तम्हा । अगणिं फुसंताण कुकम्मिणंपि ॥ १८ ॥ अपरिक्ख दिट्ठं णहु एव सिद्धी । एहिंति ते घायमबुज्झमाणा ॥ भूएहिं

धर्म बुद्धि से प्राणी का विनाशक मूर्ख मनुष्य ऐसा शौच मार्ग का सेवन करता हुवा मोक्ष मार्ग नहीं प्राप्त कर सकता हैं ॥ १६ ॥ चाहे जितना पाप कर्म करे परंतु यदि त्रिसंध्या में कोई शीतल जल से स्नान करे तो उन के सर्व पाप का नाश होजाता है. यदि ऐसा ही मानाजाय तो कोई जीवघातक पानी के योग से मुक्ति में चलेजावे. इस लिये जो उदक से सिद्धि मानते हैं वे मृषा बोलते हैं ॥ १७ ॥ कोई अग्निहोत्री नामक दर्शनियों कहते हैं कि संध्या, प्रभात और मध्यान्ह ऐसे तीन काल में अग्नि का स्पर्श करनेवाले की सिद्धि होती है. यदि उन के दर्शन से ऐसा ही मानाजाय तो अग्नि का स्पर्श करनेवाले कुकर्मी लोह

होवे सि० मुक्ति सि० सिद्ध होवेंगे पा० प्राणी व० बहुत द० पानी से ॥ १४ ॥ म० मच्छ कु० कूर्म सि० सर्प म० जल काग उ० मेंडक द० जल मानुष अ० अयोग्य ए० यह कु० कुशल व० कहते हैं उ० पानी से जे० जो सि० मुक्ति उ० कहते हैं ॥ १५ ॥ उ० पानी ज० यदि क० कर्म मेल ह० दूर करता है ए० ऐसे सु० पुण्य इ० इच्छा मि० मात्र अं० अंध णे० नेता अ० अनुसरने वाले पा० प्राणी चे० निश्चय वि० हणते हैं मं० मूर्ख ॥ १६ ॥ पा० पाप क० कर्म प० करे सि० शीतपानी ज० यदि तं० उसको ह०

म्माय सिरीसिवाय । मग्गूय उट्ठा दगरक्खसाय ॥ अट्ठाणमेयं कुसला वयंति । उद-गेण जे सिद्धि मुदाहरंति ॥ १५ ॥ उदयं जइ कम्ममलं हरेज्जा । एवं सुहं इच्छामि त्तमेव ॥ अंधं व णेयार मणुस्सरित्ता । पाणाणि चेवं विणिहंति मंदा ॥ १६ ॥ पा-

चाहिये परंतु ऐसा नहीं होता है ॥ १४ ॥ यदि उदक का स्पर्श से सिद्धि होती होवे तो मत्स्य, कूर्म, सर्प, जलकाग, मेंमक, जलमानुषादि कि जो पानी में रहते हैं वे भी मोक्षगामी होवेंगे. इस लिये श्री तीर्थंकर देवने कहा है कि अज्ञानी पुरुषों जिस रीति से मुक्ति बताते हैं सो अयोग्य है ॥ १५ ॥ यदि पानी अ-शुभ कर्म रूप मेल को हरण करे तो शुभ कर्म को भी दूर करे. और जो पुण्य को दूर न कर सके तो पापको कैसे दूर कर सके. इसलिये उन का जो कथन पानी से सिद्धि होने का है वह इच्छामात्र है. जैसे जात्यंध पुरुष मार्ग बतानेवाला होवे और जैसे उसकी पीछे चलने से इच्छित मार्ग न मिले वैसे ही

से० सेवने से हु० अग्नि से ए० कितनेक प० कहते हैं मो० मोक्ष ॥ १२ ॥ पा० प्रातः स्नान से ण० नहीं मो० मोक्ष खा० क्षार लो० लवन अ० नहींभोगवनेसे ते० वे म० मदिरा मं० मांस ल० लसुन च० और भो० भोगव कर अ० अन्यत्र वा० स्थान में प० बसते हैं ॥ १३ उ० पानी से जे० जो सि० मुक्ति उ० कहते हैं सा० शाम पा० प्रभात च० और उ० पानी फु० स्पर्शता उ० पानी का फा० स्पर्श से सि०

उदगसेवणेणं । हुएण एगे पवयंति मोक्खं ॥ १२ ॥ पाओसिणाणादिसु णत्थि मोक्खो । खारस्स लोणस्स अणासएणं ॥ ते मज्जमंसं लसणं च भोच्चा । अनत्थवासं परिकप्पयंति ॥ १३ ॥ उदगेण जे सिद्धि मुदाहरंति । सायं च पायं च उदगं फुसंता ॥ उदगस्स फासेण सियाय सिद्धि । सिज्झंसु पाणा बहवे दगंसि ॥ १४ ॥ मच्छाय कु-

शीतल पानी का सेवन करने से मुक्ति बताते हैं और कितनेक हुताशन (अग्नि) का होम करने से मुक्ति बताते हैं ॥ १२ ॥ अब पूर्वोक्त दर्शनी को उत्तर देते हैं. प्रातःस्नानादिक से मोक्ष नहीं होता है क्यों कि पानी ढोलने से तदाश्रित जीवों का विनाश होता है. खार या लवण नहीं खाने से भी मोक्ष नहीं है. क्यों कि ऐसा होने से जहां लवण नहीं होता है वहां के जीवों की दुर्गति होना नहीं चाहिये. जो मद्य, मांस, और लसुन खाकर मोक्ष की इच्छा करते हैं वे इस संसार में ही परिभ्रमण करते हैं ॥ १३ ॥ प्रभात में संध्या में और मध्यान्ह में पानी से स्नान करते हुवे पानी से ही जो मुक्ति मानते हैं वे मुग्ध हैं. क्योंकि यदि पानी के स्पर्श से सिद्धि होती होवे तो सर्व काल पानी में रहे हुवे मत्स्य कच्छादि की मुक्ति होना

कु० कुमार जु० युवान म० मध्यम थे० वृद्ध (पो० पुरुष) च० मरते हैं ते० वे आ० आयुष क्षयसे प० प्रलीन ॥१०॥ सं० समझो जं० जीवो मा० मनुष्यत्व द० देखकर भ० भय बा० अज्ञानतासे अ० मिलना दुर्लभ ए० एकान्त दु० दुःख ज० ज्वरित लो० लोक स० स्वकर्म से वि० विपरीतता उ० पाते हैं ॥ ११ ॥ इ० यहां ए० कि- कितनेक मु० मूर्ख प० कहते हैं मो० मोक्ष आ० लवण व० वर्जकर ए० कितनेक उ० पानी

ब्भाइ मिज्झंति बुया बुयाणा । णरा परे पंचसिहा कुमारा ॥ जुवाणगा मज्झिम थेरगा- य (पोरुसाय) चयंति ते आउक्खए पलीणा ॥ १० ॥ संबुज्झहा जंतवो माणुसत्तं दट्ठुं भयं बालिसेणं अलंभो ॥ एगंत दुक्खे जरिएव लोए । सक्कम्मणा विप्परिया सुवेइ ॥ ११ ॥ इहेग मूढा पवयंति मोक्खं । आहार संपज्जण वज्जणेणं ॥ एगेयसी

ही मरजाते हैं, कितनेक बोलते अणबोलते मरजाते हैं, कितनेक बाल्यावस्था में ही मरजाते हैं, और कितनेक युवा वय, मध्यम वय और स्थविर इन सर्व अवस्थाओं में अपने किये हुवे कर्मों को भोगवते शरीर का त्याग करते हैं ॥ १० ॥ अहो जीवो! तुम बुझो कि इस संसार में मनुष्य जन्म की प्राप्ति बहुत कठिन है. वैसे ही नरक तिर्यंचादि गति में अज्ञानतासे सदसद् विवेक की प्राप्ति होना दुर्लभ है. यह लोक ज्वराक्रान्त मनुष्य की सदृश एकान्त दुःख से भरपूर है और वे अपने २ कर्मानुसार संसार में वारम्वार नाश पाते हैं ॥११॥ इस लोक में कोई मूर्ख कहते हैं कि पांच प्रकार के लवण का त्याग करने से मुक्ति होती है. कितनेक

करता है ॥ ७ ॥ ह० हरिकाय भू० जीव वि० विलम्बक (जीवाकार) आ० आहार दे० देहार्थ पु० अलग सि० कदाचित् जे० जो छिं० छेदते हैं आ० आत्म सुखकेलीये प० जानकर प० धीठपने पा० प्राणी को व० बहुत अ० घातक ॥ ८ ॥ जा० उत्पत्ति वु० वृद्धि वि० विनाश करते हुवे बी० बीज अ० असंयति आ० आत्म दंडी अ० अथ आ० कहा से० वह लो० लोकमें अ० अनार्यधर्मी बी० बीज जे० जो हिं० घात करता है आ० आत्म सुख के लिये ॥९॥ ग० गर्भमें मि० मरते हैं बु० बोलता बु० अनबोलता ण० मनुष्य पं० पंचशिखी

संसेयया कट्ठुसमास्सियाय । एते दहे अगाणि समारभंते ॥ ७ ॥ हरियाणि भूताणि विलंबगाणि । आहार देहाय पुढो सियाइ ॥ जे छिंदंति आयसुहं पडुच्च । पगब्भि पाणे बहुणंतिवाती ॥ ८ ॥ जातिं च वुड्ढिं विणासयंते । बीयाइ असंजय आयदंडे ॥ अहाहु से लोए अणज्जधम्मे । बीयाइ जे हिंसाति आयसाते ॥ ९ ॥ ग-

विनाश होता है. अर्थात् वे प्राणी उस में जलते हैं ॥ ७ ॥ जो जीव आत्मसुख को जानकर आहार और शरीर के लिये जीवाकार (जैसे गर्भस्थ जीव कलल अर्बुद आदि में वृद्धि पाता है वैसे ही वनस्पति है) सजीव वनस्पति की घात करता है, वह पुरुष धीठाइपने से बहुत प्राणी की घात करनेवाला होता है ॥८॥ जो असंयति कोमल मूलादिक तथा शाखा प्रशाखादिक तथा बीज का विनाश करता है वह पुरुष अपना आत्मा का घातक होता है. और जो अपना सुख के लिये वीजादिक की घात करता है उस को श्री तीर्थंकर गणधर महाराजने अनार्यधर्मी कहा है ॥ ९ ॥ वनस्पति के घातक जीव में से कितनेक तो गर्भ में

अग्नि को स० आरंभ करते हैं अ० अथ आ० कहा से० वे कु० कुशील धर्मी भू० प्राणी को जे० जो हिं० हिंसा करते हैं आ० आत्मसुख के लिये ॥ ५ ॥ उ० अग्नि का आरंभ करने वाले पा० प्राणी नि० हणे नि० बुझाते अ० अग्नि नि० हणाते हैं त० इसलिये मे० मेधावी स० जान कर ध० धर्म को ण० नहीं प० पंडित अ० अग्नि को स० आरंभ करे ॥ ६ ॥ पु० पृथ्वी जी० प्राणी आ० अप् जी० प्राणी पा० प्राणी स० उडते सं० पडते हैं सं० किडीआदि क० काष्टमें स० रहे हुवे ए० इतने को द० जलावे अ० अग्निको स० आरंभ

लोए कुसील धम्मे । भूताइ जे हिंसति आयसाते ॥ ५ ॥ उज्जालओ पाण निवातए-ज्जा । निव्वावओ अगणि निवायवेज्जा ॥ तम्हाउ मेहावि समिक्ख धम्मं ण पण्डिए अग-णि समारभिज्जा ॥ ६ ॥ पुढवीवि जीवा आऊवी जीवा । पाणाइ संपाइम संपयंति ॥

पिता को छोड करके हम साधु हैं ऐसा जानते हुवे अग्निकाय का जो आरंभ करते हैं और अपनी आ-त्माका सुख के लिये प्राणी की घात करते हैं वे इस लोक में कुशीलधर्मी (अनाचारी) हैं ऐसा श्री ती-र्थंकर देवने कहा है. ॥ ५ ॥ अग्नि को प्रदीप्त करते त्रस और स्थावर जीवों का अतिपात होता है, वैसे ही उस को बुझाते अनेक त्रस और स्थावर जीव हणाते हैं. इसलिये पण्डित पुरुषों को हिंसा का त्याग करके अग्नि काया का समारंभ करना नहीं ॥ ६ ॥ तेउकाय का आरंभ करने में पृथ्वीकाय के जीव, अप्काय के जीव, पतंगिये प्रमुख उडते हुवे प्राणी, और काष्ट के आश्रित रहे हुवे अनेक किटीकादिक का

था० स्थावर वि० घात को ए० जाता है से० वे जा० जाति जाति में ब० बहुत कू० क्रूरकर्मी जं० जो कु० करता है मि० मरता है ते० उस से बा० मूर्ख ॥ ३ ॥ अ० इस लो० लोक में अ० अथवा प० दूसरे स० सहस्त्र भव त० तथा अ० अन्यथा सं० संसार में उत्पन्न हुवे पं० बारंबार ते० वे बं० बांधते हैं वे० भोगवते हैं दु० दुष्कृत्यों ॥ ४ ॥ जे० जो मा० माता को पि० पिता को हि० छोड कर स० श्रमण व्रत अ०

जाईपहं अणुपरिवट्टमाणे । तस थावरेहिं विणिघाय मेति ॥ से जातिजातिं बहुकूरकम्मे । जं कुव्वति मिज्जति तेण बाले ॥ ३ ॥ अस्सिं च लोए अदुवा परत्था । सयग्गसो वा तह अन्नहा वा ॥ संसारमावन्न परंपरं ते । बंधंति वेदंति य दुन्नियाणि ॥ ४ ॥ जे मायरं वा पियरं च हिच्चा । समणव्वए अगणिं समारभिज्जा ॥ अहाहु से

और स्थावर में उत्पत्ति और विनाश को प्राप्त होता है. वहां उत्पन्न हुवे बाद उस क्रूरकर्मी ने यहां जो जो पाप किये थे उन पाप से वह विनाश पाता है ॥ ३ ॥ जीव जो कर्म करता है उस का फल उसे इसी भव में मिलता है, अथवा परभव में, अथवा तो बहुत भव में मिलता है. जिस विधि से कर्म किया होवे उस विधि से जीव कर्म भोगता है और अन्य विधि से भी भोगता है. इस तरह अरहट्टघटिका के न्याय से बारम्बार परिभ्रमण करता हुवा जीव नया कर्म बांधता है, और उन्हे वेदता है ॥ ४ ॥ माता

॥ कुशील परिभाषा नामकं सप्तम मध्ययनम्. ॥

पु० पृथ्वी आ० पानी अ० अग्नि वा० वायु त० तृण रु० वृक्ष बी० बीज त० त्रस पा० प्राणी जे० जो अं० अंडज जे० जो ज० जरायुज पा० प्राणी स० स्वदेज जे० जो र० रसज अ० जानो ॥ १ ॥ ए० इन का० कायाको प० प्ररूपी ए० इन में जा०जानो प०देखो सा० साता ए० इस का०काया से आ० आत्मदंड में ए० इन में वि० परिभ्रमण करते हैं ॥ २ ॥ जा० जाति प० पथ अ० परिभ्रमण करता त० त्रस

पुढवी य आऊ अगणी य वाऊ । तण रुक्ख बीया य तसा य पाणा ॥ जे अंडया जे य ज-राउ पाणा । संसेयया जे रसयाभिहाणा ॥ १ ॥ एयाइं कायाइं पवेदिताइं । एतेसु जाणे पडिलेह सायं ॥ एतेण काएण य आयदंडे । एतेसु या विप्परियासुविंति ॥ २ ॥

पृथ्वी काय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय इन चारों का सूक्ष्म और बादर ऐसे दो २ भेद, तृण, वृक्ष, बीज, शाली प्रमुख वनस्पति काय और द्विइन्द्रियादिक त्रस प्राणी जिन के अनेक भेद हैं:— अण्डे से उत्पन्न होनेवाले पक्षी आदि, जरसे उत्पन्न होनेवाले गाय प्रमुख, स्वेद से उत्पन्न होनेवाले यूकादि, तथा रसज ॥ १ ॥ पूर्वोक्त षट्काय श्री तीर्थंकर देवने प्ररूपी है. येही षट्कायाके जीव सुख को वांच्छते हैं. इन जीवों की जो कोई मन, वचन, और काया का किसी दण्ड से घात करता है, वही वारम्वार इनही काय में परिभ्रमण करता है ॥२॥ एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रियतक की जाति में परिभ्रमण करता हुवा त्रस

सुनकर ध० धर्म अ० अर्हन भा० भाषित स० सम्यक प्रकारे अ० अर्थ प० पद शुद्ध तं० उसे स० श्रद्धाकरके ज० मनुष्य अ० आयुष्य रहित इ० इन्द्र दे० देव आ० होवेंगे त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २९ ॥

अरहंत भासियं । समाहितं अट्ठपदोपसुद्धं ॥ तं सद्दहाणाय जणा अणाऊ । इंदाव देवाहिवँ आगमिस्संति त्तिबेमि ॥२९॥ इति वीरत्थुई नाम छट्ठमज्झयणं सम्मत्तं॥६॥

पद से शुद्ध ऐसा श्री अरिहंत भाषित धर्म को सुनकर के और उस को सत्य श्रद्ध करके बहुत मनुष्य आयुष्य रहित सिद्ध हुवे अथवा तो आगामिक काल में इन्द्र, देवाधिपादिक की पदवी प्राप्त करेंगे ॥ २९ ॥ यह वीरस्तवाख्य नामक षष्ठ अध्ययन समाप्त हुवा. इस में महावीर स्वामी को सुशील कहे. अब आगे जो कुशीलियें होते हैं. वे अरहट्ट घट्टिका न्याय से संसार में परिभ्रमण करते हैं. इस लिये कुशील परिभाषा नामक सप्तम अध्ययन कहते हैं. * *
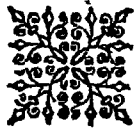
पा० पाप ण० नहीं का० कराते ॥ २६ ॥ कि० क्रियावादि अ० अक्रियावादि वे० विनयवादि अ० अज्ञानवादि प०जानकर ठा०स्थान से० वे स० सर्ववादि इ०ऐसा वे०जानकर उ० सावधान होकर सं० संजम दी०दिन रा०रात ॥२७॥से० वे वा०निवारा इ०स्त्री संग स०रात्रि भोजन सहित उ०उपधानतंव दुं०दुःख ख० क्षयार्थ लो० लोक वि० जानकर आ०यह पा०परलोक स०सर्व प०प्रभु वा०निवारा स० सर्वद्वार ॥२८॥ सो०

आणिवंता अरहा महेसी । ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥ किरियाकिरियं वे-णइयाणुवायं । अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं ॥ से सव्ववायं इति वेयइत्ता । उवट्ठिए संजमदीहरायं ॥ २७ ॥ से वारिया इत्थि सराइभत्तं । उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए ॥ लोगं विदित्ता आरं पारं च । सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ॥ २८ ॥ सोच्चाय धम्मं

को दूर करके श्री वीर प्रभु कुच्छभी पाप करते नहीं वैसे ही कराते भी नहीं ॥ २६ ॥ क्रियावादी, अ-क्रियावादी, अज्ञानवादी, और विनयवादी के ३६३ पाखण्डी मत को दुर्गति में लेजाने का कारण जान तथा सर्व वाद को जानकर श्रीमहावीर देव चारित्र रूप संजममें दिनरात जावजीव तक सावधान हुवे. ॥२७॥ श्री श्रमण भगवान् महावीर प्रभुने स्त्री सहित रात्रि भोजन उपलक्षण से प्राणातिपातादि को दूर किये और दुःख को क्षय करने के लिये तपवन्त हुवे. यह लोक तथा परलोक को जानकर सर्व पाप के स्थान को प्रभुने तप से दूर किये ॥ २८ ॥ अब श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य को कहते है. अहो शिष्यों ! अर्थ और

स० सर्व धर्म में ण० नहीं णा० ज्ञात पुत्रसे प० परम णा० ज्ञानी ॥ २४ ॥ पु० पृथ्वीवत् धु० क्षय करते हैं वि० अगृद्धि न० नहीं स० संचय क० करते हैं आ० दीर्घ प्रज्ञी त० तीरे स० समुद्र म० महाभवौघ अ० अभयकरनेवाले वी० वीर अ० अनंत च० नेत्र ॥२५॥ को० क्रोध च० और मा० मान त० तथा मा० माया लो० लोभ च० चार अ० आध्यात्म दो० दोष ए० ये वं० वमे अ० अर्हंत म० महर्षि ण० नहीं कु० करते

त्र

ठिईण सेट्ठा लवसत्तमावा । सभासुहम्माव सभाण सेट्ठा ॥ निव्वाण सेट्ठा जह सव्व धम्मा । ण णाय पुत्ता परमत्थी णाणी ॥ २४ ॥ पुढोवमे धुणइ विगयगेहि । नसण्णिहिं कुव्वाति आसुपन्ने ॥ तरिउं समुद्दं च महाभवोघं । अभयंकरे वीर अणंत चक्खू ॥ २२ ॥ कोहं च माणं च तहेव मायं । लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा ॥ एं-

ावार्थ

स्थिति श्रेष्ठ है, सर्व सभा में सौधर्मा सभा और सर्व धर्म में निर्वाण श्रेष्ठ है, वैसे ही ज्ञात पुत्र श्री महावीर से अन्य कोइ ज्ञानी नहीं है ॥ २४ ॥ जैसे पृथ्वी सर्व पदार्थ को आधार भूत है ऐसी उपमावाले श्री महावीर अष्ट प्रकार के कर्मों को क्षय करते थे और वे विगत गृद्धि थे और वे केवल ज्ञानी किंचिन्मात्र संचय नहीं करनेवाले थे. और अनंत ज्ञान रूप चक्षुवाले श्री महावीर प्रभु भवौघ रूपी समुद्र को तिर कर के सर्व जीवों का भय दूर करनेवाले थ ॥ २५ ॥ क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार आध्यात्म दोषों

हस्ति में ए० ऐरावण आ० कहा णा० प्रसिद्ध सी० सिंह मि०मृगोंमें स० नदियों में गं० गंगा प० पक्षियों में गे० गरुड वे० वेणुदेव नि० निर्वाण वादियों में णा० ज्ञात पुत्र ॥२१॥ जो०योद्धामें णा० श्रेष्ठ ज० जैसे वी० वासुदेव पु० पुष्प में ज० जैसे अ० कमल आ० कहा ख० क्षत्रियों में से० श्रेष्ठ दं० चक्रवर्ती इ० ऋषियों में से० श्रेष्ठ त० वैसे व० वर्द्धमान ॥२२॥ दा० दान में से० श्रेष्ठ अ० अभयप्रधान स० सत्य में अ०निरवद्य व०वचन त०तप में उ० श्रेष्ठ बं० ब्रह्मचर्य लो० लोक में उत्तम स० साधु ना०ज्ञात पुत्र ॥२३॥ ठि०स्थितिमें से०श्रेष्ठ ल० लवसत्तमदेवता स०सभा सु०सौधर्मी स० सभामें से०श्रेष्ठ नि०निर्वाण से०श्रेष्ठ ज०जैसे

लिलाण गंगा ॥ पक्खिसु वा गेरुले वेणुदेवे । निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ॥ २१ ॥ जोहेसु णाए जह वीससेणे । पुप्फेसु वा जह अरविंद माहु ॥ खत्तीण सेट्ठे जह दंत- वक्के । इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥ दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं । सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति ॥ तवेसु वा उत्तम बंभचेरं । लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ॥

है वैसे ही मोक्ष मार्ग के स्थापन करनेवाले में महावीर प्रभु श्रेष्ठथे ॥२१॥ जैसे योद्धाओं में वासुदेव प्रसिद्ध है, पुष्प में अरविन्द और क्षत्रिय में चक्रवर्ती श्रेष्ठ हैं; वैसे ही ऋषियों में वर्धमान स्वामी श्रेष्ठ थे ॥ २२ ॥ जैसे दान में अभयदान श्रेष्ठ है, सत्यवचन में निरवद्य वचन और तप में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है वैसे ही लोकमें उत्तम ऐसे श्री श्रमण ज्ञात पुत्र श्रेष्ठ थे ॥ २३ ॥ जैसे स्थिति में पांच अनुत्तर विमान वासी देव की

सूत्र

ना० ज्ञान से सी० शील से भू० दीर्घप्रज्ञी ॥१८॥ थ० मेघगर्जना स० शब्दमें अ० प्रधान चं० चंद्रमा जैसे ता० तारामें म० महानुभाव गं० गंधमें चं० चंदन आ० कहा से० श्रेष्ठ ए० ऐसे मु० साधु का अ० अप्रतीज्ञी आ० कहा ॥ १९ ॥ ज० जैसे स० स्वयंभू उ० समुद्रमें से० श्रेष्ठ ना० नाग कुमारमें ध० धरणेन्द्र आ० कहा से० श्रेष्ठ खो० इक्षुरस र० सर्व रस में ज० श्रेष्ठ त० तप में मु० साधु ज० श्रेष्ठ ॥ २० ॥ ह०

ट्ठं । नाणेण सीलेण य भूतिपन्ने ॥ १८ ॥ थणियंव सद्दाण अणुत्तरेउ । चंदोव ताराण महाणुभावे ॥ गंधेसु वा चंदण माहु सेट्ठं । एवं मुणीणं अपडिन्न माहु ॥१९॥ जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे । नागेसु वा धरणिंद माहुसेट्ठे ॥ खोउदए वा रसवेजयंते । तवोवहाणे मुणि वेजयंते ॥ २० ॥ हत्थीसु एरावण माहु णाए । सीहो मियाणं स-

भावार्थ

दर्शन और शील से श्री महावीर प्रभु श्रेष्ठ थे ॥ १८ ॥ जैसे सर्व शब्दों में मेघ की गर्जना का शब्द प्रधान है, तारागण में चंद्र श्रेष्ठ है और गंध में बावना चंदन की गंध श्रेष्ठ है वैसे ही सर्व साधु में अप्रतीज्ञी श्री महावीर स्वामी श्रेष्ठ थे ॥ १९ ॥ जैसे सर्व समुद्र में स्वयंभू रमण श्रेष्ठ है, नाग कुमारों में धरणेन्द्र श्रेष्ठ है और रस में इक्षु का रस श्रेष्ठ है वैसे ही तप उपधान से सर्व मुनियों में श्री महावीर प्रभु श्रेष्ठ थे ॥ २० ॥ जैसे हस्ती में ऐरावण हस्ती प्रख्यात है पशु में सिंह, नदियों में गंगा और पक्षि में गरुड प्रधान

वे सु० अच्छा सु० शुक्लवस्तु जैसे शुक्ल अ० दोष रहित सुं० शुक्ल स० शंख ई० चन्द्र ए० एकान्त अत्यंत सु० शुक्ल ॥१६॥ अ० प्रधान प० परम म० महर्षि अ० समस्त क० कर्म स० वह वि० विशुद्धकर सि० सिद्धगतिमें ग० गये सा० आदि अनंत प० प्राप्त कर ना० ज्ञानसे सी० शीलसे दं० दर्शन से ॥१७॥ रु० वृक्षोंमें णा० प्रसिद्ध ज० जैसे सा० सालमली ज० जिसपर र० आनंद वे० भोगवते हैं सु० सुवर्णकुमारादि व० वन में णं० नंदन वन आ० कहा से० श्रेष्ठ

संखिंदु एगंतवदातसुक्कं ॥ १६ ॥ अणुत्तरग्गं परमं महेसी । असेसकम्मं स विसोहइत्ता ॥ सिद्धिं गते साइमणंत पत्ते । नाणेण सीलेण य दंसणेण ॥ १७ ॥ रुक्खेसु णाते जह सामली वा। जसिं रतिं वेययंति सुवन्ना ॥ वणेसु वा णंदण माहु से-

तथा शंख और चन्द्र समान एकान्त *अवदात (स्वच्छ) शुक्ल ध्यान है ॥ १६ ॥ समस्त ज्ञानावरणादिक कर्मका क्षय करके महर्षि श्रीमहावीर प्रभु ज्ञान, दर्शन, और शील (आचार) से सर्वोत्तम और लोकके अग्रमें रहनेवाली आदि अनंत मुक्ति में गये ॥ १७ ॥ सर्व वृक्ष में देवकुरु, उत्तरकुरु में रहाहुवा सालमली वृक्ष बडाहै क्योंकि वहां सुवर्ण कुमारादि देव आकर सुखपाते हैं और सर्व वनों में नंदन वन श्रेष्ठहै वैसे ही ज्ञान

* सूक्ष्म काय योग का निरोध समयमें शुक्ल ध्यानका तीसरा पाया जो सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति नामक है, वह होता है और योग निरोध हुवे बाद चतुर्थ पाया छिन्न क्रिया और अनिवृत्ति नामक आता है.

यशः गिं० गिरिका प० कहते हैं म० वडा प० पर्वत का ए०यह उपमासे स०श्रमण ना० ज्ञातपुत्र जा० जाति ज०यशः दं०दर्शन ना०ज्ञान सी०शील ॥१४॥ गि०पर्वतमें श्रेष्ठ नि०निषध य०लंवाणमें रु०रुचक से०श्रेष्ठ वे० गोलाकारमें त० यह उपमा से० वह ज० जगतमें भू०दीर्घ प्रज्ञी मु०साधुओंकी म०मध्ये त०उनको आ० कहा प० प्रज्ञावान् ॥१५॥ अ० प्रधान ध० धर्म उ० कहकर अ० प्रधान झा० ध्यान व० प्रधान झि० ध्या-

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स । पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ॥ एतोवमे समणे नाय पुत्ते । जाती जसो दंसण नाण सीले ॥ १४ ॥ गिरिवरेवा निसहो ययाणं । रुयएव सेठे वलयायताणं ॥ तओवमे से जगभूइपन्ने । मुणीण मज्झे तमुदाहु पन्ने ॥ १५ ॥ अणुत्तरं धम्म मुईरइत्ता । अणुत्तरं झाणवरं झियाइ ॥ सुसुक्कसुक्कं अपगंडसुक्कं ।

सुमेरु आदि नामों से प्रसिद्ध महान् मेरु पर्वत का यश जैसे कहते हैं वैसे ही ज्ञात पुत्र श्री वीर प्रभु जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील करके समस्त धर्म मार्ग के प्रकाशकों में प्रधान थे. ॥ १४ ॥ जैसे समस्त पर्वतों की लम्बाइ में निषेध पर्वत श्रेष्ठ है और वर्तुलाकार में रुचक नामक पर्वत श्रेष्ट है वैसे ही सर्व जगत् में महावीर प्रभु प्रज्ञा से श्रेष्ठ थे. और समस्त मुनियों में तत्त्व स्वरूप जानने को अत्यंत ज्ञानवान जानना. ॥ १५ ॥ श्री. महावीर प्रभु सर्वोत्तम धर्म को प्ररूप के सर्वोत्तम शुक्ल ध्यान ध्याते थे. वह शुक्ल ध्यान श्रेष्ठ जो शुक्ल वस्तु की समान सफेद दोप रहित, सुवर्ण समान प्रकाशमान पानी का फेन समान उज्वल

भोगते हैं प० महेद्र ॥ ११ ॥ से० वह प० पर्वत स० शब्द म० महा प्रकाशक वि० विराजता है कं० सुवर्ण अ० देदीप्यमान अ० प्रधान गि० पर्वतो में प० मेखलासे दु० विषम गि० पर्वत व० प्रधान से० वह ज० देदीप्यमान भो० पृथ्वीपर ॥१२॥ म० पृथ्वी म० मध्यमें ठि० रहा हुवा ण० मेरुपर्वत प० प्रज्ञास सु० सूर्य सु० शुद्ध लेशी ए० ऐसे सि० लक्ष्मीसहित भू० अनेक वर्ण म० मनोरम जा० यावत् अ० सूर्य ॥१३॥ सु० सुदर्शन ए० वैसे ज०

॥ ११ ॥ से पव्वए सद्दमहप्पगासे । विरायति कंचण मट्ठवन्ने ॥ अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे । गिरीवरे से जलिएव भोमे ॥ १२ ॥ महीइमज्झंमि ठिते णगिंदे । पन्ना-य ते सुरिय सुद्धलेसे ॥ एवं सिरीए उस भूरिवन्ने । मणोरमे जावइ अच्चिमाली॥ १३॥

और रतिसुख भोगते हैं ॥ ११ ॥ और भी वह पर्वत मंदर, मेरु, सुदर्शन सुरगिरि इत्यादि नामों से प्रसिद्ध होता हुवा शोभता है तथा सुवर्ण की समान देदीप्यमान सुकुमाल है. उस में प्रधान मेखला रही हुइ है. जिस से सामान्य जीव को चढने में बडा विषम है और अच्छी मणि और औषधियों से देदीप्यमान भूमि सरिखा है ॥ १२ ॥ वह नगेन्द्र [मेरु पर्वत] पृथ्वी के मध्य भाग में रहाहुवा है, और सूर्य समान कान्ति-वाला है. वैसे ही लक्ष्मी से सुमेरु पर्वत अनेक वर्णवाला और मन को आनंद देनेवाला है तथा जैसे सूर्य सर्व दिशा में प्रकाश करता है वैसे ही वह पर्वत दशोंदिशाको प्रकाशमान करता है ॥ १३ ॥ सुदर्शन,

पं० पण्डग वन वे० ध्वजा जैसा है से० वह जो० योजन ण० निन्याणु स० सहस्र उ० ऊंचा है० नीचे स० सहस्र ए० एक ॥ १० ॥ पु० स्पर्श कर ण० आकाश का चि० रहा है भू० भूमिपर जं० जिसको सू० सूर्यादि अ० प्रदक्षिणा देते हैं से० वह हे० सुवर्ण वर्ण ब० बहुत नं० नंदनवनादि जं० जिसमें र० आनंद मे०

सयं सहस्साणउ जोयणाणं । तिकंडगे पंडग वेजयंते ॥ से जोयणे णवणवति सहु-स्से । उड्ढुस्सितो हेट्ठ सहस्स मेगं ॥ १० ॥ पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमिवट्ठिए । जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति ॥ से हेमवन्ने बहुनंदणेय । जंसि रतिं वेदयंति महिंदा

एक लक्ष योजन का है उस के तीन काण्ड हैं एक भूमिमय, दूसरा सुवर्णमय और तीसरा वैडूर्य मणिमय है. उस में पण्डग वन ध्वजा समान शोभता है. वह मेरु पर्वत नन्याणु सहस्र योजन का ऊंचा है और नीचे एक सहस्र योजन का है ॥ १० ॥ मेरु पर्वत पृथ्वी से लगाकर आकाश को अडककर रहाहुवा है. उस के चारों और १,१२१ योजन के आंतरे पर सूर्य प्रमुख ज्योतिषी देव परिभ्रमण कर रहे हैं. वह मेरु पर्वत सुवर्णमय है और उस में चार वन रहे हैं अर्थात् भूमि तल में भद्रशाला वन है उस से पांच शो योजन ऊपर नंदन वन है वहां से साडी बांसठ हजार योजन ऊपर सोमनस वन है और उस से छत्तीस हजार योजन ऊपर शिखर पर पण्डग वन है. वहां पर देवेन्द्र क्रीडा करने को आते हैं.

॥७॥ से० वह प० प्रज्ञासे अ० अक्षय सा० समुद्र जैसे म० महोदधि जैसे अ० अनंत अपार ज्ञान वाले अ० अकषाइ मु० मुक्त (भि० साधु) स० शक्र दे० देवों का अ० अधिपति जु० जोतिवन्त ॥ ८ ॥ से० वह वी० वीर्य से पु० प्रति पूर्ण वीर्य वाले सु० मेरु जैसे ण० पर्वत स० सर्व में से० श्रेष्ठ सु० देवता मु० आनंद करने वाले वि० शोभतेहैं अ० अनेक गुणो सहित॥९॥ स० सो स० सहस्र जो० योजन में ति० तिन काण्ड

सव आसुपन्ने ॥ इंदेव देवाण महाणुभावे । सहस्सणेता दिविणं विसिट्ठे ॥ ७ ॥ से पण्णया अक्खय सागरेवा । महोदहीवावि अणंतपारे ॥ अणाइलेया अकसाइ मुक्के (भिक्खु) सक्के व देवाहिवई जुइमं ॥ ८ ॥ से वीरिएणं पडिपुन्नवीरिए । सु-दंसणे वा णगसव्व सेट्ठे ॥ सुरालएवासि मुदागरे से । विरायए णेग गुणोववेए ॥९॥

श्री महावीर प्रभु सहस्र मनुष्यो में इन्द्र समान महानुभाववाले थे ॥ ७ ॥ श्री वीर प्रभु का ज्ञान विस्तीर्ण जलवाला स्वयंभू रमण समुद्र की मुवाफिक अक्षय प्रज्ञावाला था वैसे ही भगवान् कालुष्यता रहित थे. (अकसाइ होने पर भिक्षा से आजीविका करनेवाले थे) जैसे देवता का स्वामी शक्रेन्द्र दीप्तिमान है वैसे ही श्री वीर प्रभु थे ॥ ८ ॥ जैसे सुदर्शन (मेरु) पर्वत सर्व पर्वतों में श्रेष्ठ है, और देवलोक के निवासी को वह पर्वत आनंद करनेवाला है और ऐसे अन्य भी अनेक गुणों से सहित है वैसे ही श्री वीर प्रभु वीर्यांत-राय कर्म क्षय से प्रतिपूर्ण वीर्यवान् थे अर्थात संघयणादिक में बलवान थे ॥ ९ ॥ मेरु पर्वत सब मिलाकर

प्रधान स० सर्व ज० जगत् में वि० विद्वान् गं० ग्रंथ रहित अ० भय रहिर अ० आयुः रहित ॥ ५ ॥ से० वह भू० भूति प्रज्ञ (अनंत ज्ञानी) अ० अप्रतिबद्ध अ० विहारी ओ० ओघको तीरने वाले धी० धीर अ० अनंत च० चक्षु अ० प्रधान त० तपता है सू० सूर्य व० अग्नि दे० देवता जैसे त० अंधकार का प० प्रकाश करता है ॥ ६ ॥ अ० प्रधान ध० धर्म इ० यह जि० जिनदेव का णे० प्रणित मु० मुनि का० काश्यप गोत्रीसे आ० केवली इ० इन्द्र दे० देवता का म० महानुभाव स० महस्र का णे० नायक दि० स्वर्ग में वि० विशिष्ठ

ठितप्पा ॥ अणुत्तरे सव्व जगंसि विज्जं । गंथाअतीते अभए अणाऊ ॥ ५ ॥ से भूइपण्णे अणिए अचारी । ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ॥ अणुत्तरे तप्पाति सूरिएवा । वइरोयणिंदेव्र तमं पगासे ॥ ६ ॥ अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं । णेया मुणी का-

निरुपम ज्ञाता, बाह्याभ्यंतर ग्रंथ रहित, सप्त प्रकार के भय से रहित तथा आयुःकर्म करके रहित थे. ॥ ५ ॥ वीर प्रभु भूतिप्रज्ञ अर्थात् अनंत ज्ञानी, तथा अप्रतिबन्ध विहारी थे. भवौघ तीरनेवाले, धीर ज्ञान रूप चक्षु के धारक थे. जैसे सूर्य सब से अधिक तपता है वैसे ही भगवान ज्ञान करके उत्तम थे. जैसे अग्नि अंधकार को नाश करके अधिक प्रकाश करती है वैसे ही श्री महावीर, यथावस्थित पदार्थ के प्रकाशक थे ॥ ६ ॥ श्री काश्यप गोत्रिय केवल ज्ञानी महावीर श्री ऋषभ देव स्वामी से प्ररूपाया हुवा प्रधान धर्म के नेता थे. जैसे इन्द्र सहस्रों देवता का नायक तथा महा प्रभावान देवताओं में प्रधान है, वैसे ही

कु० निपुण (सु० सुमज्ञी) म० महर्षि अ० अनंतज्ञानी अ० अनंतदर्जी ज० यशस्वी को च० चक्षुः पथ-थ में रहे हुवे जा० जानो ध० धर्म धि० धृति पे० देखो ॥ ३ ॥ उ० ऊर्ध्व अ० नीची ति० तिर्यक् दि० दिशा में त० त्रस य० च जे० जो था० स्थावर जे० जो पा० प्राणी से० उनको णि० नित्य अ० अनित्य से प्र० जान करके प० प्रज्ञावान् दी० दीप (द्विप) जैसे ध० धर्म स० समता से उ० कहा ॥ ४ ॥ से० वे० स० सर्वदर्शी अ० दीर्घ णा० ज्ञानी णि० विशुद्ध संयमी धि० धृतिमान् ठि० स्थितात्मा अ०

सस्सिणो चक्खुपहट्ठियस्स । जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ॥ ३ ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर जेह पाणा ॥ सेणिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने । दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥ ४ ॥ से सव्वदंसी अभिभूयणाणी । णिरामगंधे धिइमं

उसके जानने वाले, महर्षि कुसल, अनंत ज्ञानी और अनंत दर्शी थे. ऐसे यशस्वी केवल ज्ञानीके धर्मको तुम जानो वैसे ही उनकी धृतिको देखो ॥ ३ ॥ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशामें त्रस और स्थावर प्राणी रहे हुवे हैं उनको सम्यक् जाननेवाले श्रीमहावीर देवने नित्य, अनित्य, द्रव्य पर्यायादि भेदोंसे दीपक द्विप समान समता धर्म कहा ॥४॥ वे वीर प्रभु सर्व लोक के देखनेवाले, बावीस परीषह के सन्मुख हो उनको जीतकर केवल ज्ञानीबने, मूल और उत्तर गुणको विशुद्ध पालनेवाले, धैर्यवन्त, स्थिरात्मा, प्रधान, सर्व जगतमें

वीरस्तवाख्यं षष्ठमध्ययनम् ।

पु० पूछते हैं स० साधु मा० ब्राह्मण अ० गृहस्थ प० परतीर्थिक से० वे के० कोई ए० एकांत हि० हितकर्ता ध० धर्म आ० कहा अ० उत्तम सा० अच्छा स० सम्यक् प्रकारसे अ० कहा ॥ १ ॥ क० कैसा णा० ज्ञान क० कैसा द० दर्शन से० उनको सी० शील क० कैसा ना० ज्ञात पुत्र का आ० था जा० जानते हो भि० साधु ज० यथातथ्य अ० जैसा सुना बू० कहो ज० जैसा अ० अवधारा ॥ २ ॥ खे० खेदज्ञ से० वह

पुच्छिस्सु णं समणा माहणाय । अगारिणोय परतित्थिआ य ॥ से केइ णेगंत हियं धम्म माहु । अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥१॥ कहं च णाणं कहं दंसणं से । सीलं कहं नायसुतस्स आसी ॥ जाणासिं णं भिक्खु जहातहेणं । अहासुतं बूहि जहाणिसंतं ॥ २ ॥ खेयन्ने से कुसले (सुपन्ने) महेसी । अणंतनाणी य अणंतदंसी ॥ ज-

पूर्वोक्त नरकके दुःखों को सुन करके संसारके भयसे भयभीत बने हुवे श्रमण, ब्राह्मण, गृहस्थ और परतीर्थिक सुधर्मा स्वामीको पूछते हैं कि यह एकान्तहितका करने वाला प्रधान धर्म साधु समीक्षासे किसने कहाहै?॥१॥ श्री वीर प्रभुका ज्ञान, दर्शन और यमनियम रूप शील कैसा था? हे स्वामिन् जो जो मैंने पुछा है उसे आप यथातथ्य जानते हो. इसलिये जैसा आपने सुना तथा अवधारा होवे वैसा कहो. इतना पुछने पर सुधर्मा स्वामी वीरके गुण कहते हैं ॥२॥ श्रीमहावीर प्रभु संसारी जीवोंको कर्मोंसे उत्पन्न हुआ जो खेद

पाक स० वह स० सर्व ए० इस इ० ऐसा वे० जानकर कं० वांच्छे का० काल धु० ध्रुव मार्ग आ० आचरे त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २९ ॥ ५ ॥ * *

त्तिबेमि ॥ २५ ॥ इति निरयविभत्ति ज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो । इति निरयविभत्ति णामं पंचममज्झयणं सम्मत्तं ॥ ५ ॥ * *

स्वामी के कथनानुसार कहता हूं. यह नरक विभक्ति नामक पंचम अध्ययन समाप्त हुवा. इस में नरक के दुःख कहे. उन दुःखों का श्री महावीर ने उपदेश दिया इस लिये श्री महावीर परमात्मा के गुणोत्कीर्तन रूपषष्ठम अध्ययन कहते हैं. ॥ ५ ॥ * *

दुःख वाला भ० भव अ० उपार्ज कर वे० वेदते हैं दु० दुःखी त० वह अ० अनंत दुःख ॥ २३ ॥ ए० इनको सो० सुन कर के न० नरकको धी० धीरको न० नहीं हिं० हिंसा करना किं० किसी स० सर्व लोकमें ए० एकांत दृष्टि अ० परिग्रह रहित बु० जान कर के लो० लोक के व० वश में न० नहीं ग० जावे ॥ २४ ॥ ए० ऐसे ति० तिर्यंच में म० मनुष्य में सु० देवलोक में च० चतुर्गतिक में अ० अनंत त० उसका अ० अनुरूप वि-

आगच्छाति संपराए ॥ एगंतदुक्खं भवमज्झाणित्ता । वेदंति दुक्खी तमणंतदुक्खं ॥ २३ ॥ एताणि सोच्चा णरगाणि धीरे । न हिंसए किंचण सव्वलोए ॥ एगंतदिट्ठी अपरिग्गहेउ । बुज्झिज्ज लोयस्स वसं न गच्छे ॥ २४ ॥ एवं तिरिक्खे मणुया सुरेसुं । चतुरन्तणंतं तयणुव्विवागं ॥ ससव्वमेयं इति वेदइत्ता । कंखेज्ज कालं धुवमायरेज्ज

दुःख वेदते हैं ॥ २३ ॥ नरक के ऐसे तीव्र दुःख जानकर के धीर पुरुष सर्व लोक में रहे हुवे प्राणी को हणे नहीं. वैसे ही एकान्त सम्यक्त्व धारक परिग्रहादि रहित जीव कषायादि लोक को जानकर उस के वश में पडे नहीं ॥ २४ ॥ ऐसे ही मनुष्य, देव और तिर्यंच मिलने से चतुर्गतिक संसार कहाजाता है. उस में तदनुरूप सर्व कर्म विपाक को जानकर पण्डित पुरुष जैसे भगवन्तने काल कहाहुवा है वैसे ही उस की वांच्छना करे. और जबलग मरण होवे वहांलग चारित्र को आचरे. ऐसा मैं श्री श्रमण भगवान् महावीर

स० सदा जला ना० नामकी न० नदी अ० विषम प० रुधिरादि कीचड वाली लो० लोहा वि० द्रवीभूत त० तप्त जं० जिस में अ० विषम प० प्रवेश करते ए० अकेला अ० शरण रहित अ० गमन क० करता हैं ॥२१॥ए० ये फा०स्पर्श फु०स्पर्शते हैं वा०अज्ञानी को नि० तिरंतर त०तहां चि०लम्बी स्थिति वाला ण० नहीं ह० हणाता हुवा हो० होवे ता० त्राण ए० अकेला ही स० स्वयं प० अनुभवता है दु० दुःखको २२॥ जं० जो जा० जैसा पू० पूर्वे अ० किया क० कर्म त० वही आ० आता है सं० परंपरा से ए० एकांत

म्मा अदूरए संकालियाहि बद्धा ॥ २० ॥ सयाजला नाम नदी भिदुग्गा । पविज्जलं लोहविलीणतत्ता ॥ जंसि भिदुग्गंसि पवज्जमाणा । एगाय ताणुक्कमणं करंति ॥२१॥ एयाइं फासाइं फुसंति बालं । निरंतरं तत्थ चिरट्ठितीयं॥ ण हम्ममाणस्सउ होइताण । एगो सयं पच्चणुहोइ दुक्खं ॥ २२ ॥ जं जारिसं पुव्व मकासि कम्मं । तमेव

है. उस में पीगलाहुवा लोह सरिखा ऊष्ण जल है, कि जो पीने से बहुत खारा तथा ऊष्ण लगता है. ऐसी विषम नदी में मेराये हुवे अकेले ही शरण रहित चलते हुवे दुःख भोगते हैं ॥ २१ ॥ पूर्वोक्त दुःख रूप स्पर्श नारकियोंको सहन करने पडतेहैं. और बहुत स्थितिवाले, और हणातेहुवे नारकियों को वहां कोई शरण नहीं है परंतु अकेले ही दुःख भोगते हैं ॥ २२ ॥ पूर्व जन्म में जो कर्म जैसा किया वह कर्म वैसा ही परंपरा से आता है. परंतु नरक में तो एकान्त दुःख रूप भवकी उपार्जना करके वे नरक के जीव अनंत

ए० एकान्त कू० दुःखोत्पत्ति का स्थान वाली न० नरक में म० विशाल कू० कूटसे (पाश से) त० तहां वि० विषम ह० हणाते हुवे ॥ १८ ॥ भं० तोडते हैं पु० पूर्व के अ० वैरी स० रोष सहित स० मुद्गल ते० वे मु० मुसल ग० ग्रहण करके ते० वे भि० भंगशरीरी रु० रुधिर व० वमते उ० अधोमुख वाले ध० पृथ्वी तल में प० पडते हैं ॥ १९ ॥ अ० क्षुधित म० बडे सि० शृगाल पा० धृष्ट त० तहां स० सदैव म० क्रोध युक्त ख० खाते हैं त० तहां व० बहुत कू० क्रूर कर्मी अ० नजीक सं० सांकल से ब० बंधाये हुवे ॥ २० ॥

बाहिया दुक्कडिणो थणंति । अहोयराओ परितप्पमाणा ॥ एगंत कूडे नरए महंते कू-
डेण्ण तत्था विसमे हताओ ॥ १८ ॥ भंजंति णं पुव्वमरी सरोसं । समुग्गरे ते मुसले
गहेतुं ॥ ते भिन्नदेहा रुहिरं वमंता । उमुद्धगा धरणितले पडंति ॥ १९ ॥ अणासि
या नाम महासियाला । पागब्भिणो तत्थ सया सकोवा ॥ खज्जंति तत्था बहु कूर क-

परितप्त ऐसे नरक के दुष्कर्म करनेवाले जीव एकान्त दुःखोत्पत्तिवाले विशाल स्थान में पाशादिक से हणाते हुवे आक्रंद करते हैं ॥ १८ ॥ पूर्व जन्मके वैरी सरीखे वे परमाधामी रोष सहित मुद्गल और मुसल लेकर नारकियोको तोड डालते हैं, और वे भंग शरीरी रुधिरको वमते हुवे अधोमुख करके पृथ्वीमें पडते हैं ॥१९॥ वहां पर नजीक सांकलों से बंधे हुवे क्षुधित शिआल रहते हैं वे नीचे पडे हुवे क्रूर कर्म करनेवाले नारकियों को कोपित होकर खाजाते हैं ॥ २० ॥ वहां पर सदाकाल पानी से भरपूर ऐसी विषम नदी रूप स्थानक

त० तब आ० रुष्टहो वि० भेदे क० मर्मस्थान में ॥ १८ ॥ बा० अज्ञको व० बलात्कारसे भू० भूमिमें अ० चलाते प० विषम कं० कंटक वाली म० विशाल वि० बंधाये हुवे त० त्रापसे वि० मूर्च्छित स० प्रेरित को कौ० कुट्कर ब० बलिदान क० करते हैं ॥ १६ ॥ वे० वैक्रेय म० महा दुःख में ए० एक आ० लंम्बा प० पर्वत अं० अंतरिक्ष में ह० मारे जाते हैं त० तहां ब० बहुत कू० क्रूर कर्मी प० बहुत स० हजार मु० मुहूर्त तक ॥ १७ ॥ सं० पीडित दु० दुष्कर्म करने वाले थ० आक्रंद करते हैं अ० अहो रात्रि प० दुःखी होते

बालाबला भूमि मणुक्कमंता । पविज्जलं कंटइलं महंतं ॥ विबद्ध तप्पेहिं विवण्णचित्ते । समीरिया कोट्ट बालिं करिंति ॥ १६ ॥ वेतालिए नाम महाभितावे । एगायते पव्वय मंतालिक्खे ॥ हम्मंति तत्था बहुकूरकम्मा । परं सहस्साण मुहुत्तगाणं ॥ १७ ॥ सं-

आकर उन के मर्म स्थान छेदते हैं ॥ १८ ॥ नारकी को कंटकवाली महा विशाल विषम भूमि में चलाते हैं. और अनेक प्रकारके त्राप से बांधकरके और अनेक प्रकारके पापमें मूर्च्छित नारकियों को कुट्करके बालिकी तरह उन के टुकडे उडाते हैं ॥ १६ ॥ परमाधामी उन नेरीयों को दुःख देने के लिये बडा विशाल और आकाशतक पहूंचे ऐसा ऊंचा पर्वत वैक्रेय से बनाते हैं. उस पर्वत पर से पडते हुवे नारकी कुच्छ भी नहीं देख सकते हैं, मात्र हस्त स्पर्श होता है, तथा चडते हुवे परमाधामी बहुत दुःख देते हैं. इस तरह का दुःख बहुत कालपर्यंत नरक के जीव भोगते हैं ॥ १७ ॥ अत्यंत दुःखी होनेवाले, तथा अहोरात्रि

घ० गर्मी का स्थान गा० मजबुत कर्मों से उ०लाये गये अ० अति दुःख के स्वभाव वाले ह० हाथ से पां० पांवसे बं० बांध करके स० शत्रु जैसे डं० डंडसे स० मारते हैं ॥ १३ ॥ भं० तोडते हैं बा० अज्ञानी का व० प्रहार से पु० पृष्ठको सी० मस्तक भी भिं० तोडते हैं अ० लोहके घन से ते० वे भि० भग्न शरीरी फ० पटिये की तरह त० तहां त० तप्त आ० आरों से णि० प्रवर्ताते हैं ॥ १४ ॥ अ० प्रवर्ता करके रु० रौद्र अ० असाधु कर्मी उ० बाण से चो० प्रेराया हुवा ह० हस्ती को व० चलाते हैं ए० एक दु० बैठकर दु० दो

हिं पाएहि य बंधिऊणं । सत्तुव डंडेहिं समारभंति ॥१३॥ भंजंति बालस्स वहेण पुट्ठी । सीसंपि भिंदंति अओघणेहिं ॥ ते भिन्नदेहा फलगं व तत्था । तत्ताहिं आराहिं णियोजयंति ॥ १४ ॥ अभिजुंजिया रुद्द असाहुकम्मा । उसु चोइया हत्थिवहं वहंति ॥ एगं दुरूहित्तु दुवे ततो वा । आरुस्स विज्झंति ककाणओसो ॥ १५ ॥

संपूर्ण स्थान सदैव अधर्ममय महा दुःख के सागर हैं. वहां परमाधामी उन के हाथ और पाँव बांधकर के शत्रु की तरह दंड से ताडना करते हैं ॥ १३ ॥ वे परमाधामी नारकी की पीठ को तथा उन के मस्तक को लोहे का घन से या लकडी आदि के प्रहार से तोडते हैं. और उन भग्न शरीरी, पटिये की गुवाफिक दोनों बाजुओं से छेदाये हुवे नारकी को तपीहुइ आरों से प्रेरणा करते हुवे ऊष्ण रुधिरादिक का मार्ग में प्रवर्ताते हैं ॥ १४ ॥ जैसे मावत बाणादिक से हाथी को चलाता है वैसे ही रौद्र असाधु कर्म के करनेवाले परमाधामी नारकियों को चलाते हैं. और उन के पर एक, दो, तीन ऐसे आरूढ हो करके क्रोध के वश में

वडी जं० जिसमें ज० जलती अ० अग्नि अ० काष्ठ विना चि० रहते हैं व० बंधाये हुवे व० वहुत कू० क्रूर कर्मी अ० अरडाट करने वाले के० कोई चिं० लंबी स्थितिवाले ॥ ११ ॥ चि० चिता म० वडी स० तैयार कर छि० डालते हैं ते० वे तं० उन क० करुणा जनक र० विलाप करते को आ० विलयहोवे त० तहां अ० असाधुकर्मी स० घृत ज० जैसे प० पडा हुवा जो० अग्नि में ॥ १२ ॥ स० सदैव क० पूर्ण पु० और

सयाजलं नाम निहं महंतं । जंसि जलंतो अगणी अकट्ठो ॥ चिट्ठंति बद्धा बहुकूर-कम्मा । अरहस्सरा केइ चिरट्ठितीया ॥ ११ ॥ चिया महंतीउ समारभित्ता । छिब्भंति ते तं कलुणं रसंतं ॥ आवट्टति तत्थ असाहुकम्मा । सप्पी जहा पडियं जोइमज्झे ॥ १२ ॥ सदा कसिणं पुण घम्मठाणं । गाढोवणीयं अइदुक्खधम्मं ॥ हत्थे-

पावे वैसे ही नरक के जीव शूली से विंधाये हुवे दीन स्वर से अरडाट करते हुवे दुःखी होते हैं आभ्यन्तर और वाह्य दुःख से ग्लान होते हुवे एकान्त दुःख भोगवते हैं ॥ १० ॥ वहां नारकी में सदैव जलताहुवा प्राणी को वध करने का एक स्थान है. उस में काष्ट नहीं होने पर भी अग्नि जलती रहती है. वहां पर वहुत क्रूर कर्म करने से बंधाये हुवे, रौद्र आक्रंद स्वर करनेवाले तथा वहुत कालकी स्थितिवाले जीव रहते हैं. ॥ ११ ॥ परमाधामी देवता एक वडी चिता करके करुणा जनक आक्रंद करनेवाले नारकी को उस चिता में डालते हैं. और जैसे अग्नि में डालाहुवा घृत विलय होजाता है वैसे ही वे असाधु कर्म करनेवाले विलय होते हैं. अलवतां घृत तो सर्वथा विलय होजाता है परंतु नारकी मरण शरण नहीं होते हैं ॥ १२ ॥ नरक के

॥ ८ ॥ स० ऊंच स्थान त० तहां वि० कटे हुवे शरीर वाले प० पक्षियों से ख० खाया जाता है अ० लोह समान चांच वाले सं० संजीवनी ना० नायक चि० वहुत स्थिति वाली जं० जिसमें प० प्राणी ह० मारे जाते हैं पा० पापी ॥ ९ ॥ ति० तीक्ष्ण मू० शूलों से अ० दुःख देते हैं व० वश में आया हुवा सो० शूकर को ल० प्राप्त करके ते० वे सू० शूलसे वि० विंधाये हुवे क० करुणा जनक थ० आक्रंद करतेहैं ए० एकान्त दु० दुःख दु० दोप्रकार के गि० ग्लानी ॥ १० ॥ स० सदैव ज० जलती हुइ नि० घात स्थान म०

त्ता कलुणं थणंति ॥ अहोसिरं कट्टु विगतिऊणं । अयंवसत्थेहिं समोसवेंति ॥ ८ ॥
समूसिया तत्थ विसूणियंगा । पक्खीहिं खज्जंति अहो मुहेहिं ॥ संजीवणी नाम चिरट्ठि
तीया । जंसि पया हम्मइ पावचेया ॥ ९ ॥ तिक्खाहिं सूलाहि भितावयंति । वसोग
यं सोयरयं व लद्धुं ॥ ते सूलविद्धा कलुणंथणंति । एगंत दुक्खं दुहओ गिलाणा॥ १० ॥

हैं ॥ ८ ॥ जैसे कसाइ मृतक बकरे का शरीर को ऊंच स्थंभ पर बांधकर उस का चर्म नीकाल लेता है वैसे ही परमाधामी नारकी को ऊंच स्थंभ पर बांधकर उन के सर्व शरीर का चमडा नीकाल लेते हैं. और उस चर्म रहित शरीर को तीक्ष्ण वज्र जैसी चांचवाले पक्षी खाते हैं. इतना होने पर भी वे नरक के जीव मरते नहीं हैं क्यों कि नरक संजीवनी नायक कुम्भी है, उस मे रहे हुवे प्राणी को परमाधामी छेदे भेदे परंतु मरे नहीं और पारा की मुवाफिक उन का शरीर फिर मिल जावे ॥ ९ ॥ वे परमाधामी नारकी के शरीर को तीक्ष्ण शूलादिक से दुःख देते हैं, जैसे कुत्ता की पाश में आया हुवा मृग मरणान्त में दुःख

कर्मी ॥ ६ ॥ कं० कंदू में प० डालकर प० पकाते हैं बा० अज्ञानी त० तब वि० जलते हुवे पु० फीर उ० उछलतेहैं ते० वे उ० द्रौणकाकादि से प० खवाये हुवे अ० दूसरी दिशा से ख० खाते हैं स० सिंहव्याघ्रादि ॥ ७ ॥ स० चिताना आकार का वि० अग्नि का स्थान जं० जो सो० शोकसे तपाहूवा क० दीनता से थ० आक्रंद करते हैं अ० नीचे मस्तक क० करके वि० छेदके अ० लोहे के शस्त्र से स० टुकडे करते हैं

ति निपातिणीहिं ॥ संतावणी नाम चिरट्ठितीया । संतप्पति जत्थ असाहुकम्मा ॥६॥
कंदूसु पक्खिप्प पयंति बाला । ततोविदड्ढा पुण उप्पयंति ॥ ते उड्ढकाएहिं पखज्जमा-
णा । अवरेहिं खजंति सणप्फएहिं ॥ ७ ॥ समूसियं नाम विधूमट्ठाणं । जं सोयत-

कुंभीमें चले जावे तो वहां वे खराब कर्म करनेवाले नारकी बहुत दुःख पाते हैं ॥ ६ ॥ वे बाल परमाधामी नारकी को कंदू नामक पात्र में डालकर पचाते हैं. उस समय वे चने की मुवाफिक ऊंचे उछलते हैं. और वहां आकाश में ढंक कंक प्रमुख पक्षी उसे तोड खाते हैं. और जो वहां से अन्य दिशा में जावे तो वहां व्याघ्रादि प्राणी उसे खा जाते हैं ॥ ७ ॥ नरक में ऊंचे चिता के आकारका एक अग्नि का स्थान है उस में जाकर शोक से तप्त होते हुवे करुणाजनक शब्दों से आक्रंद करते हैं और परमाधामी नारकी का मस्तक नीचा करके और शरीर का वैक्रेय रूप बनाकर मुद्गलादि शस्त्रों से लोहे की समान छोटे छोटे टुकडे करते

मू॰ जमीन में अ॰ जाते ते॰ वे ड॰ जलते हुवे क॰ दीनतासे थ॰ रुदन करतेहैं उ॰ बाणसे चो॰ प्रेराया हुवा त॰ तपा हुवा जु॰ धुसरे में जु॰ जुताया हुवा ॥ ४ ॥ बा॰ अज्ञानी अ॰ बल रहित भू॰ जमीन अ॰ जाते प॰ प्रज्वलीत लो॰ लोहपथ त॰ तपा हुवा जं॰ जिस अ॰ विषम स्थान में प॰ चलते पे॰ नोकर जैसे दं॰ दंडसे पु॰ आगे क॰ करते हैं ॥ ५ ॥ ते॰ वे सं॰ असह्य प॰ जाते सि॰ पत्थर से ह॰ मारते हैं नि॰ नीचे गिराने वाली सं॰ संतापनी ना॰ नाम की चि॰ शाश्वति सं॰ दुःखी होते हैं ज॰ जहां अ॰ असाधु

मणुक्कमंता ॥ ते डज्झमाणा कलुणं थणंति । उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता ॥ ४ ॥ बाला बला भूमि मणुक्कमंता । पविज्जलं लोहपहं च तत्तं ॥ जंसि भिदुग्गोसि पवज्जमाणा । पेसेव दंडेहिं पुरा करंति ॥ ५ ॥ ते संपगाढंसि पवज्जमाणा । सिलाहिं हम्मं-

भावार्थ

वैसे ही आर से प्रेराये हुवे लोहे का रथ में जोतने से गलीया बैल की समान अराडा करतेहैं ॥ ४ ॥ वे निविवेकी परमाधामी कृष्ण लोह समान रुधिर और परु का कीचडवाली भूमि में नारकियों को चलातेहैं. उस में कुंभी पाक शाल्मली वृक्ष आदि विषम स्थान आजाने से यदि वे न चल सके तो उन्हे नोकर या गलीया बैल की मुवाफिक दण्डादिक से ताडना करके आगे चलातेहैं ॥ ५ ॥ दुःख से भरपूर नरक में आगे चलातेहुवे उन को कोइ शिला से मारकर नीचे गिराते हैं. यदि वे संतापनी नामक

ह० हस्त से पा० पॉत्र से य०च बं० बांधकर उ० उदर को वि० काटते हैं खु० छुरी और खड्ग से गि०प- कड कर बा० अज्ञानी का वि० झरता शरीर को व० चर्म को थि० बहुत पि० पृष्ठ में ऊ० लपेटते हैं ॥२॥ बा० हस्त प० कापते हैं स० मूल से से० उसका थू० वडा वि० विकाश मु० मुख में आ० डालते हैं र० रथ में जु० जोतकर स० याद कराते हैं बा० अज्ञानी को आ० रोश करके वि० विंधते हैं तु० आरसे पि० पृष्ठ में ॥३॥ अ० लोहाका गोला जैसा त० तपा हुवा ज०जाज्वल्यमान स० अग्नि सहित त० उसकी उपमा

ति खुरासिएहिं ॥ गिण्हंतु बालस्स विहत्तुदेहं । वद्धं थिरं पिट्ठतो उद्धरंति ॥ २ ॥ बाहू पकप्पंति समूलतो से । थूलं वियासं मूहे आडहंति ॥ रहंसि जुत्तं सरयंति बालं। आरुस्स विज्झंति तुदेण पिट्ठे ॥ ३ ॥ अयं व तत्तं जलियं सजोइ । तओवमं भूमि

उन के उदर का टुकडा करे तथा उस को पकडकर काष्टादिक से मारकर इस तरह खण्ड खण्ड कर देवे कि जैसे पीछे का चमडा आगे आजावे या आगे का चमडा पीछे जावे ॥ २ ॥ वे परमाधामी नारकीके हांथ को मूल से काटते हैं, उन का मुख खोल कर वडा लोह का गोला तपाकर डालते हैं, उन के पूर्व- कृत कर्मो को याद कराके लोह के रथ में जोतते हैं और अत्यंत क्रुद्ध बनकर नारकी को पृष्ठ भाग में आर से विंधते हैं ॥ ३ ॥ तपाहुवा लोहा सरीखी भूमि में चलते २ जलने से वे करुणोत्पादक शब्द करतेहैं,

स० पाप कर्मी क० पापको अ० उपार्जन करके इ० इष्ट से (माता पितादि) कं० स्त्री आदिसे य० और वि० रहित ते० वे दु० दुरभिगंध क० संपूर्ण अ० स्पर्शनेको अयोग्य क० कर्मसे बंधाया हुवा कु० मांसादिक वाली आ० रहते हैं त्ति० ऐसा बे० कहता हूं. ॥ २७ ॥ * *

अ० अथ अ० दूसरा सा० शाश्वत दुःख स्वभाव तं० उसको भे० तुमको प० कहता हूं ज० यथातथ्य बा० अज्ञानी ज० जैसे दु० दुष्कर्मके करने वाले वे० भोगवते हैं क० कर्मों को पु० पूर्वमें कीये हुवे ॥ १ ॥

ते दुब्भिगंधे कसिणे य फासे । कम्मोवगा कुणिमे आवसंति त्तिबेमि ॥ २७ ॥ इति निरयविभत्ति ज्झयणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो * *

अहावरं सासयदुक्खधम्मं । तं भे पवक्खामि जहातहेणं ॥ बाला जहा दुक्कडकम्मकारी । वेदंति कम्माइं पुरेकडाइं ॥ १ ॥ हत्थेहि पाएहिय बंधिऊणं । उदरं विकत्तं

कर्म उपार्जन करके इष्ट शब्दादि विषय से रहित अशुभ स्पर्शवाली नरक भूमि में दुर्गंधि से भराहुवा बहुत कालतक रहे और पूर्वोक्त दुःख सहन करे. ऐसा तीर्थंकर की आज्ञानुसार कहता हूं. यह नरक विभक्ति नामक पंचम अध्ययन का प्रथम उद्देशा पूर्ण हुवा. आगे भी नरक का भाव बताते हैं.

अब जहां लग नारकी जीवे वहां लग दुःख भोगवे ऐसा नरक का शाश्वता दुःख जैसा मैंने महावीर प्रभु से सुना है वैसा ही कहूंगा और दुष्कृत करनेवाला अज्ञानी पूर्वभव में किया हुवा कर्म का फल जैसे वेदता है वैसे ही कहूंगा ॥ १ ॥ वहां परमाधामी देव नारकी को हाथ पाँव से बांधकर तीक्ष्ण छुरी से

ऊंट जैसी लो० रुधिर रसी पूर्ण ॥ २४ ॥ प० डालकर ता० उसमें प० पकाते हैं बा० अज्ञानी (नारकी) को अ० आर्त स्वर करते को ते०उनको क०दीन र० बोलते को त० तृषासे पीडित ते० वे त० तब तं० तप्त तांबा का रस प० पीतेहुवे अ० आर्त स्वर र० बोलते हैं० ॥ २५ ॥ अ० आत्मा से अ० आत्मा को इ० यहां वं० ठगकर भ० भव अ० अधम पु० पाहिले के स० सतसहस्र चि० रहते हैं त० तहां बहुत कू०. क्रूर कर्मी ज० जैसे क० करे हुवे क कर्म त० वैसी सि० होती हैं भा० वेदना ॥ २६ ॥

हिय पूय पुण्णा ॥२४॥ पक्खिप्प तासु पययंति बाले । अट्टसरे ते कलुणं रसंते ॥ तण्हाइया ते तउ तंबतत्तं । पज्जिज्जमाणाट्टतरं रसंति ॥ २५ ॥ अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता । भवाहमे पुव्वसते सहस्से ॥ चिट्ठंति तत्था बहु कूरकम्मा । जहा कडं कम्मतहासि भारे ॥ २६ ॥ समज्जिणित्ता कलुसं अणज्जा । इट्ठेहिं कंतेहि य विप्पहूणा

प्रज्वलित अग्नि से अनंत गुणी अधिक ऊष्ण है ॥ २४ ॥ परमाधामी आर्तशब्द तथा करुणा प्रलाप करनेवाले नारकी को कुंभी में डालकर पचाते हैं और जब वे तृषा से पीडित होकर पानी मांगते हैं तब उन को ताम्र का और कथीर का ऊष्ण रस पीलाते हैं ॥ २५ ॥ जिन मनुष्यों ने इस लोक में अपनी आत्मा की साथ ठगाइ की अर्थात् अल्प सुख के लिये या माता पितादिक के लिये महा पातिक कर्म संचित किये ऐसे महाघातकी . जीव लक्षभव से संचित कर्म फल भोगने को बहुत कालतक रहते हैं ॥ २६ ॥ वे पापी पाप

सू० शूलसे अ० बहार लाते हैं ॥ २२ ॥ ते० वे ति० रुधिर झरता त० ताडपत्र जैसे रा० रात्रि दिवस त० तहां थ० आक्रंद करते हैं बा० अज्ञानी (नारकी) ग० झरते हैं ते० वे सो० रुधिर पू० रसी मं० मांस प० जलाया हुवा खा० क्षारसे लिप्त अंगवाले ॥ २३ ॥ ज० यदि ते० तेरेसे सु० सुनाया लो० रुधिर रसीका स्थान वा० नवीं अग्नि ते०तेजसे भी अधिक प्रज्वलीत कु० कुंभी म० पुरुष प्रमाण से अधिक स०

वि छिंदंति दुवेवि कन्ने ॥ जिब्भं विणिकस्स विहत्थि मित्तं । तिक्खाहिं सूलाइ भितावयंति ॥ २२ ॥ ते तिप्पमाणा तलसंपुडंव्व । राइंदियं तत्थ थणंति बाला ॥ गलंति ते सोणिअपूयमंसं । पज्जोइया खारपइद्धियंगा ॥ २३ ॥ जइ ते सुता लोहितपूअपाई । बालागणी ते अगुणापरेणं ॥ कुंभी महंताहियपोरसीया । समूसिता लो-

भावार्थ

ओष्ठ और दोनों कान को छेदते हैं. और मृषा बोलना, मद्यमांसादि खाना यह सब याद कराके वेंत प्रमाण जिव्हा बाहिर निकाल करके तीक्ष्ण सूलि से उसे छेदते हैं ॥ २२ ॥ जैसे सुकाहुवा ताड वृक्ष का पान पवन आने से अवाज करता है वैसे ही कर्ण, ओष्ठादिक प्रमुख छेदाने से लोही झरता हुवा वे नारकी आक्रंद करते हैं. और लवणादिक क्षार लगाकर अग्नि से शेक करने पर भी शरीर में से राध और रुधिर रात्रि दिन झरते रहते हैं ॥ २३ ॥ श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीको कहतेहैं कि अहो जम्बू ! राध रुधिर से परिपूर्ण, पुरुष प्रमाण बडी, तथा ऊंट का आकारवाली कुम्भी का वर्णन तैंने सुना होगा. वह कुम्भी नविन

परमाधामी कि॰ वैक्रेय शरीर से ॥ २० ॥ स॰ सदा क॰ पूर्ण पु॰ फिर घ॰ धर्म स्थान गा॰ दृढ उ॰ आ या हुवा अ॰ अति दुःख स्वभाव अं॰ निबड प॰ डालकर वि॰ मरते हुवे देहको वे॰ छेदमे सी॰ शीर्षको से॰ उसको अ॰ तपाते हैं ॥ २१ ॥ छिं॰ छेदते हैं बा॰ नारकीका खु॰ छुरीसे न॰ नासिका को उ॰ ओष्ठ अ॰ अपि छि॰ छेदते हैं दु॰ दो क॰ कर्ण जि॰ जिव्हा वि॰ नारकी की त्रि॰ वेंतमात्र ति॰ तीक्षण

महाभितावे ॥ ते तत्थ चिट्ठंति दुरूवभक्खी । तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं ॥२०॥ सया कसीणं पुण घम्मठाणं । गाढोवणीयं अति दुक्खधम्मं ॥ अंदूसु पक्खिप्प वि हत्तुदेहं । वेहेण सीसं सं भितावयंति ॥ २१ ॥ छिंदंति बालस्स खुरेण नक्कं । उट्ठे-

हणाये हुवे वे नारकी वहां से ऊंचे + उछलकर नाना प्रकार के दुःख तथा मलवाले नरक के एक देश में पडे और वहां अशुद्ध आहार का भक्षण करते हुवे बहुत कालतक रहे. और परमाधामी कर्म के वश पडे हुवे नारकी को वैक्रेय रूप बना कर दुःख देवे ॥ २० ॥ नरक के सम्पूर्ण स्थान सदैव अधर्म मय और महा दुःख के सागर हैं. वहां परमाधामी नारकी को निबड बंधन से बांध करके मस्तक में छिद्र कर उसे तपाते हैं और सब शरीर की चमडी को खीला से उखेडते हैं ॥ २१ ॥ वे परमाधामी तीक्ष्ण छुरी से नासिका,

+ उत्कृष्ट ५०० योजन ऊंचे उछलनेका ग्रंथकार लिखते हैं.

धार ते० वे स० उत्साह से दु० दुःख देते हैं ॥ १८ ॥ पा० प्राण से पा० परमाधामी वि० भिन्न करते हैं तं० उसको भे० तुमको प० कहता हूं ज० यथातथ्य दं० कर्म से सं० स्मरणकराते हैं बा० परमाधामी स० सर्व दं० कर्मोंसे पु० आगेके क० किये हुवे ॥ १९ ॥ ते० वे ह० हणाया हुवा ण० नरक में प० पडते हैं पु० पूर्ण दु० दुष्टरूप म० महाताप ते० वे त० तहां चि० रहतेहैं दु० दुष्टाहारी तु० दुःखदेते हैं क०

त्थ ॥ उदिण्णकम्माण उदिण्णकम्मा । पुणो पुणो ते सरहं दुहेंति ॥ १८ ॥ पाणेहि णं पावविओजयंति । तं भे पवक्खामि जहातहेणं ॥ दंडेहिं तत्था सरयंति बाला सव्वेहिं दंडेहिं पुरा कएहिं ॥ १९ ॥ ते हम्ममाणा णरगे पडंति । पुन्ने दुरूवस्स

तर ताप जहां रहता है वैसा ताप में नारकी को परमाधामी तपाते हैं, तेल गरम करके कष्ट देते हैं, ऐसे अनेक प्रकार से परमाधार्मिक देव नारकी को दुःख देते हैं ॥ १७ ॥ जब कोइ नगरका विनाश करे तब मनुष्यों के "हातात हामात" ऐसे कोलाहल युक्त शब्द सुनने में आते हैं. वैसे ही नरक में नारकीयों के करुणा जनक शब्द सुने जाते हैं. क्यों कि परमाधामी नरक के जीवों को आनंद पूर्वक दुःख देते हैं. ॥ १८ ॥ वे पापिष्ट परमाधामी नारकी के अंगोपांग पृथक् करते हैं. उन को इतना दुःख क्यों देने में आता है. इस का कारण मैं यथातथ्य तुम को कहता हूं. पूर्वभव में किये हुवे कर्मों को याद कराकरके परमाधामी नारकी को उन के पूर्वकृत कर्मों के उदय से दंडरूप दुःख से पीडित करते हैं ॥ १९ ॥

ति० तीव्र अ० वेदना से त० उस अ० अनुभाग को अ० वेदता दु० दुःखी होताहै दु० दुःखी इ० यहां दु० दुष्कृत्यसे ॥१६॥ ते० उस में ते० वे लो० लोलण सं० संव्याप्त गा० अत्यंत सु० तप्त अ० अग्नि व० जाते हैं न० नहीं त० तहां सा० साता ल० पाते हैं अ० विषम अ० निरंतर अ० तपे हुवे त० तथापि त० तपाते हैं ॥ १७ ॥ से० अब सु० सूना जाता है न० नगर वध जैसे स० शब्द दु० दुःख से उ० बोलाये हूवे प० पद त० तहां उ० उदय हूवेकर्म वाले को (नारकी को) उ० उदय हुवे कर्मवाले (परमाधामी) पु० वारं

वेदयंता । दुक्खंति दुक्खी इह दुक्कडेणं ॥ १६ ॥ तेहिं च ते लोलणंसपगाढे । गाढं सुतत्तं अगणिं वयंति ॥ न तत्थ सायं लहति भिदुग्गे । अरज्झियाभितावा तहवि तविंति ॥ १७ ॥ से सुच्चइ नगर वहेव सद्दे । दुहो वणीयाणि पयाणि त-

वे तथा उलटे मुख से लटकनेवाले नारकी के जीव इधर उधर जाते हुवे कम्पित होवें. जैसे जीवित मत्स्य लोह की कडाइ में पडाहुवा विन्हल होता है; वैसे ही नारकी भी वेदना सहन करने में विन्हल बनते हैं. ॥ १५ ॥ इतना कष्ट उन को देने पर भी वे जीव भस्मीभूत नहीं होते हैं; वैसे ही नहीं मरते हैं. परंतु अपना कृतकर्म का विपाक को भोगवतेहुवे और शीतोष्ण वेदनादिक दुःखों से दुःखी होते हुवे जींदे रहते हैं. आयुष्य पूर्ण हुवे विना नहीं मरते हैं ॥ १६ ॥ उस नरकावास में यहां से वहां इस तरह भटकते शीत से पीडित होने से बहुत गरमी में जाते हैं. परंतु वहां भी वे साता को नहीं प्राप्त कर सकते हैं. निरं-

कर्मी ह० हस्त से पा० पांव से बं० बांध करके फ० काष्ट का फलकावत् त० काटते हैं कु० हस्त में कुहाडा लेकर ॥ १४ ॥ रु० रुधीर में पु० फीर व० दुर्गंधी द्रव्य स० भरे हूवे अंगवाले छेदाया हुवा उ० उत्तम अंगवाले प० उलटाकर प० पकाते हैं णे० नारकी को फु० धूजे स० सजीव म० मच्छ जैसे अ० लोहकी क० कडाइ में ॥ १५ ॥ नो० नहीं चे० निश्चय ते० वे त० तहां म० भस्म होते हैं ण० नहीं मि० मरते हैं

संतत्थणं नाम महाहितावं । ते नारया जत्थ असाधुकम्मा ॥ हत्थेहि पाएहिय बंधिऊणं । फलगंव तत्थंति कुहाडहत्था ॥ १४ ॥ रुहिरे पुणो वच्च समुस्सिअंगे । भिन्नुत्तमंगे परिवत्तयंता ॥ पयंति णं णेरइए फुरंते । सजीवमच्छेव अयोकवल्ले ॥ १५ ॥ नो चेव ते तत्थ मसीभवंति । णमिज्जति तिव्वभिवेयणाए ॥ तमाणुभागं अणु-

करते हुवे अति दुःख पावे ॥ १३ ॥ नारकी को छेदने का स्थान महा दुःख का उत्पन्न करनेवाला है; क्यों कि खराब कर्म करनेवाले परमाधामी नारकी के जीवों को हस्तसे और पॉव से बांधकर जैसे कुहाडा से काष्ट काटा जाता है वैसे ही उनको काटते हैं ॥ १४ ॥ परमाधामी नारकी के जीवोंका रक्त निकाल कर उस रुधिर में ही उन को पचाते हैं. और दुर्गंध × वस्तु से भरे हुवे शरीरवाले, जिस का शिर काटागया है

× नरक की दुर्गंध से जघन्य आधा कोश में उत्कृष्ट चार कोश में रहे हुवे तिर्यक् लोक के जीव मरण शरण होते हैं.

ज० जहां अ० अग्नि झि० प्रज्वलीत ॥ ११ ॥ जं० जिसमें गु० गुफा में ज० अग्नि में अ० पडे अ० नहि जानता हुवा ड० जलता है लु० बुद्धिहीन स० सदा क० दीन पु० फीर घ० तापका स्थान गा० तीव्र अ० अत्यंत दुःख रूप ॥ १२ ॥ च० चार अ० अग्नि स० प्रज्वलीत करके जे० जिसमें कू० क्रूरकर्मी अ० दुःखदेते हैं बा० मूर्ख को ते० वे त० तहां चि० रहते हैं अ० पाया हुवा म० मच्छ जैसे जी० जीवता जो० अग्नि में डाले हुवे ॥ १३ सं० छेदन् स्थान म० अतिताप वे० वे ना० नारकी ज० जहां अ० असाधु

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु । समाहिओ जत्थ गणीझियाइं ॥ ११ ॥ जंसि गुहाए ज लणेतिउट्टे । अविजाणओ डज्झइ लुत्तपण्णो ॥ सयाय कलूणं पुण घम्मठाणं ।गाढो-वणीयं अतिदुक्खधम्मं ॥ १२ ॥ चत्तारि अगणिओ समारभित्ता । जेहिं कूरकम्मा भितविंति बालं ॥ ते तत्थ चिट्ठंति भितप्पमाणा । मच्छाव जीवंतुवजोतिपत्ता ॥ १३ ॥

को डालते हैं ॥ ११ ॥ अपना कर्म को नहीं जाननेवाला बुद्धिहीन नारकी ऊंट का आकारवाली गुफामें प्रवेश करते ही अग्नि में पडे और उस से जले. और सदाकाल करुणा उत्पन्न करे ऐसा दुःख रूप तापका स्थानक में अपने क्रूर कर्मों से प्राप्त होवे ॥ १२ ॥ जैसे जीवित मत्स्य को अग्नि की पास रखनेसे अत्यंत दुःख पाता है, परंतु परवश होने से वहां से नहीं जा सकता है; वैसे ही क्रूर कर्म करनेवाले पर-माधामी चारों दिशामें अग्नि प्रज्वलित कर विचारे नारकी को तपावे और वे भी पूर्वोक्त रीतिसे ताप सहन

ति० त्रिशूल से दी० लंबे वि० विंध करके अ० नीचे क० करते हैं ॥ ९ ॥ के० कितनेक को बं० बांध
करके ग० कंठमें सि० शिला उ० पानी में बो० डुबोते हैं म० अगाध क० कलंबू फूल जैसे वा० रेती मु०
अग्नि लों० हलाते हैं प० पकाते हैं त० तहां अ० अन्य ॥ १० ॥ अ० सूर्य रहित म० महाताप वाली अ०
अति अंधकार वाली दु० दुस्तर म० महान् उ० ऊंचे अ० नीचे तिं० तिर्यक् दि० दिशा में स० रहा हुवा

अन्ने तु सूलाहिं तिसूलियाहिं । दीहाहिं विद्धूण अहे करंति ॥ ९ ॥ केसिं च बंधितु
गले सिलाओ । उदगंसि बोलंति महालयंसि ॥ कलंबुया वालुय मुम्मुरेय । लोलंति
पच्चंति अ तत्थ अन्ने ॥ १० ॥ असूरियं नाम महाभितावं । अंधतमं दुप्पतरं महंतं ॥

नावपर चढे बाद उस में रहेहुवे लोहे के खीलों से विंधाते हैं. अथवा तो जब वे नरकके जीव भग-
जाते हैं तब लंबे भालादिक से विंध करके नीचे डालते हैं ॥ ९ ॥ परमाधामी देवता नारकीको गले में
शिला बांध कर अगाध पानी में डुबोवे, बाद में वहां से निकाल कर वैतरणी नदी की वालु में अथवा
तो अग्निमें मुर्मुरा की मुवाफिक भुंजे, और कोइ परमाधामी तो उसको मांस की पेशी जैसे पचावे.
॥१०॥ अत्यंत तापवाला, अंधकारवाला और बडा विशाल ऐसा कुंभी का आकारवाला महा अंधकार रूप
नरकावास में नारकी उत्पन्न होते हैं. और जहां सर्व दिशा में अग्नि जलता होवे वैसे कष्ट में नारकी

अ० घोघाट त० वहां चि० बहुत कालकी स्थिति वाले ॥ ७ ॥ ज० यदि ते० तेरे से सु० सुनागया वे० वैतरणी अ० विषम णि० तीक्ष्ण ज० जैसे खु० छुरी इ० जैसे ति० तीक्ष्ण प्रवाह वाली त० तीरते हैं ते० वे वे० वैतरणी अ० विषम उ० बाणसे चो० प्रेराया स० शक्ति से ह० हणाया हुवा ॥ ८ ॥ की० कीलोंसे वि० विंधाते हैं अ० असाधु कर्म करने वाले ना० नाव में उ० चडते हुवे स० स्मृति हीन अ० अन्य सू० शूलसे

ति । अरहस्सरा तत्थ चिरट्ठितीया ॥ ७ ॥ जइ ते सुया वेयरणी भिदुग्गा । णिसिओ जहा खुर इव तिक्ख सोया ॥ तरंति ते वेयरणीं भिदुग्गां । उसुचोइयासत्ति सुहम्ममाणा ॥ ८ ॥ कीलेहिं विज्झंति असाहुकम्मा । नावं उविंते सइ विप्पहूणा ॥

दिशा में जावे कि जहां से हम को भय न होवे" ऐसा वांच्छे. ॥ ६ ॥ बहुत काल तक वहां रहनेवाले तथा गुंगे प्राणी जैसे शब्द करनेवाले नरक के जीव खेर की लकडी के जाज्वल्यमान अंगार सरीखी भूमि में जाते हुवे, और जलते हुवे दीन स्वर से आक्रंद करते हैं ॥ ७ ॥ गुरु शिष्य को कहते हैं कि अहो शिष्य! तेने सुना है कि वैतरणी नदी बहुत विषम है. क्यों कि उस में छुरी जैसा तीक्ष्ण पानी का पूर रहाहुवा है. ऐसी नदी को भी नरक की भूमि के तप्त जीवों तीरने को वांच्छे; परंतु उस का अगाध पानी तीरने को असमर्थ होने से, बाणों से प्रेरायेहुवे और शक्तिभाला आदि से हणाये हुवे जीवो नाव की वांच्छा करे ॥ ८ ॥ असाधुकर्म के करनेवाले विवेक हीन नरकके जीव

नेवाले अ० अनिवृत्त घा० घातको [नरक] उ० जाताहै बा० अज्ञानी णि० अधोगतिमें ग० जाता है अ० मृत्यु समये अ० नीचा सि० मस्तक क० करके उ० जाता है दु० विषमस्थान ॥ ५ ॥ ह० मारो छिं० छेदो भि० भेदो द० जलावो इ० ऐसा स० शब्द सु० सुनकर प० परमाधामी के ते० वे ना० नारकी भ० भय भीत कं० इच्छते है क० कोनसी दि० दिशामें व० जावे ॥ ६ ॥ इं० अग्नि समुह ज० जाज्वल्यमान स० अग्नि सहित त० उस सरीखी भू० भूमिको अ० जाता ते० वे ड० जलते क० दीन थ० आक्रन्द करते हैं

पागब्भि पाणे बहुणंतिवाती । अनिव्वते घात मुवेति बाले ॥ णिहोणिसं गच्छति अंतकाले । अहोसिरं कट्टु उवेइ दुग्गं ॥ ५ ॥ हण छिंदह भिंद णं दहेति । सद्दे सुणित्ता परहम्मियाणं ॥ ते नारगाओ भयभिन्नसन्ना । कंखंति कन्नामादिसं वयामो॥६॥ इंगालरासिं जलियं सजोति । ततोवमं भूमि मणुक्कमंता ॥ ते डज्झमाणा कलुणं थणं-

की घात का करनेवाला, धृष्टपने वचन का बोलनेवाला, तथा क्रोधादिक कषायों से नहीं निवर्तनेवाला बाल अज्ञानी नरक में जाता है. और मरण बाद शिर नीचा करके अंधकारगति में अंधकार में जाता है और वहां छेदन, भेदनादिक विषम दुःख पाता है ॥ ५ ॥ पर्याप्त हुवे बाद नारकी परमाधामी के जो शब्द सुनते हैं सो कहते हैं. मुद्गल से हणो, खड्ग से छेदो, शूलादि से भेदो, अग्नि से जलावो, ऐसे परमाधामी के क्रूर शब्दों सुनकरके नरक के जीव भय से व्याकूल बनकर, "हम कोनसी

षम दु० दुर्ग आ० अदीन दु० दुष्कृत्य पु० पहिले के ॥ २ ॥ जे० जो के० कोइ बा० अज्ञानी इ० इहां जी० जीवित के लिये पा० पाप क० कर्म क० करते हैं रु० रौद्र ते० वे घो० घोर रू० रूप त० घोर अंध कार में ति० तीव्र अ० दुःख न०नरक में प० पडते हैं ॥ ३ ॥ ति० तीव्र त० त्रस पा० प्राणी था० स्थावर जे० जो हिं० घात करते हैं आ० निज सु० सुख प० जानकर जे० जो लू० लूटारा हो० है अ० चोर ण० नहीं सि० शिखाते हैं से० सेवने योग्य किं० किंचित ॥ ४ ॥ पा०पीठ पा०प्राणी ब०बहुतकी अ० घातकर

ब्बवी कासवे आसुपन्ने ॥ पवेदइस्सं दुहमट्ठ दुग्गं । आदीणियं दुक्कडियं पुरत्था॥२॥ जे केइ बाला इह जीवियट्ठी । पावाइ कम्माइं करंति रुद्दा ॥ ते घोररूवे तमिसंधयारे । तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥ ३॥ तिव्वं तसे पाणिणो थावरे य । जे हिंसति आयसुहं पडुच्चा ॥ जे लूसए होइ अदत्तहारी । ण सिक्खाति सेयावियस्स किंचि ॥ ४ ॥

है; वैसा पाप फल सहित नरकावासा को कहूंगा ॥ २ ॥ इस संसार में असंयम जीवितव्य के अर्थी बन जो कोइ अज्ञानी रौद्र पाप कर्म करते हैं; वे महा अंधकारवाली तथा तीव्र अंगारवाली नरक में जाते हैं. ॥ ३ ॥ अपना शारीरिक सुख के लिये जो कोइ पुरुष तीव्रपना से त्रस और स्थावर के जीवों की हिंसा करता होवे, अथवा जो कोइ प्राणी का मर्दन करनेवाला होवे, या परद्रव्य का लेनेवाला होवे, अथवा तो सेवने योग्य व्रत पच्चक्खाणादिक न कर सकता होवे तो वह पुरुष नरक में जाता है ॥ ४ ॥ बहुत जीवों

॥ नरकविभक्तिनामकं पंचम मध्ययनम् ॥

पु० पुछा हो के० केवली म० महर्षि को क० कैसे भि० दुःख ण० नरक पु० पहिले अ० अजान मे० मैं मु० साधु बू० कहो जा० जान क० कैसे बा० अज्ञानी न० नरक में उ० उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ ए० ऐसे म० मैने पु० पुछा म० महानुभाव ने इ० ऐसा अ० कहा का० काश्यपने आ० शीघ्रप्रज्ञी प० प्ररूपा दु० दु-

पुच्छिस्सहं केवलियं महेसिं । कहं भितावा णरगा पुरत्था ॥ अजाणओ मे मुणि बूहि जाणं । कहिं नु बाला नरयं उविंति ॥ १ ॥ एवं मए पुट्ठे महाणुभावे । इणमो

श्री सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं कि जैसे तुम मुझे पूछते हो कि "नरक के दुःख कैसे हैं, जीव कैसे कार्यों से नरक में जाता है, और वहां कैसी वेदना है. वैसे ही मैंने भी पहिले केवली, महर्षि श्री महावीर स्वामी को पूछा था कि हे भगवन् ! तीव्र दुःख रूप नरक के भय कैसे हैं ? हे मुनि ! केवल ज्ञान से जानते हुवे आप मेरे जैसे अज्ञानी को कहो कि किस तरह अज्ञानी जीव नरक में उत्पन्न होता है? ॥ १ ॥ जब मैंने इस तरह पूछा तब केवलज्ञानी महानुभाव श्री महावीर देवने ऐसा कहा कि जैसा मैं कहूंगा वैसा तुम सुनो. नरक के दुःख परमार्थ से बहुत विषम है. वैसे ही दीन पुरुषों ने जिन का आश्रय किया

ज्ञानी मं० मन से व० वचन से का० काया से स० सर्व फा० स्पर्श स० सहन करे अ० साधु ॥ २१ ॥ इ० ऐसा आ० कहा से० उन वी० वीर ने धू० रज को दूर करने वाला धू० मोह को दूर करने वाला से० वह भि० साधु त० इसलिये अ० अध्यवसाय वि० शुद्ध वि० विमुक्त आ० कर्मक्षयतक प० विचरे (वि० विचरे आ मोक्ष तक त्ति०) ऐसा बे० कहता हूं ॥ २० ॥ ४ ॥ * *

से मेहावी । पराकिरिअं च वज्जए णाणी ॥ मणसा वयसा काएण । सव्वफाससहे अणगारे ॥ २१ ॥ इच्चेव माहु से वीरे । धूअरए धूअमोहे से भिक्खू ॥ तम्हा अज्झत्थ विसुद्धेसु विमुक्के । आमोक्खाए परिव्वएज्जासि (विहरे आमुक्खाए) त्तिबेमि ॥ २२ ॥

इति इत्थीपरिण्णाज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो। इति इत्थीपरिण्णा णामं चउत्थमज्झयणं सम्मत्तं ॥४॥ * *

उपदेश श्री श्रमण भगवंत महावीर स्वामीने कहा है. इस लिये साधु सम्यक् दर्शन युक्त स्त्री का संसर्ग से दूर रहता हुवा जहां लग मोक्ष होवे वहां लग संयम पाले ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं. ॥ २२ ॥ यह स्त्री परीज्ञा नामक चतुर्थ अध्ययन का द्वितीय उद्देशा पूर्ण हुवा. और चतुर्थ अध्ययन भी समाप्त हुवा. इस अध्ययन में अनाचारी का वर्णन कहा, और जो अनाचारी होते हैं, वे नरकगति में जाते हैं. इस लिये नरक विभक्ति नामक पंचम अध्ययन चलता है. ॥४॥ *

ता० उसमें वि० विनवा हुवा सं० परिचय सं० सहवास व० छोडे त० स्त्रि से उत्पन्न हुवे इ० ये का० काम-भोग व० पापकारी ए० ऐसा अ० कहा ॥ १९ ॥ ए० ऐसा भ० भय ण० नहीं से० श्रेयकारी इ० इति से० वह अ० अपने को नि० रूंधनकरके णो० नहीं इ० स्त्री णो० नहीं प०पशु भि० साधु स०स्वयं पा०हाथ से णि० स्पर्श करे ॥ २० ॥ सु० अच्छी लेश्या वाला मे० पण्डित प० पर क्रिया को व० छोडे णा०

वज्जकराय एव मक्खाए ॥ १९ ॥ एवं भयं ण सेयाय । इह से अप्पगं निरुंभित्ता णो इत्थि णो पसू भिक्खुणो । सयं पाणिणा णिलिज्जेज्जा ॥ २० ॥ विसुद्ध ले-

है कि जो देखके. दास, पाश में बंधाया हुवा मृग, गुलाम या पशु की भी उसको उपमा नहीं देसकते हैं. वह सत्क्रिया से भ्रष्ट होने से साधु नहीं है, वैसे ही ताम्बूलादिक परिभोग रहित होने से गृहस्थ भी नहीं है इस से उभय भ्रष्ट जानना ॥ १८ ॥ इस तरह स्त्री को माया का कारण जानकर उसका परिचय और सह-वास छोडना. स्त्री के संग से उत्पन्न होनेवाले कामभोग पापकारी और दुर्गति के देनेवाले हैं ऐसा श्री तीर्थंकर देवने कहा है ॥ १९ ॥ ऐसे स्त्री का सहवास से अनेक भय उत्पन्न होते हैं. इस लिये वह कल्याणकारी नहीं है ऐसा जानकर साधु अपना आत्मा को स्त्री संग से रुंधे, उस का सहवास करे नहीं. इतना ही नहीं परंतु स्त्री को तथा पशु को स्पर्श भी न करे ॥ २० ॥ शुद्ध निर्मल लेश्यावाला ज्ञानी मन, वचन और काया से स्त्री संबंधी सर्व क्रियाको छोडे और शीत, ऊष्णादि परीषहों को सहन करे ॥ २१ ॥ पूर्वोक्त

ट जैसे ॥ १६ ॥ रा० रात्रि में उ० उठकर दा० बालकोंको सं० रखे धा० धात्री जैसे सु० लज्जा वान भी ते० वे सं० होते हुवे व० वस्त्र धो० धोने वाला ह० होवे हं० धोबी जैसे ॥ १७ ॥ ए० ऐसे ब० बहुत पुरुषों से क० किया हुवा पु० पहिले भो० भोग की इच्छा से जे० जो अ० सन्मुख हुवे दा० दास मि० मृग जैसे पे० नोकर प० पशु सारिखा से० वे ण० नहीं के० कोइ ॥ १८ ॥ ए० ऐसे खु० निश्चय

एगे । भारवहा हवंति उट्टावा ॥ १६ ॥ राओवि उट्ठिया संता । दारगं च संठवंति धाईवा ॥ ॥ सुहिरामणावि ते संता । वत्थधोवा हवंति हंसावा ॥ १७ ॥ एवं बहूहिं कए पुव्वं । भोगच्छाए जे भियावन्ना ॥ दासे मिइव पेसेवा । पसुभूतेव से ण वा केइ ॥ १८ ॥ एवं खु तासु विन्नप्पं। संथवं संवासं च वज्जेज्जा॥ तज्जातिया इमे कामा-

कोइ पुरुष उस का पोषक बने और ऊंट की मुवाफिक बोजा उठानेवाला होवे ॥ १६ ॥ जैसे धात्री रुदन करता हुवा बाल को रखती है वैसे ही वह पुरुष रात्रि में उठकर बालक का पालन पोषण करता है. कदापि वह पुरुष लज्जावान होवे तो भी स्त्री के वचनों से निर्लज्ज बन जाता है. और जैसे धोबी कपडा धोता है वैसे ही वह पुरुष स्त्री तथा बालक का कपडा धोता है. और ऐसे अन्य भी कार्य दास जैसे करता है. ॥ १७ ॥ इस तरह स्त्री का किंकरपना अतीत काल में अनेक पुरुषों ने किया, वर्तमानकाल में कर रहे हैं और भविष्यकाल में भी अनेक करेंगे. भोग की इच्छाओं में लुब्ध पुरुषों के लिये ऐसी कोइ उपमा नहीं

वा० वर्षा काल स० आया आ० मकान जा० लावो भ० भक्त ॥ १४ ॥ आ० माचा न० नविन निवार वाली पा०पावडी सं० चलने को अ० अथवा पु० पुत्र दो० दहोला केलिये आ०आज्ञा प्रमाण करनेवाला ह० होता है दा० दास सदृश ॥ १५ ॥ जा० जन्म फ० फल स० उत्पन्न हुवे को गे० ग्रहण करो अ० अथवा ज० छोडदो अ० मैं पु० पुत्र का पोषणा करने वाला ए० कोइ भा० भारउठाने वाला ह० होते हैं उ० ऊं-

मार भूयाए ॥ वासं सममिआवण्णं । आवसहं च जाण भत्तं च ॥ १४ ॥ आसंदियं च नवसुत्तं । पाउल्लाइं संकमट्ठाए ॥ अदु पुत्तदोहलट्ठाए । आण्णप्पा हवंति दासावा ॥ १५ ॥ जाए फले समुप्पन्ने । गेण्हसु वा णं अहवा जहाहि ॥ अहं पुत्तपोसिणो

सब कुमारके लिये लावो. और हे श्रमण! वर्षाकाल आगया है इस लिये निवास करने योग्य मकानबनावो और वर्षाकाल में घर बैठें खावे इतना धान्य लावो ॥ १४ ॥ नविन सूत्र से बनाहुवा माचा ला देवों, वर्षा ऋतु में चलने से कीचड न लगे इस लिये काष्ट की पावडी ला देवो अथवा गर्भ में रहाहुवा पुत्र का डहोला पूर्ण करने के लिये अमुक वस्तु ला देवो, इस तरह दास की मुवाफिक उस को हुकम करे ॥ १५ ॥ पुत्र उत्पन्न हुवे बाद जो जो विटम्बना होती है सो कहते हैं. गृह कार्य से व्याकुल बनी हुइ कोइ स्त्री कहे कि इस पुत्र को तुम संभालो या तो उसे छोड देवो. मैंने नवमास तक गर्भ में रक्खा, अब मैं उस की वेठ नहीं करसकती हूं तुम तो उस को क्षणमात्र भी खोला में लेते नहीं हो. ऐसा स्त्री का क्रोध युक्त वचन सुनकर

लावो दं० दांत धोनेका प० लावो ॥११॥ पू० पुंगफल तं० तंबोल सू० सूइ सु० दोरा जा० लावो को० भाजन मे० लघुनीनित्यर्थ सु० सूपडा उ० ऊखल खा० क्षार छानने का पात्र ॥ १२ ॥ चं० चंगेरी क० दुग्ध का पात्र व० छवावो घ० गृह आ० आयुष्मन् ख० खोदावो स० धनुष्यवाण जा० लावो गो० वछडा स० श्रमण केलिये रा० लावो ॥ १३ ॥ घ० कुहाडा स० डमरुं चे० दडी गोल कु० कुमार की क्रीडा केलिये

णाहि ॥ आदसगं च पयच्छाहि । दंतपक्खाणलणं पवेसाहि ॥ ११॥ पूयफलं तंबोल यं । सूईसुत्तगं च जाणाहि ॥ कोसंय मोचमेहाए । सुप्पुक्खलगं च खारगालणं च ॥ १२ ॥ चंदालगं च करगं च । वच्चघरं च आउसो खणाइ ॥ सरपायं च जा-याए । गोरहगं च सामणे राए ॥ १३ ॥ घडिंगं च सडिंडिमयं च । चेलगोलं कु

[काच] और दंत प्रक्षालन के लिये दातण मुझे ला देवो ॥ ११ ॥ मुखवास के लिये सोपारी, तम्बोल लावो. वस्त्रादि सान्धने को सूइ दोरा लावो, रात्रि को मैं बाहिर जाने से डरती हूं इस लिये लघुनीति करने को पात्र, धान्य साफ करन को सूंपडा, साजी आदि क्षार छानने को पात्र, और धान्य खांडने को ऊखल मुझे ला देवो ॥ १२ ॥ ओर भी शरीर का श्रृंगार के लिये कुसुमकी चंगेरी, दुग्धादि पीने के लिये करा (लोटा) मुझे ला देवो. हे आयुष्मन्! वर्षाऋतु आगइ है इस लिये घर को छवावो, और कूप खोदावो. बच्चे को खेलने के लिये धनुष्य बाण तथा छोटी उमर का बछडा लावो ॥ १३ ॥ कूहाडा, डमरु, गेंददडी यह

तेळ मु० मुख भिं० भींजानेको वे० वांशके करंडीए स० वस्त्रांदि रखनेको ॥ ८ ॥ नं० नंदी चूर्ण पा० ला-
वो छ० छत्र वा० पगरखी जा० लावो स० शस्त्र सू० शाक सुधारने केलिये आ० नील च० और व० वस्त्र
र० रंगाने को ॥ ९ ॥ सु० अच्छी हंडी सा० शाक पा० पकाने को आ० आमले द० पानीका वरतन
ति० तिलक करने की सलाइ अं० अंजन केलिये सलाइ घिं० ग्रीष्म में मे० मेरे लिये वि० पंखा वि० लावो
॥ १० ॥ सं० चिपिया फ० कांगसी सी० वेणी वांधने केलिये उनकी आंटी आ० लावो आ० दर्पण प०

मुहाभिंजाए । वेणुफलाइं सन्निधानाए ॥ ८ ॥ नंदीचुण्णगाइं पाहराहिं । छत्तो वा-
णहं च जाणाहिं ॥ सत्थं च सूवच्छेज्जाए । आणीलं च वत्थयं रयावेहि ॥ ९ ॥ सुफ-
णिं च सागपागाए । आमलगाइं दगाहरणं च ॥ तिलगकरणि मंजणसलागं । घिं-
सु मे विहूणयं विजाणेहिं ॥ १० ॥ संडासगं च फणिहं च । सीहलि पासगं च आ-

फूलेल और वस्त्राभूषण रखने को करंडिया ला देवो ॥ ८ ॥ ओष्ट रंगने को नंदीचूर्ण, आतप और वृष्टि
का निवारण के लिये छत्र, पाँव में पहिनने को पगरखी, शाकादिक छेदने को अच्छी छूरी, और वस्त्र रंगने
को नील ला देवो ॥ ९ ॥ शाक वनाने को हंडी, शिर धोने को आमले, पानी लाने को घडा, तिलक
करने को और अंजन आंजने को शलाइ तथा उष्ण काल में हवा करने को पंखा लावो ॥ १० ॥ नासी
काका वाल खेंचने को चीपिया, वालों ओंछने को कांगसी, शिर वांधने को आंटी, मुख देखने को दर्पण,

र० रंग ए० आवो मे० मेरी पि० पिठ म० मर्दन करो ॥ ५ ॥ व० वस्त्रों मे० मेरे प० देखो अ० अन्न पा० पानी आ० लावो गं० सुगंध र० रजोहरण का० नापित ए० अच्छा जानो ॥ ६ ॥ अ० अथवा अं० सुरमा अ० अलंकार कु० कुंकुमदानी मे० मेरेको प० धुघरा लो० लोद्र लो० लोदके फूल वे० वांश की लकडी गु० कामगुटिका ॥ ७ ॥ कु० कोष्ट त० तगर अ० दचन सं० सब पीस स० तैयार कर ते०

पाताणिय मे रयावेहि । एहि तामे पिट्ठओ मद्दे ॥ ५ ॥ वत्थाणिय मे पडिलेहेहि । अन्नं पाणं च आहराहित्ति ॥ गंधं च रओहरणं । कासवगं समणुजाणाहि ॥ ६ ॥ अदु अंजाणिं अलंकारं । कुक्कययं मे पयत्थाहि ॥ लोद्दं च लोद्दकुसुमं च । वेणुपलासियं च गुलियं च ॥ ७ ॥ कुट्ठं तगरं च अगरुं । संपिट्ठं सम्मं उसिरेणं ॥ तेल्लं

और मेरे पात्र रंगने के लिये रंग मुझे ला दो, तथा मेरा अंग दुःखता है इस लिये यहां आवो और मेरी पीठ को मर्दन करो ऐसा कहे ॥ ५ ॥ मेरे वस्त्र जीर्ण होगये हैं, उन्हे तुम देखो. अन्न, पानी, कर्पूरादिक सुगंध मुझे ला देवो. अथवा हिरण्य, सुवर्ण रजोहरणादि मुझे ला देवो. वैसे ही लोचादिक सहन करने को मैं असमर्थ हूं, इस लिये क्षौरकर्म कराने को मुझे नापित ला देवो ॥६॥ आंखों को अंजन करने केलिये सुरमा लावो. पहिनने के लिये आभूषण, तिलक करने को कुंकुम, घुघरुवाले नेवर बिछिये लावो. शरीर को लगाने को लोद्र शिर को शोभित करने को फूल, बजाने को वंशकी वीणा, और यौवन रखनेको गुटिका ला देवो ॥ ७ ॥ कोष्ट अगर, तगर इत्यादिक सुगंधि द्रव्य कुटकर तैयार करके ला दो मुख को तेज करनेको

भि० साधु णो० नहीं वि० विहार करोगे स० सह इ० स्त्री की के० केशों का भी लुं० लोच करूंगी न० नहीं अ० अन्यत्र म० मेरे च० विचरो ॥ ३ ॥ अ० अथ स० वह हो० होता है उ० उपलब्ध तो० तब पे० भेजती है त० तथा भूत अ० तुंम्बेको छेदने का शस्त्र पे० चाहिये वि० नालीयेरभी आ० लावो ॥४॥ दा० काष्ट आ० शाक पा० पकाने केलिये प० उद्योत भ० होवेगा रा० रात्रिको पा० पात्रे को मे० मेरे

भिक्खु । णो विहरे सह णमित्थीए ॥ केसाणविहं लुंचिस्सं । ननत्थमए चरिज्जासि ॥ ३ ॥ अह णं स होइ उवलद्धो । तो पेसंति तहा भूएहिं ॥ अलाउच्छेदं पेहेहि । वग्गुफलाइं आहराहित्ति ॥ ४ ॥ दारूणि सागपागाए । पज्जोउ वा भविस्सति राओ ॥

स्त्री ऐसी माया करे कि यदि तुम मुझे बाल सहित साथ रखने में लज्जित होते हो तो इस तरह तुम मत विहार करो मैं केश का लोच करूंगी और अन्य भी तुम जो कहोगे वह करूंगी. परंतु मेरे सिवाय तुम अन्यत्र विहार करना नहीं ॥ ३ ॥ अपने वश में आया हुवा साधु को जानकर उस की पास दास जैसा कार्य करावे, वह बताते हैं:—अपनी पास तुम्बा है उसे छेदने के लिये शस्त्र चाहिये वह ला दो या अच्छे नालियेर के फल ला दो ॥ ४ ॥ शाक पकाने के लिये काष्ट, रात्रि में प्रकाश होवे इस लिये तेल ×

× "पज्जोउवा भविस्सति राओ" रात्रि में उद्योत होवेगा इस लिये रात्रि में वन में जाकर के भी काष्टादि ले आवो. ऐसा टीकाकार अर्थ करते हैं.

ओ० विरक्त स० सदा ण० नहीं र० आसक्त होवे भो० भोग कामी पु० फिर वि०विरमे भो० भोग में स० साधु सु० सुनो ज० यथा भु० भोगवते हैं भि० साधु ए० कितनेक ॥ १ ॥ अ० फिर तं० उसे भे० भेद आ० प्राप्त मु० मूर्च्छित भि० साधु का० कामासक्त देख प० मर्यादा छोड प० फिर पा० पांवउठाकर मु० शिरमें प० प्रहार करती है ॥ २ ॥ जो० यदि के० केशवाली (स्त्री) म० मेरी साथ

ओए सया ण रज्जेज्जा । भोगकामी पुणो विरज्जेज्जा ॥ भोगे समणाण सुणेह जह भुंजंति भिक्खुणो एगे ॥१॥ अह तं तु भेद मावन्नं । मुच्छितं भिक्खूं काम । मतिवट्टं ॥ पलिभिंदियाणं तो पच्छा । पादुद्धट्टु मुद्धि पहाणंति ॥ २ ॥ जइ केसिआ णं मए

जो साधु संसार के कार्यों से विरक्त हुवे हैं, वे काम भोगों से सदैव निर्लेप रहते हैं. कदाचित् उस की इच्छा होजाय तो भोगोंसे होती हुइ विटम्बना को जानकर की भोगेकी इच्छासे अपना मन पीछा खेंच लेना जो साधु अपना मन भोगोंकी इच्छाओंसे पीछा नहीं खेंचता है, और भोगोंमें ही फसता है, उन को जो जो विटम्बना होती है उसे आगे बताते हैं ॥ १ ॥ स्त्री संग से भ्रष्ट हुवा तथा कामभोग में मूर्च्छित साधु को कोइ स्त्री ऐसा कहे कि:-तेरे लिये मैंने मेरा कुल की मर्यादाका भंग कीया है और मेरा यह शरीरभी तुझको मैंने अर्पण कर दिया है. ऐसे ऐसे वचनों से साधु को अपना वश में कर लेवे. फिर जब कभी वह स्त्री रुष्ट होवे और मोह पाश में फसाहुवा साधु उस के पांव में पडे तब वह क्रुद्धा स्त्री उस के शिर में बाया पांव का प्रहार करतीहै तहांपि वह मूर्ख उस से विरक्त नहीं होता है ॥२॥ साधु को वश करने केलिये कोइ

त्रणसे आ० कहे व० वस्त्र ता०रक्षक पा०पात्र वा० अथवा अ०आहार पा०पानी प० ग्रहणकरो ॥३०॥ णी० सालके कण जैसा बु० जाने णो० नहीं इ० इच्छे अ० घर में आ० आनेको ब० बन्धावे वि० विषय पाश से मो० मोह अ० ग्रहण करता है पु० फिर मं० मूर्ख त्ति० ऐसा वे० कहताहूं ॥ २१ ॥ ४ ॥ १ ॥

णं पडिग्गाहे ॥ ३० ॥ णीवारमेवं बुज्झेज्जा । णो इच्छे अगारमागंतु ॥ बद्धे विसय पासेहिं । सोहमावज्जइ पुणो मंदि त्तिबेमि ॥ २१ ॥ इति इत्थीपरिण्णाज्झयणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो ॥ ४ ॥ १ ॥

* *

को आमंत्रण करे कि अहो षट्काया के रक्षक तुम को वस्त्र, पात्र, अन्न, पानी आदि जिस की जरूरत होवे उसे हमारे घर आकर लेजाना ॥ ३० ॥ पूर्वोक्त आमंत्रण को व्रीही के कण समान जानकर उस के घर जाने का वांछे नहीं. यदवांछतो विषय पाशमें बंधाया हुवा वह अज्ञानी मोह के चक्रमें वारम्वार पडे॥२१॥ ऐसा श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू! जैसा मैंने श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही तेरे प्रत्ये कहता हूं. यह स्त्री परिज्ञा नामक चतुर्थ अध्ययन का पहिला उद्देशा पूर्ण हुवा. इसमें स्त्री का परिचय से साधु के चारित्र का विनाश होता है ऐसा कहा अब आगे शीलसे भ्रष्ट साधु को क्या क्या विटम्बना होती है वह बताते हैं. ॥ ४ ॥ १ ॥

*

गिनकी पासलाया हुआ आ० शीघ्र अ०तापसे णा० नाशको उ० प्राप्त होता हैं ऐ० ऐसे इ० स्त्रीके अ० साधु सं० सहवाससे णा० नाश उ० पाते हैं ॥ २७ ॥ कु० करते हैं पा० पापकारी क० कर्म पु० पूछनेसे आ० कहते है नो०नहीं अ० मैं क० करता हूं पा०पाप अं०खोलेमें सा०बैठनेवाली म०मेरा ॥२८॥ बा०अज्ञानी की मं० मूर्खता बी० दूसरी जं० जो कं० करी हुई अ० जानता है भु० फिर दु० द्विगुणा क० करता है से० वे पा०पाप पू० पूजार्थी वि० गवेषक ॥ २९ ॥ सं० सुंदर देखकर अ०साधु आ० आत्मगत नि० आमं-

गारा । संवासेण णासमुवयंति ॥ २७ ॥ कुव्वंति पावगं कम्मं । पुट्ठावेगेव माहिंसु ॥ नो हं करेमि पावंति । अंके साइणी ममेत्ति ॥२८॥ बालस्स मंदयं बीयं । जं च कडं अवजाणइ भुज्जो ॥ दुगुणं करेइ से पावं । पूयणकामो विसन्नेसी ॥ २९ ॥ संलोकाणिज्ज मणगारं । आयगयं निमंतणे णाहंसु ॥ वत्थं च ताय पायं वा । अन्नं पाण-

गल कर नष्ट होता है, वैसे ही स्त्री का सहवास से लाख की मुवाफक साधु संयम से भ्रष्ट होताहै ॥२७॥ कोइ अनाचारी साधु मोह के उदय से मैथुन सेवनादि पाप कर्म करे, और जब आचार्यादि पूछे तो कहे कि मैं पाप कर्म नहीं करता हूं. यह तो मुझे पुत्री समान है. जब वह छोटी थी तब वह मेरे खोले में बैठती थी और ऐसा अभ्यास होने से अबी भी ऐसा करती है. परंतु मैं प्राणान्त में भी व्रत का भंग करूं नहीं ॥ २८ ॥ अज्ञानी की यह दूसरी मूर्खता है. प्रथम तो अनाचार सेवनादि पाप कर्म करता है, और दूसरा उस को छुपाने को मृषावाद बोलता है. इस तरह मृषावाद बोलनेवाला पूजासत्कार का अभिलाषी बन कर दूगना पाप करता है ॥ २९ ॥ रूपवान साधु को देख कर और मन में जानकर कोइ स्त्री साधु

है वा० वचनसे अ० अन्य क० कर्मसे अ० अन्य त० इसालेये न० नहीं स० श्रद्धाकरे भि० साधु ब० बहुत मा० मायावाली इ० स्त्री ण० जानकर ॥ २४ ॥ जु० युवती स० साधुको बू० बोले वि० विचित्रालंकार व० वस्त्र प० पहिनकर वि० विरक्ता च० आचरूंगी रु० संयम ध० धर्म आ० कहो भ० साधु २५ अ० अथवा सा० श्राविका प० बहाना अ० मैं सि० हूं सा० स्वधर्मिणी स० साधुकी जं० लाखका कुं० कुंभ ज० जैसे उ० अग्निके पास सं० रहनेसे वि० विद्वान सी० सीदावे ॥ २६ ॥ जं० लाख कुं० कुंभ जो० अ-

इत्थीओ णच्चा ॥ २४ ॥ जुवती समणं बूया । विचित्तलंकारवत्थगाणि परिहित्ता ॥ विरता चरिस्सहं रुक्खं । धम्ममाइक्खणे भयंतारो ॥ २५ ॥ अदु साविया पवाएणं । अहमंसि साहम्मिणीय समणाणं ॥ जंतु कुंभे जहा उवज्जोइ । संवासे विदुवि सीएज्जा ॥ २६ ॥ जंतु कुंभे जोइ उवगूढे । आसु भितत्तेणा समुवयाइ ॥ एविवित्थियाहिं अण-

वचन में श्रद्धा करे नहीं ॥ २४ ॥ विचित्र वस्त्रालंकार पहिनकर कोइ नव यौवना स्त्री साधु की पास आकर कहे कि मेरा भर्ता अच्छा नहीं है इस से मैं गृहपाश से निवर्ती हुइ हूं. अब मैं संयम अंगीकार करूंगा इस लिये हे भय से बचानेवाले ! मुझे धर्म कहो ॥ २५ ॥ अथवा तो स्त्री साधु की पास ऐसा बहाना से जावे कि मैं तुमारी श्राविका हूं, मैं श्रमण महात्मा की स्वधर्मिनी हूं. ऐसा प्रपंच करके साधु को भ्रष्ट करे. जैसे लाख का घडा अग्नि की पास रहने से पानी होजाता है वैसे ही विद्वान पुरुष भी स्त्री के संसर्ग से शीतल विहारी होते हैं ॥ २६ ॥ जैसे लाख का घट अग्नि की पास रखने से शीघ्र ही उस की गरमी से पि-

ते०, अग्निमें अ० तपावे भ० भट्ठी य० और खा० क्षार सिं० सींचे ॥ २१ ॥ अ० अथवा क० कर्ण णा० नाक का छे० छेद कं० गलाका छे० छेद ति० तितिक्षासे इ० यहां पा० पापासक्त न० नहीं विं० दुसरी वक्त पु० फिर न० नहीं का० करूंगा ॥ २२ ॥ सु० सुना ए० कितनेक इ० स्त्री वेद सु० कहा ए० ऐसे ता० वे व० बोलतीहुवी अ० अथवा क० कर्मसे अ० करते हैं ॥ २३ ॥ अ० अन्य म० मनसे चि० चिन्तवन करती

अवि तेयसाभितावणानि, भत्थिय खारसिंचणाइं च ॥ २१ ॥ अदु कण्णणासच्छेदं-कंठच्छेदणं तितिक्खंति, इत्थ पावसंतत्ता, न य बिंति पुणो न काहिंति ॥ २२ ॥ सुत मे, तमेव मेगेसिं, इत्थी वेदेति हु सुयक्खायं; एवंपि ता वादित्ताणं, अदुवा कम्मुणा अवकरेंति। २३। अन्नं मणेण चिंतेति, वाया अन्नं च कम्मुणा। अन्नं तम्हा ण सद्दहे भिक्खू, बहुमायाओ

स्त्री संबंधि कटुक फल श्री श्रमण भगवंत महावीर स्वामी से मैंने सुना है कि स्त्री का संबंध करनेवाला पुरुप को इस का फल इसी भव में मिल जाता है. कितनेकोंका हाथ, पाँव, नाक, कान छेदते हैं, चिमटे से चमडा तोडते हैं और उपर क्षार का सिंचन करते हैं, अग्नि में जलाते हैं, इतना ही नहीं आपितु उस की गर्दन काटकर प्राण रहित करते हैं. ऐसे कष्ट होने पर जीव कहते हैं कि अब मैं ऐसा कार्य नहीं करूं-गा परंतु पुनरापि वैसा कार्य करने लगजाते हैं, ॥ २२-२३ ॥ स्त्री मन से अन्य चिंतवन करती है, वचन से अन्य बोलती है, और कर्म से अन्य करती है. इस लिये स्त्री को बहुत मांयावी जान के साधु उन का

प० कहता है वा० अज्ञानी वे० वेदका उदय मा० नहीं का० करे चो० प्रेराया हुवा गि० गिला न पना पाता है से० वे भु० वारवार ॥ १९ ॥ ओ० भुक्तभोगी इ० स्त्रीपोषन में सु० सत्पुरुष इ० स्त्रीवेद खे० खेदज्ञ प० प्रज्ञावंत स० बुद्धिमंत ए० कितनेक ना० नारीके व० वश उ० दासत्व करते हैं ॥ २० ॥ अ० अपि ह० हस्तपाद छेदनेके लिये अथवा व० चर्ममांस उ० तोडे अ० अपि

सयं दुक्कडं च न वदति आइट्ठोवि पकत्थति बाले; वेयाणुवीइ मा कासी, चोइज्जंतो गिलाइ से भुज्जो ॥ १९ ॥ ओसियावि इत्थिपोसे, सुपुरिसा इत्थिवेय खेयन्ना, पण्णासमन्नितावेगे, नारीणं वसं उवकसंति ॥२०॥ अवि हत्थपादच्छेदाय, अदुवा वद्धमं सउक्कंते

यदि पुछे तो भी वह अपना किया हुआ अनाचार कहे नहीं, और उसको कहे कि अव तुम ऐसा कार्य मत करना तो वह मूर्ख कहे कि अब तुम कहोगे वैसा करूंगा, और पुरुष वेद का उदय आने पर मैथुन की अभिलाषा मत करना. इसतरह शिक्षा देनेपर वह खिन्नहोताहै और वारंवार सुने को अनसुना करता है ॥१९॥ अहो भव्य! वेदोदय की प्रबलता से उत्पन्न हुवा जो मोहोदय उस का प्रभाव बडा ही दुष्कर है. बडे विद्वान भी स्त्री को संसार का कारन जानते हुवे भी स्त्री के वश बन जाते हैं. और जो कार्य वह बताती है उस को दास की सदृश करते हैं ॥ २० ॥ श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू !

स० समाधि योग से त० इसलिये स० साधु न० नहीं स० जाते हैं आ० आत्महितार्थकेलीये स० स्त्री की वसाति ॥ १६ ॥ ब० बहुत गि० घर अ० छोडकर मि० मिश्र भाव प० पहोंचा ए० कितनेक धु० ध्रुवमार्ग प० मरुपते हैं वा० वचन बल कु० कुशीलिया ॥ १७ ॥ सु० शुद्ध र० बोलते है प० परिषद् में र० एकान्त में दु० दुष्कृत्य क० करते हैं जा० जानते हैं त० तथा विध मा० मायावी म० महाशठ हैं ॥ १८ ॥ स० स्वयं दु० दुष्कृत्य न० नहीं व० बोलते हैं आ० आदेश कराया हुवा

सण्णि सेज्जाओ ॥ १६ ॥ बहवे गिहाइं अवहट्टु । मिस्सीभावं पत्थुया (पणता) यए-गे ॥ धुवमग्ग मेव पवयंति । वायाविरियं कुसीलाणं ॥ १७ ॥ सुद्धं रवति परिसाए, अह रहस्संमि दुक्कडं करेंति, जाणंति यणं तहाविया, माइल्ले महासढेयंति ॥ १८ ॥

साधु स्त्री साथ परिचय करता है. इस लिये साधु अपना आत्मा का हित जानकर स्त्री की साथ जावे नहीं वैसे ही जिस स्थान में स्त्री रहती होवे उस स्थान में अशनादिक करे नहीं ॥ ६ ॥ गृह छोडकर मिश्रभावको पहुंचे हुवे कितनेक मनुष्य ऐसा कहते हैं कि हमाराही मोक्ष मार्ग श्रेय है परंतु उनका यह कथन मात्र है अर्थात् उनका वीर्य मात्र कथन रूपही है, कार्य रूप नहीं है ॥१७॥ कुशीलका सेवनेवाला परिषदामें अपनी आत्माको शुद्ध बतलाता है; परंतु वहांसे उठे बाद एकान्तमें दुष्ट कर्म कर्ता है, इस तरह अपना आचारको छुपाता है. परंतु उसे अंगचेष्टाके जानकार पुरुष जानजाता है और सर्वज्ञतो सदैव जानते हैं कि यह साधु मायावी महाशठ है ॥ १८ ॥ द्रव्यलिंगी साधुको कोइ आचा-

ज्ञातिको सु० सुहृद् को अ० अप्रीति द० देखकर ए० एकदा हों० होते हैं गि० गृद्ध स० आसक्त
का० काम भोग में र० रक्षण पो० पोषण म० मनुष्य सि० है ॥ १४ ॥ स० साधु को द० देखकर दा० दा-
सी त० तहां ता० तब ए० कितनेक कु० कोप करते हैं अ० अथवा भो० आहार ण० साधु निमित्त इ०
स्त्री का दोष सं० शंकावंत हो० होते हैं ॥ १५ ॥ कु० करते हैं सं० परिचय ता० उस से प० भ्रष्ट हुवा

गिद्धासच्चा कामेहिं । रक्खणपोसणे मणुस्सोसि ॥ १४ ॥ समणंपि दट्ठु दासीणं
तत्थवि ताव एगे कुप्पंति ॥ अदु भोयणेहिं णत्थेहिं । इत्थीदोसं संकिणो होंति ॥ १५ ॥
कुव्वंति संथवं ताहिं । पब्भट्ठा समाहिजोगेहिं ॥ तम्हा समणा ण समेंति । आयहियाए

देख लेवे तो द्वेष उत्पन्न होवे. और ऐसा जाने कि, देखो यह पुरुष काम भोग में आसक्त दिखता है. ऐसा
जानकर उस को आक्रोश वचन बोले, कि क्या तू "इसका धणि है" कि जिस से यहांपर बहुत बैठता है,
और उस का रक्षण पोषण करता है ॥ १४ ॥ रागद्वेष रहित उदासी साधु स्त्री की साथ एकान्त में वार्ता-
लाप करे तो उन के पर भी कोइ क्रोधित होते हैं, और अनेक प्रकार का भोजन साधु के लिये बनाया
देख कर ऐसा जानतेहैं; कि यह आहार का गृद्ध साधु सदैव यहां आता है, और स्त्री की भी शंका करे कि
यह स्त्री भी अच्छी नहीं है ॥ १५ ॥ मन वचन और काया का शुभयोग रूप व्यापार से भ्रष्ट होनेवाला

लिये व० छोडे इ० स्त्री को वि० विलिप्त कं० कंटक न० जानकर उ० एकिला कु० कुलको व० वश आ० कहे ण० नहीं से० वह णि० निर्ग्रन्थ ॥ ११ ॥ जे० जो ए० यह उं० निन्दा अ० गृद्ध अ० अन्य हुं० होवे कु० कुशील को सु० अच्छा तपस्वी से० वह भि० साधु नो० नहीं वि० विचरे स० साथ इ० स्त्रियों में ॥ १२ ॥ अ० अपि धू० पुत्री सु० पुत्रवधू धा० धाय माता अ० अथवा दा० दासी म० बडी वा० या कु० कुमारी साथ सं० परिचय से० वह न० नहीं कु० करे अ० साधु ॥ १३ ॥ अ० अथवा णा०

सवत्ती । आघाते ण से वि णिग्गंथे ॥ ११ ॥ जे एयं उंछं अणुगिद्धा। अन्नयरा हुं-ति कुसीलाणं ॥ सुतवस्सिएवि से भिक्खू । नो विहरे सह णमित्थीसु ॥ १२ ॥ अ-वि धूयराहि सुण्हाहिं । धातीहिं अदुव दासीहिं ॥ महतीहि वा कुमारीहिं । संथवं से न कुज्जा अणगारे ॥ १३ ॥ अदु णाईणं च सुहीणं वा । अप्पियं दट्ठु एगया होंति॥

से संयम में बाधा आती है, ऐसा जानकर स्त्री की संगत, तथा उनकी साथका वार्तालाप को भी साधु को छोडना. और जो अकेला विचरताहुवा स्त्रियों के वश में रह कर स्त्रियों की कथा करता है, वह साधु नहीं हैं ॥ ११ ॥ जो साधु मात्र स्त्री की कथा में ही लुब्ध रहता होवे उन को पार्श्वस्थ साधु कहना. इस लिये तपस्वी को भी स्त्री की साथ विहार करना नहीं ॥ १२ ॥ साधु को पुत्री, पुत्रवधू, धायमाता, दासी अथवा बडी कुमारीका की साथ विचरना नहीं ॥ १३ ॥ इस तरह विचरने से उस को ज्ञाति, सुहृद् कभी

अ० अनगार को ॥ ८ ॥ अ० अथ त० तहां पु० और ण० नमावे र० रथकार णे० चक्र अ० अनुक्रमसे व० वंधाया हुवा मि० मृग जसा ।० पाश मे फं० चलायमान ण० नहीं मु० मुक्त होता है ता०उस से ॥ ९ ॥ अ० अथ स० वह अणु० पश्चाताप करता है प० पिछ म भो० खाकर पा० दूध वि० विषमिश्रित ए० ऐसे वि० विवेक आ० आदरकर सं० संवास न० नहीं क० कल्पे द० मोक्षार्थी ॥ १० ॥ त० इस-

याओ बंधंति । संवुडं एगतिय मणगारं ॥ ८ ॥ अह तत्थ पुणो णमयंति । रहकारोव णेमि अणुपुव्वी ॥ बद्धेमिएव पासेणं । फंदंतेवि ण मुच्चए ताहि ॥ ९ ॥ अह से णुतप्पइ पच्छा । भोच्चा पायसं च विसम्मिसं ॥ एवं विवेग मादाय । संवासो नविकप्पए दविए ॥ १० ॥ तम्हाउ वज्जए इत्थी । विसलित्तं च कंटगं नच्चा ॥ उए कुलाणि व

वैसे ही स्त्रियों अकेला फिरनेवाला संवृत अनगार को बांधती हैं ॥ ८ ॥ अब जैसे रथकार चक्र का बाहिर का भाग नमाता है वैसे ही स्त्रियों साधु को अपने वश में करती हैं. और इस तरह आसक्त हुवा साधु जैसे मृग पाश में बंधाये बाद नहीं छूटता है, वैसे ही स्त्रीयों की पास से नहीं छूट सकता है ॥ ९ ॥ जैसे कोइ मनुष्य विषमिश्रित दूध का पान कर पश्चाताप करता है, वैसे ही स्त्रियों की पाश में बंधाया हुवा साधु पश्चाताप करता है. ऐसा विवेक जानकर साधु को स्त्रियों का संसर्ग करना नहीं ॥ १० ॥ इस लिये जैसे विषलिप्त कंटक शरीर में खुचनेसे अनर्थ करता है वैसे ही स्त्रियों का स्मरण करने

होता है ॥ ५ ॥ आ० आमंत्रण करके वि० विश्वास देकर भि० साधु को आ० आत्मा से नि० निमंत्रण करती है ए० इनको चे० निश्चय से० वह जा० जाने स० शब्द वि० विविध प्रकारके ॥ ६ ॥ म० मन बंधन से अ० कितनेक क० करुणाजनक वि० विनय पूर्वक उ० पास आकर अ० अथवा मं० मधुर भा० बोलता है आ० आज्ञा करावे भि० अलगर कथासे ॥ ७ ॥ सी० सिंह ज० जैसे कु० मांससे नि० निर्भय ए० अकेला वि० विचरे पा० पाशसे ए० ऐसे त्थि० स्त्रियों बं० बांधती है सं० संवृत ए० अकिंचन

सहियंपि विहरेज्जा । एव मप्पा सुरक्खिओ होइ ॥ ५ ॥ आमंतिय उस्सविय । भिक्खू आयसा निमंतंति ॥ एताणि चेव से जाणे । सद्दाणि विरूवरूवाणि ॥ ६ ॥ मणबंध णेहिं णेगेहिं । कलुण विणीय मुवगसित्ताणं ॥ अदु मंजुलाइं भासंति । आणवायंति भिन्नकहाहिं ॥ ७ ॥ सीहं जहा च कुणिमेणं । निब्भय मेगचरंति पासेणं ॥ एवंत्थि

को उन सब नाना प्रकार के शब्दों ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागना ॥६॥ मनको बंधन करे ऐसे अनेक प्रकार के प्रपंच करनेवाली स्त्रीयों विनय पूर्वक साधु की पास जाकर करुणा जनक तथा मनोहर वचनों से बोलती हैं. और मैथुन संबंधि रहस्य वार्तालाप करके साधु को अपनी आज्ञा में प्रवर्तावती हैं ॥ ७ ॥ जैसे सिंह को मांस का टुकडा डालकर कितनेक पाराधि निर्भय करते हैं. और जब निर्भयता से अकेला फिरता है तब वे उसे पास से बांध कर अनेक प्रकार से दुःखी करते हैं.

भाग वि० बतलावे बा० भुजा को उ० उठाकर क० कक्षा अ० जावे ॥ ३ ॥ स० शयन आ० आसन के जो० योग्य इ० स्त्रियों ए० एकादा णि० निमंत्रण करती है ए० ये चे० निश्चय से० वह जा० जाने पा० पाश वि० नाना प्रकार की ॥४॥ नो० नहीं ता० उसमें च० चक्षु सं० संधे नो० नहीं सा० अकार्य को (साहस) स० अच्छजाने णो० नहीं स० साहित (साथ) वि० विचरे ए० इस तरह अ० आत्मा सु० रक्षित हो०

क्खणं पोसवत्थं परिहिंति ॥ कायं अहे विदंसंति । बाहू उद्धट्टु कक्ख मणुव्वजे ॥ ३ ॥ सयणासणेहिं जोगेहिं । इत्थीओ एगया णिमंतंति ॥ एयाणि चेव सेजाणे । पासाणि विरूवरूवाणि ॥ ४ ॥ नो तासु चक्खु संधेज्जा । नो विय साहसं समाभिजाणे ॥ णो

वस्त्र पहिनती है, काया का अधो भाग जंघादिक बताती है, और बाहु को उठाकर कक्षाको बताती हुइ साधु की सन्मुख जाती है ॥ ३ ॥ कोइ स्त्री लेने योग्य पाटपाटला प्रमुख के लिये साधु को अकेला देखकर स्नेह वचनों से निमंत्रण करे. परंतु साधु उन सब को पाश समान जाने ॥ ४ ॥ और उन की चक्षु से चक्षु मिलावे नहीं, वैसे ही मैथुनादिक अकार्य करे नहीं, उस के प्रार्थनारूप वचन को अच्छा जाने नहीं, स्त्री की साथ ग्रामादिक विचरे नहीं. इस तरह रहने से अपना आत्मा का रक्षण होता है, ॥५॥ कितनीक स्त्रियां साधु को संकेत करके या विश्वास उपजाकर आमंत्रण करती है; परंतू साधु

॥ स्त्रीपरिज्ञा नामकं चतुर्थ मध्ययनम् ॥

जे० जो मा० माता पि० पिता को वि० छोडकर पु० पूर्व संयोग ए० कितनेक स० ज्ञानादि सहित च० विचरूंगा आ० मैथुन धर्म से निवर्तने वाला वि० विविक्त ॥ १ ॥ सु० सूक्ष्म तं० उसकी पास प०जाकर छ०कपट से इ०स्त्री मं० मूर्ख उ०उपाय को ता०वे जा०जाने ज०जैसे लि०भ्रष्ट होवे भि०साधु ए०कोइ ॥२॥पा० पार्श्व में भि० बहुत णि० वैठती है अ०वारम्वार पो०अच्छे वस्त्र प०पाहिने का०काया अ० अधो

जे मायरं च पियरं च । विप्पजहाय पुव्वसंजोगं ॥ एगे सहिते चरिस्सामि । आरत-मेहुणो विविन्तेसु ॥१॥ सुहुमेणं तं परिक्कम्म । छन्नपएण इत्थीओ मंदा ॥ उवायंपि ताउ जाणंसु । जहा लिस्संति भिक्खुणो एगे ॥ २ ॥ पासे भिसं णिसीयंति । आभि

माता, पिता, भ्राता, आदिका संयोग छोड कर ज्ञानादि सहित अकेला ही विचरूंगा; ऐसी जो साधु प्रतिज्ञा करताहै, और स्त्री पंशु पंडग रहित स्थान की गवेपणा करता हुवा मैथुन से निवर्तता है; उस की पास मूर्खा स्त्री अमुक व्याज [व्हाना] से जाकर धीरे २ गुप्त कथा करके साधु को संयम से भ्रष्ट करती है क्यों कि जिस रीति से साधु भ्रष्ट होवे उस का उपाय वह जानती है ॥ १-२ ॥ अब भ्रष्ट करने का उपाय बताते हैं. वह साधु की बहुत नजीक जाकर वैठती है, वारंवार काम विकार उत्पन्न होवे वैसा

र का० काश्यपने प० कहाहुवा कु० करे भि० साधु गि० रोगीकी अ०अग्लानपने स० समाधि ॥२१॥ सं० जानकर पे० श्रेष्ठ ध० धर्म दि० द्रष्टिमान् प० शीतल उ० उपसर्ग अ० सहे आ० मोक्ष के लिये प० प्रवर्ते त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २२ ॥ ३ ॥

य । कासवेण पवेदितं ॥ कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स । अगिलाए समाहिए ॥ २१ ॥
संखाय पेसलं धम्मं । दिट्ठीमं परिनिव्वुडे ॥ उवसग्गे हियासिच्चा । आमोक्खाय परिव
एज्जासि त्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति उवसग्गपरिण्णाणाम तइयमज्झयणं सम्मत्तं

की अग्लानपने समाधि उत्पन्न होवे वैसे वैयावृत्य करना ॥ २१ ॥ जिन प्रणित श्रेष्ठधर्म को जानकर सम्यक् दृष्टि जीव कषाय को उपशमाकर शीतली भूत होवे. और उपसर्ग को सहन कर जहां लग मोक्ष नहीं होवे वहांतक संयम पाले ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं. यह उपसर्ग परिज्ञा नामक तृतीय अध्ययन समाप्त हुवा. इसमें अनुकूल उपसर्ग सहन करना दुर्लभ है ऐसा कहा अब आगे स्त्रीसे कराये हुवे अनुकूल उपसर्ग सहन करने के लिये स्त्री परिज्ञा नामक चतुर्थ अध्ययन कहते हैं.

जहां पा० प्राणी वि० खुंतते हैं कि० फसते हैं स० अपने क० कर्म से ॥ १८ ॥ तं० उसे भि० साधु प० जानकर सु० सुव्रति स० समीतिवंत च० विचरे मु० मृषावाद को व० वर्जे अ० अदत्त दान को वो० छोडे ॥ १९ ॥ उ० ऊंची अ० नीची ति० तिर्यक् जे० जो के० कोइ त० त्रस था० स्थावर से स० सर्वथा वि० विरति कु० करे सं० है नि० निर्वाण आ० कहा ॥ २० ॥ इ० यह च० और ध० धर्म को आ० ग्रहण क-

च्चंति सयकम्मुणा ॥ १८ ॥ तं च भिक्खू परिण्णाय । सुव्वते समिते चरे ॥ मुसावा यं च वज्जिज्जा । दिन्नादाणं च वोसिरे ॥ १९ ॥ उड्डमहे तिरियं वा । जे केइ तस थावरा ॥ सव्वत्थ विरतिं कुज्जा । संति निव्वाण माहियं ॥२०॥ इमं च धम्म मादा

संसार रूपी ओघ कि जिस में खुते हुवे प्राणी अपने कर्म से पीडित होते हैं उसे तीरेंगे ॥ १८ ॥ सदाचारी साधु पूर्वोक्त वातों को जान कर समिति पूर्वक विचरे. और मृषावाद अदत्तादान का त्याग करे वैसे ही अनुक्रम से मैथुन परिग्रह का भी त्याग करे ॥ १९ ॥ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में जो कोइ त्रस और स्थावर रहे हुवेहैं उन की मन वचन और काया से हिंसा करना नहीं, कराना नहीं, और हिंसा करने- वाले को अनुमोदना नहीं. ऐसा करने से शान्ति तथा मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है ऐसा श्री सर्वज्ञ प्रभुने कहा है ॥ २० ॥ श्री महावीर स्वामी का प्ररूपाहुवा धर्म को अंगीकार कर साधु को रोगी साधु

मुक्त न० नहीं अ० वांच्छते हैं जी०असंयम ॥१५॥ ज० जैसे न० नदी वे० वैतरणी दु० दुस्तर इ०यहां
सं० प्रसिद्ध ए० ऐसे लो० लोकमें ना० स्त्री दु० दुस्तर अ० निर्बुद्धि ॥ १६ ॥ जे० जिसने ना० स्त्रीके
सं० संयोग पू० पूजा श्लाघा को पि० पृष्ट क० करे स० सर्व ए० उसने नि० दूर करके ते० वे ठि०
स्थित सु० अच्छी समाधि में ॥ १७ ॥ ए० ये ओ० प्रवाह त० तीरेंगे स० समुद्र को व० वणिक ज०

परितप्पए ॥ ते धीरा बंधणुम्मुका । नावकंखंति जीवियं ॥ १५ ॥ जहा नई वेयर-
णी । दुत्तरा इह संमता ॥ एवं लोगंसि नारीओ । दुत्तरा अमईमया ॥ १६ ॥ जेहिं
नारीणं संजोगा । पूयणा पिट्ठतो कता ॥ सव्वमेयं निराकिच्चा । ते ठिया सुसमाहिए
॥ १७ ॥ एते ओघं तरिस्संति । समुद्दं ववहारिणो ॥ जत्थ पाणा विसन्नासि । कि

ार्थ

ने अपनी यौवना अवस्था में धर्म के विषे उद्यम किया वे महापुरुष वृद्धावस्था तथा मरण का अवसर में
पश्चाताप नहीं करते हैं. और वे बंधन से मुक्त धैर्यवंत पुरुष असंयम जीवितव्य की वांच्छा नहीं करते हैं.
॥ १५ ॥ जैसे वैतरणी नदी पार करना बहुत कठिन है वैसे ही अज्ञानी मनुष्यों को स्त्रीयों अतीव दुस्तर
है ॥ १६ ॥ जिन्होंने स्त्री का संयोग छोड दिया है वैसे ही अपने शरीर की विभूषादि भी छोड दी है,
वे पुरुषों स्त्री संगादिक तथा अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग का निराकरण करके संवर रूप समाधि से स्थित
बने हैं ॥ १७ ॥ जैसे व्यवहारिआ समुद्र को नाव से तीरता है वैसे ही पूर्वोक्त परीषह जीतनेवाले महापुरुषों

भो० भोगवता है द० पानी ए०ऐसे वि०प्रार्थना करने वाली इ० स्त्री में दो० दोष त० तहां क०कहां से सि० होवे ॥ १२ ॥ ए० ऐसे ए० कितनेक पा० पार्श्वस्थ मि० मिथ्यादृष्टी अ० अनार्य अ० प्राप्त हुवा का० काममें पू० गाडर जैसे त० तरूण ॥१३॥ अ० अनागत म० नहीं देखताहुवा प० प्रत्युत्पन्न ग० गवेषते ते० वे प० पश्चात् प० परितापकरतेहैं खी० क्षीण आ० आयुष्य जो० यौवन ॥ १४ ॥ जे० जिसमें का० वक्तपर प० पराक्रमकरते को न० नहीं प० पश्चात् प० परितापित होवे ते० वे धी०धीर बं० बंधन मु०

विहंगमा पिंगा । थिमिअं भुंजाति दगं ॥ एवं विन्नवाणित्थीसु । दोसो तत्थ कओ सिआ ॥ १२ ॥ एवं मेगे उ पासत्था । मिच्छदिट्ठी अणारिया ॥ अज्झोववन्ना कामे हिं । पूयणा इव तरुणए ॥ १३ ॥ अणागयमपस्संता । पच्चुप्पन्न गवेसगा ॥ ते पच्छा परितप्पंति । खीणे आउंमि जोव्वणे ॥ १४ ॥ जेहिं काले परिकंतं । न पच्छा

पानी का पान करता है परंतु पानी को कष्ट नहीं देता है वैसे ही प्रार्थना करनेवाली स्त्री से कामभोग सेवने में कोनसा दोष है ? ॥ १२ ॥ जैसे डाकण छोटा बच्चा को देखकर गृद्ध होवे अथवा जैसे गाडरी अपना तरुण बच्चा को देख कर गृद्ध होवे वैसे ही कितनेक मिथ्यादृष्टि अनार्य पुरुष कामभोग में गृद्ध होते हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य अनागतकाल के नरकादिक दुःख को नहीं देखनेवाले होते हैं परंतु मात्र वर्तमान काल के ही सुख देखते हैं वे आयुष्य और यौवन क्षिण होने पर पश्चाताप करते हैं ॥ १४ ॥ जिन पुरुषों

व० वर्तता हुवा मु० मृपावाद में अ० असंयति अ० अदत्त दान में व० वर्तता हुवा मे० मैथुन में य० और परिग्रह में ॥ ८ ॥ ए० ऐसे ए० कितनेक पा० पार्श्वस्थ प०कहते हैं अ० अनार्य इ० स्त्री वश ग० गया हुवा वा० अज्ञानी जि० जिन शासन प० पराङ्मुख ॥ ९ ॥ ज० जैसे गं० गुंवडा पि० पकाहुवा प० रसी निकाले मु०मुहूर्त मात्र ए०ऐसे वि०प्रार्थना करनेवाली इ०स्त्रीमें दो० दोप त० तहां क०कहांसे सि०होवे॥१०॥ ज० जैसे मं० मेष थि० धीमे से भुं० भोगवता है द० पानी ए० ऐसे वि० प्रार्थना करने वाली इ० स्त्री में दो० दोप त० तहां क० कहां से सि० होवे ॥ ११ ॥ ज० जैसे वि० पक्षी पिं० कपिंजल थि० धीमे से

णेय परिग्गहे ॥ ८ ॥ एव मेगे उ पासत्था । पन्नवंति अणारिया ॥ इत्थीवसं गया बाला । जिणसासणपरम्मुहा ॥ ९ ॥ जहा गंडं पिलागं वा । परिपीलेज्ज मुहुत्तगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु । दोसो तत्थ कओ सिया ॥ १० ॥ जहा मंधादए नाम । थिमिअं भुंजति दगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु । दोसो तत्थ कओ सिआ ॥ ११ ॥ जहा

करते हैं, ॥ ८ ॥ जिन मार्ग से पराङ्मुख, स्त्री का परीपह जीतने में असमर्थ, अनार्य कर्म के करनेवाले कितनेक परतीर्थिक तथा पार्श्वस्थ स्वतीर्थिक ऐसा कहते हैं कि जैसे पका हुवा गुंवडा को फोडकर राध, रुधिर निकालने से मुहूर्त मात्र में आराम होजाता है वैसे ही विषय भोग की प्रार्थना करनेवाली स्त्री साथ संबंध करने में कौनसा दोप होवे ? ॥९-१०॥ जैसे मेष पानी को नहीं डोलता हुवा पानी पीता है. अर्थात् वह पानी को डोलता नहीं है परंतु अपने को इस से संतुष्ट करता हैं वैसे ही प्रार्थना करनेवाली स्त्री के साथ संबंध करने में कौनसा दोप है ! अपितु नहीं है. ॥ ११ ॥ जैसे कपिंजलपक्षी आकाश में उडता हुवा

वा० भार से छि० टूटा ग० गद्धा पि० पीछे प० जाता है पि० भ्रष्ट होवे सं० संभ्रम ॥ ५ ॥ इ० यहां ए० एकेक भा० कहते हैं सा० साता सा० साता से वि०होवे जे० जो त० तहां आ० आर्य म० मार्ग प० प्रधान च० निश्चय स० समाधि ॥ ६ ॥ मा० मत ए० यह अ० थोडा मानता अ० अल्प लुं० नाश करते हुवे व० बहुत ए० इस को अ० मोक्ष नहीं अ० लोह वणिक् जैसे जू० झूरेंगे ॥ ७ ॥ पा० प्राणातिपात में

ति । वाहच्छिन्नाव गद्दभा ॥ पिट्ठतो परिसप्पंति । पिट्ठसप्पी च संभमे ॥ ५ ॥ इह मेगेउ भासंति । सातं सातेण विज्जति ॥ जे तत्थ आरिअं मग्गं । परमं च समाहिए ॥ ६ ॥ मा एयं अवमन्नंता । अप्पेणं लुंपहा बहुं ॥ एतस्स अमोक्खाए । अयहारिव्व जूरह ॥ ७ ॥ पाणाइवाते वट्टंता । मुसावादे असंजता ॥ अदिन्नादाणे वट्टंता । मेहु-

अनंत काल तक परिभ्रमण करते हैं ॥ ५ ॥ यहां मोक्षमार्ग की विचारणा में कितनेक शाक्यादि तथा लोच परिषह सहन करने में असमर्थ स्वतीर्थि ऐसा कहते हैं कि मुक्ति का सुख सुख से ही मिलता है. परंतु दुःख से सुख न होवे. इस लिये लोचादि कष्ट से मुक्ति कैसे होवे. इस तरह बोलते हुवे वे जिन प्रणित मोक्षमार्ग तथा परम समाधि के कारण ज्ञान, दर्शन, चारित्र को छोडदेते हैं ॥ ६ ॥ अहो दर्शनि ! सुख से सुख होवे ऐसा वचनों से जिनमार्ग की निन्दा करते हुवे अल्प सुख के लिये मोक्ष का सुख को तुम गुमाते हो. और ऐसा असत्य पक्ष को नहीं छोडने से लोह वाहक [लोह वाणिक] की तरह पश्चाताप करोगे ॥ ७ ॥ प्राणातिपात, मृषावाद अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह में रहकर असंयति मोक्ष सुख का विनाश

भोगवकर बा० बाहुक उ० पानी भो० भोगवकर त० तथा ता० तारागणऋषि ॥ २ ॥ आ० आसिल दे० देवल च० और दी० दीपायनमहर्षि पा० पाराशर द० पानी भो० भोगवकर बी० बीज ह० हरिकाय च० और ॥ ३ ॥ ए० ये पु० पहिले म० महर्षि आ० कहा इ० यहां सं० मख्यात भो० भोगवकर बी० बीज पानी सि० सिद्ध इ० ऐसा मे० मेरे से अ० सुना गया ॥ ४ ॥ त० तहां मं० मूर्ख वि० सीदाते हैं

च्चा । तहा तारागणे रिसी ॥ २ ॥ आसिले देवले चेव । दीवायणमहारिसी ॥ पारासरे दगं भोच्चा । बीयाणि हरियाणि य ॥ ३ ॥ एते पुव्वं महा रिसी । आहिता इह संमता ॥ भोच्चा बीओदगं सिद्धा । इति मेयमणुस्सुअं ॥ ४ ॥ तत्थ मंदा विसीअं-

पानी का परिभोग से सिद्धि को प्राप्त हुवे ॥ २ ॥ और आसिल, देवल, दीपायन, तथा पारासर बीज हरिकाय तथा शीतल पानी भोगव कर मोक्ष को पहुंचे ॥ ३ ॥ ये नमीराज प्रमुख महर्षि पूर्व काल में प्रसिद्ध हुवे हैं. वे बीज, पानी भोगव कर मुक्ति में गये ऐसा हमने महा भारतादिक पुराण में सुना है इस लिये हम इसी तरह मुक्ति सार्वेगे ॥ ४ ॥ जैसे अधिक भार से पीडित गर्दभ सीदाता है वैसे ही कुशास्त्र श्रवण करनेवाले मूर्ख उपसर्ग आने पर सीदाते हैं. और जैसे भग्नगतिवाला पुरुष अग्नि आदि का उपसर्ग से व्याकुल बनकर अग्रगामी नहीं होता है, अपितु वहां ही नष्ट होता है, वैसे ही शीतलविहारी इसी संसार में

त्ति० ऐसा वे० कहता हूं ॥ २१ ॥ * *

आ० कहे म० महापुरुष पु० पहिले त० तप्त तपोधन उ० पानी से सि० सिद्धि आ० कही त० तहां मं० अज्ञानी वि० सीदाते हैं ॥ १ ॥ अ० अन्न न खाने वाले न० नमीराज वि० विदेह देशके रा० रामगुप्त भुं०

आमोक्खाए परिव्वएज्जासि त्तिबेमि ॥ २१ ॥ इति उवसग्गपीरण्णाज्झयणस्स तइओद्देसो सम्मत्तो * *

आहंसु महापुरिसा । पुव्विं तत्ततवो धणा ॥ उदयेण सिद्धि मावन्ना । तत्थ मंदा विसीयंति ॥ १ ॥ अभुंजिया नमी विदेही । रामगुत्तेय भुंजिआ ॥ बाहुए उदगं भो

के उपशम से शीतली भूत बना हुवा तत्वका जाननेवाला साधु मोक्षकी प्राप्तितक संयम में विचरे ॥२१॥ यह उपसर्ग परिज्ञा नामक तृतीय अध्ययन का तृतीय उद्देशा पूर्ण हुवा. आगे शीलव्रत रक्षणार्थ कथन करते हैं.

कितनेक परमार्थ के अजान कहते हैं कि तपस्या के करनेवाले तपोधन [तारागण ऋषि प्रमुख] महा पुरुष शीतल पानी का परिभोग से मुक्ति में गयेहैं. ऐसा अन्य तीर्थि का वचन सुनकर अज्ञानी उस में सीदाते हैं ॥ १ ॥ और भी वे कहते हैं कि विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होनेवाला नमीराज अशनादि विना भोगवे मुक्ति में गया रामगुप्त राजर्षि अशनादि भोगवता हुवा मुक्ति में गया, बाहुकऋषि तथा तारागणऋषि शीतल

अ० व्याप्त आ० आक्रोश स० शरण जं० जाते है टं० म्लेच्छ की तरह प० पर्वत ॥ १८ ॥ ब० बहुत गु० गुण कों प० प्रकट करने वाला कु० करे अ० आत्म समाधिक ज० जिससे ते० वे णो० नहीं वि० विरुद्ध होवे ते० इसलिये तं० उसे स० आचरे ॥ १९ ॥ इ० यह ध० धर्म आ० ग्रहण कर का० काश्यप से प० कहाया हुवा कु० करे भि० साधु गि० रोगी को अ० अग्लानपने स० समाधिवंत ॥ २० ॥ सं० जानकर पे० श्रेष्ठ ध० धर्म दि० दृष्टिमान् प० शीतल उ० उपसर्गको नि० सहन कर आ० मोक्ष केलिये प० प्रवर्ते

भिद्दुता ॥ आउस्स सरणं जंति । टंकणा इव पव्वयं ॥ १८ ॥ बहु गुणप्पगप्पाइं । कुज्जा अत्तसमाहिए ॥ जेण ते णो विरुझेज्जा । तेणं तं तं समायरे ॥१९॥ इमं च धम्म मादाय । कासवेण पवेइयं ॥ कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स । अगिलाए समाहिए ॥ २० ॥ संखाय पेसलं धम्मं । दिट्ठिमं परिनिव्वुडे ॥ उवसग्गे नियामित्ता ।

जाते हैं ॥ १८ ॥ जो साधु है वह ऐसा आक्रोशादि न करे, परंतु प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय निगमन इत्यादिको से माध्यस्थपना का कारण को देखे और जिस अनुष्ठान से या वचन से अन्य विरोध न पावे वैसा अनुष्ठान करे और वचन बोले. ॥ १९ ॥ श्री महावीर का प्ररूपाहुवा धर्म को अंगीकार कर साधु ग्लानीकी अगिलानपने जैसे समाधि होवे वैसे वयावच करे ॥ २० ॥ ऐसा श्रेष्ठ धर्म को जानकर क्रोध

गृहस्थ को वि० विशुद्धि करने वाला ण० नहीं ए० यह दि० द्रष्टिसे पु० पूर्व में आ० हुवे प० कहा ॥१६॥ स० सर्व अ० अनुयुक्ति अ० असमर्थ ज० स्थापन करने को त० तत्र वा० वादका णि० निराकरण करके ते० वे भु० पुनः २ वि० धृष्टपना करे ॥ १७ ॥ रा० रागद्वेष अ० पराभव हुवा मि० मिथ्याद्रष्टि

मासिं पग्गाप्पियं ॥ १६ ॥ सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं । अचयंता जवित्तए ॥ ततो वायं णिराकिच्चा । ते भुज्जो विप्पगब्भिए ॥१७॥ राग दोसाभिभूयप्पा । मिच्छत्तेण अ-

देशना है कि साधु को दान देने का अधिकार नहीं है. दान मात्र गृहस्थ को ही विशुद्धि का करनेवाला है; और साधु तो अपने २ अनुष्ठान से ही शुद्ध होते हैं. इस तरह तुम्हारी द्रष्टि में आता है. परंतु पहिले जो तीर्थंकर होगये हैं उन्होंने ऐसा धर्म नहीं कहा है ॥ १६ ॥ हेतू दृष्टान्त करके अपने २ मत को स्थापने में असमर्थ होने से वाद को दूर करके वारंवार अपना धृष्टपना वतलाते हैं, और कहते हैं कि हमारी जो परंपरा है वह ही श्रेष्ठ है; अन्य से हम को कुच्छ भी काम नहीं है. ऐसा कहकर धृष्टपना अंगीकार करते हैं; परंतु युक्ति पूर्वक उत्तर नहीं देसकते हैं ॥ १७ ॥ जैसे शस्त्रादिक से युद्ध करने में असमर्थ म्लेच्छादिक पर्वत का शरण अंगीकार करते हैं वैसे ही युक्ति पूर्वक प्रत्युत्तर देने में असमर्थ तथा मिथ्या द्रष्टि से व्याप्त कितनेक अनार्य आक्रोश—असभ्य वचन, दंड, मुष्टयादिक का शरण अंगीकार करते हैं. अर्थात् क्रोधी वन

ए० यह णि० निश्चल म० मार्ग अ० विना विचारे बोलने वाले का क० कर्तव्य ॥१४॥ ए० एसी भो० अहो व० वाणी ए० यह अ० वंशके अग्र जैसी क० कृश [दुर्बल] गि० गृहस्थ से अ० लाया हुवा से० श्रेय भुं० खानेको न० नहीं भि० साधु को ॥ १५ ॥ ध० धर्म प० प्रज्ञप्ता (देशना) जा० जो सा० वह सा०

जाणया ॥ ण एस णियए मग्गे । असमिक्खावती किती ॥१४॥ एरिसा भो वई ए-
सा । अग्गवेणुव्व करिसिता ॥ गिहिणो अभिहडं सेयं । भुंजिउं णउ भिक्खुणो
॥ १५ ॥ धम्म पन्नवणा जासा । सारंभाण विसोहिया ॥ णओ एयाहिं दिट्ठीहिं । पुव्व

ज्ञानवान् साधु उन आजीविकादिक को इस तरह शिक्षा देते है कि तुम्हारा यह मार्ग निश्चल नहीं है. समान धर्मवाले रोगी को आहारादिक के देने से गृहस्थ सरिखे होते हो यह जो तुम कहते हो परंतु यह तुमारा कथन विना विचारे बोले बराबर है. ऐसे पुरुषों का कर्तव्य भी ऐसा ही होता हैं. ॥ १४ ॥ तुम्हारा यह वचन वंशका अग्रसम निर्बल है. जैसे वंशके अग्रभागसरिखा कुच्छभी वस्तु रहसकती नहींहै वैसेही तुम्हारा वचन है. क्यों कि तुम कहते हैं कि गृहस्थ का लाया हुवा श्रेय है इस लिये उसे भोगवना परंतु याति का लाया हुवा आहार अश्रेय है इसे भोगवना नहीं; यह तुमारा वचन अच्छा नहीं है. क्यों कि गृहस्थ का लाया हुवा आहार सदोष है और साधु का लाया हुवा निर्दोष है ॥ १५ ॥ और तुम्हारी यह धर्म

पानी भो० खाकर के तं० उसे उ० उद्देशकादि जं० जो क० किया ॥ १२ ॥ लि० लिप्त ति० तीव्र अ० विराधना से उ० विवेक रहित अ० समाधि रहित न० नहीं अ० विशेष खर्जू खणना से० श्रेय अ० गूंवडा अ० अपराधि होता है ॥ १३ ॥ तं० तत्त्व से अ० अनुशासित अ० अप्रतिज्ञी जा० जानते हुवे ण० नहीं

तुब्भे भुंजह पाएसु । गिलाणो अभिहडंमिया ॥ तं च बीओदगं भोच्चा । तमुद्दिसादिजं कडं ॥ १२ ॥ लित्ता तिव्वाभितावेणं । उज्झआ असमाहिया ॥ ना-ति कंडूइयं सेयं । अरुयस्सा व रज्झति ॥ १३ ॥ तत्तेण अणुसिट्ठा ते । अपडिन्नेण

दिखने जैसे हो, ऐसे दोनों पक्ष का सेवन करते हो ॥ ११ ॥ और भी तुम कहते हो कि हम अकंचन हैं परंतु तुम गृहस्थ के कांशादिक धातु के पात्र में भोजन करते हो इस लिये तुम सपरिग्रही हो. और कोइ रोगी भिक्षा लाने को असमर्थ होवे तो उस के लिये आहार गृहस्थ की पास से मंगवाते हो. यदि इस आ-हार को गृहस्थने बीज उदक आदि का मर्दन करके बनाया होवे, और तुम उसे भोगवो, तो उसमें तुम को भी दोष लगता है ॥ १२ ॥ और भी तुम षट्काया के जीव की विराधना तथा साधु की निन्दा रूप तीव्र पाप से लिप्त, विवेक तथा शुभ ध्यान रहित हो. इस लिये जैसे अति खुजली खुजालना, या पडा हुवा व्रण को खणना श्रेय नहीं है वैसे ही तुम को साधु की साथ द्वेष करना श्रेय नहीं है ॥ १३ ॥ रागद्वेष रहित

भिक्षा गि० रोगी को जं० जिस से सा० गवेषते हो द० देते हो ॥ ९ ॥ ए० वैसे तु० तुम स० राग सहित अ० परस्पर अ० वशगामी न० नष्ट स० सन्मार्ग का स० सद्भाव सं० संसार के अ० पारगामी ॥१०॥ अ० अथ ते० वे प० बोले भि० साधु मो० मोक्ष विशारद ए० एसे तु० तुम प० बोलते दु० दो पक्ष से० सेवते हो ॥ ११ ॥ तु० तुम भुं० खाते हो पा० पात्र में गि० ग्लानी अ० लाया हुवा तं० उसे बी० बीज उ०

च्छिया ॥ पिंडवायं गिलाणस्स । जं सारेह दलाहय ॥ ९ ॥ एवं तुब्भे सरागत्था । अन्नमन्न मणुव्वसा ॥ नट्ठ सप्पह सब्भावा । संसारस्स अपारगा ॥ १० ॥ अह ते परिभासेज्जा । भिक्खू मोक्खविसारए॥ एवं तुब्भे पभासंता। दुपक्खं चेव सेवह॥११॥

गृहस्थ तुल्य हो. जैसे गृहस्थ परस्पर मातपितादिक की सेवा चाकरी करते हैं. वैसे ही तुम आचार्य में मूर्च्छित बने हुवे हो. रोगी के लिये भिक्षा गवेषते हो और लाकर देते हो वैसे ही गुर्वादिक की वैयावृत्य करते हो ॥ ९ ॥ इस तरह तुम परस्पर बंधाये हुवे सरागी हो. और साधु तो किसी के आधीन न होते हैं, जिस से तुम अच्छा मार्ग से भ्रष्ट हुवे हो इस लिये संसार के पारगामी नहीं हो सकते हो ॥१०॥ इस तरह निंदा करनेवाले को मोक्ष मार्ग का जान उत्तर देते हैं, कि तुम ऐसे बोलते हुवे रागद्वेष रूप दोनों पक्षका सेवन करते हो. क्यों कि तुम स्वतः आनाचारी सदोष हो, और दूसरा निर्दोष साधु के निन्दक हो. अथवा बीज उदक उद्देशादिक भोगवने से गृहस्थ समान हो, परंतु लिंग धारन करने से याति समान

सं० संग्राम समय में ना० प्रसिद्ध सू० शूरवीर में मुख्य नो० नहीं ते० वे पि० पीछे उ० देखे किं क्या प० उत्कृष्ट म० मरण सि० होवे ॥ ६ ॥ ए० ऐसे स० सावधान भि० साधु वो० त्यज कर अ० गृह बंधन आ० आरंभ को ति० तिर्यक् क० करके आ० आतमत्व के लिये प० सावधान होवे ॥ ७ ॥ त० उसे ए० कितने क प० कहते हैं भि० साधु को सा० अच्छी आजीविका करने वाला जे० जो ए० ऐसा प० कहते हैं अं० दूर ते० वे स० समाधि से ॥ ८ ॥ सं० गृहस्थ स० सदृश क० कल्प अ० परस्पर में मु० मूर्च्छित पिं०

ए भिक्खू । वोसिज्जा गारबंधणं ॥ आरंभं तिरियं कट्टु । आत्तत्ताए परिव्वए ॥ ७ ॥

इति अध्यात्म विसादनार्थं गतः । तमेगे परिभासंति । भिक्खुयं साहुजीविणं ॥ जे-

एवं परिभासंति । अंतए ते समाहिए ॥ ८ ॥ संबद्ध सम कप्पाउ । अन्नमन्नेसु मु-

शंका युक्त रहते हैं ॥ ५ ॥ जैसे कोइ शूरवीर पुरुष युद्ध समय में पीछे नहीं देखता है, और ऐसा ही मान कर आगे बढता है कि मरण सिवाय क्या होवेगा. ऐसे ही कितनेक सावधान साधु गृहवासपना छोड कर, आरंभ को दूरकर मोक्ष मार्गमें प्रवर्तते हैं ॥६-७॥ यहां आत्मा का विवाद कहा अब दूसरा अधिकार परवादि के वचन आश्रय कहते हैं. अच्छी तरह आजीविका करनेवाले परोपकारी साधु की कितनेक गोशाला मतानुसारी निंदा करते हैं. जो धर्म के अजान इस तरह निन्दा करते हैं; वे सम्यक् अनुष्ठान से सदैव दूर रहते हैं ॥ ८ ॥ गोशाला मतानुसारी जो निन्दा करते हैं उसे बताते हैं. वे कहते हैं कि हे साधुयों ! तुम

भय दि०
ए० ऐसे स० साधु ए० कितनेक अ० निर्बल न० जानकर अ० अपने को अ० अनागत भ० भय दि० देख कर अ० विचार करे मं० व्याकरणादि ॥३॥ को० कौन जा० जानता है वि० व्यापात (भ्रष्ट होना) इ० स्त्री से उ० पानी से चो० पूछाया हुवा प० कहेंगे ण० नहीं णो० हमारा अ० है प० प्रकाल्पित ॥४॥ इ० ऐसा प० प्रतिलेखते हैं व० वलयादिक को प० देखने वाले वि० संदेह को स० प्राप्त पं० मार्ग का अ० अजान ॥५॥

। अविकप्पंति मसुयं ॥ ३ ॥ को जाणइ विउवातं । इत्थीओ उदगाउ वा ॥ चोइज्जं-ता पवक्खामो । णणो अत्थि पकप्पियं ॥४॥ इच्चेव पडिलेहंति । वलया पडिलेहिणो ॥ वितिगिच्छ समावन्ना । पंथाणं च अकोविया ॥ ५ ॥ जे उ संगाम कालंमि । नाया सूर पुरंगमा ॥ णो ते पिट्ठु मुवेहिंति । किं परं मरणं सिया ॥ ६ ॥ एवं समुट्ठि-

भय देख कर ऐसी कल्पना करके निश्चय करे कि मुझे भविष्य में व्याकरण, ज्योतिप, वैद्यादिक त्राण होवेंगे इस लिये वैसा शास्त्र का अध्ययन करूं ॥ ३ ॥ मैं स्त्री से भ्रष्ट होवूंगा किंवा सचित्त पानी का उप-भोग करने से भ्रष्ट होवूंगा यह कौन जानता है; क्यों कि कर्म की गाते विचित्र है. और ऐसा कोइ पूर्वो-पार्जित द्रव्य नहीं है कि जो ऐसे समय में काम में आसके. ऐसे समय में जो कोइ पूछेगा तो व्याकर-णादि कहूंगा. ऐसा चिन्तवन कर उस का अभ्यास करे ॥ ४ ॥ जैसे भीरुसुभट वलयादिक स्थान के देखनेवाले होते हैं वैसे ही कितनेक मंद भागी आजीविका के भय से कुशास्त्र शीखते हैं और जैसे पंथ का अजान मनुष्य को मार्ग के लिये शंका रहती है कि कौनसा मार्ग अच्छा होगा, वैसे ही वे संयम स्थान में

ज० जैसे सं० संग्राम के समय में पि० पीछा भी० भीरु वे० देखता है व० वलयाकार ग० गहन णू० गुप्त को० कौन जा० जानता है प० पराजय ॥ १ ॥ मु० मुहूर्तो में मु० मुहूर्त का मु० मुहूर्त (दो घडी का) हो० होता है ता० तादृश प० पराजित अ० भग जावे इ० ऐसा भी० डरपोक उ० विचारता है ॥ २ ॥

जहा संगामकालंमि । पिट्ठतो भीरु वेहइ ॥ वलयं गहणं णूमं । को जाणइ पराजयं ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स । मुहुत्तो होइ तारिसो ॥ पराजिया वसप्पामो । इति भीरु उवेहइ ॥२॥ एवं तु समणा एगे । अबलं नच्चाण अप्पगं ॥अणागयं भयं दिस्स

न मालुम इस संग्राममें किसका जय होता है. क्यों कि कार्यसिद्धि दैवाधीन है. ऐसा मनमें चिन्तवन कर जैसे भीरु युद्ध के समय में वलयाकार स्थान, गहन या गुप्त स्थान के लिये पीछे देखता है ॥ १ ॥ और भी मुहूर्त देखने में कोइ ऐसा मुहूर्त का समय आजावे कि जहां पराजय होवे तो ऐसे समय में कहां जाना इस से हम को वे स्थान छुपने को काम में आवेंगे ऐसा चिन्तवन करके जैसे वह बीकण पीछे देखता है ॥ २ ॥ वैसे ही कोइ संयम का भार वहन करने में स्वतः को असमर्थ जानकर तथा (१) आगामिक

(१) आगामिक भय वृद्धावस्था का, रोग की अवस्था का, तथा दुर्भिक्ष समय का जो भय रहता है वह आगामिक भय है.

हुवा थि० भिक्षाचरी में अ० असमर्थ ज० संयम में त० तत्र मं० मूर्ख वि० सिदाते हैं उ० ऊंचस्थल में दु० दुर्बल ॥ २० ॥ अ० असमर्थ लू० संयम उ० उपधान से त० पीडाया हुवा त० तत्र मं० मूर्ख वि० सिदाते हैं उ० ऊंचस्थल में ज० वृद्ध वृषभ ॥ २१ ॥ ए० ऐसे नि० निमंत्रण ल० प्राप्त हुवे मु० मूर्च्छित गि० गृद्ध इ० स्त्री में अ० आसक्त का० काम भोगमें चो० प्रेराया हुवा ग० गये गि० गृहको त्ति० ऐसा बं० कहता हूं ॥ २१ ॥

॥ तत्थ मंदा विसीयंति । उज्जाणंसि व दुब्बला ॥ २० ॥ अच्चयं ताव लूहेण । उवहाणेण तज्जिया ॥ तत्थ मंदा विसीयंति । उज्जाणंसि जरग्गवा ॥ २१ ॥ एवं नि मिंतिए लद्धु । मुच्छिया गिद्ध इत्थीसु ॥ अज्झोववन्ना कामेहिं । चोइज्जंता गयागिहं त्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति उवसग्गपरिण्णाज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो. *

हुवे नीचे पडे वैसे ही संयम में रहने पर भी संयम का भार का निर्वाह करने में असमर्थ मुनि मोक्षमार्ग में सीदावे ॥ २० ॥ जैसे वृद्ध वृषभ ऊंच स्थान में आया हुवा सीदाता है; वैसे ही कितनेक मंद, संयम का निर्वाह करने में अशक्त तथा बाह्याभ्यंतर तप से पीडित संयम में सीदाते हैं ॥ २१ ॥ इस तरह पूर्वोक्त रीति से निमंत्राये हुवे काम भोगों को प्राप्त कर, उस में मूर्च्छित होता हुवा, स्त्री में आसक्त, काम भोगों में रागी तथा संयम में कराइ हुइ प्रेरणा को जीतने में असमर्थ मुनि गृहवास स्वीकारता है ॥ २२ ॥ यह श्री उपसर्ग परिज्ञा नामक तृतीय अध्ययन का दूसरा उद्देशा पूर्ण हुवा. आगे भी परीषह सहने का कहते हैं.

सुगन्ध अ० भूषण इ० स्त्री स० शैय्या भुं० भोगव इ० यह भो० भोग आ० आयुष्यमन् पू० पूजते हैं तं० तूझे ॥ १७ ॥ जो० जो तु० तुमने नि० नियम चि० आचरे है भि० भिक्षुभाव में सु० सुव्रती अ० गृह में आ० रहता हुवा स० सर्व सं० यथा तथ्य ॥ १८ ॥ चि० बहुत काल दू० विचरता हुवा दो० दोप इ० सांप्रत कु० कहां से इ० इसेव नि० निमंत्रते हैं नि० सालीकण से सू० वराह को ॥ १९ ॥ चो० प्रेराया

इत्थीओ सयणाणिय ॥ भुंजाहि इमाइं भोगाइं । आउसो पूजयामु तं ॥ १७ ॥ जो तुमे नियमो चिण्णो । भिक्खुभावंमि सुव्वया ॥ अगारमावसंतस्स । सव्वो संविज्जए तहा ॥ १८ ॥ चिरं दूइज्जमाणस्स । दोसोदाणिं कुतो तव ॥ इच्चेव णं निमंतेति । निवारणे वा सूयरं ॥ १९ ॥ चोइया भिक्खाचारिया । अचयंता जावित्तए

भाग तुम भोगवो. हेआयुष्मन् ! हम इससे तुमारा सत्कार करते हैं ॥१७॥ हेसुव्रति ! संयम के अवसरमें जो तुमने महाव्रतादिक के नियम किये हैं वे सर्व गृहस्थ वास में रहने पर भी वैसे ही रहते हैं ॥ १८ ॥ हे मुनि तुम को संयम पालते बहुत समय होगया है तो अब तुम को दोप कहां से होवे ? ऐसे भोग योग्य पदार्थों से साधु को निमंत्रण करे ओर जैसे सूकर को व्रीहि के दाने से पाराधि कुटबंध में डालता है वैसे ही साधु को मोहपाश में डाले ॥ १९ ॥ जैसे दुर्बल बैल गाडा का भार से पीडायाहुवा ऊंचे स्थानक में आये

अ० अह इ० ये सं० हैं आ० आवर्त का० काश्यपने प० कहा बु० ज्ञानी ज० जिससे अ० दूर होते है सी० आसक्त होते है अ० अज्ञानी ज० जिस में ॥ १४ ॥ रा० राजा रा० राजाके अमात्य मा० ब्राह्मण अ० अथवा ख० क्षत्रिय नि० आमंत्रण करते हैं भो० काम भोगकेलीये भि० साधु को सा० अच्छा आचार वाले ॥ १५ ॥ ह० हस्ती अ० अश्व र० रथ जा० पालखी से वि० क्रिडादिगमन से भुं० भोगव भो० भोग इ० यह स० श्लाघ्य म० महर्षि पू० पूजते हैं तं० तुझे ॥ १६ ॥ व० वस्त्र गं०

मूल

च्चंति । सीयंति अबुहा जहिं ॥ १४ ॥ रायाणो रायमच्चाय । माहणा अदुव खत्तिया ॥ निमंतियंति भोगेहिं । भिक्खुयं साहुजीविणं ॥ १५ ॥ हत्थस्स रहजाणेहिं । विहार गमणेहिया ॥ भुंज भोगे इमे सग्घे । महरिसी पूजयामु तं॥ १६ ॥ वत्थगंधमलंकारं

भावार्थ

होते हैं वे इस से दूर रहते हैं, और अज्ञानी पुरुष इस आवर्त में सीदाते हैं ॥ १४ ॥ चक्रवर्ति, मंत्रीश्वर, पुरोहित तथा अन्य क्षत्रिय प्रमुख साधु वृत्ति से जीवन चलानेवाले मुनि को काम भोगो से आमंत्रण करे. "अहो महर्षि हम तुम को पूजते हैं कि यह तुम हस्ती, अश्व, रथ पालखी प्रमुख भोगवो अथवा तो उद्यान में क्रीडा करने के लिये या अनुकूल विषय सुख के लिये पधारो" ॥ १५-१६ ॥ चीन अंशुकादिक वस्त्र, कर्पूरादिक गंध, केयूरादिक आभूषण, नवयौवना स्त्री तथा पर्यंक तूलिकादिक शयन यह प्रत्यक्ष

ए० ये सं० संग म० मनुष्य का पा० समुद्र जैसे अ० दुस्तर की० असमर्थ ज० जहां कि० क्लेश पाते हैं ना० ज्ञाति संबंध से मु० मूर्च्छित ॥ १२ ॥ तं० उसको च० और भि० साधु प० जानकर स० सर्व सं० संबंध म० महाश्रव जी० जीवितव्य न० नहीं अ० वांच्छे सो० सुनकर ध० धर्म अ० प्रधान ॥ १३ ॥

मणूसाणं । पातालाव अतारिमा ॥ कीवा जत्थ य किस्संति । नायसंगेहिं मुच्छिय ॥ १२ ॥ तं च भिक्खू परिण्णाय । सव्वे संगा महासवा ॥ जीवियं नावकंखेज्जा । सोच्चा धम्म मणुत्तरं ॥ १३ ॥ अहिमे संति आवट्टा । कासवेणं पवेइया ॥ बुद्धा जत्थ वस-

गोत्रि के मधुर वचनों से वह साधु बंधाता है. जैसे नव प्रसूतगाय अपना बच्चा को छोड कर दूर नहीं जाती हैं, वैसे ही वे पुत्रादिक साधु को मोह में डालने के लिये पीछे २ फिरते रहते हैं ॥ ११ ॥ मनुष्यों को यह ज्ञाति आदि का संग पाताल समुद्र को तीरने जैसा कठीन है. इस में ही स्वजनादि संबंध में मूर्च्छित व असमर्थ मनुष्य क्लेश पाते हैं ॥ १२ ॥ जो साधु होवे वह पूर्वोक्त स्वजनादिक को ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से छोडे, क्यों कि उनका संग महाआश्रव का कारण है. ऐसा अनुत्तम जिन प्रणित धर्म सुनकर अनुकूल परीषह आने पर असंयम जीवितव्य की वांच्छा करे नहीं ॥ १३ ॥ यह मोह पाश जीव को संसार में परिभ्रमण कराने को कारण भूत है, ऐसा श्री महावीर प्रभुने कहा है. जो बुध

उसे स० सर्व स० बराबर किया हि० धन व० व्यव०रार्थ तं० वह भी दा०देवेंगे ते० तुझे प० हम ॥८॥ इ० ऐसे सु० अच्छा सिखाते हैं का० करुणा स० उत्पन्न करता वि० बंधा हुवा ना० ज्ञाति संबंध से त० तब आ० गृहमे प० जाता है ॥ ९ ॥ ज० जैसे रु० वृक्ष व० वन में जा० उत्पन्न हुवा मा० वेलसे प० लपेटाता है ए० एस प० बांधते हैं णा० ज्ञाति अ० असमाधि से ॥ १० ॥ वि० बन्धाया हुवा ना० ज्ञाति संबंध से ह० हस्ति जैसे न० नवा पकडा हुवा पि० पीछे प० फीरते हैं सु० नव प्रसुतगौ अ० दूरन करे ॥ ११ ॥

राइ । तंपि दाहासु ते वयं ॥ ८ ॥ इच्चेव णं सुसेहंति । कालुणीय समुट्ठिया॥ विबद्धो नायसंगेहिं । ततो गारं पहावइ ॥ ९ ॥ जहा रुक्खं वणे जायं । मालुया पडिबंधइ ॥ एवं ण पडिबंधति । णातओ असमाहिणा ॥ १० ॥ विबद्धो नायिसंगेहिं । हत्थि वावि नवग्गहे ॥ पिट्ठतो परिसप्पंति । सुयगोव्व अदूरए ॥ ११ ॥ एते संगा

किसी कार्य के लिये तुम को द्रव्य की जरूरत होगा तो वह भी हम देवेंगे ॥ ८ ॥ इस तरह वे करुणाजनक शब्दों से दीनता बताते हुवे उसे अच्छी तरह शिक्षा देते हैं. इस से वह ज्ञाति से बंधायाहुवा संयम को छोड कर गृहवास में जाता है ॥ ९ ॥ जैसे वन में उत्पन्न हुवा वृक्ष को चारों और लता [illegible] है, [illegible] ज्ञाति जन साधु को असमाधि करके बांधते हैं ॥ १० ॥ जैसे नविन पकडाया हुवा हस्ती को यदि इक्षुआदि का आहार कराने में आवे तो वह नविन बंधन से बंधाता है; वैसे ही ज्ञाति

दूसरे से ग० गमन करे ॥ ५ ए० आव ता० तात घ० घर जा० जावे मा० मत क० कर्म स० सहायक बि० दूसरी वक्त ता० तात पा० देखो जा० चलोगे ता० तावत् स० अपने गि० घर ॥ ६ ॥ गं० जाकर ता० तात पु० फिर ग० जा ण० नहीं ते० उससे अ० असाधुपना सि० होवे अ० निष्कामी प० प्रवर्तता तुझ को० कौन ते० तुझे वा० नाकहने अ० समर्थ है ॥७॥ जं० जो किं० किंचित् अ० ऋण ता० तात तं०

जामो । माय कस्सं सहावयं ॥ बितियं पि ताय पासामो । जासु तात्र सयं गिहं॥६॥ गंतु ताय पुणो गच्छे । णय तेणासमणो सिया ॥ अकामगं परिकम्मं । को उ ते वारे-उ मरिहति ॥ ७ ॥ जं किंचि अणगं तात । तंपि सव्वं समीकतं ॥ हिरण्णं ववहा-

॥ ५ ॥ हे तात अब तुम पीछे घर चलो. वहां तुम कोइ भी कार्य करना नहीं ओर जो कोइ नविन कार्य होगा तो हम तुझे मदद देनेवाले होंगे. एक वार तुम बाहिर चले आये हो परंतु अब दूसरीवार घर चलो, हम देखते हैं, कि तुम्हारा वहां क्या बिगाड होता है. इस लिये अपने घर चलो और इतना ही हमारा वचन मान्य करो ॥ ६ ॥ हे तात एक वार ही घर चलके स्वजन संबंधि को मिलकर के फिर आकर साधुपना लेना. इतना आने में तुमारा साधुपना नहीं चलाजाता है. यदि तुम गृहस्था व्यापार की इच्छा रहित संयमानुष्ठान करोगे तो तुम को ना कहने को कौन समर्थ है ॥ ७ ॥ और हे तात तुमारा जो ऋण था वह सब हमने भरदिया है, और तुम्हारा व्यवहार के लिये या अन्य

पदार्थ

ज० छोडता है णे० हम को ॥ २ ॥ पि० पिता ते० तुमारा थे० स्थविर ता० तात स० भगिनी ते० तुमारी खु० छोटी भा० भ्राता ते० तुमारा स० सगानात सो० सहोदर कि० क्यों ज० छोडता है णे० हमको ॥ ३ ॥ मा० माता पि० पिता को पो० पालन कर ए० ऐसे लो० लोक भ० होवेगा ए० ऐसे खु० निश्चय लो० लौकिक ता० तात जे० जो पा० पालते हैं मा० माता ॥ ४ ॥ उ० प्रधान म० मधुर उ० आलाप पु० पुत्र ते० तुमारा ता० तात खु० छोडे भा० स्त्री ते० तुमारी ण० तरुण ता० तात मा० रखे सा० वह अ०

सूत्र

कस्स ताय जहासि णे ॥२॥ पिया ते थेरओ तात । ससा ते खुड्डिया इमा ॥ भायरो ते सगा तात । सोयरा किं जहासि णे ॥३॥ मायरं पियरं पोस । एवं लोगो भविस्स-ति ॥ एवं खु लोइयं ताय । जे पालंति मायरं ॥४॥ उत्तरा महुरुल्ला वा । पुत्ता ते तात खुड्डया ॥ भारिया ते णवा तात । मा सा अन्नं जणं गमे ॥५॥ एहि ताय घरं

भावार्थ

हमारा पोषण कर. तू क्या कारण से हम को तजता है ॥ २ ॥ हे तात यह तेरा वृद्ध पिता, यह तेरी छोटी स्वसा, ये तेरे भाइ, सहोदर उन को कैसे छोडेगा कि जिन से हम को छोडदेता है ॥ ३ ॥ माता पिता का पोषण कर; कि जिस से तेरी परलोक की सिद्धि होवेगी और जो इस लोक में माता पिता का पोषण करता है वह श्रेष्ठ मनुष्य कहाजाता है ॥ ४ ॥ हे तात मधुर आलाप करनेवाले तेरे पुत्र छोटे हैं और तेरी भार्या नव योवना है जिस को छोडने से कदाचित् वह उन्मार्गगामिनी न होवे.

स० शरसे सं० विधायाँ की० क्लीब अ० परवश ग० गये गि० घर त्ति० ऐसा बे० कहता हूं॥ १७ ॥

अ० अथ इ० यह सु० सूक्ष्म सं० संबंध भि० साधु को जे० जो दु० दुस्तर ज० जहां ए० कितनेक वि० सिदाते हैं ण० नहीं च० पाल सकते हैं ज० प्रवर्तने को ॥ १ ॥ अ० कितनेक ना० ज्ञातिको दि० देखकर रो० रुदन करते हैं प० परिवार पो० पोषण ता० तात पु० स्पर्शाया क० किस कारणसे ता० तात

कीवा वासागया गिहं तिबेमि ॥ १७ ॥ इति उवसग्गपरिण्णाज्झयरस पढमो-
देसो सम्मत्तो ॥ ३ ॥ १ ॥ * * *

अहिमे सुहमा संगा । भिक्खूणं जे दुरुत्तरा ॥ जत्थ एगे विसीयंति । ण चयंति ज-
वित्तए ॥ १ ॥ अप्पेगे नायओ दिस्स । रोयंति परिवारिया ॥ पोसणे ताय पुट्ठोसि ।

श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं. इस उद्देशा में प्रतिकूल उपसर्ग कहा, अब आगे अनुकूल उपसर्ग के कारण बताते हैं. * * *

अब चित्त में विकार उत्पन्न करनेवाले माता पितादिक के संबंध रूप सूक्ष्म उपसर्ग साधु को दुरुलंघनीय है जो पुरुष इन उपसर्गों में सिदाता है वह अपनी आत्माको संयम में प्रवृत्ति नहीं करा सकता है. ॥ १ ॥ दीक्षा लेनेवाला पुरुष की आसपास आकर कितनेक स्वजनादि कहते हैं कि हे तात हमने आज दिन पर्यंत ऐसा जानकर तेरा पोषण किया है कि तू वृद्धावस्था में हमारा पोषण करे. इस लिये अब तू

सु० सुव्रति व० बांधतेहैं भि० साधु को बा० अज्ञानी क० कषाय वचन से ॥१५॥ त०तहां दं० दंड से सं० मारे मु०मुष्टि से अ० अथवा प० फल से ना० ज्ञाती को स० याद करता है वा० मूर्ख इ० स्त्री कु० कोपित हुइ ॥१६॥ ए०इतने भो० अहो क० संपूर्ण फा० स्पर्श फ० कठीन दु० दुस्सह स०सदा ह०हस्ती जैसे

चोरोति सुव्वयं ॥ बंधंति भिक्खुयं बाला । कसायवयणेहिय ॥ १५ ॥ तत्थ दंडेण संवीते । मुट्ठिणा अदु फलेण वा ॥ नातीणं सरति बाले । इत्थी वा कुद्धगामिणी ॥ १६ ॥ एते भो कसिणा फासा । फरुसा दुस्सहिया सया ॥ हत्थी वा सरसंविन्ता।

रस्सी प्रमुख से बांधे और कषाय के वचनों से निर्भर्त्सना करे, वैसे ही उसे दण्ड से, मुष्टि से, तथा खड्गादि से मारे तो उस समय वह ज्ञाति जन का स्मरण करे अर्थात् ऐसा चिन्तवन करे कि मेरे स्वजन संबंधि यहांपर होते तो मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता. जैसे कोइ क्रुद्धा स्त्री अपने गृह से निकल कर अन्य स्थान जाती होवे और उसे मार्ग में चोर लूटे जब अपना संबंधि को याद करती है; वैसे ही मंद बुद्धिवाले बाल परीषह उत्पन्न होने पर अपने स्वजनों को याद करते हैं ॥ १५—१६ ॥ जैसे शरसे विंधाया हुवा हस्ती संग्राम में से भग जाता है वैसे ही, हे शिष्यों ! सर्व दुःसह स्पर्श को नहीं सहते कर्म वशमें पडे हुवे असमर्थ साधु संयम से भ्रष्ट होते हैं. ॥ १७ ॥ ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य

प० परलोक ज० जिस लिये प० परम म० मरण सि० होवे ॥१२॥ सं० गभराया हुवा के० केश लो० लोच से बं० ब्रह्मचर्य से प० पराभव पाया त० तहां मं० मूर्ख अवि० सिदाते हैं म० मच्छ वि० प्रवेश कियाहुवा के० जाल में ॥ १३ ॥ आ० आत्मदंड स० समाचरे मि० मिथ्या मं० संस्थित भा० भावना ह० रागद्वेष से स० व्याकुल के० कितनेक लू० संतापे अ० अनार्य ॥ १४ ॥ अ० कितनेक प० विचरतहैं चा० चौकसी चो० चोर

परं मरणं सिया ॥ १२ ॥ संतत्ता केसलोएणं । बंभचेर पराइया ॥ तत्थ मंदा विसीयंति । मच्छा विट्ठाव केयणे ॥१३॥ आयदंड समायरे । मिच्छासंठिय भावणा ॥ हरिसप्पउ समावन्ना । केइ लूसंति नारिया ॥ १४ ॥ अप्पेगे पलियंतोसिं । चारो

करने में अशक्त साधु ऐसा चिन्तवन करे कि यह दुष्कर अनुष्ठान परलोक के लिये करते हैं; परंतु परलोक तो हमने देखा नहीं है और यहां पर क्लेश सहित मरण प्रत्यक्ष होरहा है ॥ १२ ॥ जैसे जाल में आया हुवा मत्स्य जीवितव्य से भ्रष्ट होता है वैसे ही केशलोच से संतप्त तथा काम विकार के उदय से पीडित विचारे मूर्ख संयम से भ्रष्ट होते हैं ॥ १३ ॥ आत्मा दुर्गति में जावे वैसा आचार के सेवनेवाले, मिथ्या दर्शनी तथा रागद्वेष से व्याकुल कितनेक अनार्य पुरुष साधु को अपनी क्रीडा के लिये दुःख देते हैं ॥१४॥ और देशान्तर में विचरनेवाला साधु को कोइ अनार्य पुरुष यह चौकसी है, यह चोर है, ऐसा कहकर

कता (द्वेष बुद्धि) आ० आये हुवे प० पूर्व कर्मानुभव को ग० प्राप्त ए० ये जे० जो ए० ये ए० ऐसा जी० पेटार्थी ॥ ९ ॥ अ० कितनेक व० वाचा जुं० बोलते हैं न० नग्न पिं० भिक्षारी मुं० मुण्डित कं० खर्जू वि० विनष्ट अंग वाले उ० मेले अ० अशोभानिक ॥ १० ॥ ए० ऐसे वि० पुण्य राहित अ० स्वतः अ० अज्ञान त० अंधकार से ते० वे त० अंधकार में जं० जाते हैं मं० मंद मो० मोहसे पा० आच्छादित ॥ ११ ॥ पु० स्पर्शाया दं० डांस मच्छर से त० तृण फा० स्पर्श अ० अशक्त न० नहीं मे० मैंने दि० देखा

गता ॥ पडियार गता एते । जे एते एव जीविणो ॥ ९ ॥ अप्पेगे वइ जुंजंति । नगिणा पिंडोलगाहमा ॥ मुंडाकंडूविणट्ठंगा । उज्जल्ला असमाहिता ॥ १० ॥

एवं विप्पाडिवन्नेगे । अप्पणाउ अजाणया ॥ तमओ ते तमं जंति । मंदा मोहेण पाउडा ॥ ११ ॥ पुट्ठोय दंसमसएहिं । तणफास मचाइया ॥ न मे दिट्ठे परलोए । जइ

भावार्थ

ऐसा कठोर वचन बोलते हैं कि ये जो साधु घर घर की भिक्षा मांगकर आजीविका करते हैं वे अपने पूर्व भव के किये हुवे कर्मों के फल हैं ॥ ९ ॥ और भी कितनेक ऐसा अनार्य वचन बोलते हैं कि ये नग्न फिरनेवाले है, सदाकाल अन्य की पास से भिक्षा मांगकर खानेवाले हैं, मुण्डित, खर्जू से जिसके अंग विनष्ट हुवे हैं वैसे मलीन गात्रवाले तथा असमाधि को उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ १० ॥ ऐसे बोलनेवाले साधु मार्ग के द्वेषी, स्वयं अज्ञ होने पर अन्य का वचन नहीं माननेवाले तथा मोह से आच्छादित बाल पुरुष अंधकार गति से अंधकार में जाते हैं ॥ ११ ॥ दंश मशक से पीडाये हुवे तथा तृणादिक स्पर्श को सहन

से पीडाते दु० दुर्भागी ते० निश्चय इ० ऐसा आ० कहे पु० पृथक् ज० मनुष्य ॥ ६ ॥ ए० ये स० शब्दों को अ० असमर्थ गा० ग्राममें ण० नगरमें त० तहां मं० मूर्ख वि० सिदाते हैं सं० संग्राम में भी० भीरू ॥ ६ ॥ अ० कोइ क्खु० क्षुधित भि० साधु को सु० कुत्ती डं० काटती है लू० क्रूर त० तहां मं० मूर्ख वि० सिदातेहै ते० अग्नि से पु० स्पर्शाया पा० प्राणी ॥ ८ ॥ अ० कितनेक प० बोलते हैं प० प्रतिपंथि-

पुढो जणा ॥ ६ ॥ एते सद्दे अचायंता । गामेसु णगरेसु वा ॥ तत्थ मंदा विसीयंति। संगामंमित्र भीरुया ॥ ७ ॥ अप्पेगे क्खुधियं भिक्खुं । सुणी डंसंति लूसए॥ तत्थ मंदा विसीयंति । तेउ पुट्ठाव पाणिणो ॥ ८ ॥ अप्पेगे पडिभासंति । पडिपंथिय मा-

परीषह कहते हैं, साधु को सदाकाल दी हुइ वस्तु लेना यह एक बडा दुःख है, और मांगना यह तो अपार दुःख है. उस में जो कायर पुरुष हैं वे सीदावें. आक्रोश परीषहः- और भी कितनेक पामर पुरुष साधु को ऐसा कहे कि ये बिचारे पूर्व कृतकर्म के फल अनुभवते हैं या तो दुःख वेदना से ग्रसित होने से कार्य करने में असमर्थ हुवे हैं, इस लिये यति बने हैं. या तो दुर्भागी होने से परीवार को छोड कर यति हुवे हैं वगैरह ॥ ६ ॥ जैसे भीरु संग्राम में सीदाता है वैसे ही ग्राम में या नगर में रहेहुवे पूर्वोक्त शब्दों को सहन करने में असमर्थ मंद पुरुषों सीदाते हैं ॥ ७ ॥ जैसे अग्नि से स्पर्शाये हुवे जीवों पीडित होते हैं, वैसे ही जब कोइ क्रूर कुत्ता साधु को काटता है तब उस से वह साधु खेदित होता है ॥ ८ ॥ कोइ साधु के द्वेषी

चर्या में अ० अजान् सू० शूर म० मानते हैं अ० स्वतः को जा० यावत् लू० संयम को न० नहीं से० सेवे ॥ ३ ॥ ज० जब हे० हेमन्तऋतु में सी० शीत फु० स्पर्शता है स० सर्वाङ्ग में [स० वायु सहित,] त० तहां मं० मंद वी० सीदाते हैं र० राज्य हीन सदृश ख० क्षत्रिय ॥ ४ ॥ पु० स्पर्शाया गि० ग्रीष्म में ता० ताप से वि० खराब मन वाला स० तृषातूर त० तहां मं० मूर्ख वि० पीडाते हैं म० मत्स्य अ० अल्पोदक में ज० जैसे ॥ ५ ॥ स० सदैव द० दीया हुवा ए० लेना दु० दुःख जा० याचना दु० अपार दुःख क० कर्म

मण्णंति अप्पाणं । जाव लूहं न सेवए ॥ ३ ॥ जया हेमंतमासंमि । सीयं फुसइ स व्वंगं (सवायगं) ॥ तत्थ मंदा विसीयंति । रज्जहीणाव्वि खत्तिया ॥ ४ ॥ पुट्ठ गि म्हाहि तावेण । विमणे सपिवासिए ॥ तत्थ मंदा विसीयंति । मच्छा अप्पोदए जहा॥५॥ सदा दत्तेसणा दुक्खा । जायणा दुप्पणोल्लिया ॥ कम्मत्ता दुब्भगा चेव । इच्चाहंसु

प्रहारों से छेदाताहुवा खेद पाता है ॥२ ॥ वैसे ही नव दीक्षित परीषहसे नहीं स्पर्शाया हुवा, और भिक्षाचरि का अजान साधु ने जहां लग संयम अंगीकार नहीं किया है वहां लग ही अपने को शूरवीर मानता है. ॥ ३ ॥ जैसे राज्य विहीन क्षत्रिय खेदित होता है. वैसे हि जब मंद पुरुषों को शीत काल में ठंड सर्वांग में स्पर्श करती है तब वे शीत से स्पर्शाये हुवे खिन्न होते हैं ॥ ४ ॥ जैसे अल्पोदक में रहा हुवा मत्स्य पीडा- ता है वैसे ही ग्रीष्म ऋतु में उष्णता से तथा पिपासा से जीताया हुवा मुनि पीडावे ॥ ५ ॥ अब याचना

उपसर्गपरिज्ञाख्यं तृतीय मध्ययनम्

सू० शूरवीर म० मानता है अ० स्वतः को जा० यावत् जे० जेता न० नहीं प० देखता है जु० लढता हुवा द० द्रढधर्मी सि० शिशुपाल की सदृश म० महारथी [नारायण] ॥ १ ॥ प० आया हुवा सू० शूरवीर र० रणके अग्रभाग में सं० संग्राम में उ० उपस्थित मा० माता पु० पुत्रको न० नहीं या० जानती है जे० जीतने वाले से प० छेदाया हुवा ॥२॥ ए० ऐसे से० नवदीक्षित साधु अ० नहीं स्पर्शाया भि० भिक्षा

सूरं मण्णइ अप्पाणं । जाव जेयं न पस्सति ॥ जुज्झंतं दढधम्माणं । सिसुपालोव महारहं ॥ १ ॥ पयाता सूरा रणसीसे । संगामंमि उवट्ठिते ॥ माया पुत्तं न याणाइ । जेएण परिविच्छए ॥ २ ॥ एवं सेहवि अपुट्ठे । भिक्खायरिया अकोविए ॥ सूरं

जैसे शिशुपाल अपने को शूरवीर मानता था, परंतु द्रढ प्रतिज्ञी महारथ (कृष्ण) को संग्राम में जुझता हुवा देख कर क्षोभित हुवा, वैसेही कितनेक अपनेको शूरवीर मानतेहैं परंतु जबलग संग्राम में अपने जेताको न देखे वहां लग ही उन का सामर्थ्यपना है ॥ १ ॥ जैसे अपने को शूरवीर माननेवाला कोइ पुरुष संग्राम में आया हुवा शत्रु आदि के प्रहार से छेदाता कायरता से भगजाता है. और जहां सुभटों की आकुलता से माता भी अपना पुत्र को नहीं जान सकती है वैसा रणक्षेत्र में अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित भट शत्रु के

रहित सं० संवृति ए०ऐसे सि०सिद्ध अ०अनंत सं० सांप्रत अ०अनागत में अ०अपर॥२१॥ ए० ऐसे से० वे उ० कहा अ० निरुपम ज्ञानी अ० निरुपम दर्शी अ० निरुपम ज्ञान दर्शन के धारक अ० अर्हन् ना० ज्ञात पुत्र भ० भगवान् वे० विशाला नगरी में वि० फरमाया त्ति० ऐसा बे० कहता हूं॥ २२ ॥ २ ॥

ते आणियाण संवुडे ॥ एवं सिद्धा अणंतसो । संपइ जे अणागयावरे ॥ २१ ॥ एवं से उदाहु अणुत्तर णाणी । अणुत्तरदंसी अणुत्तरणाणदंसणधरे ॥ अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालिए वियाहिए त्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति वेयालीयज्झयणस्स तइओद्देसो सम्मत्तो । इति वेयालीय णामं बीअमज्झयणं सम्मत्तं ॥ २ ॥ *

ही शेप महाव्रत जानना. इस को धारन करनेवाला, नियाणा रहित तथा संवरी साधु अतीत काल में अनंत सिद्ध हुवे, आगामिक काल में अनंत होवेंगे और वर्तमान काल में भी सिद्ध होरहे हैं ॥ २१ ॥ पूर्वोक्त रीत्या निरुपम ज्ञानी, निरुपम दर्शनी और अनुपम ज्ञान दर्शन के धारन करनेवाले श्री ऋषभ देव स्वामी ने कहा; ऐसा श्री ज्ञात पुत्र महावीरने विशाला नगरी में उपदेश दिया. इस तरह श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने वर्धमान स्वामी से सुना है वैसा ही तेरे प्रत्ये कहता हूं. यह वैतालीय नामक द्वितीय अध्ययन का तृतीय उद्देशा पूर्ण हुवा. और द्वितीय अध्ययन भी समाप्त हुवा. कर्मों को विदारनेवाला उपसर्ग सहनेवाला होता है. इस लिये आगे उपसर्ग परिज्ञा नामक तृतीय अध्ययन का प्रारंभ करते हैं. ॥२॥ * *

हिं० अ० भ० भयसे व्याकुल स० शठ जा० जन्म ज० वृद्धावस्था म० मरण से भि० पीड़ित हुवा ॥१८॥ इ० यह ख० अवसर वि० जानो णो० नहीं सु० सुलभ बो० बोधि आ० कहा हुवा ए० ऐसे स० सहित पा० देखो (अ० सहन करे) आ० कहा जि० जिनेश्वर इ० यह से० शेष ॥ १९ ॥ अ० हुवे पु० पहिले भि० साधुओं आ० आगामिक भ० होवेंगे सु० सुव्रति ए० यही गु० गुण आ० कहे का० काश्यप के अ० धर्मानुचारी ॥ २० ॥ ति० तीन करन से पा० प्राणी मा० नहीं हं० हणे आ० आत्महित अ० नियाणा

भिदुंता ॥ १८ ॥ इण मेव खणं वियाणिया । णो सुलभं बोहिं च आहितं ॥ एवं सहिएहिंपासए । (आहियासए) आहिजिणे इणमेव सेसगा ॥ १९ ॥ अभविंसु पुरा वि भिक्खवो । आएसावि भवंति सुव्वता ॥ एयाइं गुणाइं आहुते । कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २० ॥ तिविहेण वि पाण मा हणे । आयहि-

करते हैं. ॥ १८ ॥ ऐसा अवसर को, वैसे ही बोध बीज मिलना सुलभ नहीं है इस को जानकर ज्ञानादि युक्त साधु परीषह आनेपर उसे सहनकरे. ऐसा श्रीआदिश्वर भगवानने तथा अन्य सब तीर्थंकरोंने कहा है॥१९॥ अहो मुनियों भूतकाल में जो प्रधान व्रतधारी तीर्थंकर हुवे और जो आगामिक काल में होवेंगे वे सर्व ऐसे ही गुणों को कहते हैं किसी में मत भेद नहीं रहता है. जो उपदेश ऋषभ देव स्वामी का है वह ही उपदेश महावीर स्वामी का है ॥ २० ॥ तीन करन और तीन जोग से प्राणी मात्र की हिंसा करनी नहीं वैसे

अज्ञानी स० शरण म० मानता है ए० ये म० मेरे ते० उस का अ० मैं णो० नहीं, ता० त्राण स० शरण न० नहीं वि० जानता है ॥ १६ ॥ अ० प्राप्त दु० दुःख अ० अथवा उ० उपक्रम भ० भवान्तर में ए० अकेला की ग० गति आ० आगति वि० विवेकी स० शरण ण० नहीं म० मानते हैं ॥ १७ ॥ स० सर्व स० स्वतः कर्म क० कल्पे अ० अव्यक्त दु० दुःख पा० प्राणी को

सव्वो नाइओ । तं बाले सरणंति मन्नइ ॥ एते मम तेसुवि अहं । नो ताणं सरणं न विज्जइ ॥ १६ ॥ अब्भागमितंमि वा दुहे । अहवा उक्कामिते भवंतिए ॥ एगस्स गती य आगती । विदुमंता सरणं ण मन्नइ ॥ १७ ॥ सव्वे सयकम्म कप्पिया । अवियत्तेण दुहेण पाणिणो ॥ हिंडंति भयाउला सढा । जाइ जरा मरणेहिं

अज्ञानी उन सब को शरण माने. परंतु वह ऐसा नहीं जानता है कि वे धनादि, रोगादि दुःख उत्पन्न होने समय या दुर्गति में जाते समय शरण नहीं होते हैं ॥१६॥ साता वेदनीय कर्म का उदय से आयेहुवे दुःख को, या मरण समय में आयेहुवे दुःख तथा भवान्तर में प्राप्त दुःख को जीव अकेला ही भोगता है. वैसे ही गति और आगति जीव अकेलाकी ही होती है ऐसा जानकर पण्डित पुरुष किसी का शरण माने नहीं ॥ १७ ॥ संसार में रहे हुवे सर्व जीवों की एकेन्द्रियादि जाति अपने २ कर्मों से बनी हुइ है. उस में अव्यक्त दुःख से दुःखी, भय से व्याकुल, जन्म जरा मरण से पीडित, तथा शठ प्राणी नाना प्रकार की योनि में परिभ्रमण

अर्थ में सु० सुव्रती दे० देवताके आ० जावे लो० लोक में ॥ १३ ॥ सो० सुनकर भ० भगवान की अ० हित शिक्षा स० सत्य त० तहां क० करे उ० उपक्रम स० सर्व अर्थ वि० निवारे म० मत्सर भाव उं० माधुकरीवृत्ति भि० साधु वि० निर्दोष आ० आहारले ॥ १४ ॥ स० सर्व न० जानकर अ० अधिष्ठित ध० धर्मार्थी उ० उपधान वी० वीर्य फोरवे गु० गुप्त जु० युक्त स० सदैव ज० यत्नाकरे आ० आत्मा में प० दूसरे में प० उत्कृष्ट आ० मोक्षार्थी ॥ १५ ॥ वि० धन प० पशु ना० ज्ञाति तं० उसे बा०

सोच्चा भगवाणुसासणं । सच्चे तत्थ करेज्जुवक्कमं ॥ सव्वत्थ विणीयमच्छरे । उंच्छं भिक्खू विसुद्ध माहरे ॥ १४ ॥ सव्वं नच्चा अहिट्ठिए । धम्मट्ठी उवहाण वीरिए ॥ गुत्ते जुत्ते सदा जए आय परं परमायतट्ठिते ॥ १५ ॥ वित्तं प-

तथा समता परिणाम में रहता हुवा देवलोक में जा सकता है तो फिर यति धर्म पालनेवाले का कहना ही क्या. ॥ १३ ॥ वीतराग की आज्ञा पूर्वक धर्म सुन करके जैसा आगम में संयमानुष्ठान कहा है वैसा ही पालने का उद्यम करे. तथा सर्वत्र मात्सर्यता रहित साधु माधुकरी वृत्ति से शुद्ध निर्दोष आहार लेवे ॥ १४ ॥ सर्व हेय ज्ञेय उपादेय को जानकर सर्वज्ञोक्त मार्ग का आश्रय ग्रहण करना चाहिये और धर्मार्थी वन, तप में वीर्यवान् होता हुवा, मन वचन और कायको गोपता हुवा, ज्ञानादि सहित, तथा मोक्ष का अभिलाषी होता हुवा यत्न करना चाहिये ॥१५॥ वित्त, पशु, ज्ञाती यह सब मेरे हैं; मैं उनका हूं; इसतरह

सु० निरुद्ध दं० दर्शनी मो० मोहनीय से क०किये हुवे क०कर्मों से ॥११॥ दु० दुःखी मो० मोह में पु०पुनः २ नि० छोडो लो० लोक पूजा ए० ऐसे स० सहित पा० देखे आ० आत्म तुल्य पा० प्राणी को सं० साधु ॥१२॥ गा० घरमें आ० रहता हुवा न०मनुष्य अ० अनुक्रमसे पा० प्राणीयों सं०यत्नकरे स० समता स०सर्व

णिज्जेण कडेण कम्मुणा ॥ ११ ॥ दुक्खी मोहे पुणो पुणो । निव्विदेज्जसि लोगपूयणं ॥ एवं सहितेहिं पासए । आयतुलं पाणेहिं संजए ॥ १२ ॥ गारंपिअ आवसे नरे । अणुपुव्वं पाणेहिं संजए॥ समता सव्वत्थ सुव्वते । देवाणं गच्छे सलोगयं।१३।

पुरुष ! सर्वज्ञ से उपदेशाया हुवा आगम की श्रद्धा कर. क्यों कि मात्र प्रत्यक्ष प्रमाण माननेवाले को व्यवहार का लोप होता है अर्थात् वर्तमान काल को छोड कर अन्य अतीत अनागत काल नहीं माननेवाले को पितामहादिक तथा पुत्र पौत्रादिक होवें नहीं. परंतु मोहनीय कर्म से जिस का दर्शन रुंधाया है ऐसा प्राणी जैन मार्ग की श्रद्धा नहीं करता है ॥ ११ ॥ ऐसा वचन बोलने वाला दुःखी होता हुवा वारंवार मोह में फसता है इस लिये मोह का त्याग कर आत्मश्लाघा, पूजा को भी छोडना ऐसा करनेवाला ज्ञानादि सहित संयति साधु सर्व प्राणी मात्र को अपनी आत्मा तुल्य देखता है ॥ १२ ॥ अब गृहस्थवास में रहनेवाला पुरुष भी अनुक्रम से धर्म सुनकर, श्रावक के व्रत अंगीकार कर, जीवों की यतना करता हुवा

बु० बूझो गि० गृद्ध न० मनुष्य का० काम में मु० मूर्च्छित ॥ ८ ॥ जे० जो इ० यहां आ० आरंभ में नि० आसक्त आ० आत्मदंडी ए० एकान्त लू० लूटारे गं० जाने वाले ते० वे पा० पापलोक में चि० बहुत काल आ० आसुरी दि० दिशामें ॥ ९ ॥ ण० नहीं सं० संधावे आ० कहा जी० जीवितव्य त० तथापि बा० अज्ञानी ज० लोक प० धीठ बनते हैं प० वर्तमान का० कार्य को० कौन द० देखकर प० परलोक से आ० आया है ॥ १० ॥ अ० अथ इ० जैसा द० सर्वज्ञ आ० कहा स० श्रद्धो अ० अज्ञानद्रष्टीसे हं० ग्रहण करो

कामेसु मुच्छिया ॥ ८ ॥ जे इह आरंभनिस्सिया । आयदंडा एगंतलूसगा ॥ गंता ते पावलोगयं । चिररायं आसुरियं दिसं ॥ ९ ॥ णय संखय माहु जीवितं । तहविय बाल जणो पगब्भइ ॥ पच्चुप्पन्नेण कारियं । को दट्ठुं परलोग मागते ॥ १० ॥ अदक्खु व दक्खु वाहियं । सद्दहसु अदक्खुदंसणा ॥ हंदि हु सुनिरुद्धदंसणे । मोह-

काम भोग में मूर्च्छित होते हैं. ॥ ८ ॥ इस लोक में जो कोइ आरंभ में आसक्त, आत्मा को दण्डनेवाले और प्राणी की घात करनेवाले हैं वे बहुत कालतक नरकादिगति में रहेंगे; अथवा अज्ञान तप के प्रभाव से देवता की गति मिलजाय तो किल्विषी देव होवेंगे ॥ ९ ॥ तूटाहुवा जीवितव्य फिर संधता नहीं है ऐसा सर्वज्ञ का उपदेश होने पर भी अज्ञानी बाल मनुष्य धीटाइ करते हैं और कहते हैं कि हम को मात्र वर्तमान सुख से ही संबंध है परलोक को देख कर कौन आयाहुवा है ॥ १० ॥ ज्ञानदृष्टिरहित हे अंधवत्

कामकी अभिलाषा मे वि० निपुण अ० आज या कल प० छोडूंगा सं० संबंध का० कामीजन का० काम को ण० नहीं का० वांछे ल० प्राप्त हुवा को अ० अप्रि अ० नहीं प्राप्त हुवा क० करे (६) मा० मत प० पश्चात् अ० असाधुता अ० होवे अ० दूर करे अ० हित शिक्षा अ० आत्मा को अ० त्यजने योग्य प० और अ० असाधु सो० सोच करता है सं० रुदन करता है प० विलाप करता है (७) इ० यहां जी० जीवितव्य पा० देखो त० तरुण अवस्था में वा० सो वर्ष में तु० तूटता है इ० अल्प वा० वर्ष

एवं कामेसणं विऊ । अज्जसुए पयहेज्ज संथवं ॥ कामी कामे ण कामए लद्धेवा वि अलद्धकण्हुइ ॥ ६ ॥ मा पच्छ असाधुता भवे । अच्चेही अणुसास अप्पगं ॥ अहियं च असाहु सोयति । संथणति परिदेवति बहु ॥ ७ ॥ इह जीविय मेव पासह । तरुणे एव वाससयस्स तुट्टति ॥ इतरवासेय बुज्झह । गिद्ध नरा

भावार्थ — को मैं प्राप्त नहो उ ऐसा विचारकर आत्माको विषय संगसे दूर करना, और अपनी आत्माको शिक्षा देनाकि हे आत्मन्! असाधु कर्म करनेसे दुर्गतिमें गयेबाद तू शोच करेगा, आक्रंद करेगा, और बहुविलाप करेगा॥७॥ और भी इस संसार में जीवितव्य देखो. वह क्षण क्षण में विनाश होरहा है. तरुण भी अपना आयुष्य क्षय होने से काल को प्राप्त होता है. और भी सांप्रतकाल में मनुष्य का आयुष्य मात्र सो वर्ष का है जो कि वह सागरोपम की अपेक्षा से बहुत अल्प है ऐसा जानकर हे आत्मन्! समज. ऐसा होने पर कितनेक पुरुष

जे० जो इ० यहां सा० सुखशीलीया न० मनुष्य अ० गृद्ध का० काम में मु० मूर्च्छित कि० कृपण स० सरिखे प० धीठ न० नहीं वि० जानते हैं स० समाधि आ० कही हुइ (४) वा० गाडवान [व्याध] ज० जैसे वि० त्रास देता हुवा अ० निर्बल हो० होता है ग० बैल(मृग) प० प्रेराया हुवा से० वे अं० अंत तक अ० अल्पसामर्थ्यता से न० नहीं अ० अति व० चलता है अ० निर्बल वि० पीडित होता है (५) ए० ऐसे का०

जे इह सायाणुगा नरा । अज्झोववन्ना कामेहिं मुच्छिया ॥ किवणेण समं पगब्भिया ।
नविजाणंति समाहि माहितं ॥ ४ ॥ वाहेण जहा व वित्थए । अबले होइ
गवं पचोइए ॥ से अंतसो अप्पथामए । नाइवहइ अबले विसीयति ॥ ५ ॥

गौरवयुक्त, काम में मूर्च्छित, और कायर की तरह धीठ मनुष्य तीर्थंकर का मार्ग को नहीं जान सकता है ॥४॥ अब जैसे गाडी का चलानेवाला बैल को चलाने की प्रेरणा कर निर्बल करे और बाद में मरणांत कष्ट देकर चलावे तो भी वह बैल असामर्थ्यपना से चल सके नहीं, और कीचड में खूता रहे; अथवा कोइ पाराधि मृगादिक पशुको त्रास देकर बल रहित कर देवे फिर वह कहां ही जासके नहीं वैसे ही काम भोग में आसक्त पुरुष आज या कल इनको त्यजूंगा ऐसा चिन्तवन करे परंतु त्यजसके नहीं. ऐसा जानकर कामी पुरुष को काम भोग वांच्छना नहीं और जम्बू स्वामीकी तरह प्राप्त काम भोगको अप्राप्त करना अर्थात् छोडकर निस्पृही बनना ॥५-६॥ अब कामभोग के त्याग का कारण बताते हैं. काम भोग सेवने से परभवमें असाधुता

संयम से चि० क्षीणहोते हैं म० मरण को हे० त्जकर व० जाते हैं पं० पण्डित ॥ १ ॥ जे० जो वि० स्त्री अ० नसेवे सं० तीरा हुवा से स० सम वि० कहाया त० इसलिये उ० ऊर्ध्व (मोक्ष) पा० देखा अ० देखा का० कामभोगको रो० रोगवत् ॥ २ ॥ अ० अग्र व० वणिक आ० लाया धा० धारण करते हैं रा० राजादि इ० यहां ए० ऐसे प० प्रधान म० पंचमहाव्रत अ० कहा हुवा स० रात्रि भोजन सहित ॥ ३ ॥

णं हेच्च वयंति पंडिया ॥ १ ॥ जे विन्नवणा अजोसिया । संतिन्नेहिं समं विहाहिया ॥ तम्हा उड्ढंति पासहा अदक्खू कामाइरोगवं ॥ २ ॥ अग्गं वणिएहिं आहियं । धारंति राइणिया इह ॥ एवं परमा महव्वया । अक्खायाओ सराइभोयणा ॥ ३ ॥

मिथ्यात्वादि कर्म का निरुंधन करनेवाला साधु को अज्ञानपने से बंधाया हुवा निकाचित कर्म का उदय होजावे तो उसे सत्तरह प्रकार के संयम से क्षय करे. तथा वह संवृतात्मा पण्डित मरण को और उपलक्षण से शोक को छोड कर निर्वाण जावे ॥ १ ॥ जिन महान् पुरुषों ने स्त्रियों सेवी नहीं हैं और जो काम भोग को रोग की सदृश देखते हैं वे मोक्ष को देखते है ऐसा मुक्त पुरुषों ने सम्यक् प्रकार से कहा है. अर्थात् वे लोकों संसार में रहनेपर भी संसार पारगामी है ॥ २ ॥ जैसे सर्व वस्तु में अग्र-बहुमूल्य रत्नाभरणादिक वस्तुओं वेपारी वेचने को लाते हैं, और उसे बहुत द्रव्यधारी राजा आदि महान् पुरुषों ही धारन कर सकते हैं वैसे ही आचार्य महाराज की पास से पंच महाव्रत और छठारात्रि भोजन कोइ महा पुण्यवान साधु ही ग्रहण कर सकता है परंतु अन्य नहीं ग्रहण कर सकता है ॥ ३ ॥ परंतु सुखशीलिये, तीन

मु० साधु सा० सामायिक आ० कहा ना० ज्ञात पुत्र ज० जगत् स० सर्वदर्शी ॥ ३१ ॥ ए० ऐसा म० जानकर म० दुर्लभ ध० धर्म स० ज्ञानादि युक्त ब० बहुत ज० मनुष्य गु० गुरु का छं० आज्ञानुवर्ती वि० विरत ति० तीरा म० महान् समुद्र से आ० कहा ॥ ३२ ॥ त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २ ॥ २ ॥ *

सं० कर्म से निवर्तनेवाला भि०साधुको जं०जो दु०दुःख पु० स्पर्शा है अ०अज्ञानपने से तं० उसको सं०

त्रितहणो अणुट्ठियं) मुणिणा सामाइ आहितं । नाएणं जगसव्वदंसिणा ॥ ३१ ॥ एवं मत्ता महंतरं । धम्ममिणं सहिया बहू जणा ॥ गुरुणो छंदाणुवत्तगा । विरया तिन्न महोघमाहितं त्तिबेमि ॥ ३२ ॥ इति वेयालीयज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो.

संवुडकम्मस्स भिक्खुणो । जं दुक्खं पुट्ठं अबोहिए ॥ तं संजमओत्र चिज्जइ । मर

उसे जीवोंने पहिले कदापि सुना नहीं है. कदाचित् सुना होवे तो अंगीकार नहीं किया है ॥ ३१ ॥ इस तरह आत्माहित, मनुष्य जन्म, तथा जैन धर्म मिलना दुर्लभ है ऐसा जानकर पापसे निवर्ते हुवे तथा गुरु के छांदे चलनेवाले बहुत हलुकर्मी जीव महा प्रवाहवाला संसार समुद्र को तीर गये हैं ऐसा श्री तीर्थंकर देवने फरमाया है, और वैसा ही मैं कहता हूं. यह वैतालीय नामक दूसरा अध्ययन का द्वितीय उद्देशा पूर्ण हुवा. द्वितीय उद्देशा में चारित्र पालने का कहा, चारित्र पालते परीषह उत्पन्न होवे तो सहन करना वह आगे बताते हैं. ॥ २ ॥ २ ॥

माया प० लोभ णो० नहीं क० करे न० नही उ० मान प० क्रोध सा० साधु ते० उनका सु० परित्याग आ० कहा प० सावधान जे० जिससे सु० सेवाया धू० संयमानुष्ठान ॥ २९ ॥ अ० स्नेह रहित स० ज्ञानादिक युक्त सु० सुसंवृत ध० धर्मार्थी उ० उपधानसें वी० वीर्यवन्त वि० विचरे स० समाधि युक्त इ० इन्द्रियों आ० आत्महित दु० दुर्लभ ल० पावे ॥ ३० ॥ पा० नहीं णू० निश्चय पु० पहिले अ० सुना अ० अथवा तं० उसको त० तैसे णो० नहीं स० सावधान (अ० अथवा अ० यथातथ्य णो० नहीं अ० आचरा)

सुविवेगमाहिए ॥ पणया जेहिं सुजोसिअं धूयं ॥ २९ ॥ अणिहे सहिए सुसंवुडे । धम्मट्ठी उवहाणवीरिए ॥ विहरेज्ज समाहि इंदिए । आत्तहिअं खु दुहेण लब्भइ ॥ ३० ॥ णाहि णूण पुरा अणुस्सुतं । अदुवा तं तह णो समुट्ठियं ॥ (अदुवा अ-

माया और लोभ करना नहीं और महान् पुरुषों ने भी उन का परित्याग करने का कहा है. जिसने संयमानुष्ठान का सेवन किया है उन को ही साधु जानना ॥ २९ ॥ और भी साधु स्नेह रहित, ज्ञानादि सहित, संवर युक्त, धर्मार्थी, तप में वीर्य फोरता हुवा और इन्द्रियों को वश करता हुवा विचरे. क्यों कि इस संसार में आत्महित मिलना बहुत कठीन है ॥ ३० ॥ ऐसी सामायिकादि चारित्र की प्राप्ति जीव को अन्य किसी स्थान नहीं हुइ है वह बताते है. श्री सर्वभावदर्शी सर्वज्ञ श्री महावीर प्रभुने जो सामायिक चारित्र कहा है

म० महर्षि ते० वे उ० उठे ते० वे स० सावधान अ० अन्योन्य सा० प्रवर्तावे ध० धर्म ॥ २६ ॥ मा० मत चे० चिन्तव पु० पहिलेंके प० प्रणाम अ० वांछे उ० उपाधि धु० छोडने को जे० जो दू० दुष्ट मन के करने वाला से णो० नहीं ण० नमा हुवा ते० वे जा० जानते हैं स० समाधि आ० कही ॥ २७ ॥ णो० नहीं का० कथा का करने वाला हो० होवे सं० साधु पा० प्रश्नका करने वाला ण० नहीं सं० निमित्त कहने वाला न० जानकर ध० धर्म अ० प्रधान क० क्रिया करने वाला ण० नहीं मा० ममत्ववान् ॥ २८ छ०

। अन्नोन्नं सारंति धम्मओ ॥ २६ ॥ मा पेह पुरा पणामए । अभिकंखे उवहिं धुणित्तए ॥ जे दूमणतेहिं णोणया । ते जाणंति समाहिमाहियं ॥ २७ ॥ णो काहिए होज्ज संजए । पासणिए णय संपसारए ॥ नच्चा धम्मं अणुत्तरं । कय किरिए ण यावि मामए ॥ २८ ॥ छन्नं च पसंस णो करे । नय उक्कोस पगास माहणे ॥ तेसिं

धर्म में स्थिर करता है ॥ २६ ॥ पूर्व के भोगवे हुवे काम भोगों का स्मरण करना नहीं और माया को दूर करने की इच्छा करना. जो मनुष्य विषय के वशीभूत नहीं हुवे हैं वे ही समाधि [धर्म ध्यान को] हित जानते हैं॥ २७ ॥ जिनोक्त अनुत्तर धर्म जानकर साधु को गौचरी जाते मार्ग में विकथा करनी नहीं, प्रश्न करना नहीं, अथवा अन्य कोइ प्रश्न करे तो निमितादिक कहना नहीं, वृष्टि अर्थकाण्डादिक कथाका विस्तार करना नहीं वैसे ही संयमानुष्ठान रूप क्रिया करता हुवा ममत्व करना नहीं ॥२८॥ साधुको क्रोध, मान,

ए० ऐसे लो० लोक में ता० रक्षक वु० कहे जे० जो ध० धर्म अ० प्रधान तं० उसे गि० ग्रहणकर हि० ढिलकर उ० उत्तम क० चौक को से० शेष व० छोडकर पं० पण्डित ॥ २४ ॥ उ० प्रधान म० मनुष्य को आ० कहा गा० इन्द्रिय धर्म इ० ये मे० मैंने अ० सुना जं० जिससे वि० निवर्ते स० सावधान का० काश्यप का अ० धर्मानुचारी ॥ २५ ॥ जे० जो ए० यह च० आदरतेहैं आ० कहा हुवा ना० ज्ञात पुत्र म० महान्

हियंति उत्तमं । कडमिव सेसवहाय पंडिए ॥ २४ ॥ उत्तर मणुयाण आहिया । गाम-धम्मा इइ मे अणुस्सुयं ॥ जंसि विरता समुट्ठिया कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २५ ॥ जे एयं चरंति आहियं । नाएणं महया महेसिणा ॥ ते उट्ठिय ते समुट्ठिया

कथन है. जैसे द्यूतकार एकादि शेष को छोड कर चार का ही दाव को लेता है, वैसे ही पण्डित अन्य गृहस्थ, कुलिंगी, द्रव्यलिंगी आदि धर्म को छोंड कर सर्वज्ञोपादिष्ट धर्म करे ॥ २४ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं, कि मैंने श्री वीर प्रभु से सुना है, कि मनुष्यों को इन्द्रिय के विषय जीतना अति कठीन है. जो पुरुष इन विषयों से निवर्ता हुवा है, वह ही काश्यपके अनुचारी है, अर्थात् जिनोक्त धर्म का करनेवाला है. ॥ २५ ॥ ज्ञात पुत्र श्री महावीर स्वामी ने कहा है कि जो पुरुष इन इन्द्रियों के विषय से निवृत्ति रूप धर्म को अंगीकार करता है, वह संयम में सावध होता है, वैसे ही परस्पर धर्म से भ्रष्ट होने को

मु० साधु ण० नहीं म० मदकरे ॥ २१ ॥ छं० स्वच्छंदता से पा० भ्रमण करे इ० यह प० प्रजा व० बहुत मा० माया मो० मोह में पा० आच्छादित वि० प्रगट प० प्रवर्ते मा० साधु सी० शीतोष्ण व० वचन अ० सहन करे ॥ २२ ॥ कु० कुजयी अ० अपराजित ज० जैसे अ० पासा में कु० कुशल दी० खेलता हुवा क० चौक को ग० ग्रहण करे णो० नहीं क० एक णो० नहीं ति० तीन णो० नहीं दा० दोका ॥ २३ ॥

इति संखाय मुणी ण मज्जति ॥२१॥ छंदेण पाले इमा पया। बहुमाया मोहेण पाउडा ॥ वियडेण पालिंति माहणे। सिउण्ह वयसा हियासए ॥ २२ ॥ कुजए अपराजिए जहा। अक्खेहिं कुसलेहिं दीवयं ॥ कडमेव गहाय णो कलिं । णो तियं णो चेव दावरं ॥ २३ ॥ एवं लोगंमि ताइणा। बुइए जे धम्मे अणुत्तरे ॥ तं गिण्ह

ऐसे पाप से पूर्ण होते है. ऐसा जान कर पण्डित मुनि को क्रोध करना नहीं ॥ २१ ॥ ये लोक अपनी अपनी स्वच्छंदतासे नरकादिक में परिभ्रमण करतें हैं क्योंकि वे अनेक प्रकार की कपट क्रिया से श्री वीतराग का मार्ग को नहीं जान सकतें हैं, और मोह से आच्छादित रहतें हैं. ऐसा जानकर साधु निर्मायी बन मोक्ष मार्ग में प्रवर्ते और अनुकुल प्रतिकुल उपसर्ग सहन करे ॥ २२ ॥ जैसे अक्ष से खेलने में कुशल द्यूतकार अन्य किसी से नहीं जीताता है, और एक, दो, तीन का दाव छोड कर चार का ही दाव ग्रहण करता है वैसे ही इस लोक में उत्तम हित कर एक ही प्रधान धर्म को ग्रहण करो ऐसा श्री जिनेश्वर का

करण का कर्ता भि० साधुको व० बोलता हुवा प० सहन करे दा० भयंकर अ० अर्थ प० नाश होवे ब० बहुत अ० अधिकरण न० नहीं क० करे प० पण्डित ॥ १९ ॥ सी० सचित्त पानी को प० छोडने वाला अ० अप्रतिज्ञ ल० कम अ० निवर्तने वाले का सा० सामायक आ० कहते हैं त० उसको जं० जो गि० गृहस्थ के म० भाजन में न० नहीं भुं० भोगवे ॥ २० ॥ ण० नहीं सं० रुन्धे आ० कहा जी० आयुष्य त० तैसे बा० अज्ञानी जीव प० धीटाइ करे बा० अज्ञानी प० पाप से मि० भरावे इ० ऐसा स० जानकर

अहिगरणकडस्स भिक्खुणो । वयमाणस्स पसज्ज दारुणं ॥ अट्ठे परिहायति बहु । अहिगरणं न करेज्ज पंडिए ॥ १९ ॥ सीओदग पडिदुगंच्छिणो । अपडिण्णस्स लवावसप्पिणो ॥ सामाइय माहु तस्स जं । जो गिहिमत्तसणं न भुंजति ॥ २० ॥ णय संखयमाहु जीवियं । तह विय बाल जणा पगब्भइ ॥ बाले पावेहिं मिज्जति ।

क्रोध करनेवाला तथा जीव को भय उत्पन्न होवे ऐसी भाषा बोलनेवाला साधु के बहुत काल से उपार्जित पुण्य का क्षय होता है, इस लिये पण्डित साधु को क्रोध करना नहीं ॥ १९ ॥ सचेत पानी को नहीं पीने वाला, नियाणा नहीं करनेवाला, कर्म से शंकानेवाला साधु को सामायिक चारित्री कहा है और भी जो साधु गृहस्थ के कांस्यादि पात्र में भोजन नहीं करता है, उस कोभी सामायक चारित्री कहा है ॥ २० ॥ पण्डित पुरुषों कहते हैं, कि टूटाहुवा जीवितव्य फिर पढ सकता नहीं है, तथापि मूर्ख जन पाप करते हैं, और

पू० पूजा प० प्रार्थी सि० होवे अ० सहताहुवा भु० होवे भे० भयंकर सु० शून्यगृहनिवासी भि० साधुको (१६) उ० प्राप्त कराया ज्ञानादि ता० परोपकारी भ० सेवने वाले को वि० विविक्त आ० आसन सा० सामायिक आ० कहते हैं त० उसको जं० जिस से जो० जो अ० आत्मा को भ० भय से दं० देखे ॥ १७ ॥ उ० उष्णपानी त० गरम भो० खाने वाले ध० धर्म में स्थित मु० मुनि को ही० लज्जावंत सं०परिचयवंत सा०साधु रा०राजादिकसे अ० असमाधि त० तथा आ० आइहुइ ॥ १८ ॥ अ० अधि-

पत्थए सिया ॥ अब्भत्थ भुविंति भेरवा । सुन्नागारगयस्स भिक्खुणो ॥ १६ ॥
उवणीयतरस्स ताइणो । भयमाणस्सवि विक्कमासणं ॥ सामाइयमाहु तस्स जं । जो अप्पाण भएण दंसए ॥ १७ ॥ उसिणोदग तत्तभोइणो । धम्मट्ठियस्स मुणिस्स हीमतो ॥ संसग्गिय साहुराईहिं । असमाहीउ तहागयस्सवि ॥ १८ ॥

जीवितव्य की वांच्छा करे नहीं, वैसे ही परीषह जीतने से मुझे लोक पूजेंगे ऐसा पूजा प्रार्थक भी नहीं होवे. इस तरह शून्य गृह में रहता हुवा साधु को रौद्र उपसर्ग सहन करना सुलभ होवे ॥ १६ ॥ जिस की आत्मा में ज्ञानादि गुणों उत्पन्न हुवे हैं वैसे, विविक्त शैय्यासन सेवनेवाले तथा उपकारी को सामायिक चारित्रिय कहा है. इस चारित्रवाला परीषह उत्पन्न होने पर डरता नहीं है ॥१७॥ ऊष्णादिक तथा तप्तादिक का पान करनेवाला, श्रुत और चारित्र धर्म में स्थित, तथा असंयम में प्रवृत्ति करता हुवा लज्जित, ऐसा मुनि को भी राजादिक के संसर्ग से स्वाध्याय ध्यान में असमाधि होवे, अर्थात् वे अच्छी तरह कर सके नहीं ॥१८॥

[१३] ज० जहां अस्त होवे अ० अव्याकुल स० अच्छे वि० बुरे को मु० साधु अ० सहन करे च० डां सादि अ० अथवा भे० भयंकर अ० अथवा त० तहां स० सर्प सि० होवे (१४) ति० तिर्यंच म० मनुष्य दि० देवता उ० उपसर्ग ति० तीन प्रकार का अ० सहन करे लो० रोम मात्र भी ण० नहीं ह० हर्ष करे सु० शून्यगृहनिवासी म० साधु (१५) णो० नहीं अ० वांच्छे जी० जीवितव्य नो० नहीं

मुत्थे णो संथरे तणं ॥ १३ ॥ जत्थत्थमिए अणाउले । समाविसमाइं मुणी हियासए ॥ चरगाय दुवावि भेरवा । अदुवा तत्थ सरीसिवा सिया ॥ १४ ॥ तिरिय मणुयाय दिव्वगा । उपसग्गा तिविहा हियासिया ॥ लोमादियंपि ण हरिसे । सुन्नागारगओ महामुणी ॥ १५ ॥ णो अभिकंखेज्ज जीवियं । नो विय पूयण

पूछे तो सावद्य बोले नहीं, और वहां रहाहुवा तृणादिक साफ करे नहीं, वैसे ही उस को बिछावे भी नहीं ॥१३॥जहां सूर्य अस्त होवे वहांरहे. अनुकूल प्रतिकूल शैय्यादिक परीषहोंको सहनकरे परंतु आकुल व्याकुल होवे नहीं, वैसे ही डांस मच्छरादिक के अथवा रौद्र सिंहादिक के अथवा वहां शून्य गृह में सर्पादिक के जो परीषह होवे वे सब सहन करे ॥ १४ ॥ शून्य गृह में रहाहुवा मुनि तिर्यंच के, देवता के, तथा मनुष्य के ऐसे तीन तरह के उपसर्ग सहन करे, परंतु रोम मात्र में भी विघ्न नहीं होवे ॥१५ ॥ और वह साधु असंयम

कोइ वं० वंदन पू० पूजा इ० यहां सु० सूक्ष्म स० शल्य दु० दुरुद्धर वि० विवेकी प०परिहरे सं० प रिचय (११) ए० अकेला च० विचरे ठा० कायोत्सर्ग आ० आसन रा० शैय्या ए० अकेला स० समाधि युक्त सि० होवे भि० साधु उ० तपादि धर्म में वीर्य फोरवे व० वचन गुप्तिवाला अ० आत्मा का सं० संवृति (११) णो० नहीं पि० ढके ण० नहीं पं० उघाडे दा० द्वार को सु० शून्य घ० गृह के सं० साधु पु० पुछने से उ० कहे वा० वचन ण० नहीं स० पूंजे णो० नहीं सं० बिछावे त० तृण

महय पलिगोव जाणिया । जाविय वंदणपूयणा इहं ॥ सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे । वि-उमंता पयहिज्ज संथवं ॥ ११ ॥ एगेचरे ठाणमासणे । सयणे एगे समाहिए सिया ॥ भिक्खू उवहाणवीरिए । वइगुत्ते अज्झत्तसंवुडो ॥ १२ ॥ णो पिहे ण यावपंगुणे । दारं सुन्नघरस्स संजए ॥ पुट्ठेण उदाहरे वायं । ण स-

उलंघन करना बहुत कठीन है. ऐसा कीचड को तथा राजादिकसे कराइहुइ पूजावंदना को जानकर साधु को गर्व करना नहीं. क्यों कि गर्व यह एक सूक्ष्म शल्य है और सूक्ष्म शल्य होने से उसमें से निकलना अति कठिन है. इस लिये विद्वान् साधु को वैसा परिचय छोडना ॥ ११ ॥ और एकिला रागद्वेष रहित कायोत्सर्गादि करना. समाधिवन्त होता हुवा शयनासन में एकिला रहना वैसे ही तप में वीर्य फोरनेवाला, विचार पूर्वक बोलनेवाला, और मन को संयम में रखनेवाला होना ॥ १२ ॥ किसी कारण से साधु को शून्य गृह में रहने का होवे तो उस गृह का द्वार उघाडे नहीं वैसे ही ढके भी नहीं. कोइ धर्म संबंधि प्रश्न

बहुत पा० प्राणी पु० अलग २ सि० होवे प० अलग २ स० समता स० देख कर जे० जो मो० साधु पद में उ० उपस्थित वि० साधु त० तहाँ अ० की पं० पंडित (८) ध० धर्म के पा० पारगामी मु० साधु आ० आरंभ से अं० दूर ठि० रहे हुवे सो० पश्चाताप करते हैं म० ममत्ववाल णो० नहीं ल० पाते हैं णि० अपना प० परिग्रह को (९) इ० इस लो० लोक मे दु० दुःख के कारण वि० जान कर प० पर लोक मे दु० दुःख दु० दुःख के कारण वि० विध्वंसण ध० स्वभाव इ० ऐसा वि० जान कर को० कोन आ० गृहवास में आ०रहे (१०) म० महा प० कर्दम जा० जानकर जा०जो

बहवे पाणा पुढो सिया। पत्तेयं समय समीहिया॥ जे मोणपदं उवट्ठित्ते। विरतिं तत्थ अकासी पंडिए॥८॥ धम्मस्स य पारए मुणी। आरंभस्स य अंतए ट्ठिए॥ सोयंति य णं ममाइणो णो लब्भंति णियं परिग्गहं ॥ ९ ॥ इह लोगदुहावहं विऊ। पर लोगेय दुहं दुहावहं ॥ विद्धंसण धम्ममेव तं। इति विज्जं को गारमावसे ॥१०॥

घात से निवर्तेगा वह पण्डित कहा जायगा ॥ ८ ॥ श्रुत चारित्र रूप धर्म का पारगामी तथा आरंभ से अत्यंत दूर रहनेवाला ही साधु है. और ऐसा नहीं करनेवाला ममत्ववान मरण समय में शोक करता हुवा दुर्गति में जाता है परंतु स्वतः का धन धान्य स्वजनादिक परिग्रह नष्ट हुवा फिर मिलता नहीं है.॥९॥ वह धन धान्यादिक परिग्रह इस लोक में दुःख देनेवाला है, वैसे ही परभव में दुःख का करनेवाला है, और वह अनित्य अशाश्वत है, ऐसा जानकर कोन गृहवास में रहेगा ॥ १० ॥ संसारी जीवों को भाव कीचड का

सहे] ॥ ५ ॥ प० प्रज्ञामें स० पूर्ण (स० समर्थ) स० सदैव ज० यत्नावंत स० समता में ध० धर्म उ० कहै मु० साधु सु० सूक्ष्म स० सदैव अ० अविराधक णो० नहीं कु० कोपे णो० नहीं मा० मानी मा० साधु (६) व० बहुत ज० मनुष्य को ण० नमाने वाला सं० संवृत्तः स० सर्व अर्थ से ण० मनुष्य अ० अनिश्रित ह० द्रह जैसा स० सदैव अ० निर्मल ध० धर्म पा० प्रगट अ० करे का० काश्यपका (७) व०

सयेत्ति) ॥५॥ पण्ण समत्ते (समत्थे) सया जए । समता धम्म मुदाहरे मुणी ॥ सुहमे उ सया अलूसए । णो कुज्झे णो माणी माहणे ॥ ६ ॥ बहुजणणमणंसि संवुडो । सव्वट्ठेहिं णरे आणिस्सिए ॥ हर एव सया अणाविले । धम्मं पादुरकासी कासवं॥७॥

हुवा या खंधक मुनि की तरह सर्वथा मरायाहुवा मुनि समता मार्ग में विचरे ॥ ५ ॥ संपूर्ण प्रज्ञावान (प्रश्नादिक के उत्तर देने में समर्थ) तथा सदाकाल कषायादिक को जीतने में समर्थ मुनि समभाव से अहिंसा लक्षण युक्त धर्म कहे. और सूक्ष्म जो असंयम उस में अविराधक मुनि कदापि क्रोध करे नहीं, वैसे ही किसी से पूजाया हुवा मान भी करे नहीं ॥ ६ ॥ जैसे द्रह सदाकाल स्वच्छ पानी से भराहुवा रहता है, और अनेक जीवों के रहने पर भी खराब नहीं होता है, वैसे ही अनेक जनों से प्रशंसा पायाहुवा, धर्म में समाधिवंत, सर्व बाह्याभ्यन्तर धन धान्यादि में अनासक्त मुनि श्री महावीर स्वामी निर्दिष्ट धर्म प्रकाशे ॥ ७ ॥ पृथक् २ संसार में आश्रित बहुत पृथिव्यादि प्राणि को सुख प्रिय है ऐसा जानकर जो साधु प्राणि

का पे० नोकर सि० होवे जे० जो मो० साधु पदमें उ० उपस्थित णो० नहीं ल० लज्जापावे स० समता धर्म स० सदा आ० आचरे (३) स० सामायिकादि अ० कोइ भी सं० संयम में सं० शुद्ध स० साधु प० प्रवर्ते जे० जो आ० जाव जीव स० समाधि से द० मुक्ति गमन योग्य का० काल अ० किया पं० पण्डित ॥ ४ ॥ दू० मोक्ष अ० आलोच कर मु० साधु ती० गत ध० स्वभाव अ० अनागत त० तैसे पु० स्पर्शाया प० कठोर मा० साधु अ० अपि ह० मराया हुवा स० समता में री० विचरे [स० समता से अ०

अणायगे सिया । जेविय पेसग पेसए सिया ॥ जे मोण पयं उवाट्ठिए । णो लज्जे समयं सयायरे ॥ ३ ॥ समअण्णयरम्मि संजमे । संसुद्धे समणे परिव्वए ॥ जे आवकहा समाहिए । दविए कालमकासि पंडिए ॥ ४ ॥ दूरं अणुपस्सिया मुणी । तीतं धम्म मणागयं तहा ॥ पुट्ठे परुसेहिं माहणे । अविहण्णू समयंसि रीयइ ॥ (समयाहिया-

होवे परंतु दीक्षा ग्रहण किये बाद लज्जा नहीं रखना अर्थात् आभिमान छोड कर परस्पर प्रतिवंदनादिक सर्व क्रिया करना. यदि चक्रवर्ति दीक्षा लेवे तो उनको भी पूर्व दीक्षित अपना कर्मकरकेभी वंदना करना. इस तरह सदैव समताभाव से संयम आदरना ॥ ३ ॥ इस तरह सामायक छेदोपस्थपनीयादि संयम में जावजीव तक शुद्ध साधु विचरे, या तो आत्मज्ञान सहित शुभ अध्यवसाय में काल करे, वह ही पंडित कहा जाता है ॥ ४ ॥ सम्यग् धर्म विना मोक्ष नहीं होता ऐसा विचार कर, और जीव का अतीतकाल तथा अनागत काल का स्वभाव को जानकर साधु मद करे नहीं. वैसे ही कठोर वचन तथा दंडादिक से स्पर्शाया

त० त्वचा सं० अपनी ज० सजता है से० यह र० रज इ० ऐसे सं० जानकर मु० साधु ण० नहीं म० मदकरे गो० गोत्रादि से मा० साधु (जे० जो वि० विद्वान्) अ० अथ अ० अश्रेयस्कर्ता अ० दूसरे की इं० निन्दा (१) जे० जो प० पराभव करता है प० दूसरा ज० मनुष्य का सं० संसार में प० परिभ्रमण करता है म० बहुत काल (ची० बहुत काल) अ० अथवा इं० निन्दा पा० पापिनी इ० ऐसा सं० जान कर मु० साधु ण० नहीं म० मदकरे ॥ २ ॥ जे० जेकोइ अ० अनायक सि० होवे जे० जेकोइ पे० नोकर

तय सं च जहाइ सेरयं। इति संखाय मुणी ण मज्जइ ॥ गोयन्नतरेण माहणे (जे विउ त्ति) अहसेयकरी अन्नेसि इंखणी ॥ १ ॥ जे परभवइ परं जणं। संसारे परिवत्तइ महं (चीरं) ॥ अदु इंखणिया उ पाविया। इति संखाय मुणी ण मज्जइ ॥२॥ जे यावि

जैसे सर्प अपनी त्वचा परिहरने योग्य जानकर परिहरता है वैसे ही मुनि को कर्म रूपी रज परिहरना. इस तरह कषाय का अभाव से कर्म का अभाव होता है ऐसा जानकर साधु को गोत्रादि आठ प्रकार का मद करना नहीं. वैसे ही अन्य की निंदा अश्रेयकारिनी है ऐसा जानकर परकी निन्दा करना नहीं ॥ १ ॥ जो कोइ मनुष्य अन्य की निन्दा करता है वह संसार में बहुत कालतक परिभ्रमण करता है, इस लिये निन्दा अधोगति में लेजानेवाली पापिनी है ऐसा जान साधु मद न करे अर्थात् मैं उत्तम हूं, और अमुक मेरे से हीन है ॥ २ ॥ चाहे कोइ नायक रहित [चक्रवर्त्यादिक] होवे अथवा कोइ नोकर का नोकर

त० इसलिये द० मोक्षार्थी इ० विचारो पं० पंडित पा० पापसे नि० निवर्ते अ० अति शीतल व० विनयवंत वी० वीर पुरुष म० दीर्घ रस्ते से सि० मुक्तिमार्ग णे० न्याय मार्ग धु० ध्रुव स्थान ॥ २१ ॥ वे० वैतालीय म० मार्ग आ० आया हुवा म० मन व० वचन का० कायासे सं० संवरी चि० छोडकर वि० धन णा० ज्ञाति आ० आरंभ सु० अच्छा संवरी च० विचरे त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २२ ॥ *

म्हा दवि इक्ख पंडिए । पावाओ विरते भिणिव्वुडे ॥ पणए वीर महाविहिं । सिद्धि पहं णेआउयं धुवं ॥ २१ ॥ वेयालियमग्ग मागओ । मणवयकाएण संवुडो ॥ चिच्चा वित्तं च णायउ । आरंभं च सुसंवुडे चरेज्जासि त्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति वेयालिय ज्झयणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो ॥२॥१॥ * *

उक्त बोध से मोहपाश में फसनेवाला की विषमगति होती है ऐसा हे पण्डित पुरुष? तुम जानो. पाप से निवर्तनेवाले, क्रोध से शान्त होनेवाले, विनयवंत, तथा वीर पुरुष को शाश्वत, न्यायवाला महान् मोक्ष मार्ग में प्रवर्तना ॥ २१ ॥ कर्म विदारने का मार्ग आया हुवा जानकर मन वचन और काया से संवर पालनेवाला धन, धान्य, ज्ञाति और आरंभ को छोड कर अच्छी तरह संयम पाले ऐसा श्री सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने महावीर देव की पास से सुना है वैसा ही कहता हूं. यह वैतालिय नामक द्वितीय अध्ययन का प्रथम उद्देशा पूर्ण हुवा. इस उद्देशा में बाह्य द्रव्य स्वजन तथा आरंभ का त्याग कहा अब दूसरा उद्देशा में मान का परिहार कहते हैं. * * *

म न० नहीं अ० वांच्छे णो० नहीं ल० पावे ण० नहीं सं० स्थापसके ॥ १८ ॥ से० शिक्षादे म० ममत्व वन्त मा० माता पि० पिता सु० पुत्र भा० स्त्री पो० पोषणकरो पा० देखो तु० तुम लो० लोक प० दूसरा ज० जैसे पो० पोषता हैं ॥ १९ ॥ अ० कोइक अ० अन्य में मु० मूर्च्छित मो० मोह में जं० जावे न० मनुष्य अ० असंवरी वि० असंयम वि० असंयति से गा० ग्रहे ते० वे पा० पापमें पु० फिर प० धीठ ॥ २० ॥

जाहिण बंधिओ घरं ॥ जइ जीविअं नावकंखए । णो लब्भंति ण संठवित्तए ॥ १८ ॥ सेहंतिय णं ममाइणो । माया पियाय सुयाय भारिया ॥ पोसाहिण पासओ तुमं लोगपरंपि जहासि पोसणो ॥ १९ ॥ अण्णे अण्णेहिं मुच्छिया । मोहं जंति णरा असंवुडा ॥ विसमं विसमेहिं गाहिया । ते पावेहिं पुणो पगब्भिया ॥ २० ॥ त-

घर लेजावे. ऐसा अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग सहन करे परंतु असंयम जीवितव्य की वांच्छा करे नहीं वैसे ही वे स्वजनादि उन को न तो वश कर सके और न गृहवास में रख सके ॥ १८ ॥ ममत्ववान् माता, पिता, सुत और भार्या साधु को ऐसा समझावे कि अहो मुनि! हम तेरा वियोग से अत्यंत दुःखी हैं इस लिये हम को दुःखी देख कर हमारा पोषण कर. क्यों कि तू सूक्ष्म दृष्टिवाला है इस लिये पोषण कर. माता पिता का पोषण नहीं करनेवाला इस लोक और परलोक दोनों से भ्रष्ट होता है ॥ १९ ॥ कोइ असंवरी शिथिलाचारी माता पितादिक में मूर्च्छित हो कर मोह को प्राप्त होता है अर्थात् अच्छा अनुष्ठान को त्यज देता है. और वह असंयम में गृद्ध होता हुवा पाप कर्म से लज्जित नहीं होता है॥ २० ॥

धानवंत क० कर्म ख० खपावे त० तपस्वी मा० महात्मा ॥ १५ ॥ उ० सावधान हुवे अ० साधु ए० ऐषणा ये स० साधु ठा० स्थानस्थित त० तपस्वी ह० बालक बु० वृद्ध प० मार्थे अ० आपि सु० श्रम पामे ण० नहीं तं० उसे ल० प्राप्त करे ज० जन ॥१६॥ ज० यदि क० करुणा जनक का० करे ज० यादि रो० रुद्-न करे पु० पुत्रार्थ द० मोक्षार्थी भि० साधु स० सावधान णो० नहीं ल० पावे ण० नहीं सं० स्थाप सके ॥ १७ ॥ ज० यादि का० काम भोग ला० कहे ज० यादि जा० लेजावे बं० बांधकर ज० यादि जी० असंय

दविओवहाणवं । कम्मं खवइ तवस्सिमाहणे ॥ १५ ॥ उट्ठिय मणगार मेसणं । स-मणं ठाणट्ठियं तवस्सिणं ॥ डहरा बुड्ढाय पत्थए । अवि सुस्से ण य तं लभेजणा ॥ १६ ॥ जइ कालुणियाणि कासिया । जइ रोयंति य पुत्तकारणे ॥ दवियं भिक्खुं समुट्ठियं । णो लब्भंति ण संठवित्तए ॥ १७ ॥ जइविय कामेहिं लाविया । जइणं

दूर कर सकते हैं ॥ १५ ॥ संयम स्थान में रहाहुवा अणगार तपस्वी साधु को बालक, पुत्रादि तथा वृद्ध, माता पितादि आकर कहे कि हमारे पोषण करनेवाला तुम्हारा शिवाय अन्य कोई नहीं है. ऐसे वचन बोलते बोलते वे श्रमित हो जावे परंतु वे स्वजनादि साधु को अपने वश में कर सके नहीं ॥ १६ ॥ जो कि वे माता पितादिक साधु की समीप आकर करुणा जनक शब्दों बोले, अथवा पुत्र के लिये रुदन करे तो भी वे उन मुक्ति गमन योग्य साधु को अपने वश में नहीं कर सके, वैसे ही गृहवास में स्थापित नहीं कर सके. ॥ १७ ॥ साधु को वे स्वजनादि काम भोगों की लालचसे लोभावे अथवा तो उन को बंधनादि से बांधकर

मोह में जं० जाते हैं न० मनुष्य अ० असंवरी ॥ १० ॥ ज० यत्नासे वि० विचरे जो० जोग से अ० सूक्ष्म पा० प्राणी पं० रस्ते मे दु० दुस्तर हैं, अ० हितशिक्षा में प० चले वी० वीर स० सम्यक् प० कहा ॥ ११ ॥ नि० विरत वी० वीर स० सावधान हुवे, को० क्रोध का० कातरी (माया) आदि को पी० पीसने वाले पा० प्राणी को ण० नहीं ह० मारे न० सर्वथा पा० पापसे वि० विरत अ० परम शीतल ॥ १२ ॥

घे ॥ सत्ता इह काम मुच्छिया । मोहं जंति नरा असंवुडा ॥ १० ॥ जययं विहराहि जोगवं । अणुपाणा पंथा दुरुत्तरा ॥ अणुसासण मेव पक्कमे । वीरेहिं सम्मं पवेइयं ॥ ११ ॥ विरया वीरा समुट्ठिया । कोह कायरियाइ पीसणा ॥ पाणे ण हणंति सव्व-सो । पावाओ विरिया अभिनिव्वुडा ॥१२॥ णवि ता अहमेव लुप्पए। लुप्पंति लोयंसि

हुवे काम भोग में मूर्च्छित, तथा संवर रहित मनुष्य हिताहित नहीं जानते हैं ॥ १० ॥ अब क्या करना सो कहते हैं. यतनासे समिति पूर्वक विचरना. परंतु सूक्ष्म प्राणीवाले मार्ग को उलंघना बहुत कठीन है. इस लिये सूत्र में जो जो अनुशासन है उस अनुसार यतनासे विचरना ऐसा श्री वीर भगवान का कथन है. ॥ ११ ॥ श्री वीर प्रभु हिंसादि पाप कर्म से निवर्तनेवाले, कर्म को छेदनेवाले, सम्यक् आचार में सावधान, क्रोध, मान, माया और लोभ का निकंदन करनेवाले, किसी प्रकार से प्राणी की घात नहीं करनेवाले, सावद्यअनुष्ठान से निवर्तनेवाले, तथा क्रोधादिक उपशम से शीतल बने हुवे हैं ॥ १२ ॥ इस लोक में शीत-

पा० देखकर वि० विवेक उ० सावद्य अ० नहीं तिरा इ० यहां भा० कहे धु० मोक्षका उपाय णा० नजाणे आ० यह भव कु० कहां से प० परभव वे० बीच में क० कर्म से कि० दुःखी होवे ॥८॥ ज० यद्यपि णि० नग्न कि० कृश च० विचरे, ज० यद्यपि, भुं० भोगवे मा० मास२ खमणके अंतमें जे०जो इ० यहां मा० कपट मि० मूर्च्छित आ० आगे ग० गर्भ में अं० अनंत वक्त ॥ ९ ॥ पु० पुरुष र० निवर्तो पा० पाप कर्म से प० पल्योपमांत म० मनुष्य का जी० जीवितव्य स० आशक्त इ० यहां का० काम भोग मे मु० मूर्च्छित मो०

अविवित्ति इह भासइ धुवं ॥ णाहिसि आरं कओ परं । वेहासे कम्मोहिं किच्चति ॥८॥

जइ वि य णिगणे किसे चरे । जइ वि य भुंजिय मासमंतसो ॥ जे इह मायावि मिज्जइ

। आगंतागब्भायणंतसो ॥ ९ ॥ पुरिसो रम पावकम्मुणा । पलियंतं मणुयाण जीवि

करके सम्यक् ज्ञान से रहित, मोक्ष का उपाय नहीं जानता हुवा कहे कि हमारा दर्शन में ही मोक्ष की प्राप्ति होती है वह साधु इस लोक का सुधारा न कर सका; तो परलोक का सुधारा कहांसे कर सके अर्थात् अंतराल में ही कर्म से पीडाता रहे ॥ ८ ॥ बाह्य परिग्रहत्यागी, कृश, मास २ खमण का तप करनेवाला साधु भी जो माया कपट सेवे तो आगामिक काले अनंतागर्भादिक दुःख पामे ॥ ९ ॥ अहो मनुष्य ! अब पाप कर्म से शीघ्र ही निवर्तो. क्यों कि मनुष्य का आयुष्य पल्योपमांत है. वैसे ही मोह रूपी पंक में खुते

ठा० स्थानसे ते० वे च०भरते हैं दु० दुःखित ॥५॥ का०काममें सं० परिचय में गि० गृद्ध क०कर्म सहने वाले का० समय से जं०जीव ता०तालफल ज०जैसे ब०बन्धन से चु०छुटे ए०ऐसे आ० आयुष्य क्षयमें तु० तूटताहै ॥ ६ ॥ जे० जो दि० अपि ब० बहूसूत्री सि० होवे ध० धर्मी मा० ब्राह्मण भि० साधु सि० होवे अ० कपट क० कृत्य से मु० मूर्च्छित ति० तीव्र से० वे क० कर्म से कि दुःखी होवे. ॥ ७ ॥ अ० अब

सिवा ॥ राया नर सेट्ठि माहणा । ठाणा ते वि चयंति दुक्खिया ॥ ५ ॥ कामेहिं य संथवेहि य गिद्धा । कम्मसहा कालेण जंतवो ॥ ताले जह बंधणच्चुए । एवं आउक्खयंमि तुट्टति ॥६॥ जे यावि बहुस्सुए सिया । धम्मियमाहणभिक्खुए सिया ॥ अभिणूम कडेहिं मुच्छिए । तिव्वं से कम्मेहिं किच्चति ॥ ७ ॥ अह पास विवेग मुट्ठिए ॥

॥ ५ ॥ जैसे तालवृक्ष का फल बंधन छोडने पर अकस्मात् नीचे गिरजाता है वैसे ही काम भोग में तथा कुटुम्ब के परिचयमें आसक्त जीवों आयुष्य का क्षय होने से तूट जाते हैं. और जब उसका विपाक आवे तब उन को ही उस का फल भोगना पडता है; परंतु वे स्वजनादि उन को दुःख से बचानेवाले नहीं हैं ॥ ६ ॥ जो कोइ शास्त्र के पारगामी धर्म के करनेवाले, ब्राह्मण तथा भिक्षुक होवे और वे माया से कराये हुवे सद्-सद् कर्मों में मूर्च्छित होवे तो वे भी उस कर्मों से बहुत दुःखी होते हैं ॥ ७ ॥ जो साधु परिग्रह का त्याग

वे ए० ऐसे आ० आयुष्य भी क्षयमें तु० टूटता है (२) मा० मातासे पि० पितासे लु० लुप्त होताहै नो० नहीं सु० सुलभ सु० सुगति पे० परलोक में ए० यह भ० भयको पे० देख आ० आरंभ से वि० निवर्ते सु० सुव्रति (३) ज० यदि ज० जगत में पु० अलग २ ज० स्थान क० कर्म में लु० लुप्त होते हैं पा० प्राणी स० स्वयं क० कृत्यमें गा० अवगाहे णो० नहीं त० उस से मु० छुटे अ० विनास्पर्शे ॥ ४ ॥ दे० देव गं० गंधर्व र० राक्षस अ० भवनपति भू० पशुआदि सि० सर्प रा० राजा न० मनुष्य से० श्रेष्ठी मा० ब्राह्मण

वा ॥ सेणे जह वट्टयं हरे । एव माउक्खयंमि तुट्टइ ॥ २ ॥ मायाहिं पियाहिं लुप्प-
इ । नो सुलहा सुगइ य पेच्चओ ॥ एयाइं भयाइं पेहिया । आरंभा विरमेज्ज सुव्वए
॥ ६ ॥ जमिणं जगती पुढो जगा । कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ॥ सयमेव कडेहिं गा
हइ । णो तस्स मुच्चे अपुट्ठयं ॥ ४ ॥ देवा गंधव्व रक्खसा । असुरा भूमिचरा सिरि

॥२॥ माता पिता के मोह में बधाया हुवा जीव को परभव में सुगति सुलभ नहीं है, इस लिये ऐसा मोहादिक भय को जानकर सुव्रति मुनि आरंभ से निवर्ते ॥ ३ ॥ यदि वे आरंभ से निवर्ते नहीं; तो सावद्यानुष्ठान से किये हुवे कर्मों से नरकादि स्थान में भ्रमण कर, और अपने किये हुवे कर्मों से नरकादि दुःख का संचय करे परंतु विना भोगवे कदापि इस से मुक्त नहीं हो सके ॥ ४ ॥ देव, गंधर्व, राक्षस, असुर, भूमिचर, सर्प, राजा, मनुष्य, श्रेष्ठी और ब्राह्मण ये सब दुःखी होते हुवे अपने स्थान को छोड़ते हैं.

वैतालीय नामकं द्वितीय मध्ययनम्

सं० समजो किं० क्यों न० नहीं बु० समजते हो सं० बोधी ख० निश्चय पे० परलोक में दु० दुर्लभ णो० नहीं हू० निश्चय अ० व्यतीतरात्रि नो० नहीं सु० सुलभ पु०पुनरपि जी० जीवितव्य (१) ड० बालक बु० वृद्ध पा० देखो ग० गर्भस्थभी चि० मरते हैं मा० मनुष्य से० सींचाणो ज० जैसे व० वटेर ह० लेजा-

संबुज्झह किं न बुज्झह । संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ॥ णो हू वणमंति राइओ । नो-
सुलभं पुणरवि जीवियं ॥ १ ॥ डहरा बुड्ढाय पासह । गब्भत्थावि चियंति माण-

भरतेश्वर से तिरस्कार पाये हुवे ऋषभ देव के अठानु पुत्र को श्री आदीश्वर भगवान, या भव्य जनों को महावीर स्वामी उपदेश करते हैं, कि अहो भव्य ! तुम समझो. ऐसा अवसर प्राप्त कर क्यों नहीं समझते हो. इस भव में समझकर धर्म नहीं करोगे, तो परभव में सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है. जैसे व्यतीत हुइ रात्रि फिर नहीं आती है, वैसे ही यौवनादिक पदार्थ गये हुवे हाथ नहीं आते हैं. और संयम रूप जीवितव्य भी सुलभ नहीं है ॥ १ ॥ जैसे शिकरा [बाज] वटेर पक्षी को अकस्मात् उठाजाता है वैसे ही काल मनुष्यों को अपनी २ अवस्था में आजाता है. कितनेक तो बाल्यावस्था में ही विनाश होजाते हैं, कितनेक वृद्धावस्था में, और कितनेक गर्भ में रहे हुवे विनाश को प्राप्त होते हैं. इस तरह आयुष्य का क्षय होता है.

अशिथिल भि० साधु अ० मोक्ष न होवे वहां तक प० प्रवर्ते त्ति० ऐसा बे० कहता हूं. ॥ १३ ॥

सामिएउ सया साहू । पंचसंवरसंवुडे ॥ सिएहि असिए भिक्खू । अमोक्खाय परिव्व एज्जासि त्तिबेमि ॥ १३ ॥ इति ससमयपरसमय मज्झयणस्स चउत्थोद्देसो सम्मत्तो ॥

इति ससमयपरसमयणामं पढममज्झयणं सम्मत्तं ॥१॥ *

साधु जहां लग मोक्ष नहीं होवे वहां लग संयमपाले ऐसा मैं कहता हूं. यह प्रथम अध्ययन का चतुर्थ उद्देशा पूर्ण हुवा. और स्वसमय परसमय नामक प्रथम अध्ययन भी संपूर्ण हुवा. इस अध्ययन में स्वसमय का गुण और परसमय का दोष कहा. उसे जानकर जैसे कर्म त्रुटे वैसे यत्न करे. इस लिये आगे दूसरा वैतालीय नामक अध्ययन कहते हैं. * *
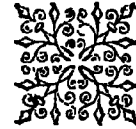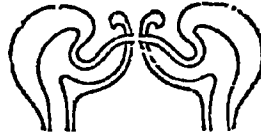
तना वि० जाने (१०) वु० वशवर्ती य० और वि० विगत गे०गृद्धि आ० आदान स० पाले च० विचरना आ० आसन से० शय्या में भ० भात पानी अं० शुद्ध आहार गवेषे (११) ए० इन ति० तीन ठा० स्थान में सं० साधु स० निरंतर मु० साधु उ० (उत्कर्ष) मान ज० ज्वाला (क्रोध) णू० माया म० लोभ वि० दूरकरे [१२] स० समिति से स० सदा सा० साधु पं० पांच सं० संवर सं० संवृत सि० शिथिल में अ०

सासमयं चेव । एतावत्तं वियाणिया ॥ १० ॥ वुसिए य विगयगेही । आयाणं सरक्खए ॥ चरिआसणसेज्जासु । भत्तापाणे अ अंतसो ॥ ११ ॥ एतेहिं तिहिं ठाणेहिं । संजए सततं मुणी ॥ उक्कसं जलणं णूमं । मज्झत्थं च विगिंचए ॥ १२॥

उन वादियोंका वचन सत्य नहीं प्रतीत होता हैं. इसलिये किसी जीवकी घात करना नहीं क्योंकि सबको दुःख अप्रिय है ॥ ९ ॥ ज्ञानि पुरुषों का यह ही सार है कि किसी प्राणी की घात नहीं करना. वैसे ही अहिंसा और समता को जानना अर्थात् जैसे मुझे मरण और दुःख अप्रिय है, वैसे ही सर्व प्राणी को दुःख अप्रिय है ऐसा जानकर किसी जीव की घात करना नहीं. उपलक्षण से असत्य बोलना नहीं, अदत्त ग्रहण करना नहीं वैसे ही परिग्रह रखना नहीं ॥ १० ॥ ये पूर्वोक्त मूल गुण कहे अब उत्तर गुण कहते हैं. आहारादिक की लोलुपता रहित तथा दशविध यति धर्म में रहाहुवा ज्ञान दर्शन तथा चारित्र रूप आदान की रक्षा करे और चर्या, आसन, शैय्या और भक्त पान में सम्यक् प्रकार से उपयोग सहित प्रवर्ते ॥११॥ चर्या, आसन, और शैय्या ये तीन स्थानक में निरन्तर संयमवन्त होता हुवा क्रोध, मान, माया और लोभ को त्याग करे ॥ १२ ॥ पंच संवर करके संवरा हुवा, समिति युक्त, तथा गृहस्थ में रहने पर भी अबद्ध

पा० प्राणी चि० रहते हैं अ० अथवा था० स्थावर प० पर्याय अ० हैं से० वे अं० सरल जे० जिससे ते० वे त० त्रस था० स्थावर (८) उ० औदारिक ज० जीवका जो० जोग वि० विपरीत प० पावे स० सर्व को अ० अप्रिय दु० दुःख अ० इसलिये स० सर्व को अ० मतमारो (९) ए० यह खु० निश्चय ना० ज्ञानी का सा० सार ज० जो न० नहीं हिं० मारे किं० किंचित् अ० दया स० समता चे० निश्चय ए० इ-

णा । चिठंति अदुवा थावरा ॥ परियाए अत्थि से अंजू । जेण ते तसथावरा ॥ ८ ॥ उरालं जगतो जोगं । विवज्जासं पलिंतिय ॥ सव्वे अक्कंतदुक्खाय । अओ सव्वे अहिंसिता ॥ ९ ॥ एवं खु नाणिणो सारं । जन्न हिंसइ किंचणं ॥ अहिं-

हैं सर्वत्र + प्रमाण सहित जाने परंतु अप्रमाण जाने नहीं ॥ ७ ॥ अब शास्त्रकार उस का उत्तर देते हुवे कहते हैं कि:—यदि अन्य दर्शनी के मतानुसार " जो जैसा वह वैसा " परंतु अन्वय परावर्त होवे नहीं ऐसा मानाजाय तो इस संसार में दान, अध्ययन, जप, तप, नियमादिक का कुच्छ भी फल नहीं होना चाहिये परंतु संसार द्विइन्द्रियादि त्रस और पृथिव्यादि स्थावर रहे हुवे दिखते हैं वे अपने २ कर्मानुसार से त्रस के स्थावर और स्थावर के त्रस होते हैं ॥ ८ ॥ और भी औदारिक शरीरवाले प्राणी अर्बुद, कलल, पेसी इत्यादि अवस्थाओं में से बाल, कुमार, तरुण, और वृद्धावस्था ऐसी भिन्न २ अवस्था पाते हैं इस से

+ दैवी सहस्र वर्ष तक ब्रह्मा सोते हैं उस वक्ततक कुच्छ भी नहीं देखे. वैसे ही उतना समय जागृत होवे जब देखे.

कितनेक आ० कहा वि०विपरीत प०बुद्धि से सं०उत्पन्न हुआ अ०अन्योक्त त० तदानुगत [५] अ० अनंत नि० नित्य लो० लोक सा० शाश्वत ण० नहीं वि० विनाश होवे अं० अन्त सहित णि० निस लो० लोक इ० ऐसा धी० धीर पा० देखता है [६] अ० अपरिमाण वि० जानता है इ० यहां ए० कितनेक आ० कहा स० सर्वत्र स० सपरिमाण इ० ऐसा धी० धीर पुरुष पा० देखताहै (७) जे० जो के० कोइ त० त्रस

भूयं ॥ अन्नउत्तं तयाणुयं ॥ ५ ॥ अणंते निइए लोए । सासए ण विणस्सति ॥ अंतवं णिइए लोए । इति धीरोति पासइ ॥ ६ ॥ अपरिमाणं वियाणाइ । इह मेगे सि माहियं ॥ सवत्थ सपरिमाणं । इति धीरोति पासइ ॥ ७ ॥ जे केइ तसा पा

अनुसार प्रवर्ताया हुआ लोकवादको सुनकर विचारना और जिनमति से विरुद्ध को परिहरना ॥ ५ ॥ वे कहते हैं कि लोक अनंत, नित्य, शाश्वत है, उसका विनाश नहीं होता है. वैसे ही वह लोक सप्त द्वीप सप्त समुद्र जितना है ऐसा * व्यासादिक धीर पुरुष देखते हैं ॥६॥ क्षेत्र से तथा काल से जिसका प्रमाण नहीं है, ऐसी अप्रमाण वस्तुको जाने, परंतु वह सर्वज्ञ नहीं है ऐसा कितनेक के मतमें कहा हुआहै और कितनेक ऐसा कहते

---

* व्यासादिक धीर पुरुषों मानते हैं कि जो पुरुष है वह आगामिक भव में पुरुष ही रहेगा और जो स्त्री है वह आगामिक काल में स्त्री ही रहेगी इस लिये लोक नित्य है.

अ० अनुत्कर्षवान अ० अप्रलीन म० मध्यस्थ भाव से मु० साधु जा० प्रवर्ते (२) स० परिग्रह युक्त च० और सा० आरंभ युक्त इ० यहां ए० कितनेक आ० कहा अ० निष्परिग्रही अ० निरारंभी भि० साधु ता० शरण प० प्रवर्ते [३] क० किया घा० आहार ए० गवेषे वि० विज्ञ द० दिया ए० एषणा में च० चले अ० अगृद्ध वि० रहित अ० अपमान को प० दूरकरे (४) लो० लोकवाद णि० सुने इ० यहां ए०

सुं ण मुच्छए ॥ अणुक्कस्से अप्पलीणे । मज्झेण मुणी जावए ॥ २ ॥ सपरिग्गहा य सारंभा । इह मेगेसि माहियं ॥ अपरिग्गहा अणारंभा । भिक्खू ताणं परिव्वए ॥ ३ ॥ कडेसु घास मेसेज्जा । विऊ दत्तेसणं चरे ॥ अगिद्धो विप्पमुक्को । अउमाणं परिवज्जए ॥ ॥ ४ लोगवायं णिसामिज्जा । इह मेगेसि माहियं ॥ विवरीय पण्णसं

प्रशंसा नहीं करता हुवा रागद्वेष रहित विचरना ॥ २ ॥ परिग्रहवन्त तथा आरंभी पुरुषों ऐसे कहते हैं कि तपस्यादिक तथा मुंड मुंडनादिक करना व्यर्थ है किन्तु गुरुभक्ति के प्रसाद से एक अक्षरमात्रका ज्ञान होजायतो मोक्ष होता है, और जो ये कायक्लेश करते हैं वह सब अप्रमाण है ऐसा कहने वाला साधु किसको त्राण नहीं होसकता हैं परंतु निष्परिग्रही और अनारंभी साधु सर्व जीवोंको त्राण देता हुवा विचरता है ॥३॥ गृहस्थने अपने लिये जो आहार बनाया होवे उस में से साधु गवेषणा करे और उसका दिया हुवा आहर ग्रहण करता हुवा विचरे. वैसे ही वह साधु उसमें अगृद्ध, रागद्वेष रहित, तथा अपमान को सहन करता हुवा विचरे ॥ ४ ॥ विपरीत प्रज्ञासे उत्पन्न हुवा, अन्य अविवेकी पुरुष का कहा हुवा, और उस

उ० उपजते हैं ठा० स्थान आ० आसुरी कि० किल्विषी में त्ति० ऐसा वे० कहता हूं. (१६)

ए० इतने जि० जीताये हुवे भो० अहो न० नहीं स० शरण वा० अज्ञानी पं० पण्डितपना मा० मानने वाले (य० जहां वा० अज्ञानी व० नाश पावे) हि० छोडकर पु० पहिला सं० संयोग सि० होवे कि० कार्य उ० उपदेशक (१) तं० उसे भि० साधु प० जान करके वि० विज्ञानी ते० उनमें न० नहीं मु० मूच्छित होवे

इति ससमय परसमय मज्झयणस्स तइओद्देसो सम्मत्तो *

एते जिया भो न सरणं । बाला पंडिय माणिणो ॥ (यत्थ बाले वसीयाति) हिच्चाणं पुव्व संजोगं । सिया किच्चोवएसगा ॥ १ ॥ तं च भिक्खू परिण्णाय । वियं ते-

प्रथम अध्ययन का तृतीय उद्देशा पूर्ण हुवा. आगे भी उस की विशेष वक्तव्यता चलती है सो कहते हैं.

रागद्वेष से जीताये हुवे, और स्वतः को पण्डित माननेवाले, या अज्ञान में रहे हुवे पूर्वोक्त अज्ञानी परतीर्थिक किसी को शरण नहीं हो सकते हैं. क्यों कि वे धन धान्य स्वजनादि परिग्रह छोड कर हम प्रव्रजित हैं ऐसा कहते हैं. परंतु गृहस्थ के पचन पाचनादि कृत्यों का उपदेश में प्रवर्तते हैं इस लिये वे किसी को शरण नहीं होसकते हैं. ॥ १ ॥ संयति विद्वान साधु को ऐसे पाखण्डिलोकों को जानकर उन का परिचय करना नहीं. कदाचित् उन का संबंध मिलजाय तो मद करना नहीं वैसे ही उन की निन्दा तथा

अ० आरोग्य इ० यहां ए० कितनेक आ० कहते हैं सि० सिद्धिही पु० आगे कर स० आशय में ग० गृद्ध न० मनुष्य [१५] अ० संवर रहित अ० अनादि भ० परिभ्रमण करेंगे पु० वारंवार क० बहुतकाल

व पुरो काउं । सासए गढिया नरा ॥ १५ ॥ असंवुडा अणादीयं । भमिहिंति पु-
णो पुणो ॥ कप्पकाल मुवजंति । ठाणा आसुर किब्बिसिया त्तिबेमि ॥ १६ ॥

करते ही सिद्धि होती है परंतु अन्य अनुष्ठान से सिद्धि नहीं होती है. हमारा दर्शन में ही जो समस्त इन्द्रियों को वश करनेवाला होता है, वहही इस लोक में इच्छित कामभोग प्राप्त कर सकता है, और परभवमें मोक्ष को जाता है ॥ १४ ॥ कितनेक शैवपंथी कहते हैं कि यहां से जो शरीर का त्याग करके सिद्ध होते हैं वे सर्व शारीरिक मानसिक अनेक दुःखों से रहित होते हैं. वे अपने मत के कदाग्रही बन करके पामर पुरुष की मुवाफिक अपना अनुष्ठान से ही मुक्ति होती है ऐसा अंगीकार करते हैं ॥ १५ ॥ वे संवर रहित पाखण्डी लोकों अनादि संसार में परिभ्रमण करेंगे तथा वार २ नरकादिक का दुःख भोगवेंगे. कदाचित तप के प्रभाव से स्वर्गादि गति मिलजाय तो बहुत काल पर्यंत असुर कुमारादि स्थानक मे या किल्विषी-आदिक स्थानक में उत्पन्न होकर दुःख पावेंगे ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं कि जैसा मैं ने भगवान के मुखारविन्दसे सुना है वैसा ही तेरे प्रत्ये कहता हूं ॥ १६ ॥ यह स्वसमय परसमय नामक

पी वि० शुद्ध पानी ज० जैसे भु० फीर नि० रज रहित स० रज सहित त० तैसे (१२) ए० इतने वि० विचार करके मे० पण्डित बं० ब्रह्मचर्य में ण० नहीं ते० वे व० वसे पु० अलग २ पा० परवादिओं स० सर्व अ० वखानेनेवाले स० अपना २ [१३] रा० अपने २ में उ० सावधान हुवे सि० सिद्धि ए० ऐसे न० नहीं अ० अन्यथा अ० अहो इ० यहां ही व० वशवर्ती स० सर्व काम स० समर्पित (१४) सि० सिद्धा ते० वे

च्छा होइ अपावए ॥ वियडंबु जहा भुज्जो । नीरयं सरयं तहा ॥ १२ ॥ एताणु चीति मेधावी । बंभचेरे ण ते वसे ॥ पुढो पावाउया सव्वे । अक्खायारो सयं सयं ॥ १३ ॥ सए सए उवट्ठाणे । सिद्धिमेव न अन्नहा ॥ अहो इहेव वसवत्ती । सव्व-काम समप्पिए ॥ १४ ॥ सिद्धा य ते अरोगा य इह मेगेसि माहियं ॥ सिद्धिमे-

करते हैं. प्रथम आत्मा सकर्मक, फिर अकर्मक बन मुक्ति में जावे यह दूसरी राशि, और वहां कर्म को उपार्जन करके संसार में आवे यह तीसरी राशि ॥११॥ जैसे निर्मल जल रजादिक के संयोग से मलिन होता है और फिर वह ही जल शुद्ध निर्मल हो जाता है, वैसे ही मुक्ति के जीव मनुष्य भव में उत्पन्न होकर यम, नियम, संयम आदरकर पाप रहित निर्मल होजाते हैं ॥ १२ ॥ पूर्वोक्त कथन को आलोचकर पण्डित पुरुष विचार करे कि वे अपने २ दर्शन की प्रशंसा करनेवाले भिन्न२ दर्शनीयों शुद्ध संयम नहीं पाल सकते हैं. क्यों कि वे सकर्मी को निष्कर्मी मानते हैं इस लिये वे अज्ञानी है ॥१३॥ अपने २ मत में प्रवर्तते अपना २ ही अनुष्ठान

को अ० नहीं जानता हुवा क० कहां से ना० जाने सं० संवरको (१०) सु० शुद्ध अ० निष्पापी आ० आत्मा इ० यहां ए० कितनेक को आ० कहा पु० फीर कि० क्रीडा प्रदोष से सो० वह त० तहां अ० अपराध करे [११] इ० यहां सं० संवृतात्मा मु० साधु जा० उत्पन्न हुवा प० पिछे हो० होवे अ० अपा-

मजाणंता । कहं नायंति संवरं ॥ १० ॥ सुद्धे अपावए आया । इह मेगेसिं माहियं पुणो किड्डापदोसेणं । सो तत्थ अवरज्झइ ॥ ११ ॥ इह संवुडे मुणी जाए । प-

सदसदनुष्ठानसे ही दुःख की उत्पत्ति होती है परंतु ईश्वरादि से दुःख नहीं उत्पन्न होता है. ऐसा दुःख का कारण को जानना चाहिये. दुःख की उत्पत्ति के कारण को नहीं जाननेवाला उस का निवारण जो संयम है उस को कैसे जान सकेगा ? एतावता अतियत्न करने पर भी दुःख को दूर नहीं कर सकेगा, और संसार में अनंत कालतक परिभ्रमण करता रहेगा ॥ १० ॥ कोइ त्रिराशिक—गोशाला मतानुसारी कहते हैं कि आत्मा मनुष्य भव में शुद्ध पाप रहित होकर और मोक्ष में जाना है वहां × रागद्वेष करने से कर्मरूपी रज से मलिन होता है, जिस से फिर संसार में उत्पन्न होता है. इस तरह वे जीव की तीन राशि स्थापन

× उन लोको की मान्यता यह है कि मुक्ति में रहाहुवा जीव अपना शासनकी पूजा और अन्य शासन का पराभव जानकर राग करे, या अपना शासन की व्याघात से द्वेष करे; इस से आत्मा उज्वलवस्त्र की तरह शनैः २ मलीन होजावे.

आ० कहे अं० अंडेसे क० किया ज० जगत् अ० ब्रह्मा त० तत्र अ० किया अ० अजानता मु० मृषा व० वोले [८] स० स्वयं प० पर्याय लो० लोकको बू० कहे क० किया है त० तत्व ते० वे ण० नहीं वि० जानते हैं ण० नहीं वि० विनाश होता है क० कदापि (९) अ० असनोज्ञ स० उत्पत्ति दु० दुःख वि० जाने स० उत्पत्ति

माहणा समणा एगे । आह अंडकडे जगे ॥ असो तत्त मकासीय। अयाणंता मुसं व दे ॥ ८ ॥ सएहिं परियाएहिं । लोयं बूया कडेतिय ॥ तत्तं ते ण विजाणंति । ण विणासि कयाइवि ॥ ९ ॥ अमणुन्नसमुप्पायं । दुक्खमेव विजाणिया ॥ समुप्पाय

उस अण्डे को ब्रह्माने वनाया. इस तरह वे ब्राह्मणादिक नहीं जानते हुवे मृषा वकवाद करते हैं परंतु परमार्थ को तो जानते नहीं है×॥८॥ इसतरह वे पूर्वोक्त दर्शनी अपनी २ कल्पनाओंसे कहते हैं कि लोक अमुक प्रकारसे बना इत्यादि. परंतु लोकका कदापि विनाश नहीं होता है. जब लोक का विनाश नहीं है तब उसकी आदिभी नहीं है, और उसका अंतभी नहीं हैं, वैसेही उसका कोइ कर्त्ता भी नहीं है. ऐसा तत्त्वको वे नहीं जानते हैं॥९॥

× वे लोकों मानते हैं कि पहिले जगत् शून्य था उस समय ब्रह्माने पानी मांहे अण्डा उत्पन्न किया. जब वह अण्डा वडा हुवा २ व उस के दो टुकडे हुवे जिस में से अधो और ऊर्ध्व लोक बना, और उस में समस्त प्रजा उत्पन्न हुइ.

ईश्वरने क० किया लो० लोक प० प्रकृतिसे त० तथा अपर जी० जीवाजीव स० समुत्पन्न सु० सुख दु० दुःख स० सहित है [६] स० स्वयंभूने क० किया लो० लोक इ० ऐसा वु० कहाया हुवा म० महर्षिसे मा० मारसे सं० हुइ मा० माया ते० इसलिये लो० लोक अ० अशाश्वत (७) मा० ब्राह्मण स० साधु ए० कितनेक

तहावरे ॥ जीवाजीव समाउत्ते । सुह दुक्ख समन्निए ॥ ६ ॥ सयंभुणा कडे लोए । इति वुत्तं महेसिणा ॥ मारेण संथुया माया । तेण लोए असासए ॥ ७ ॥

समवस्था प्रकृति] ने लोक किया है अर्थात् स्वभाव से ही लोक उत्पन्न हुवा है जैसे मोर की पांख को किसने चित्रित की ? इक्षु को मिष्ट किसने बनाया ? यह सब स्वभाव से ही होता है. वैसे ही लोक भी स्वभाव से ही होता है. और इस में चराचर जीव अजीव तथा सुख दुःख रहे हुवे हैं. ॥ ६ ॥ स्वयंभू * ने लोक बनाया है, और यमने माया बनाइ जिस से लोक अशाश्वत है. ऐसा महर्षि कहते हैं. ॥ ७ ॥ कितनेक श्रमण ब्राह्मण कहते हैं कि यह चराचर जगत् अण्डे से बनाहुवा है और

* कितनेक लोकों की यह मान्यता है, कि पहिले विष्णु एक ही थे, उन की जगत् बनाने की इच्छा हुइ तब दूसरी शक्ति उत्पन्न हुइ, बाद में जगत् की सृष्टि हुइ. फिर ऐसा चिन्तवन किया कि इतनी जगत् सृष्टि का समावेश कहां होगा इस लिये यम को उत्पन्न किया; और यमने माया बनाइ जिस से लोक में रहे हुवे जीवों मरते हैं और इसी कारण से लोक अशाश्वत है.

दुःखी (३) ए० ऐसे स० साधु ए० कितनेक व० वर्तमान सु० सुखाभिलाषी म० मच्छ वे० वड घा० घात ए० जावे णं० अनंतवक्त (४) इ० इस से अ० अन्य अ० अज्ञानी इ० यहां ए० कितनेक को आ० कहा दे० देवोत्पन्न अ० यह लो० लोक बं० ब्रह्मोत्पन्न भी आ० अपर (५) ई०

त्थेहिं ते दुही ॥ ३ ॥ एवं तु समणा एगे । वट्टमाण सुहेसिणो ॥ मच्छावेसालिया चेव । घातमेस्संति णंतसो ॥ ४ ॥ इण मण्णं तु अण्णाणं । इह मेगेसिं आहियं ॥ देवउत्ते अयं लोए । बंभउत्तेति आवरे ॥ ५ ॥ ईसरेण कडे लोए । पहाणाइ

मांसार्थी वन प्राण रहित करते हैं. अर्थात् वह मत्स्य बहुत दुःखी होता हुवा मरण को प्राप्त होता है ॥२-३॥ ऐसे ही कितनेक वर्तमान सुख को गवेषनेवाले शाक्यादि श्रमण वैसालिया मत्स्यकी सदृश अनंत जन्म-मरण में घात को प्राप्त होवेंगे, अर्थात् अनन्त जन्म मरण करेंगे ॥ ४ ॥ सदोष आहार लेकर सुख मानने-वाले अज्ञानी से दूसरा अज्ञानी का मत बतलाते हैं. कितनेक अज्ञानी कहते हैं कि यह चराचर संसार को देवने उत्पन्न किया है. जैसे करसणी का बीज बोकर करसण उत्पन्न करे, ऐसे ही इस को उत्पन्न किया है. जब दूसरे कहते हैं कि इस लोक को ब्रह्माने उत्पन्न किया. ब्रह्मा "जगत्पितामह" इतिवचनात्॥ ५ ॥ कोइ कहते हैं कि इस को ईश्वरने किया है और दूसरे कहते हैं कि प्रधान [सत्व, रजस् और तमोगुण की

स० हजार गृरान्तर भुं० भोगवे दु० दोनों पक्ष चे० निश्चय से० सेवन करे (१) त० उसे अ० अजानता वि० विषम में अ० अकोविद म० मच्छ वे० वडा चे० निश्चय उ० पानीका अ० आवागम से (२) उ०पानी का प० प्रभाव से सु० सूके सि० शीघ्र त० उसमें ति० वह ढं० ढंक कं० काक आ० मांसार्थ त० वह दु०

॥ १ ॥ तमेव अवियाणंता, विसमंसि अकोविया, मच्छा वेसालिया चेव, उदगस्स भियागमे ॥२॥ उदगस्स पभावेणं । सुक्कं सिग्घं तामिं तिउ ॥ ढंकेहिय कंकेहिय आमिस-

आहार (१) सहस्रांतरित हुवा होवे तो भी साधु को भक्षण करना नहीं. यादि साधु उस आहारका भक्षण करे तो वह दोनों पक्ष का सेवनेवाला होता है. अर्थात् द्रव्य में तो दीक्षित है परंतु आधाकर्मी आहारका सेवन करने से गृहस्थ सदृश है ॥ १ ॥ उस आधाकर्मी आदि आहार के दोषों को नहीं जाननेवाला और अष्टप्रकार के कर्मबन्धमें अपण्डित; अर्थात् जीव को कर्मबंध या मोक्ष है, या नहीं, या किस तरह संसार समुद्र पार होसकता है उस को नहीं जाननेवाला, वैसालिक मत्स्य की मुवाफिक दुःख पाता है. जैसे वैसालिक मत्स्य समुद्र का पूर आने से समुद्र में से निकलकर नदी का मुख में आकर गिरता है, और पीछे जब पानी सुक जाता है तब कादव में खुंचाया हुवा उस दुःखी मत्स्य को ढंक जाती के पक्षी और कंक [कौवे]

(१) एक से दूसरा, तीसरा ऐसे सहस्र बरतक वह आहार गया होवे तो उसे सहस्रांतरित कहतेहैं.

अ० अनार्य सं० संसारसे पा० पारहोनेके कं० कांक्षी ते० वे सं० संसारमें अ० भ्रमण करते हैं त्ति० ऐसा बे० कहताहूं. * * *

जं० जो किं० किंचित् मात्र पू० पूतीकर्म स० श्रद्धावंत आ० आने वाले को इ० उद्देशकर किया

एवंतु समणा एगे॥ मिच्छादिट्ठी अणारिया ॥ संसारपारकंखी ते । संसारं अणुपरियट्टंति त्तिबेमि ॥ ३२ ॥ इति ससमयपरसमय मज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो

जं किंचिउ पूइकडं । सड्ढीमागंतु मीहियं ॥ सहस्संतरियं भुंजे । दुपक्खं चेव सेवइ ॥

वैठकर पार होने को वांच्छे अपितु वह पार नहीं होता हुवा वीच में ही डुवजाता है ॥ ३० ॥ ऐसे ही कितनेक शाक्यादि श्रमण, मिथ्यादृष्टि और अनार्य संसार को उत्तीर्ण होने को चाहते हैं परंतु वे संसार में ही परिभ्रमण करते हैं ॥ ३२ ॥ ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैं ने श्री महावीर देव से सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं. यह स्वसमय परसमय नामक प्रथम अध्ययन का द्वितीय उद्देशा पूर्ण हुवा आगे भी उस की प्ररूपणा करते हैं. * *

कोइ श्रद्धावंत गृहस्थ आनेवाले साधु के लिये (१) पूति कर्मवाला आहार बनावे और वह

(१) गृहस्थने एक आहार अपने लिये बनाया होवे और साथ में दूसरा आहार साधु के निमित्त बनाया होवे और उस उद्देशिक आहारका एककण गृहस्थ केलिये बनाया हुवा आहारमें पडजावेतो उस आहार को पूतिकर्मवाला आहार कहते हैं.

ज मतहं तेसिं । ण ते संवुडचारिणो ॥ २९ ॥ इच्चेयाहिं य दिट्ठीहिं । सातागारव णिस्सिया ॥ सरणंति मन्नमाणा । सेवंति पावगं जणा ॥ ३० ॥ जहा अस्साविणिं णावं । जाइअंधो दुरुहिया ॥ इच्छइ पारमागंतुं । अंतराय विसीयइ ॥ ३१ ॥

ण० नहोवे अ० निर्वद्य अ० असत्य ते० उनका ण० नहीं ते० वे सं० संवृताचारी (२९) इ० इत्यादि दि० मतवाले सा० सातागर्व में णि० आसक्त स० शरण को म० मानते हुवे से० सेवन करे पा० पापको ज० जन [३०] ज० जैसे अ० छिद्रवाली णा० नाव जा० जन्मान्ध दु० चडाहुवा इ० वांच्छे पा० पार-जाने को अं० वीचमें ही वि० डुबजावे (३१) ए० ऐसे स० साधु ए० कितनेक मि० मिथ्यादृष्टि

भाव की विशुद्धि होवे तो भाव की विशुद्धता से कर्म बंध नहीं होता है; और कर्म बंध नहीं होने से मोक्ष को प्राप्त करसकते हैं ॥ २७ ॥ जैसे कभी आपत्काल में पिता पुत्र का विनाश करके रागद्वेष रहित उसका मांस खाता है, वैसे ही संयती साधु रागद्वेष रहित मांसादिक खाते कर्म बंध से लेपाता नहीं है ॥ २८ ॥ यहां पर जो पुत्रपिता का दृष्टांत दिया है, वह योग्य नहीं है. क्यों कि जो मात्र मन से ही रागद्वेष करता है, उस का मन शुद्ध नहीं होता है. वैसे ही अशुद्ध मनवाला संवर में प्रवृत्ति करनेवाला नहीं होता है. इस लिये उन का जो मंतव्य है कि "केवल मन से जो रागद्वेष करता है उन को पाप नहीं लगता है" वह मिथ्या है ॥ २९ ॥ पूर्वोक्त दृष्टि को अंगीकार करके कितनेक सुखशीलिये मनुष्य अपने दर्शन को ही शरण भूत मानते हुवे पाप का सेवन करते हैं ॥ ३० ॥ जैसे किसी छिद्रवाली नावामें जन्मान्ध पुरुष

जे० जिस मे की० करे पा० पाप अ० अभिमुख पे० आदेश कर म० मनसे अ० अच्छा जाने [२६] ए० यह त० तीन अ० आदान जे० जिम से की० करे पा० पाप ए० ऐसे भा० भाव वि० विशुद्ध नि० निर्वाण अ० जावे (२७) पु० पुत्रको पि० पिता स० मारकर आ० खावे अ० असयंति भुं० भोगवते य० निश्चय मे० पण्डित क० कर्म से नो० नहीं वि० लेपावे (२८) म० मन मे जे० जो० प० द्वेषकरे चि० मन तं० उसका

तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं, अभिकम्माय पेसाय, मणसा अणुजाणिया ॥२६॥ एतेउ तओ आयाणा। जेहिं कीरइ पावगं॥ एवं भावविसोहीए। निव्वाण माभिगच्छइ ॥ २७ ॥ पुत्तं पिया समारब्भ। आहारेज्ज असंजए॥ भुंजमाणो य मेहावी। कम्मुणा नो विलप्पइ ॥ २८ ॥ मणसा जे पउस्संति। चित्तं तेसिं ण विज्जइ॥ अणव-

लगता है. कदाच लगजाय तो उस को मात्र स्पर्श रूपे ही वेदता है. क्यों कि वह पाप अव्यक्त अर्थात् सिकतामुष्टिवत् है जैसे वालु की मुष्टि भींत पर फेंकने से उस को स्पर्श कर पीछी पडजाती है वैसे ही कर्म का बंध होता है ऐसे क्रियावादी कहते हैं ॥ २५ ॥ जिस से कर्म बंधाते हैं उस कर्म बंध का तीन कारण हैं प्रथम मन में प्राणि की घात चिन्तवना, अन्य को प्राणी की घात करने का आदेश करना, और प्राणी की घात करता होवे उसको अच्छा जानना. ये तीन कर्म बंध के कारण जानना ॥ २६ ॥ रागद्वेप युक्त इन तीन कारणों से कर्म निबिड बंधाने है. यदि इस तरह तीनों प्रकार से जीव घात में प्रवर्ते परंतु साथ में

का व० वचन जे० जो त० तहां वि० विद्वता बताते सं० संसार में ही वि० रहेंगे [२३] अ० अथ अ० अपर पु० पहिले कहा कि० क्रियावादी द० मत क० कर्मचिन्ता प० प्रनष्ट सं० संसार की प० वृद्धिकर्ता (२४) जा० जानता हुवा का० कायासे णा० घात करे नहीं अ० अजान च० निश्चय हिं० घातकरे पु० स्पर्शायाहुवा सं० वेदे प० परन्तु अ० अव्यक्त खु० निश्चय सा० सावद्य (२५) सं० है त०तीन अ० आदान

ति संसारं ते विउस्सिया ॥ २३ ॥ इति अण्णाणवाइगता । अहावरं पुरक्खायं, किरियावाइदरिसणं; कम्माचिंतापणठाणं, संसारस्स पवड्ढणं ॥ २४ ॥ जाणं काएण णाउट्टी, अबुहो जं च हिंसति; पुट्ठो संवेदइ परं, अवियत्तं खु सावज्जं ॥ २५ ॥ संति मे

रहाहुवा पक्षी अपना पिंजरा तोड कर वाहिर नहीं निकल सकता है वैसे ही अपने तर्कों को प्रकट करनेवाले और धर्म अधर्म को नहीं जाननेवाले अज्ञानी दुःख को दूर नहीं करसकते हैं ॥ २२ ॥ अपने २ दर्शन की प्रशंसा करते हुवे और अन्य दर्शन को निंदतेहुवे जो अपना पंडितपना वतलाते हैं वे चतुर्गतिक संसार मांहि अनंत कालतक रहते हैं ॥ २३ ॥ अव अज्ञानवादी के अनंतर क्रियावादी का मत कहते हैं. उस के दर्शनवाले कर्म वंध का परमार्थ जानते नहीं हैं इस लिये उन का दर्शन संसार की वृद्धिकर्त्ता है ॥ २४ ॥ जो पुरुष जानता हुवा मन का व्यापार से किसी जीव की घात करता है परंतु काया से नहीं करता हैं वैसे ही जो पुरुष नहीं जानता हुवा मात्र काया से ही प्राणि.आदि की घात करता है उस को कर्म नहीं

ए० कितनेक णि० मोक्षार्थी ध० धर्म आ० आराधक व० हम अ० अथवा अ० अधर्म आ० आचरे ण० नहीं ते० वे स० सर्व उ० सरल व० प्राप्त करे (२०) ए० ऐसे ए० कितनेक वि० वितर्क से णो० नहीं अ० दूसरे को प० सेवन करे अ० अपनी ही वि० तर्क को अ० यह अं० सरल दु० दुर्मति (२१) ए० ऐसे त० तर्क सा० कहते हुवे ध०धर्माधर्म के अ० अजान दु० दुःखके ते० वे ना० नहीं तु० तोडे स० पक्षी पं० पिंजरे से ज० जैसे (२२) स० स्वयं स्वयं की प० प्रशंसा करते हुवे ग० निन्दते प० दूसरे

एव मेगे णियायट्ठी धम्म माराहगा वयं; अदुवा अहम्म मावज्जे ण ते सव्वज्जुयंवए ॥ २० ॥ एव मेगे वियक्काहिं णो अण्णं पज्जुवासिया; अप्पणोय वियक्काहिं अयमंजूहिं दुम्मई ॥ २१ ॥ एवं तक्काइ साहिंता धम्माधम्म अकोविया दुक्खं ते नाइतुट्टंति. सउणी पंजरं जहा ॥२२॥ सयं सयं पसंसंता गरहंता परं वयं जे उ तत्थ विउस्सं-

मोक्षार्थी हम धर्म के आराधक है ऐसा कहकर, प्रवर्ज्या लेकर, षट्काया का मर्दन करते हुवे अथवा अन्यको ही ऐसा उपदेश करते हुवे अधर्म का ही आचार करते हैं, परंतु मोक्ष मार्ग प्राप्त नहीं करसकते हैं, अर्थात् मोक्ष के लिये वे यत्न तो करते हैं, परंतु मोक्ष प्राप्त नहीं करसकते हैं. ॥ २ ॥ कितनेक दुर्मति, अज्ञानवादी, अपनी कल्पित कल्पनाओं से असत्य को सत्य मानते हुवे अन्य मार्ग सत्य होने पर भी उस का स्वीकार नहीं करते हैं और अपना ही वितर्क से अपना मार्ग सच्चा अकुटिल है ऐसा मानते हैं ॥ २१ ॥ जैसे पंजरमें

अ० अपनको प० दूसरे को ना० नहीं समर्थ कु० कहांसे अ० अज्ञानीओं सा० शिक्षादेने को (१७) व० वन में मू० मूर्ख ज० जैसे जं० जीव मू० मूर्ख णे० लेजानेवाला दो० दोनोंही ए० ये अ० अजान ति० तीव्र सो० शोक को णि० प्राप्त होवे (१८) अं० अंधा अं० अंधको प० रस्तेमें णि० लेजाता दू० दूर अ० अर्ध रस्ते ग० जाताहै आ० जावे उ० उन्मार्ग जं० जीव अ० अथवा पं० रस्तानुगामी (१९) ए० ऐसे

अण्णाणियाणवीमंसा,णाणेणविनियच्छइ;अप्पणोयपरंनालं,कुतोअण्णाणुसासिउं ॥ १७ ॥

वणेमूढेजहाजंतू, मूढणेयाणुगामिए;दोवि एए अकोविया, तिव्वं सोयं णियच्छइ ॥ १८ ॥

अंधो अंधं पहं णिंतो दूरमद्धाणुगच्छइ आवज्जे उप्पहं जंतू अदुवा पंथाणुगामिए ॥ १९ ॥

करने वाले को विशेष दोष है इससे ज्ञानकेविषे प्रवृत्ति करनेकी अज्ञानीयों की इच्छा नहीं होती है. इस तरह वे अज्ञानी अपना आत्मा का स्वरूप को जानने समर्थ नहीं हैं तो अन्य में समजाने को कैसे समर्थ होसकते हैं ॥ १७ ॥ जैसे कोइ महावन में मार्ग का अजान पुरुष अन्य मार्ग का अजान पुरुष को आगे कर के उन की पीछे पीछे चले तो वे दोनों महा दुःख पावे क्यों कि दोनों ही मार्ग के अजान हैं ॥ १८ ॥ और भी जैसे कोइ अंध पुरुष अन्य अंध पुरुष को मार्ग बताने को बहुत दूर जाकर उन्मार्ग में जावे या तो अन्य पंथ में चले जावे परंतु इच्छित मार्ग में नहीं पहुंच सके ॥ १९ ॥ ऐसे ही कितनेक भाव मुढ

साधु ए० कितनेक स० सर्व णा० ज्ञान स० स्वयं व० कहते हैं. स० सर्व लो० लोक में जे० जो पा० प्राणी न० नहीं ते० वे जा० जानते हैं कि० किंचित् (१४) मि० म्लेच्छ अ० अम्लेच्छ को ज० जैसे चु० बोला अ० वैसा बोले ण० नहीं हे० हेतु से० वे वि० जाने भा० भाषाअनुसार भा० बोले (१५) ए० ऐसे अ० अज्ञानी का ज्ञान व० कहते हुवे भी स० अपना २ नि० निश्चयार्थ न० नहीं जाने मि० म्लेच्छवत् अ० अबोधिक (१६) अ० अज्ञानी के वी० जानने की इच्छा णा० ज्ञान में न० नहीं वि० पहोंचे

माहणासमणाएगे,सव्वेणाणंसयंवए;सव्वलोगेविजेपाणा, न ते जाणंति किंचण ॥१४॥

मिलक्खू अमिलक्खुस्स,जहावुत्ताणुभासए;णहेउंसेविजाणाइ, भासिअंतणु भासए॥१५॥

एवमन्नाणियाणाणं,वयंतावि सयंसयं;नित्थयत्थं नयाणंति, मिलक्खुव्व अबोहिया ॥१६॥

जो प्राणी हैं वे सर्व कुच्छभी नहीं जानते हैं अर्थात् सम्यक्ज्ञान रहित जानना. ॥ १४ ॥ जैसे आर्य भाषाका अजान म्लेच्छ आर्य भाषाको भाषान्तर रूप बोलता है. परंतु वह उसका परमार्थ नहीं जान सकता है केवल भाषानुसार बोलता है ॥ १५ ॥ इस तरह सम्यक् ज्ञान रहित अज्ञाने अपना २ ज्ञान को प्रमाण करके अपने २ मार्ग प्ररूपते हैं परंतु वे निश्चयार्थ मार्ग को नहीं जानते हुवे म्लेच्छवत् ज्ञान रहित हैं ॥१६॥ अज्ञानी लोकों मानते हैं कि अज्ञान से अपराध करने वाले को अल्प दोष लगता है, और जानकर अपराध

आरंभ की न० नहीं सं० शंका करते अ० मुग्ध अ० अजान (११) स० सर्वात्मक लोभ वि० उत्कर्ष मान स० सर्व णू० माया वि० दूर करके अ० क्रोध अ० कर्मांशरहित ए० यह अ० अर्थ मि० मृग चु० छोडे (१२) जे० जो ए० इसे न० नहीं अ० जाने मि० मिथ्यादृष्टि अ० अनार्य मि० मृग से पा० पाशमें बन्धा ते० वे घा० घातको ए० प्राप्त होते हैं णं० अनंत वार (१३) मा० ब्राह्मण स०

धम्मपण्णवणा जासा, तं तु संकंतिमूढगा; आरंभाइं न संकंति, अविअत्ता अकोविया ॥ ११॥

सव्वप्पगं विउक्कस्सं; सव्वंणूमं विहूणिया; अप्पत्तियं अकम्मंसे, एयमट्ठं मिगेचुए ॥ १२॥

जे एयं नाभिजाणंति, मिच्छादिट्ठी अणारिया; मिगा वा पासबद्धा ते, घायमेसंति णंतसो॥ १३॥

शंका करते हैं और आरंभादिक पाप के कारण में शंका नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करके जीव कर्म रहित होता है, वैसा वह बाल अज्ञानी मृग की सदृश नहीं जानता है. इसलिये उसको नहीं छोड देता है ॥ १२ ॥ जो मिथ्यादृष्टि अनार्य कर्म क्षय करने का उपाय नहीं जानते हैं वे मृगकी सदृश पाश में बंधाये हुवे आगामिक अनंत काल तक जन्म मरण करेंगे ॥ १३ ॥ कितनेक ब्राह्मण तथा परिव्राजक अपनाही जानपना अच्छा बतलाते हैं. और भिन्न २ ज्ञान परस्पर विरुद्ध संदेह उत्पन्न करता है, इसलिये अज्ञान ही अच्छा है ऐसा अज्ञान वादी कहते हैं. इसलिये सर्व लोक में

वह प० प्राप्त होवे व० बंध स्थान को अ० नीचे व० बंधका वा० उपर मु० छूटे पा० पांवके पा० पाशसे तं० उसे मं० अज्ञानी ण० नहीं दे०देखे (८) अ० अहित अ० आत्मा अ० अहित प० प्रज्ञा वि० विषमस्थान णु० जावे स० बन्धाहुवा प० पांव पा० पाशमें त० वहां घा० घात नि० प्राप्त होवे (९) ए० ऐसे स० साधु ए० कितनेक मि० मिथ्यादृष्टि अ० अनार्य अ० अशंकित सं० शंका करते हैं सं० शंकाति से अ० नशंकाते (१०) ध० धर्म परूपा जा०जो सा० वह तं० उसे सं० शंका करतेहैं मू० मूढ आ०

अह तं पवेज बज्झं, अहे बज्झस्स वा वए मुच्चेज पयपासाओ, तं तु मंदे ण देहए ॥ ८ ॥

अहिअप्पाअहियप्पण्णाणे, विसमंतेणुवागते; सबद्धे पय पासेणं, तत्थ घायं नियच्छइ ॥ ९॥

एवं तु समणा एगे, मिच्छदिट्ठी अणारिया; असंकियाइं संकंति, संकियाइं असंकिणो ॥ १० ॥

मुक्त होसकता है. परंतु वह मंद प्राणी उस का उपाय नहीं देख सकता है ॥ ८ ॥ अब अहितात्माका और अहित प्रज्ञा का धारक वह मृग पाश में आवे और वहां आकर पाश में बंधाया हुवा घात को प्राप्त होवे ॥ ९ ॥ जैसे वह मृग पाशमें पडता है वैसेही कितनेक अनार्य मिथ्या दृष्टि श्रमण अशंकित जो धर्म के अनुष्ठान उस में शंका करते हैं और हिंसादिक जो शंकित स्थानक है वहां कुच्छ भी शंका करते नहीं हैं. ॥ १० ॥ और भी वे मुग्ध, विवेक विकल, तथा अपंडित, दशविध जो यतिधर्म है, उस की प्ररूपना करने में

ऐसे ए० कितनेक प० पार्श्वस्थ ते० वे भु० फिर वि० धीठ ए० ऐसे उ० सावध हुवे भी ण० नहीं ते० वे दु० दुःख से वि० छूटेंगे (५) ज० वेगवन्त मि० मृग ज० जैसे सं० होता हुवा प० शरण व० वर्जित अ० आशंकासे सं०शंकाते हैं सं०शंकितसे अ०नहीं शंकाते (६) प०रक्षण स्थानसे सं०शंकाते पा०पाश स्थानसे अ० अशंकाते अ० अज्ञान से भ० भयसे सं० व्याकुल सं० वह प० दोडते हैं त० तहां तहां (७) अ० अथ तं०

एव मेगेउ पासत्था, ते भुज्जो विप्पगब्भिया; एवं उवट्ठिया संता, ण ते दुक्खविमोक्खया ॥५॥
जविणो मिगा जहा संता, परिताणेण वज्जिया; असंकियाइं संकंति, संकियाइं असंकिणो॥ ६॥
परियाणिआणि संकंता,पासिताणि असंकिणो;अण्णाणभयसंविग्गा, सं पलिंति ताहिंताहिं ॥७॥

सुख दुःख से अजान व बुद्धि रहित हैं ॥ ४ ॥ इस तरह कितनेक पार्श्वस्थ, अत्यंत धीठ अपनी मानी हुइ मोक्ष मार्ग की क्रियामें प्रवर्तते हुए दुःख से मुक्त नहीं होते हैं अर्थात् मुक्ति नहीं प्राप्त करसकते हैं ॥ ५ ॥ अब अज्ञानवादी के मत का खंडन करते पहिले उन की अज्ञानता मृग के द्रष्टांत से बताते हैं. जैसे त्राण रहित भयाकूल कोइ मृग प्राण बचाने को भागता हुवा जहां पाश नहीं है वहां शंका करता है, और जहां शंका-स्थान पाशादि होवे वहां शंका नहीं करता है ॥ ६ ॥ और वह मृग रक्षा का स्थान की शंका करता हुवा और पाश की शंका नहीं करता हुवा अज्ञानपने से और भय से व्याकूल बन कर जहां पाशादिक स्थान है वहां ही वारम्वार जाता है. ॥ ७ ॥ अब जो वह मृग पाश की उपर से या नीचे से चलाजावे तो उस से

दूसरे का क० कृत सु० सुख ज० यद्यपि दु० दुःख से० सैद्धिक वा० या अ० असैद्धिक (२) स० स्वयं क० कृत न० नहीं अ० दूसरे का वे० भोगवते है पु० अलग २ जि० जीवो सं० संग्रहित तं० वह त० तथा ते० उनका इ० यहां ए० कितनेक आ० कहा (३) ए० ऐसे ए० यह जं० जल्पने वाले वा० अज्ञानी पं० पण्डितपनामानने वाले नि० नियत अनियत सं० एकान्त अ० अजान अ० निर्बुद्धिक (४) ए०

सुहं वा जइ वा दुक्खं, सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥

न तं सयं कडं दुक्खं, कओ अण्णकडं च णं; सुहं वा जइ वा दुक्खं, सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥

सयं कडं न अण्णेहिं, वेदयंति पुढो जिया; संगइअं तं तहा तेसिं इह मेगेसि आहियं ॥ ३ ॥

एव मेयाणि जपंता, बाल पंडियमाणिणो; नियया नियय संतं, अयाणंता अबुद्धिया ॥ ४ ॥

स्वयं कृत तथा ईश्वरादि कृत सुख दुःख नहीं है. वे सुख दो प्रकार के है सैद्धिक (उपरका) और असैद्धिक (अंदर का) मतलब कि एक कारण से उत्पन्न होता है और दूसरा स्वाभावीक उत्पन्न होता है ॥ २ ॥ यह सुख दुःख यदि किसीने नहीं किया तो जीव सुखी दुःखी क्यों होता है? जीव अपना किया हुवा, या अन्य का किया हुवा सुख दुःख वेदता नहीं है; किन्तु भवितव्यता का किया हुवा ही सुख दुःख को वेदता है ॥ ३ ॥ स्वतः को पंडित माननेवाले बाल इस तरह बकवाद करते हैं, और जो सुख दुःख नियति कृत और अनियति कृत दोनों हैं उन को एकान्त ही भवितव्यताने किया है ऐसा मानते हैं. इस लिये वे

इसलिये स्वयं हुवे सब सरिखे क्यों नहीं होवे ? यदि ईश्वरादि कृत होवे तो जगत् की विचित्रता क्यों होवे

पुत्र म०महावीर ए० ऐसे आ० फरमाया जि० जिनोत्तम त्ति० ऐसे वे० कहता हुं (२७).
आ० कहा पु०और भी ए० कितनेक उ०उत्पन्न हुवे पु०अलगर जि०जीव वे०वेदतेहैं सु०सुख दु०दुःख अ०अथवा लु० जातेहैं ठा० स्थान से (१) न० नहीं तं० वह स० स्वयं क० कृत दु० दुःख क० कहां से अ०

उच्चावयाणि गच्छंता, गब्भमेस्संति णंतसो; नायपुत्ते महावीरे, एव माह जिणोत्तमे ॥ त्तिबेमि ॥ २७ ॥ इति ससमयपरसमयज्झयणस्स पढमोदेसो सम्मत्तो *

आघायं पुण एगेसिं, उववण्णा पुढो जिया; वेदयंति सुहं दुक्खं, अदुवा लुप्पंति ठाणओ ॥ १ ॥

(१२) इस तरह सूत्रविरोधी ऊंचनीच स्थानक में परिभ्रमण करते हुवे आगामिक काले अनंता जन्म मरण करेंगे. ऐसा जिनोत्तम श्री ज्ञातपुत्र महावीर देवने कहा है, और वैसाही मैं कहताहूं. यह स्वसमय परसमय नामक प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देशा पूर्णहुवा. इस उद्देशा में भूतवादी प्रमुख परवादिके मतकहे और आगे भी मतान्तरों का स्वरूप कहते हैं. * *

नियतवादी ऐसा कहते हैं नरकादिक जो जो जीव हैं वे अपने देहस्थित सुख दुःख वेदते हैं अथवा वे प्राणी सुख दुःख अनुभवते हुवे एक स्थान से अन्य स्थान जाते हैं ॥ १ ॥ जो प्राणी सुख दुःख अनुभवते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान उत्पन्न होते हैं, वे दुःखादिक अपने किये हुवे नहीं हैं वैसे ही अन्य ईश्वर स्वाभावादिक कृत भी नहीं हैं. यदि स्वयंकृत सुख दुःख होते तो सर्व जीव व्यापारादिक सरिखा करते

ओ० औध त० तिरने वाले (२०) ण० नहीं ते० वे सं० संसारके पा० पारगामी (२१) ण० नहीं ते० वे ग० गर्भके पा० पारगामी (२२) ण० नहीं ते० वे ज० जन्मके पा० पारगामी [२३) ण० नहीं ते० वे दु० दुःखके पा० पारगामी (२४) ण० नहीं ते० वे मां० मृत्युके पा० पारगामी (२५) णा० अनेकतरहके दु० दुःख अ० भोगवे पु० वारम्वार सं० संसार च० चक्रवालमें म० मृत्यु वा० व्याधि ज० वृद्धावस्था कु० व्याकुल (२६) उ० ऊंच व० नीच ग० जावे ग० गर्भमें ए० जावे णं० अनंत ना० ज्ञात

धम्मविओ जणा, जे ते उ वाइणो एवं, ण ते गब्भस्स पारगा ॥२२॥ ते णा वि संधिं णच्चाणं, न ते धम्मविओ जणा, जे ते उवाइणो एवं ण ते जम्मस्स पारगा॥२३॥ ते णावि संधिं णच्चाणं, न ते धम्माविओ जणा, जे ते उ वाइणो एवं णते दुक्खस्स पारगा।२४। ते णावि संधिं णच्चाणं न ते धम्मविओ जणा जे ते उ वाइणो एवं ण ते मारस्स पारगा॥ २५ ॥ णाणा विहाइं दुक्खाइं अणुहवंति पुणो २ संसार चक्कवालंमि मच्चुवाहिजराकुले ॥ २६ ॥

हैं. परंतु वे दशविध यति धर्मको नहीं जाननेवाले और असमंजस वचन बोलनेवाले भवसमुद्रकोपार नहीं हो-सकते हैं (२०) वैसे ही वे लोक संसार के पारगामी, गर्भ के पारगामी, जन्म के पारगामी, दुःख के पारगामी, और मृत्यु के पारगामी नहीं हो सकते हैं ॥ २१ से २५ ॥ परंतु वे संसार रूप चक्रवाल में अनंत काल तक परिभ्रमण कर जन्म जरा और मरणादि के अनेक दुःखो से पीडित होते हैं ॥ २६ ॥

चार० धा धातुका रू० रूप ए० ऐसे आ० कहते हैं जा० ज्ञानी है ऐसा मानते आ० अपरे (१८) अ० घरमें आ० रहने वाले अ० अरण्यवासी वा० अथवा प० प्रव्रजित इ० यह द० मत में आ० आश्रित स० सर्व दु० दुःखोंसे मु० छुटतेहैं [१९] ते० वे णा० नहीं सं० संधि ण० जानते न० नहीं ते० वे ध० धर्मके वि० जान ज० मनुष्य जे० जितने वा० वादिओ ए० ऐसे ण० नहीं ते० वे

मावसंतावि अरण्णा वा वि पव्वया; इमं दरिसण मावण्णा; सव्वदुक्खा विमुच्चइ (१९) तेणावि संधिं णच्चाणं न ते धम्मविओ जणा जे ते उवाइणो एवं, ण ते ओहंतराहिया ॥ २० ॥ तेणावि संधिं णच्चाणं न ते धम्मविओ जणा जे ते उ वाइणो एवं ण ते संसारपारगा ॥ २१ ॥ ते णावि संधिं णच्चाणं; न ते

आत्मा किस से बना, आत्मा नित्य, अनादि अनंत और शाश्वत है वैसा भी नहीं मानते हैं (१७) ॥ १० ॥ पृथ्वी, पानी, तेउ और वायु इन चार धातु से लोक बना हुवा है. इस से अन्य कोइ आत्मा नहीं है, इस तरह स्वतः को पंडित मानते हुवे बोलते हैं यह भी क्षणिकपना से क्रिया के संबंध को मिलते नहीं है इस लिये उन को भी अफलवादी कहना (१८) ॥ ११ ॥ वे पूर्वोक्तदर्शनी अपने २ दर्शन में मुक्ति का कारण बताते हैं वे कहते हैं कि चाहे तो गृह में निवास करते होवे चाहे तो अरण्य में रहते होवे या चाहे तो प्रव्रजित होवे परंतु वे सर्व हमारे मत में आजाने से सर्व दुःख से मुक्त होते हैं. (१९) वे पंचभूतवादी प्रमुख ज्ञानावरणादिक कर्म की संधि नहीं जानते हुवे दुःख से मुक्त होने को सावधान होते

स० सर्वथा भा० भाव णि० निसभाव में आ० प्राप्त (१६) पं० पांच खं० स्कन्ध व० कहतेहैं
ए० कितनेक बा० अज्ञानी ख० क्षणयोगी अ० अन्य अ० अनन्य णे० नहीं आ० कहते हैं हे० हे-
तुक अ० अहेतुक (१७) पु० पृथ्वी आ० पानी ते० आग्नि ते० तैसे वा० वायु ए० एकही च०

अफलवादीगता ॥ १० ॥ पुढवी आउ तेऊ य, तहा वाऊ य एगओ,
(१७) चत्तारी धाउणो रूवं, एव माहंसु जाणया (आवरे) (१८) ॥ १२ ॥ अगार-

वे मानते हैं कि पट्पदार्थों का दो÷कारणों में से किसीभी कारणसे विनाश नहीं होताहै वैसेही, अविद्यमान वस्तु की उत्पत्ति भी नहीं होती है, इसलिये सर्व पदार्थ नित्यभाव में रहते हैं. अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते हैं (१६) ॥ ९ ॥ अफलवादी कहते हैं कि इस जगत् में पांच स्कंध हैं विज्ञान रस की समझ, वेदना सुख दुःख की समझ, संज्ञा—धर्म की समझ, संस्कार—पृथिव्यादि, और धातु रूपादि, इन के सिवाय अन्य कोइ आत्मा जगत् में नहीं है और भी वे अज्ञानी कहते हैं कि वे क्षणिक हैं. ये क्षणिकवादी चारवाक वादि की तरह अभिन्न और आत्मषष्ठवादी की तरह आत्मा भिन्न यह दोनों प्रकार नहीं मानते हैं वैसे ही

÷ विनाश दो प्रकार से होते हैं एक सहेतुक विनाश और एक निर्हेतुक विनाश जैसे क्षण २ में बौध मत में वस्तु का क्षिण होना यह निर्हेतुक विनाश और वैशेषिक मत में लकडी आदि प्रयोग से विनाश होना यह सहेतुक विनाश.

त्पन्न ए० ऐसे लो० लोकमें ते० उने क० कहांसे सि० होवे त० अन्धकारमें जं० जातेहैं मं० मूर्ख आ० आरंभमें नि० आसक्त (१४) सं० है पं० पांच म० महाभूत इ० यहां ए० कितनेक आ० कहा आ० आत्मा छ० छट्ठा पु० और आ० कहतेहैं आ० आत्मा लो० लोक सा० शाश्वत (१५) दु० दोनों प्रकार से ण० नहीं वि० विनाश पातांह नो० नहीं उ० उपजे अ० अविद्यमान स० सर्व

संति पंच महब्भूया; इह मेगेसिं आहिया आयछट्टो पुणो आहु आया लोगे य सासए (१५) दुहओ ण विणस्संति नाय उप्पज्जए असं सव्वे वि सव्वहा भा-वा णियतीभाव मागया (१६) इति आयाछट्ठ वाइगता ॥ ९ ॥ पंच खं-धे वयंतेगे बालाउ खणजोइणो, अण्णो अणण्णो णेवाहु हेउयं च अहेउयं

अब उन के मत का निराकरण करते हैं. शरीर से आत्मा अभिन्न है, और आत्मा अकर्त्ता है ऐसा जो मानते हैं, उन के मत में लोक की विचित्रता कहां से होवे? इस तरह बकवाद करनेवाले अज्ञान रूप तिमिरमें से निकलकर अन्य अंधकार में जाते हैं अर्थात् ज्ञानावरणादिक कर्म की उपार्जना करते हैं अथवा तो वे आ-त्मा का अभाव होने से पुण्य पाप नहीं मानते हैं इस से आरंभ में आसक्त बनकर वे मूर्ख तम (नरक) में जाते हैं इस तरह सांख्य मत का वर्णन कहा (१४) ॥ ८ ॥ अब आत्मषष्ठवादि का मत कहते हैं. वे कहते हैं कि इस संसार में जैसे पंच महाभूत हैं वैसे ही छट्ठा आत्मा है वह शाश्वत, सर्व व्यापी है (१५)

दे० आत्मा का (१२) ॥७॥ कु० करता का० कराता स० सर्व कु० करता न० नहीं वि० विद्यमान है ए० ऐसे अ० अक्रिय अ० आत्मा ए० ऐसे ते० वे प० धृष्ट (१३) जे० जो ते० वे उ० उ-

एवं तेउ पगब्भिया (१३) जे ते उवाइणो एवं; लोए तेसिं कओ सिया; त
माओ ते तमं जंति, मंदा आरंभनिस्सिया (१४) अकिरिया वाइगता ॥ ८ ॥

ता है यह ही लोक है इस से अन्य कोइ लोक नहीं है. क्यों कि शरीर का विनाश होने से आत्मा का भी विनाश होता है इस लिये आत्मा का अभाव में पुण्य पाप तथा अन्य लोक की संभावना कहां से होवे? इस तरह अपने मत के प्रतिपादन करनेवाले को इतना उत्तर देना कि यदि आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है और वह सुख दुःख नहीं भोगता है, तो इस जगत् में जो विचित्रता दिखने में आती है वह नहीं होना चाहिये. कोइ धनवान तो, कोइ दरिद्र, कोइ सुरूप, तो कोइ कुरूप, सुखी, दुःखी, रोगी, यह सब विचित्रता कर्म की है उस को भोगने के लिये आत्मा को पर लोक में जाना पडता है इस लिये तुह्मारा यह मंतव्य युक्ति पूर्वक नहीं है. (१२) अब अक्रियावादि का मत कहते हैं आत्मा अमूर्त्त, नित्य तथा सर्वव्यापी है इस लिये वह स्वयं क्रिया करता नहीं है और अन्य को भी क्रिया कराता नहीं है. यों सर्व क्रिया करने की नास्ति होने से आत्मा अक्रिय है. ऐसे यह आक्रियावादी (सांख्य) मतवाले का धृष्टपना है (१३)

नहीं स० प्राणी उ० उत्पन्न होने वाले (११) न० नहीं पु० पुण्य पा० पाप वा० अथवा न० नहीं लो० लोक इ० इस से प० अपर स० शरीरके वि० विनाशसे वि० विनाश हो० होता है.

न ते संति नत्थि सत्तोववाइया (११) नत्थि पुण्णे च पावे वा, नत्थि लोए इतो परे, सरीरस्स विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥१२॥ तज्जीवसरीरवाइ गता ॥ ७ ॥ कुव्वं च कारयं चेव, सव्वं कुव्वं न विज्जइ; एवं अकारओ अप्पा

कि पांच भूतों एकत्रित हो कर काया के आकार में परिणम कर चेतना उत्पन्न करते हैं. इस लिये शरीर शरीर में आत्मा भिन्न है. जगत् में अज्ञानी और विद्वान् हैं वे सर्व भिन्न २ हैं, परंतु एक आत्मा सर्व व्यापी जानना नहीं. इस में जैन का मत और इस का मत एक ही हुवा. परंतु जो भिन्नता है वह बताते हैं. वे कहते हैं कि जहां लग शरीर है वहांलग आत्मा है शरीर का विनाश होने पर आत्मा का अस्तित्व नहीं है वैसे ही प्राणी भवांतर में जाकर उत्पन्न नहीं होते हैं. यहां शिष्य प्रश्न करते हैं कि पूर्व कहे हुवे भूतवादि में और यह तज्जीव तच्छरीरवादि में क्या भिन्नता है? गुरु उत्तर देते हैं कि भूतवादी के मत में वेही काया के आकार में परिणम कर धावनादिक क्रिया करे, और इस के मत में पंचभूत काया के आकार में परिणम कर चैतन्य स्वरूप आत्मा उत्पन्न हो जावे. परंतु भूत से आत्मा पृथक् नहीं है. यही विशेषता है. (११) उन की वक्तव्यता यह है कि पुण्य पाप कुच्छ भी नहीं है वैसे ही जो दिखने में आ-

मूर्ख आ० आरंभमें णि० आसक्त ए० एकेक कि० करके स० स्वयं पा० पाप ति० तीव्र दु० दुःख
मे नि० जाताहै (१०) इ० यह स० सर्वगतवादी का मत ग० कहा ॥६॥ प० अलग क० सर्व आ० आ-
त्मा जे० जो [illegible]० अज्ञानी जे० जो पं० पण्डित सं० है पि० परलोक में न० नहीं ते० वे सं० है न०

णिस्सिया, एगे किच्चा सयं पावं, तिव्वं दुक्खं नियच्छइ (१०) इति सव्वग-
तवाइगता ॥ ६ ॥ पत्तेयं कसिणे आया, जे बाला जे अ पंडिया, संति पिच्चा

कितनेक आत्माद्वैतवादवाले मंद पु-
रुषों का यह बकवाद है इस जगत् में कितनेक आरंभ में आसक्त जन स्वयं पाप करके स्वयं ही तीव्र
दुःख पाते हैं परंतु अन्य नहीं पाते हैं. मतलब कि जो जीव जगत् में अनलंजन चौरादिक कर्म करता है,
वह छेदनभेदनादिक अनेक दुःख भोगता है. और जो जीव अच्छा समाचरता है वह सुखी होता है. यदि
सर्व जीव की आत्मा एक ही होवे तो सर्व जीव को दुःख या शाताएक क्यों नहीं होना चाहिये? इस लिये
आत्मा भिन्न है वह मिथ्या है * (२) अब इन का उत्तर देते हैं.
अब तज्जीवतच्छरीरवादिका मत कहते हैं. वे कहते हैं
[illegible] यह वचन मिथ्या है (१०) ॥ ६ ॥

* [illegible] भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव दृश्यतेजल चंद्रवत् ॥ भिन्न २
भूतों में रहाहुवा भूतात्मा एक ही है. जैसे जल से भरेहुवे घडोंमें चंद्रमा भिन्न २ दिखता है वैसे ही एक
आत्मा अनेक रूप दिखता है.

विनाश हो० होता है दे० जीवका (८) इ० यह पं० पांच भू० भूत वादीका मत ग० कहा ॥८॥ ज०जैसे पु० पृथ्वीका थू० स्तूप ए० एक णा० अनेक प्रकार दी० दिखता है. ए० ऐसे भो० अहो क० पूर्ण लो० लोक वि० आत्मा णा० अनेक प्रकार से दी० दिखताहै (९) ए० ऐसे ए० कितनेक ज० वकतेहै मं०

इति पंच भूयवाइगता ॥ ५ ॥ जहाय पुढवीथूभे, एगे णाणाहि दीसइ, एवं भो कसिणे लोए, विण्णू णाणाहि दीसइ (९) एव मेगेत्ति जप्पंति, मंदा आरंभ

आत्मा नहीं है तो उस का मरण हुवा ऐसा कैसे कहाजाय? इस का उत्तर चार्वाकदर्शनीय कहते हैं कि. इन पंच महाभूतों के विनाश से आत्मा का भी विनाश होता है. उस को ही मृत का व्यवहार करते हैं. परंतु जो ऐसा कहते हैं कि आत्मा यहां से चवकर अन्यस्थान जाता है, कर्मवश से सुखी दुःखी होता है, यह सर्व मुग्ध रंजन जानना. इस का उत्तर तज्जीव तच्छरीरवादी से जानना (८) ॥ ८ ॥ यह पंच भूतिकवादी का मत कहा अब आत्माद्वैतवादि का मत कहते हैं जैसे पृथ्वीरूप स्तूप एक होने पर वह नदी, समुद्र, पर्वत, ग्राम, नगर इत्यादि नाना प्रकारके रूप में दिखता है, और इन की वीच में पृथ्वी का अंतराल नहीं दीखता है. वैसे ही समस्तलोक चराचर रूप एक ही है. और वहही चराचर रूप आत्मा द्विपद, चतुष्पद वहुपदादि नाना प्रकार से दिखता है. परंतु जो ऐसा कहते हैं कि शरीर में

शं० शास्त्र वि० छोडकर ए० कितनेक स० साधु मा० ब्राह्मण अ० अजान वि० कदाग्रही स० लुब्ध हो रहे हैं. का० कामभोग में मा० मनुष्य (६) ॥ ४ ॥ सं० है पं० पांच म० मोटे भू० भूत इ० यहां ए० कितनेक को आ० कहा पु० पृथ्वी आ० पानी ते० अग्नि वा० या वा० वायु आ० आकाश पं० पांचवा (७) ए० ये पं० पांच म० महाभूत ते० उस से ए० एक आ० कहा अ० अंथ ते० उसका वि० विनाश से वि०

त्ता, सत्ता कामेहि माणवा (६) ॥ ४ ॥ संति पंच महब्भूया, इह मेगेसि माहिया; पुढवी आउ तेऊ वा, वाउ आगास पंचमा (७) एए पंच महब्भूया तेब्भो एगोत्ति आहिया; अह तेसिं विणासेणं, विणासो होइ देहिणो (८)

इस तरह ज्ञान और क्रिया से मुक्ति होती है ऐसा स्वसमय का अधिकार कहकर परसमय का अधिकार कहते हैं. कितनेक शाक्यादि साधु ब्राह्मण परमार्थ को नहीं जानते हुवे अपने मत के ही कदाग्रही बनकर अरिहंत भाषित करुणारसमय शास्त्रों का त्यागकर काम भोगों में आसक्त होते हुवे प्रवर्तते हैं (६) ॥ ४ ॥ अब चार्वाक का मत कहते हैं. इस जगत् में सर्व लोकव्यापी पंच महाभूत है. पृथ्वी, अप्, अग्नि, वायु, और आकाश. (७) इन भूतों से अव्यतिरिक्त अन्य कोइ पदार्थ नहीं है. अन्य दर्शनी जो अन्य तरह से कल्पना करते हैं वैसा नहीं है. पर लोक को जानेवाला, सुख दुःख को भोगनेवाला, जीव कोइ अन्य पदार्थ नहीं है. उन को कोइ परवादी प्रश्न करे कि अहो चार्वाक! तुमारा मत में पंच महाभूत से अन्य कोइ

साथ वा० या सं० रहे न० मनुष्य म० ममत्ववान् लु० पीडित होता है वा० अज्ञानी अ० परस्पर में मु
मूर्च्छित होता हुवा (४) ॥ २ ॥ वि० धन सो० स्वजनादि चे० निश्चय स० सर्व ए० यह ण० नहीं ता०
रक्षण करे सं० जानकर जी० जीवितव्य चे० निश्चय क० कर्म से ति० मुक्त होवे (५) ॥ ३ ॥ ए० ये

जेहिं वा संवसे नरे; ममाइ लुप्पइ बाले, अण्णेअण्णेहि मुच्छिए (४)॥ २ ॥
वित्तं सोयरिया चेव, सव्वमेयं ण ताणइ; संखाए जीवियं चेव, कम्मुणा उ तिउ-
ट्टइ (५) ॥ ३ ॥ एए गंथे विउक्कम्म, एगे समण माहणा अयाणंता विउस्सि-

जीवों की घात करता है, अन्य की पास घात कराता है, और घात करनेवाले को अच्छा जानता है.
इस तरह जीवों की घात करनेवाला अपनी आत्मा का वैर की वृद्धि करता है. इस से वह दुःख से मुक्त
नहीं होता है. (३) अज्ञानी मनुष्य जिस के घर में उत्पन्न होता है, और जिस की साथ रहता है उन
माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र, ज्ञाति आदि में ममत्ववान् होता हुवा अनेक कर्मों से पीडित होता है. भव
भ्रमण में फसता है ॥ (४) ॥ २ ॥ यह बंधन का कारण दर्शाया. अब कैसा जानता हुवा बंधन से मुक्त
होवे सो बताते हैं. इस धन धान्यादिक सचित्त अचित वस्तु तथा स्वजन प्रमुखमें से कोइ भी मुझे बचाने को
समर्थ नहीं है. और आयुष्य भी अल्प तथा अस्थिर है. इस लिये आरंभ, परिग्रह, और स्वजन स्नेहादि
बंधनों को ज्ञान परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर कर्म बंध से मुक्त होना (५) ॥ ३ ॥

क्या जा० जानता हुवा ति० तोडे (१) ॥ १ ॥ चि० सचित्त अ० अचित्त प० ग्रहणकर कि० थोडाभी
अ० दूसरे को अ० अच्छा जाने ए० ऐसे दु० दुःख से ण० नहीं मु० मुक्त होवे (२) स० स्वयं नि०
घातकरे पा० प्राणी की अ० अथवा अ० दूसरे से घा० घात करावे ह० घात करते को अ० अच्छा जाने
वे० वैरको व० वढाता है अ० आत्माका (३) जे० जिसके कु० कुलमें स० उत्पन्न होवे जे० जिसके

तिउट्टइ (१) ॥ १ ॥ चित्तमंत मचित्तं वा, परिगिज्झ किसामवि, अण्णं वा,
अणुजाणाइ, एवं दुक्खा ण मुच्चइ (२) सयं निवायए पाणे, अदुवा अण्णेहिं
घायए; हणंतं वा णुजाणाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो (३) जेसिंस कुले समुप्पन्ने,

जम्बूस्वामी पूछते हैं कि:—श्री महावीर प्रभुने बंधन कैसा कहा है और क्या जानकर उस को तोडना
॥ १ ॥ अब श्री सुधर्मस्वामी कर्मबंध के कारण बताते हैं. कर्मबंध के दो कारण है आरंभ और परि-
ग्रह. जिस में परिग्रह दो प्रकार के हैं (१) मनुष्य पशुआदि सचित्त, (२) वस्त्र भूषण मकानादि अचित्त
यह दोनों प्रकार के परिग्रह स्वतः धारन करे अन्य की पास धारन करावे और परिग्रह धारण करनेवाले
को अच्छा भी जाने. इस तरह आचरण करनेवाला दुःख से मुक्त नहीं होता है. (२) अब जहां परिग्रह
है वहां आरंभ है और जहां आरंभ है वहां प्राणातिपात है सो कहते हैं. वह परिग्रहवन्त पुरुष असंतोषी
होता हुवा परिग्रह की उपार्जना करने के लिये तथा प्राप्त परिग्रह का संरक्षण के लिये स्वयं षट्काय के
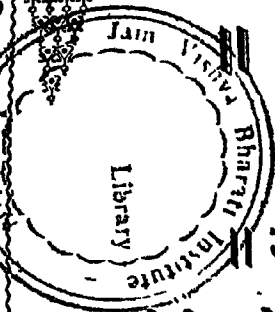
॥ द्वितीय " सूयगडांग सूत्र " ॥

॥ प्रथम श्रुत स्कंधः ॥

॥ स्वसमयपरसमयनामकं प्रथम मध्ययनम् ॥

बु० जाने ति० तोडे बं० बन्धन प० जानकर कि० कैसा आ० कहा बं० बन्धन, वी० वीरने किं०

बुज्झिज्जत्ति तिउट्टिज्जा, बंधणं परिजाणिया, किमाह बंधणं वीरो, किं वा जाणं

इस संसार में कितनेक ज्ञान मात्र से मुक्ति मानते हैं, तो कितनेक केवल क्रिया से ही मुक्ति मानते हैं, परंतु जैन ज्ञान और क्रिया दोनों से मुक्ति मानते हैं सो इस श्लोक से दर्शाते हैं. षट्काया का स्वरूप को पहिचान कर कर्मबंध तोडो अर्थात् मुक्तिके बाधक ज्ञानावरणादिक अष्ट प्रकारके कर्मरूप बंधन को ज्ञान परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से तोड कर मुक्ति प्राप्त करो. ऐसा श्री सुधर्मस्वामिभाषित वचन सुनकर

शास्त्र-प्रकाशक

दक्षिण हैद्राबाद निवासी जौहरी वर्ग मे श्रेष्ठ
दृढधर्मी दानवीर राजा बहादुर लालाजी साहेब
श्री सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी!

आपने साधु सेवा के और ज्ञान दान जैसे महा-
लाभके लोभी बन साधुमार्गीय जैन धर्म के परम
माननीय व परम आदरणीय बत्तीस शास्त्रों को
हिन्दी भाषानुवाद सहित छपाने का रु. २००००,
का खर्चकर अमूल्य देना स्वीकार किया और
युरोप युद्धारंभ से सब वस्तु के भाव मे वृद्धि होने
से रु. ४०००० के खर्च मे भी काम पूरा होनेका
संभव नहीं होते भी आपने उस ही उत्साह से
कार्य को समाप्त कर सबको अमूल्य महालाभ
दिया. यह आप की उदारता साधुमार्गीयो की
गौरव दर्शक व परमादरणीय है!

आवश्यकीय सूचना

धोराजी (काठियावाड) निवासी मणीलाल
जीवलाल जो शास्त्रोद्धार कार्यालय का मेनेजर
था और जो शास्त्रोद्धार जैसे महा उपकारी और
धार्मीक कार्य के हिसाब को संतोष जनक और
विश्वाशनीय ढंग से नहीं समझा सकने के सबब से
हमको पूर्ण अविश्वाश हो गया और आपखुद
घबरा कर बिना इजाजत एक दम चलागया इस
लिये जो प्रेश अखबार और धार्मिक कार्य के
लिये मणीलाल को देना चाहाथा वो उसकी
अप्रमाणिकता और घोटाला देखकर उस को
नहीं देते हुवे आग्रा निवासी जैनपथप्रदर्शक
मासिक के प्रसिद्ध कर्ता बाबू पदम सिंघ जैनको
धार्मिक कार्य निमित्त दिया गया है सर्व सज्जन
इस अखबार से फायदा उठावें

अपनी छती ऋद्धि का त्याग कर हैद्राबाद सीकन्द्राबादमे दीक्षा धारक बाल ब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्रीअमोलक ऋषिजीके शिष्यवर्य ज्ञानानंदी श्री देव ऋषिजी. वैय्यावृत्यी श्री राज ऋषिजी. तपस्वी श्री उदय ऋषिजी और विद्याविलासी श्री मोहन ऋषिजी. इन चारों मुनिवरोंने गुरु आज्ञाका बहुमानसे स्वीकार कर आहार पानी आदि सुखोपचार का संयोग मिला. दो प्रहर का व्याख्यान, प्रसंगीसे वार्तालाप,कार्य दक्षता व समाधि भाव से सहाय दिया, जिस से ही यह महा कार्य इतनी शीघ्रता से लेखक पूर्ण सके. इस लिये इस कार्य बद्दल उक्त मुनिवरों का भी बडा उपकार है.

पंजाब देश पावन करता पूज्य श्री सोहनलालजी, महात्मा श्री माधव मुनिजी, शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी, तपस्वीजी माणकचन्दजी, कविवर श्री अमी ऋषिजी,सुवक्ता श्री दौलत ऋषिजी.पं. श्री नथमलजी,पं. श्री जोरावरमलजी. कविवर श्री नानचन्द्रजी.प्रवर्तिनी सतीजी श्री पार्वतीजी.गुणज्ञ-सतीजी श्री रंभाजी. धोराजी सर्वज्ञ भंडार. भीनासरवाले कनीरामजी बहादरमलजी बाँठीया, लींबडी भंडार, कुचेरा भंडार,इत्यादिक की तरफ से शास्त्रों व सम्मति द्वारा इस कार्य को बहुत सहायता मिली है. इस लिये इन का भी बहुत उपकार मानते हैं.